आकाश

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

आकाश

भवेन्द्र नाथ साइकिया

अनुवाद

नवारुण वर्मा

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-1565-X

पहला संस्करण : 1996 (शक 1917)

Original Title Akash *(Assamese)*

Translation Akash *(Hindi)*

रु. 50.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ए-5, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

भूमिका

वर्तमान सदी के छठे दशक से लिखना प्रारंभ करने वाले डॉ. भवेन्द्र नाथ साइकिया एक श्रेष्ठ असमिया कहानीकार हैं। जिन दिनों इन्होंने पत्र-पत्रिकाओं में लिखना शुरू किया था, उन्हीं दिनों अनुभूति-संपन्न पाठकों की दृष्टि में उनकी सृजनात्मक विशिष्टताएं स्पष्ट रूप से आ गई थीं। अपने निजी 'ईडियम' या विशिष्ट प्रकृति के अभिव्यक्ति-सक्षम भाषा-रूप द्वारा जिस तरह सच्चे कवि अपने उद्भावित काव्य की घोषणा रसिक-समाज में किया करते हैं, डॉ. साइकिया ने भी किया और एक विशिष्ट शैली में किया। प्रचुर संभावनाओं को सामने रखकर इन्होंने किसी तरह की नई कारीगरी की घोषणा किए बगैर प्रायः पारंपरिक कहानी-रचना पद्धति के बीच रहते हुए अपनी निजी भाषा-शैली के जरिये अपनी 'जीवन-वीक्षा' पाठकों के सामने प्रस्तुत की है। निम्न मध्यवर्गीय जीवन की सीमित परिधि के बीच से हमारी जानी-पहचानी तस्वीर को ही वे अपनी कहानियों में प्रस्तुत करते हैं। उनकी भाषा भी रोज-रोज की हमारी जिंदगी की जानी-पहचानी भाषा है। परंतु इन दोनों तरह की सीमाओं के बावजूद उन्हीं के बीच एक तरह की विचित्रता और जिंदगी से घनिष्ठ परिचय उनकी कहानियों में नवीन रुचि का रूप लेकर खिल उठते हैं। इस तरह कहानी-कला-अनुशीलन के दो दशक बीतते न बीतते डॉ. साइकिया ने एक सुप्रतिष्ठित कलाकार का आसन प्राप्त कर लिया। उसी अवधि में उनका साहित्य-कर्म छः कहानी-संग्रहों के रूप में सामने आया। 'प्रहरी' (1963), 'वृंदावन' (1965), 'गह्वर' (1969), 'तरंग' (1969), 'एन्दूर' (1970) और 'शृंखल' (1975)। इनके अलादा इनकी चुनी हुई कहानियों का एक संकलन भी 'भवेन्द्र नाथ साइकियार श्रेष्ठ गल्प : प्रथम खंड : पञ्चाछर दशक' (1973) प्रकाशिंत हुआ। इन सारो कृातयों के प्रकाशन एवं पुनर्मुद्रण हमारे समक्ष डॉ. साइकिया के सृजन-कौशल की लोकप्रियता प्रस्तुत करते हैं। 'आकाश' संकलन की कहानियां इनके रचना संसार से विशेष दृष्टि से चुनी गई हैं। हमें विश्वास है कि यह संकलन डॉ. साइकिया की कला का श्रेष्ठ परिचय देगा और उसी रूप में सभी सुरसिक कहानी-पाठकों का समादर भी प्राप्त करेगा।

डॉ. भवेन्द्र नाथ साइकिया इसी बीच कला-जगत के अन्यान्य क्षेत्रों में भी दृढ़ता से विचरण करते रहे हैं। पर उनका यह विचरण कहानी-क्षेत्र से किसी तरह पीछे हटना है, ऐसा सोचने का हमें कोई आधार दिखाई नहीं देता। रेडियो नाटकों और रेडियो

धारावाहिक नाटकों के लिए ये लोकप्रिय हैं। उनके 'जोनाकी', 'देउता' आदि उस शैली की नाटक-धारा ने किस तरह श्रोताओं की उत्सुकता बढ़ा दी थी, बहुत-से लोगों को शायद याद हो। हालांकि डॉ. साइकिया के वे रेडियो नाटक पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुए हैं। श्री अरुण शर्मा ने रेडियो-नाटकों का जो संकलन प्रकाशित किया है, उसमें डॉ. साइकिया के केवल दो रेडियो नाटक ('जंघल' और 'दुर्भिक्ष'—अनातांर नाट्यावली, 1984) ही मुद्रित हुए हैं। साहित्य के अन्यान्य रूपों में भी इन्होंने काम किया है।

सन् 1981-82 में 'प्रांतिक' (पाक्षिक पत्र) में धारावाहिक रूप से छपने के बाद 'अतरीप' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित पुस्तक इनके उपन्यास-कला का परिचय देती है। इस उपन्यास के पहले हिस्से को 'अग्नि स्नान' (1986) नाम से; प्रारंभिक काल की कहानी 'प्रहरी' को ('प्रहरी' संकलन में संकलित, 1963) 'अनिर्वाण' नाम से और 'वानप्रस्थ' कहानी को ('शृंखल' में संकलित, 1978) 'संध्याराग' नाम से डॉ. साइकिया ने स्वयं अपने निर्देशन में फिल्माया। इनकी इन तीनों कलाकृतियों को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृति व सम्मान प्राप्त हुए। ये सारे तथ्य निश्चित रूप से कलाकार के रूप में डॉ. भवेन्द्र नाथ साइकिया का गंभीर परिचय देते हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि साइकिया की कहानियों के पीछे की घटनाओं में चकाचौंधवाली विचित्रता नहीं है। वे सिर्फ सहज जीवन की गति में आगे बढ़ती रहती हैं। परंतु ये विचित्रता-विहीन कहानियां मानो कहानीकार के निजी अनुभव और सूक्ष्म पर्यवेक्षण से समृद्ध हैं। कहानियों को ये विचित्रता भी प्रदान करते हैं। उनकी कहानियों के ज्यादातर पात्र भले ही समाज का कलुष न हों, पर कम से कम उसके अवसन्न अंग जरूर हैं। लेकिन वे वास्तव में समाज-जीवन से चुने गए लोग हैं और उनकी कीमत भी नकद आदमी के रूप में ही है। वे निःस्व हैं, पर किसी वर्ग-संघर्ष के इश्तहार में सर्वहाराओं के प्रतीक नहीं हैं। जुलूस निकालकर वे नारे नहीं लगाते। और उनके लघु-जीवन की कहानी अत्यंत अर्थपूर्ण है—वह अलग से।

आडंबर-विहीन, सीधी-सादी, वस्तु-निरपेक्ष भाषा में यहां अर्थपूर्ण कहानियों का वर्णन किया गया है। उसमें किसी तरह की संवेदनशीलता का स्पर्श नहीं है, और तो और प्रेम की बातें भी भावप्रवण नहीं हैं। 'गह्वर' कहानी के मि. मित्रनार का शब्द-चित्र रंग-भेद के खिलाफ डॉ. साइकिया का कथा-पोस्टर नहीं है। वह शब्द-चित्र खुद अपना वक्तव्य भर प्रस्तुत करता है। 'एन्दूर' कहानी की मति की मां की कथा यों तो 'too deep for tears' आंसुओं से भी अधिक गहरी वेदनाओं से भरी है। पर डॉ. साइकिया के वर्णन में वह निर्मोह सामान्य भाषा में ही आगे बढ़ी है, और जिदगी उस बेचारी औरत के प्रति कितनी निर्मम है—वर्णित शब्दों की हर ठोकर से यह तत्त्व फूटे कांच की भांति झनझनाकर बज उठा है। डॉ. साइकिया की सारी कहानियों के वर्णन को इकट्ठा करें तो हो सकता है कि वह आगे चलकर एक विशिष्ट अचल के सामाजिक

अध्ययन के एक खंड के रूप में विवेचित हो। सामान्य वाक्यों से गहरे अर्थ देने वाली डॉ साइकिया की भाषा में मानो शब्दों की एक निजी गति-शक्ति है, हालांकि उनका कोई अलग शब्दकोश नहीं है। कभी-कभी सामान्य-सा शब्द आकर हमारे सामने मानो अपनी पीठ से 'हु-उ-स' कर बड़ा भारी बोझ धप्प-से फेंककर खड़ा हो जाता है। जिंदगी में सिर्फ दुर्भाग्य को ही बटोरते रहने वाला रजनी मास्टर जब अपने घर के सामने के कमरे में अपने छात्रों के अभिभावकों से भद्दी गालियां सुनता है तो 'वे बाते सुनकर दीवार के उस ओर की भाग्यवती को ही ज्यादा तकलीफ होती है।' सचमुच भाग्यवती ही है! पाठक शायद चौंक-से उठेंगे, जिंदगी में मरणांतक यंत्रणा भोगने वाली स्थिति में भला यह भाग्यवती कौन है? रजनी मास्टर की पत्नी का नाम डॉ. साइकिया अगर चाहते तो कुछ दूसरा भी रख सकते थे। एक अभागिन औरत के लिए गेंधेली, मेदेली जैसा कोई भी नाम रख सकते थे। पर नाम रखा भाग्यवती, मगर यह एक 'लेबल-नाम' (label name) भर नहीं है। किसी अंधे लड़के का नाम पद्मलोचन होने की तरह जैसे भाग्य भी उस पर व्यंग्य की हंसी हंस रहा हो। इसी तरह डॉ. साइकिया के शब्द-चयन में एक स्वाभाविक माया वर्तमान है। यहां तक कि यह माया कहानियों के नाम पर भी फैली है। पाठक अगर क्षणभर रुककर अनुभव न कर लें तो आमतौर पर इस नामकरण का मूल्य स्पष्ट नहीं होता। कहानी-कथन में भी उस एक ही ध्वनि की छाया है। चौंकाने वाली शब्दावली के जरिये किसी तरह की नवीनता के सृजन का प्रयास किए बगैर ही उन्होंने सामान्य भाषा द्वारा ही जिंदगी के सूक्ष्म परिचय को प्रस्तुत किया है। जीवन को उन्होंने जैसा पाया है और देखा है, देखा है और समझा है; वैज्ञानिक वस्तु-निरपेक्ष निर्ममता से उसी प्रकार उसे शब्दांकित भी किया है मानो उनकी तस्वीरों की संरचना जीवन के प्रति खासतौर से तय किए हुए दृष्टिकोण से नहीं हुई है। लेकिन उसी में जीवन का मृदुल हास-परिहास (little ironies of life) स्वाभाविक रूप से प्रकट हुआ है। लगता है, जैसे पाठकों को सूचित किए बगैर ही उन्होंने अपनी कारीगरी का कमाल दिखाया हो। गहरे एवं सूक्ष्म-जीवन बोध से समृद्ध डॉ. भवेन्द्र नाथ साइकिया की यही विशेषता है और इन्हीं विशेषताओं के कारण वे आधुनिक जीवन के भाष्यकार हैं।

– महेश्वर नेओग

यात्रा वध

बसंतपुर के राजा चंद्राकर ने सेनापति वीरबाहु की अक्षमता और ढिलाई के कारण आग-बबूला होकर, 'ले तेरे योग्य यही सजा है' कहते हुए अपने हाथ की खुली तलवार सेनापति की छाती में घुसेड़ दी और वीरबाहु तुरंत 'अरे भगवान।' कहता हुआ जमीन पर गिर पड़ा। तभी पीछे और अगल-बगल वाले लोग चीख उठे—'सामने वाले लोग बैठ जाएं, आगे वाले लोग बैठ जाएं।'

इसके पहले यहां दो रात नाटक चल चुका था। परसों तराबारी के और कल माज गांव के लोगों ने नाटक किया था। आज नवमी के दिन तुलसी घाट की पार्टी अभिनय कर रही है। दुर्गा पूजा के महीने भर पहले ही 'न-चुबुरी दुर्गा पूजा समिति' के सचिव विनंद माधव हाजरिका के यहां आमतौर पर पूरे जिले की थिएटर-पार्टियों के पंद्रह-बीस मैनेजर दुर्गा पूजा के अवसर पर थिएटर-अभिनय तय करने के उद्देश्य से आया करते हैं। पूजा-समारोह की हलचल भरे शहर के लोगों को अपना नाटक दिखाने की प्रबल अभिलाषा हर पार्टी के मैनेजर की रहती है। बिनंद माधव के पहले के सचिव ने पहले-पहल आए तीन मैनेजरों से पहले ही तीन दिन अभिनय करने के लिए तय कर लिया था, परंतु पहले कई बार लगातार जिन नाटकों का अभिनय हुआ था, वे दर्शकों के मनोनुकूल मनोरंजन करने में असफल रहे। इसी कारण वर्तमान सचिव ने नई पद्धति से थिएटर-पार्टी का चुनाव करने की ठानी।

उस पद्धति को एक तरह 'इंटरव्यू' या साक्षात्कार भी कहा जा सकता है। बिनंद माधव रसज्ञ आदमी है। थिएटर का नाम क्या है, हीरो-हीरोइन कैसे हैं, छोकरे कितने हैं, अभिनय करने वाली छोकरियां सचमुच हैं या नहीं, मेडल पाने वाले छोकरे और भंडैत यानी मजाकिये हैं या नहीं—आदि प्रश्नों के समुचित जवाब पाने पर ही उन्होंने पार्टियों का चुनाव किया था और अंत में चुनी हुई पार्टी के मैनेजर को नाटक के संवाद आदि घटाकर युद्ध के दृश्य ज्यादा करने, हर दृश्य के अंत में नाचने वाले छोकरों या विदूषकों को प्रस्तुत करने आदि जैसे आवश्यक सुझाव देकर विदा किया। बिनंद माधव का रस-बोध पुराने माधाता के ज़माने का है। उसके अंतरंग दोस्तों का ऐसा विश्वास रहा है कि दर्शकों की मनःस्थिति समझ कर उन्हें उचित खुराक जुटाने के पूरे गुण उसमें हैं। खासकर जब कॉलेज में पढ़ते समय सस्ती फिल्में देखा करता था, उन दिनों अगर उसके बारे में कोई शिकायत करता तो 'धत्, दो आने की कोई किताब खरीदने पर भी उसमें

बहुत सारे उपदेश मिल जाएंगे। फिल्म में तथ्य, तत्त्व, उपदेश—संदेश आदि की खोज न करना। एनजॉयमेंट इज एनजॉयमेंट' बिनंद माधव ऐसा जवाब देने वाला व्यक्ति रहा है।

इन सभी विषयों की जांच मे सही उतरने के कारण इस बार पूजा के उपलक्ष्य में अभिनय करने हेतु माज गांव नाट-संघ, तराबारी युवक समिति और तुलसी घाट ऑपेरा पार्टी—ये तीन मंडलियां चुनी गई थी।

सन् 1938 ई. में स्थापित तुलसी घाट ऑपेरा-पार्टी को पूजा-उत्सव-समारोह के सर्वश्रेष्ठ दिवस पर नाटक प्रदर्शन हेतु चुना गया था। उस पार्टी के इस सौभाग्य के मूल में गोपीनाथ बरा द्वारा रचित शक्तिशाली नाटक 'अरण्य बंदिनी' और मेडल प्राप्त उसके कलाकार-शिल्पी थे। परंतु पार्टी के संचालक बिपिन बरा को इस बात का हार्दिक दुख था, कि इस शहर में आकर तरह-तरह के उन्नत-किस्म के दृश्यों का मंचन करने के बदले यहां खुले मंडप के बीचोंबीच बिछाए गए तिरपाल पर उन्हें यात्राभिनय करना पड़ रहा था।

आकार की दृष्टि से पहले दर्जे का होने पर भी टीन, तिरपाल, बड़े-बड़े बोरे, शामियाना आदि जोड़कर बनाए गए पूजा-मंडप को देखकर बरामदे में बैठे दर्जी को दो साल की बिटिया की फ्रॉक की याद आ जाती है। पंडाल-प्रमुख प्राणकृष्ण साइकिया से अगर यह पूछना चाहें कि टीन की छत वाला मंडप समय पर क्यों नहीं बन सका? तो उसे साइकिया के 'कभी अपनी जिंदगी में टीन के लिए घर-घर या मारवाड़ी के गोदाम-गोदाम चक्कर लगाया है? भोला ठीकेदार के यहां जाने के लिए जब तुमसे कहा था, तो क्या तुम निकले थे? तब फिर यह दर्जनों बातें क्यों निकाल रहे हो?'—आदि आदि पचीसों सवालों का जवाब गाठ में बांधकर ले जाना होगा।

हालांकि सजावट का कमरा मंडप के एक ओर टीनों से घेरकर बनाया गया था। बीचोंबीच एक तिरपाल बिछा कर जो रंगमंच बनाया गया था, सजावट के कमरे से वहां तक जाने के लिए कमरे के दरवाजे के परदे द्वारा दोनों ओर से फाड़े हुए बांस के फट्टे बांधकर अभिनेताओं-अभिनेत्रियों के आने-जाने का मार्ग बना दिया गया था। इस मार्ग के एक ओर खड़े होकर यात्रा देखने वाले दर्शकों की भीड़ पूरे मडप के और हिस्सों की अपेक्षा ज्यादा दिखाई पड़ती है। परसों, यानी यात्रा-अभिनय के पहले ही दिन, खड़े, उत्सुक और उत्तेजित दर्शकों के धक्कमधक्के से बांस के ऊपर बंधी पटसन की रस्सियों की गांठें टूट गई थीं। इसलिए दूसरे दिन मनधन भाई को लगाकर नारियल की रस्सियों से बांसों को फिर मजबूती से बंधवा दिया गया था। परंतु आज फिर रस्सियों की गांठें अपनी जगह से हट जाने के कारण ढीली-ढाली हो गई थी। पूजा-घर में ऐसे बांस बांध कर कई सुरक्षित हिस्से बनाए गए थे, जैसे दुर्गा देवी के सामने का हिस्सा, यात्रा-पार्टी का रसोईघर, मोहन की पुतलों की दुकान, आदि। परंतु उन घेरों की रस्सियों की गांठें देखकर ऐसा लगता है कि भले ही रस्सियों की आयु खत्म हो जाय, पर गांठों की

मजबूती बनी ही रहेगी।

सजावट-घर के इस घेरे के पास दर्शकों की भीड़ होने का पहला कारण था—अभिनेताओं-अभिनेत्रियों के प्रवेश-प्रस्थान, अभिनय आदि के सुस्पष्ट दर्शन तथा अभिनेताओं-अभिनेत्रियों के संवाद, वार्तालाप आदि साफ-साफ सुनने का दर्शकों का आग्रह। दूसरे-तीसरे कारण भी जरूर हो सकते हैं। पर सीधी भाषा में उन्हें प्रकट कर देना दुस्साहस का काम है।

आज के इन उत्साही दर्शकों के बीच प्रमुखता प्राप्त लोगों का परिचय उनके नाम, मुखाकृति, पितृ-कुल परिचय आदि की उपेक्षा उनके पहनावे से ही आसानी से मिल सकता है, ऐसा लगता है। दो फेल्ट कैप, दो बूटेदार कपड़ों की हवाई कमीज, एक टी-शर्ट, एक रिमलैस चश्मा, ऊपर बंधे बास पर पेट टिकाए, एक चाकलेटी रंग की पैंट, दूसरे नीचे बंधे बांस की फट्टे पर पैर रखे कलकत्ते के चीनी-बाजार के चितकबरे रंग के जूतों की जोड़ी। उन्हें देखकर यह आशा होती है कि एक मध्यमवर्गीय अति-उत्साही मंडली को दर्शक के रूप में पाने की खुशी तुलसी घाट ऑपेरा पार्टी की मैडल न पाने की वेदना को भी मिटा सकेगी।

सजावट-घर से आने-जाने की इस राह के एक ओर कुछ जगह खुली छोड़ी गई है, जहां कुछ छोटे-छोटे बच्चे बैठे हुए हैं।

इन बच्चों के परिचय अलग-अलग हैं। निरापद दूरी पर रहकर पुतलों की दुकान की ओर एकटक देखते रहने वाले, मदन डॉक्टर के सात साल के बच्चे के बैलून फुलाते समय पास खड़े, किसी के हाथ का बैलून फट जाने पर आपस में धक्कमधक्के खीचतान करते हुए उसकी फटी रबर को चुनकर अपने मुंह में डाल बेर के बराबर गुट्टी बना अपनी हथेली पर घिस-घिस कर 'कर्र-कर्र' आवाज निकालने वाले जैसे काम इनके रहते हैं। इन कर्मों के अलावा पूजा के इन कई दिनों तक अपने घर से नाता न रखना इनका धर्म होता है। दोपहर को, रात बीतने के पहले ये मंडप के नीचे की खाली बेंचों पर सो रहते हैं और कहीं से दो-चार पैसे मिलते ही मिठाई खरीद कर खा लिया करते हैं। इस खाली जगह के दूसरी ओर समूचे मडप के बराबर लंबाई में बांस की तीलियों से बुने परदे को टांगकर मंडप के एक तिहाई हिस्से को ढंक दिया गया है। इस परदे की जरूरत काफी है, महत्त्व ध्यान देने लायक है परंतु कार्यकारिता संदेहजनक है। परदे के दूसरी ओर औरतों के बैठने का इंतजाम है।

कनक लता प्राइमरी स्कूल से लाई हुई बेंचों को कतार से परदे की ओट में सजा दिया गया है। 'पहले' वर्ग के बच्चों से 'तीसरे' वर्ग तक के बच्चों की ऊंचाई जिस तरह से बढ़ती जाती है, कनक लता स्कूल की बेंचों की ऊंचाई भी उसी तरह से बढ़ती जाती है। मंडप में भी उन बेंचों को उसी तरह से सजाया गया था। 'पहले' वर्ग वालों की बेंचें बिलकुल सामने, उसके बाद 'दूसरे' वर्ग वालों की बेंचें, फिर 'तीसरे' वर्ग के छात्रों की बेंचें क्रम से ऊंचाई में लगा दी गई थीं। यह व्यवस्था आखिर तक बनाए

रखी जा सकती तो परदे की ओट में बड़े कम खर्च में बनाए प्राइवेट कॉलेज की लेक्चर-गैलरी जैसा रूप दिखाई पड़ता, मगर यह सिलसिला ज्यादा आगे नही चला। एक ही किस्म के कागज की कमी के कारण बाजार में जल्दी निकाल दिए जाने वाले कई रंग के कागजों वाले चितकबरे संस्कृत-नोट वाली किताब की तरह, बेंचो की उन कतारों में आखिर तक वकील के मकान के सामने के बरामदे में मुवक्किलों के बैठने की लबी बेंच, नगर पालिका कार्यालय की कुर्सियां, देने में आनाकानी करने के बाद आखिर नीचे आर. एस. लिखकर दी गई रमेश बाबू की कुर्सियां आकर जुड़ गई।

इन बेंच-कुर्सियों पर उम्र के मुताबिक बैठने का वैसे कोई निश्चित वर्गीकरण न रहने पर भी बैठने के समय अपने आप वैसा हो गया है। परदे के पास से लेकर पीछे की आठ-दस बेंचों पर छात्रा-गैर-छात्रा, प्राक्तन छात्रा आदि स्थानीय लड़कियां धक्कम-धक्का कर बैठ गई हैं। पिछली बेंचों-कुर्सियों पर 'बांदर-केकोरा'[1] जैसी बेचैनी पैदा करने वाली चीजों का उपद्रव नहीं है, फिर भी उस अंचल मे बैठने की तनिक भी इच्छा लड़कियों की नहीं थी। खास बात यह है कि वहां बैठकर भी नाचने वाले छोकरे के पैरों के घुंघरू तक भी दिखाई पड़ते हैं, फिर भी वहां कोई लड़की नही बैठती। उस हिस्से में प्रौढ़ाएं, बूढ़ियां, लीली की मां, मंदिरा की बूढ़ी दादी, नरेन डॉक्टर की सास आदि बैठी हैं।

परदे की ओट के पूरे महिलाओं के हिस्से को बराबर-बराबर दो भागों में बांट कर बीच में बांस की एक टट्टी लगा दी गई है। कब, किसने यह टट्टी लगाने की प्रथा चालू की, इसके बारे में यहां तक कि बिनंद माधव बरुआ को भी जानकारी नहीं है। उस टट्टी के इस ओर लंबी-लंबी बेंचों का एकाधिकार है, वहां कुर्सी नही है। बिलकुल पीछे की ओर दो-एक कुर्सी जरूरी स्थिति के लिए सहेजकर किसी के बैठने से पहले ही किसी ने वहां से हटाकर पीछे की ओर रख दी थीं। औरतों को बैठाने का भार संभाले हुए, पूजा-समिति के अथक कर्मी, बिनंद-माधव के भतीजे शिव, उसके बंधु रजनी, सूर्य और अनिल यात्रा-अभिनय आरंभ होने के पहले तक इन कुर्सियों का उपयोग खुद कर रहे थे।

पंडाल का वह हिस्सा यात्रा देखकर आनंद प्राप्त करने के लिए आई महिला-दर्शकों के लिए ही था। वेश-भूषा, क्षेत्र और स्तर आदि के आधार पर ही उन महिलाओं और औरतो को बैठने के आसन बाटे गए हैं। बैंगनी रंग के हाफ-पैंट पहनाकर लाए गोद के बच्चे, षष्ठी तिथि के दिन कोई माप-जोख लिए बगैर ड्राइवर का काम करने वाले पति द्वारा लाई गई लंबी-चौड़ी चप्पलें, मिट्टी के तेल की ढिबरी के उजाले में आइने में ठीक से दिखाई न पड़ने के कारण बाएं कान के ऊपर रह गए पाउडर का

---

1. बादर केंकोरा—एक तरह का रोंएदार छोटा जगली पौधा, जिसके रोएँ शरीर मे लगने पर बहुत ज्यादा खुजलाता है।

थक्का, तीन इंच की कांटी के ऊपरी गोल सिरे से घिस-घिसकर लगाई गई लिलार के बीचोंबीच बिंदी, उत्साह के मारे भागे आए आठ साल के बेटे का 'हेलेइ माई, बेगेइ आह, भाओना ओलालेइ' यानी—अरी मां, जल्दी आ, नाटक शुरू हो गया है—कह उठना—आदि के जरिए ही आने वाली को टट्टी के किस ओर बिठाना है—इस बारे में रजनी, सूर्य और शिव तुरत फैसला कर सकते थे।

बनिया पट्टी, देशवाली मुहल्ला और उधर को नदी-किनारे के ज्यादातर लोगो को शिव यो ही पहचानता था।

"आइए, आइए, आप लोग इस ओर आइए। इधर मे होकर वहां आगे चले जाइए। हेइ-हेइ लड़के—तुम लोग इधर क्यो ? उधर बाहर से घूमकर जाओ—लड़को के साथ बैठो।"

लाहन दास अपने बाल-बच्चों के साथ पत्नी को भी ले आया था। उसकी आशा थी कि खुद अंदर जाकर पत्नी को अच्छी-सी जगह पर बैठा देगा, मगर वहां की हालत देखकर उसकी हिम्मत नही हुई। कौन कब, कहां आकर डांट-डपट करने लगे या धकियाने लगे, क्या पता ? औरतों के आने-जाने की राह के सिरे पर खड़े होकर पत्नी को कहा बैठाते हैं, यह देखकर वहां से हट आया। सोच लिया कि कभी जरा मौका मिल जाए तो एक बोतल मीठा पानी और एक बीड़ा पान उसे दे आएगा। बस।

फिर देसवाली[1] औरतो को तो पहचानने न पहचानने का सवाल ही नहीं उठता।

"—हेई, उधार कहा जाता हाय। इधार आव, हियां बइठो।" 'हिया' का मतलब होता, बिलकुल आखिरी बेंच पर। इक्का-गाड़ी, घोडा-गाड़ी चलाने वाले पतियों की भांति इन औरतों को भी शिव गाली दे सकता है।

रजनी ने एक बार शिव को धीमे से चिकोटी काटकर कहा—"देख रहा है ?"

—हूं।

—बड़ी सांघातिक है रे।

सूर्य भी सिर भिड़ाकर सुन रहा था। बोला,

—अरे, कितने असमिया घरों में भला ऐसी देखी है रे ? बिलकुल पारसी-जैसी है।

—घर कहा है रे ?

—धन सिह के चावल-गोदाम के पास जो साइकिल की दुकान है, उसके पिछवाड़े।

इस बीच देसवाली औरतों के साथ आई सामला की बेटी तितली बिलकुल सकुचित हो गई थी।

मंडप में क्लेरिओनेट, ढोलक, हारमोनियम, झांझ आदि के समवेत वाद्य-वादन में

---

1 बिहार, उत्तर प्रदेश आदि से आए मजदूर-व्यापारी आदि को असम मे 'देसवाली' कहते हैं।

एक युद्ध की धुन बज रही थी। बाप के साथ तीन मील से पैदल आया खर्गेश्वर तिरपाल पर लड़कों के झुंड में बैठा ऊंघने लगा था। उसकी कमीज की ऊपरी जेब में बाप ने एक संतरा ठूंस दिया था। पास बैठे हुए लड़के उसे उड़ाने की फिराक में दिमाग भिड़ा रहे थे। मंडप के बाहर अमृत, सैफुद्दीन और बापुटि ने मिलकर चाय की दुकान लगाई थी और एक गत्ते पर 'यहां चाय, मांस और परांठा मिलता है।'—लिखकर जो साइन बोर्ड लगाया था, रतिबर उसके तले खड़े होकर चीखने लगा था—'अरे क्या तुम लोग रात के दो बजे नाटक दिखाओगे? इस टाउन में रुपया लूटने आए हो?—उसी समय निताइ-चुबुरी से माइसेना और शीतला इन दो नवयुवतियों को साथ लेकर आने वाली तीन औरतों ने महिलाओं के हिस्से में प्रवेश किया।

शीतला आज की यात्रा-पार्टी के निर्देशक बिपिन बरुआ की बेटी है। शीतला बाप के साथ इसी इरादे से आई थी कि एक बार इस जिले को देख आए। माइसेना की मां और शीतला की मां दोनों बहनें हैं। शाम होने के पहले से ही माइसेना शीतला के पहनावे में कुछ शहरीपन लाना चाहती थी। आखिर तक शायद कुछ आ भी जाता, पर शीतला के तो कपड़े ही कुछ अलग ढंग के थे। मेखला[1] का तीन इंच का बेल-बूटा भला कैसे छिपाए? पाट-रेशम की चादर को बार-बार छाती पर लेने की आदत उसकी नहीं रही है। आखिर लाचार होकर बाप के अपने हाथो से बनाया हुआ जूड़े पर लगाया जाने वाला तितलीनुमा पिन उसकी छाती पर ही लगा देना पड़ा। पिछली बार मेले में जाते वक्त खरीदी गई माइसेना की चप्पलें उसे पहनाकर दो-तीन बार पैदल चलवाकर देखा गया। परंतु माइसेना के मन का संदेह मिटा नहीं। फिर भी तुलसी घाट की कोई दूसरी लड़की अब शीतला को देखे, तो जरूर देखती रहेगी।

निताइ-चुबुरी का उभरता नौजवान, माइसेना का बड़ा भाई बीरेन इस मंडली को साथ लेकर आया था। अंदर घुसकर वह महिला-अंचल की ओर आगे बढ़ गया। उसके पीछे-पीछे माइसेना, शीतला आदि आ रही थीं। शिव बीरेन को पहचानता था। दोनों ने ही दसवें वर्ग के बाद स्कूल छोड़ा था। बीरेन का बाप उसे घर में रहकर ही सोने-चांदी के गहने बनाने का काम सिखाने पर जोर दे रहा है। इसी कारण पिछले कुछ दिनों से वे दोनों ज्यादा मिल-जुल नही पा रहे हैं। इसलिए शिव क्या करे, न करे इस उधेड़-बुन में पड़ा हुआ सूर्य, रजनी आदि के मुंह की ओर देख ही रहा था, इतने में बीरेन पाचों औरतों को महिला-अंचल की एक बेंच पर बिठाकर गरदन में लपेटा रूमाल निकाल उससे मुंह पोंछता हुआ सीधे बाहर निकल गया। उस बेंच पर पहले से ही भोला ठेकेदार की पत्नी, डेका वकील की मां और शिव की दादी मा ये तीन महिलाएं बैठी हुई थी।

तभी एक सीटी की तेज आवाज आई। साथ ही समवेत वाद्य-वादन आरंभ हो

---

1 मेखला—असमिया महिलाओं का पेटीकोट जैसा पहनावा।

गया और सजावट-घर के परदे की ओट में घुंघरुओं की आवाजें गूंज उठीं। दूसरे ही क्षण लंबी-लंबी बेणियां हिलाते हुए, हाथ के रूमालों को मुट्ठी से पकड़े, सिर से पैर तक गाढ़ी जिंक-ऑक्साइड पोते, लड़कियों के वेश में छह छोकरे दौड़ते हुए आए और बिछे तिरपाल के बीचोंबीच दो कतारों में घुटने टेककर बैठ गए। उसके बाद ही—"कदम तलते छियामल कालीया मुरली बजाय" यानी—'कदंब के नीचे श्याम कृष्ण मुरली बजाए', गीत और नृत्य आरंभ हो गया।

परंतु शिव की दादी मां इस शुभारंभ पर नजर ही नहीं डाल सकी। वह एक-एक बार पास बैठी माइसेना की मां ललिता पर नजर डालती और फिर बार-बार पीछे मुड़-मुड़कर देखने लगती थी।

"जरा उधर हट जाओ न," उसने कुछ ऊंची आवाज में डेका वकील की मां से कहा। इस बीच डेका वकील की मां समेत आसपास बैठी हुई सभी महिलाओं ने माइसेना आदि की मंडली को देख लिया था।

भोला ठेकेदार की पत्नी विरक्ति से बोल उठी—"यह तो बड़ी मुसीबत सिर पर आ पड़ी।" और माइसेना आदि की ओर तिरछी नजर डालकर बित्ता भर बगल में सरक गई। अब शिव की दादी मां और माइसेना की मां के बीच लगभग बित्ते भर जगह खाली रह गई।

उसकी अगली बेंच पर बैठी अमला ने पूछा—क्या हो गया, मौसी जी!

—अरे, देख नहीं रही हो, महारानियों को। कतार मिलाकर बैठे बगैर मानो अंग ही नहीं टिकता।

ठेकेदार की पत्नी की नाक सिकोड़कर कहीं गई ये बातें माइसेना आदि के कानों में ठर्र-ठर्र चोट करती सी लगीं। उसकी मां ने जरा सिर उठाया। माइसेना ने मना करते हुए कहा—"अम्मा, तू कुछ न बोल, चुपचाप रह। ये जो कहें, कहने दे।" मुहल्ले में किसी से झगड़ा लग जाए तो उसकी चौदह पीढ़ियों की गत बनाने वाली मा की खूबी माइसेना को मालूम थी। परंतु वह यह भी समझती थी कि व्यक्तिगत रूप से कोई कितना ही जघन्य स्वभाव का और कितना ही अभद्र क्यों न हो, सब लोगों से मिलकर ही एक भद्र-समाज, सुसंस्कृत समाज बनता है। यहां मान-अपमान, तरतीब, भद्रता-शालीनता का सवाल रहता है। तीन बार जेल की सजा भुगत चुका माणिक गुंडा भी यहां फिलहाल चुपचाप बैठा हुआ है। परंतु ठेकेदार की पत्नी ने जैसी बात कह दी है, कुछ जवाब दिए बगैर उसे चुपचाप हजम कर जाने जैसी घटना इस उम्र तक माइसेना की मां की जिदगी में कभी हुई हो, ऐसा उसे याद नहीं। चुप रहने के इरादे से ही, कहे-न-कहे, भाव से उसने कहा—जरा इन सबकी बातों की गरूर सुनती है या नहीं?

शिव की मां के कानों को पार कर इन शब्दों ने डेका वकील की मां रतनी बरुआनी के कलेजे पर सीधी चोट कर दी। अपनी आवाज को ऊंचा और कड़ा कर वह बोल उठी—"अरी, तू-तू-मैं-मैं करने के लिए क्या इस जगह को पनघट समझ लिया

है ? बैठी हो, तो बैठी रहो, अगर झगड़ा करना हो, तो उठकर बाहर निकल जाओ।

—भला हम किसलिए जाएं ? देह खुजला रही हो तो तुम्हीं उठ जाओ।

—मां, मैंने कहा न, तू चुपचाप रह। माइसेना ने मां को रोकना चाहा।

—अरी, ठहर तो, तू बात क्यों नहीं करने देती ?

—अरी रहने दे, भैया आएगा, तू चुपचाप बैठी रह। झगड़ा मत कर।

ठेकेदार की पत्नी कुछ कहना चाहती थी, तभी बारह साल की लड़की मीरा अगली बेंच से मुड़कर ललिता की ओर देखती हुई काफी ऊंची आवाज में बोल उठी—'अरी, क्या तुम लोग यहां लड़ाई-झगड़ा करने आई हो ? ऐसी असभ्य हो बिलकुल! असल में 'क्लास-फ्रेंड' की काकी की तरफदारी करते हुए कुछ कहे बगैर मीरा रह न सकी। वैसे क्लास में भी उससे कोई पार नहीं पाता, ऐसी उसकी प्रसिद्धि रही है। परंतु मीरा कुछ और कह नही पाई, मिनती उसके पास ही थी, दबे गले से डांटते हुए उसने कहा—"चुप रह! इसे भला यहां वकील किसने बनाया है। लगता है जैसे वह इसकी बराबर की लड़की हो।" मीरा की बड़ी बहन मिनती कॉलेज में 'फर्स्ट-इयर' में है, और बहुत-सी बातों के साथ-साथ लड़ाई-झगड़ा करना भी वह बुरा मानती है।

"अरे ये सब कहां की रहने वाली हैं ?" पहले बेंच पर बैठी हुई समीरण ने मंजुला से पूछा। बात पहली बेंच तक भलीभाति पहुंच गई थी, सिर्फ परदा लांघ कर बाहर नहीं पहुंची थी। मंजुला चुप रही, कोई जवाब न दिया। मगर उसके पास बैठी हुई भंटि ने जवाब दिया—"उधर वह जो पट्टी है, वहीं की रहने वाली हैं।"

"अरे इन्हें यहां से खदेड़ क्यों नहीं देते ? उंह, दूसरी जगह बैठने से जैसे होता ही नहीं। बड़ी भद्रतावाली आई हैं। उधर देखो न जरा, उसका नकफूल देखती हो ? हिं-हिं-हि हि ।" समीरण बित्ते भर के रूमाल से अपना मुह ढंककर हंस पडी। तभी परदे के बाहर के अभिनेताओं के आने-जाने की राह के पास से एक आवाज उठ आई—"वाह, क्या खूब फुर्ती ?"

समीरण ने आनंद और शर्म के मिले-जुले गुस्से के भाव से सिर झुका लिया। यह बात किसने कही है, आवाज से ही वह समझ गई थी। यात्रा-घर के इतने शोर-गुल में भला, किसकी आवाज कौन सुनता है ? फिर भी एक आवाज ऐसी है जो उसे धोखा नहीं दे सकती। कुछ दिन पहले से ही वह आवाज उसकी परिचित बन गई है।

"उसे मैं पहचानती हूं। जानते हो न। उस दिन जूता पहनकर कैसी चल रही थी। कदम बढ़ा ही नहीं पा रही थी, मगर स्टाइल का क्या कहना। देखते ही थूक देने को जी चाहता है।"—मिनी नाम की लड़की ने कहा।

—"धत्, गरीब है, पर इसी कारण किसी से घिन करना नही चाहिए। समझीं। गरीब हैं तो क्या उन्हें भी पहनने-लगाने की इच्छा नहीं होती ? वे भी तो आखिर हम-जैसी ही हैं।" अब तक मौन रहने वाली मंजुला बोल उठी।

समर्थन की बजाय विरोध होने पर मिनी को चोट लगी। वह कह उठी—"तुम लोग ठहरी समतावादी, तुम लोगों की तो बात ही अलग है भाई !"—मंजुला की बातों की इससे बढ़कर कोई व्याख्या मिनी के भडार में नही थी।

माइसेना के रोकने की हजार कोशिशों और ठेकेदार की पत्नी, शिव की दादी मां आदि की शालीनता के सवाल के बावजूद झगड़े की गति बढ़ती ही गई। आखिर तक माइसेना की मां की आवाज भी अपने स्वभाव सुलभ ऊंचाई पर चढ़ने लगी, उसकी भाषा ने भी उसमें सहयोग किया।

—'अगर छोटी जात वालों के साथ बैठने में नाक ही कटती है, तो फिर बबुआइनो ! यहां आती ही क्यों हो ? ऊपर मचान पर चढ़ी नहीं रह सकतीं ?'

—'अम्मा। तू चुप रह, अगर चुप न रहेगी तो मैं यहां से उठकर चली जाऊंगी।' माइसेना लाचार, असहाय, संकुचित और शर्मिंदा हो उठी थी।

—'क्या कुर्सी पर बैठने भर से ही कोई सभ्य हो जाता है ? चौदह पीढ़ियों की सड़ी जबान कहा छूटने वाली है ? और भला इन झगड़ालुओं को यहां ठूंस कर वे सारे के सारे जाकर कहां मर गए ?' कहती हुई डेका वकील की मां खड़ी हो, पीछे की ओर अपना गला मोड़कर शिव, सूर्य, रजनी और अनिल को खोजने लगी। औरतों की भीड़ अब घट गई, यह सोचकर शिव 'स्टूडेंट टी हाउस' में जा घुसा था, सूर्य, रजनी और अनिल औरतों के आसनों के पीछे की ओर एक-दूसरे के कंधों पर टिके, अनमने से खड़े थे। उस अचल मे अनमना होने की बड़ी सुविधा है। पर डेका वकील की मां के खड़े होते ही पहले एक का, उसके बाद शेष तीनों का ध्यान-भंग हुआ। सूर्य तुरंत उनके पास दौड़ गया। इसी बीच डेका वकील की मां वहां से निकलकर पीछे पहुंच गई थी। सूर्य ने पूछा, "क्या हो गया काकी मां ?"

—"तुम लोगों ने उन लोगों को जो वहां बैठा दिया है अच्छा किया है। मगर तुम्हें तो उन पर नजर रखनी चाहिए थी।" काकी ने घटना का जो संक्षिप्त विवरण दिया, उससे सूर्य, अनिल और रजनी इन तीनो ने समझा कि उन पांचों ने वहां बैठते ही भद्दी-भद्दी बोलियों से झगड़ा करना शुरू कर दिया है और सच कहें तो वहां जैसे कोई झांझ ही बज रही है।

सूर्य में पौरुष था। वह लपककर पांच सेकेंड में ही माइसेना आदि के पास जा पहुंचा। कहा—"आप लोग यहां से उठिए तो।"

माइसेना को रुलाई-सी आ रही थी, मगर वह रोई नही। वह भी अगर मां जैसी ही होती तो बड़ा अच्छा होता। परतु वह तुरंत उठ खड़ी हुई। शीतला से कहा—"चल शीतला।" मा को कुछ और कहने का मौका उसने दिया ही नहीं। भला वह अपने सामने रहते मा को एक नौजवान से झगड़ने कैसे दे सकती थी ? माइसेना की भाभी और दूर-नाते की बुआ भी शीतला के साथ ही खड़ी हो गई, लाचार होकर मां भी उठी। वे सभी वहां से चलकर औरतों के पीछे पहुची। बांस की टट्टी तव पहुंचकर सूर्य

बोला—"आप लोग इधर आ जाइए।"

इधर अरण्य राज विचित्र सिंह अपने सामने बंधी हुई मधुपुर की राजकन्या को संबोधित कर कह रहा था, "हे सुंदरी। अपना यह राज्य, अपनी यह दौलत और अपनी सेना-सामंत सब कुछ तुम्हारे चरणों में अकुंठ-चित्त से समर्पित कर रहा हूं, केवल तुम्हारे क्षणभर प्रेम की अभिलाषा से। तुम मुझ पर कृपा करो सुंदरी।"

सिगरेट की कस लेकर बिनंद माधव सुंदरी का जवाब सुनना चाहता था, तभी उसे खबर मिली, महिला अंचल में गड़बड़ी हो गई है। वह जब सूर्य के पास पहुचा, तब तक खबर पाकर बीरेन भी वहां पहुंच गया था।

"क्या हुआ है? क्या हुआ है?" बीरेन और बिनंद माधव ने एक ही साथ पूछा।

घटना संक्षेप में बताई गई।

"मगर क्यों? वहां बैठने से क्या हो जाता है?" बीरेन ठंडी बातों से काम निकालने का विरोधी है।

"मतलब एक शृंखला की बात है न?"

"कैसी शृंखला? आपने ही तो कहा था—चंदा देने पर वहां बैठा जा सकता है। क्या हमने चंदा नहीं दिया था? मैंने अपने हाथ से पांच रुपए चंदा दिया था।" दान का परिमाण भी उसकी जबान से निकल आया।

सूर्य पास ही खड़ा था। बिनंद माधव के आमने-सामने गर्मागर्म जबान लड़ाना उसे सहन नहीं हुआ। बीरेन के स्वर से एक परदा ज्यादा ऊंचा उठाकर उसने कहा—"पांच रुपया चंदा देकर क्या बहादुरी दिखा रहे हो जी? हां, यह ले लो, ले जाओ, तुम्हारा चंदा न मिले, तो भी पूजा चलेगी।"—सूर्य की पांच उंगलियों के दबाव से ऊपर की जेब से पांच रुपए के बदले दस रुपए का एक नोट निकल आया, शाम के कार्निवाल खेल के मुट्ठी-मुट्ठी मुड़े-तुडे नोट। बीरेन के कान लाल हो उठे। वह बोल उठा—"क्या कहा? क्या तुम मुझे रुपया दिखा रहे हो?"

—"छोड़ो, छोड़ो, धत्, ऐसे झगड़ा-वगड़ा करना नही चाहिए। चलो यहां से।" —कहता हुआ एक व्यक्ति सूर्य को धकियाता बाहर ले गया। वह जाते-जाते कहता गया—"नही तो क्या हो। सात जन्मों में कभी तो पांच रुपया चंदा दे नहीं पाया है, दो कौड़ी का आदमी नहीं, फिर भी इस तरह की घमड भरी बात सुनाता है। हुंह!"

—"आप लोग बुरा न मानें, लड़कों की बात ठहरी। आप लोग यहीं बैठिए, इन बातों पर कान न दें। बिनंद माधव ने माइसेना आदि को समझाते हुए विनम्रता से कहा। माइसेना आदि महिला-अंचल की बिलकुल पिछली कतार में रखी संकट के समय काम आ सकने वाली कुर्सियों पर बैठ गई। बीरेन की पीठ पर एक हाथ रखकर बिनंद माधव निकल जाना चाहता था, तभी दिखाई पड़ा कि इसी बीच महिला-अंचल में बहुत-से लोग घुस आए हैं। गड़बड़ी होने का आभास पाकर खबर लेने वाले

अभिभावक गण। तभी दौड़ता हुआ शिव भी वहां घुस आया। बिनंद ने उसे एक ओर बुला ले जाकर कहा—"तू कहां चला गया था ? यहां जैसे-तैसे लोगो को भला घुसने क्यों देता है ? मैंने बार-बार कह रखा था, तू गेट पर रहना। सबको निकाल दे यहां से।"

हालांकि धीरे-धीरे सब वहां से निकल गए। किसी तरह की गड़बड़ी की सुविधा न हो, तो अंदर रहना बुरा दिखता है। अंदर जो गड़बड़ी हो गई थी, उसके बारे में पूरी जानकारी शिव को अभी-अभी मिली थी। अपनी जगह से वंचित माइसेना आदि के पास वह जाकर खड़ा हो गया। पछतावे के कारण उसकी बोली कोमल हो आई थी। उसने माइसेना की मा से कहा—"बड़ी बुरी बात हो गई मौसी। मुझे तो इन सबका कोई पता ही न था। मैं तो उधर गेट पर ही व्यस्त रहा। जहां-तहां के लोग आकर अंदर घुस जाते हैं, कल भी इसी कारण गड़बड़ी हुई थी। और कुछ लड़के ऐसे हैं कि यों ही अंदर घुसकर टहलते रहते हैं। मेरे बगैर कोई इन्हें संभाल नहीं सकता। देखिए न, आज तो कोई बाहरी आदमी यहां है नहीं। मगर मेरे उधर रहते ही इधर ऐसी घटना हो गई, और मुझे पता ही न चला। खैर, जो हुआ सो हुआ, आज आखिरी दिन आप लोग बुरा न मानें।—शिव इसी तरह लगातार कहता रहा। इस शहर में जिन प्रौढ़ा महिलाओं से उसे बात करने का मौका मिलता है, उनमें ज्यादातर उसकी मौसी होती हैं, और जो मौसी नहीं होतीं, वे उसकी बुआ होती हैं।

मौसी के किसी जवाब का इंतजार किए बगैर उसने माइसेना से पूछा—"तुम लोगों को तो शायद बड़ा बुरा लगा है, क्यों ?"

"अब बुरा लगने को क्या है ?" माइसेना ने सिर झुकाए हुए कहा। शिव एक बार शीतला पर नजर डाल खड़ा रहा।

उधर यात्रा का एक दृश्य समाप्त हो गया था। ऐक्यतान-वादन चल रहा था। कुछ अभिनेता अपने साज-पोशाक में ही 'स्टूडेंट टी हाउस' में जाकर खड़े-खड़े चाय पी रहे थे। अरण्य बंदिनी बना लड़का सजावट-घर के पिछले दरवाजे से बाहर निकल बाएं हाथ से अपनी मेखला का सिकोड़ पकड़े हुए दाएं हाथ से बीड़ी पी रहा था। इसी मौके पर दर्शको में से कुछ लोग उठकर 'बाप' की पान-दुकान से एक पान खा आने के लिए अफरा-तफरी मचाए हुए थे। पास की पान-दुकान का मालिक बुलू अपने दिनभर की बिक्री के पैसे भर रखे कैप्स्टन सिगरेट का डिब्बा हिला-हिलाकर ऊंची आवाज में पुकार रहा था—"एइ चलि जाए मिठा पान।" याने 'यह मीठा पान। चला जा रहा है।' उसका भाई दुलू बिक्री के लिए रखी एक सीटी लेकर जी-जान से फूंक मारता बजा रहा था।

चेहरे पर सफेद रंग पोते, सफेद कमीज और धोती पहने एक व्यक्ति तिरपाल पर एक कुर्सी रख गया। लोगों ने समझा अब अगला दृश्य शुरू होगा और राजा निकलेगा।

"मौसी क्या चाय पीओगी ?" शिव ने एक बार माइसेना की मां से पूछा।

"नहीं चाहिए, रहने दो बेटे।" मौसी बोली।

उसने माइसेना से पूछा—"तुम पीओगी ? पीना चाहती हो तो बताओ, मंगवा दूं।"

माइसेना ने भी इंकार में सिर हिलाया। आखिर शिव ने अपनी जेब से सिगरेट के रुपहले कागज में लपेटे पान निकाले।

यद्यपि राजा के निकलने का आयोजन किया गया था, पर राजा नहीं निकला। उसकी जगह रिहा-मेखला पहने, औरत की वेश-भूषा में तेरह साल का एक लड़का और उसके साथ खुली देह पर कोट लगाए एक नौजवान निकला। ये दोनों भंड़ैत-भंड़ैतिन थे। भंड़ैतिन ने ही पहले-पहल गायन शुरू किया था, हालांकि आखिर में वह एक खास तरह की मुद्रा में खड़ी रही। भंड़ैत उसके चारों ओर चक्कर लगाता हुआ उसके रूप-सिंगार का गुण-गान करने लगा। नृत्य-प्रसंग में एक बार भंड़ैत ने ठुड्डी पकडकर धीमे-से उसके मुंह को मोड़ दिया। चारों ओर हंसी-ठहाके गूज उठे। 'लगाओ फुर्ती, लगाओ मजा' कहकर किसी ने पीछे की ओर से जोर से ऐसी चीख मारी, मानो कान के पर्दे ही फट जाएगे। 'सरु बापू' नाम का लड़का इसके पहले अपने पास बैठे एक लड़के से 'युद्ध लगने पर मुझे जगा देना' कहकर सो गया था। चीख-पुकार से युद्ध लगे बगैर ही वह खुद जाग उठा। मंडप के पास के एक खंभे में टिकाई हुई साइकिल पर खड़े होकर इद्रिस इस खास दृश्य का मजा ले रहा था। उसने अपनी जीभ के तले दो उंगलियां घुसाकर जोर से सीटी बजाई।

तभी शीतला ने माइसेना से धीमी आवाज में कहा—दीदी, मुझे अच्छा नही लग रहा है। चलो, हम अब चलें।

—क्यों क्या बात है ? तुझे आखिर क्या हो गया है ?

शीतला जवाब दिए बगैर सिर झुकाए रही। माइसेना ने कहा—"और थोड़ी देर जरा देख तो ले। हम ज्यादा देर नहीं करेंगी। समझी ?" कहकर उसने एक बार यों ही मुडकर पीछे की ओर देखा। शिव उनके पास ही खड़ा था। माइसेना ने भी सिर झुकाए कुछ सोचा। उसके कान अचानक गर्म हो उठे। आखिर ऐसा क्यों, मानो वह भी सोच-कर कुछ तय नही कर पाई।

'एकर-एंकर' आवाज से चारो ओर से झुंड-के-झुड लोगो का अनुरोध आने के बावजूद भंड़ैत-भंड़ैतिन दोनों भागते हुए सजावट-घर में जा घुसे। परदे की ओट में राजा तैयार खड़ा था। वह भी तुरंत निकल आया। उसके पीछे-पीछे मंत्री। सेवको को भेजकर सेनापति को बुलवा लाया गया। राजा आसन से खडे होकर छाती फुलाए सेनापति को उसकी अकर्मण्यता के कारण ऊंची आवाज में फटकारने लगा। नाटककार गोपीनाथ बरा के विचार से इनाम में मेडल मिल जाए ऐसा संवाद यही है। सहनशीलता की हद हो जाने पर सेनापति भी दंभ भरे शब्दों में जवाब देने लगा। और

उसके फलस्वरूप राजा ने अपने हाथ की खुली तलवार सेनापति की छाती में घुसेड दी और सेनापति 'अरे भगवान', कहकर जमीन पर गिर पड़ा। इसी समय चीख-पुकार मच गई, "सामने वाले लोग, बैठ जाओ। सामने वाले लोग, बैठ जाओ।"

पर सामने के लोगों को बैठना नहीं पड़ा। बिनंद माधव आदि ने युक्ति भिड़ाकर आगे-पीछे पूजा आदि में गड़बड़ी मचाने वाले गुंडे रामपाल को तैयार कर रखा था। पर गुंडे रामपाल की गडबड़ी मचाने का पुरजोर प्रयास विफल कर लगभग सभी बैठे हुए लोग परदे की ओर मुंह कर खड़े हो गए। बिनंद माधव तेजी से औरतों के अंचल की ओर आगे बढ़ गया। प्रवेश-मार्ग से वह अंदर घुस ही रहा था, तभी उसके पास से ही तेजी से भागता हुआ शिव बाहर निकल गया। बात क्या है, कुछ समझ न पाने के कारण उसे ऊंची आवाज में दो बार पुकारा—"शिव, ओ शिव।"

मगर शिव उस समय शायद उजाले से अपने को छिपाने के इरादे से जी-जान से बेतहासा भागा जा रहा था।

गड़बड़ी की जगह का अंदाजा लगाकर बिनंद माधव उसी ओर आगे बढ़ा। शीतला आदि के समीप पहुंचकर उसने देखा, माइसेना खड़ी है; बिजली-बत्ती के उजाले में उसका चेहरा लाल होकर चमक रहा है। पूरे शरीर के साथ-साथ उसके हाथ की मुट्ठी में पकड़ी हुई चप्पल भी कांप रही है।

और उसके पास ही शीतला अपने घुटनों में चेहरा छिपाने की कोशिश कर रही है। शायद वह रोना चाहती है।

तब तक घटना का पता लगाने के लिए आए लोगों की भीड़ बिनद माधव के पीछे जुट गई थी। प्रवेश-नियंत्रण करने वाला कोई भी गेट पर नहीं था। सहायक-सचिव गोविद तिरपाल के पास जाकर लगभग डांटने के लहजे में ही अभिनेताओं से बोला, "अरे, आप लोग क्या कर रहे हैं। अपना काम आप जारी रखिए।" वह सोच रहा था कि शायद इससे कुछ लोगों को आकर्षित कर रखा जा सके।

मृत्यु-पथ-यात्री सेनापति वीरबाहु खड़े होकर गरदन ऊची कर घटना समझने की कोशिश कर रहा था। गोविंद की डांट सुनते ही धम्म से जमीन पर गिर पडा, और कराहते हुए कहने लगा—"उफ्, उफ् आप—आपने मुझे छोटे-से अपराध के कारण बड़ी भारी सजा दी। म-हा-रा-ज ! मैं-ने—को-ई-भी अ-मान-वीय—काम—नहीं किया था "

1952

कक्ष भ्रांति

तिराहे के सिरे पर पहुंचकर रुकने को लाचार हो गया। इस ओर पहले कभी नहीं आया था। लोगों से पूछ-ताछ कर ही यहां तक पहुंच पाया हूं। अब यहां से इन दोनों राहों में से किससे होकर जाना है, अंदाजा लगाने का भी कोई उपाय नहीं था। इधर-उधर नजर डाली, पर कोई आदमी-जन दिखा नहीं पड़ा। कुछ क्षण बाद देखा, तो दस-बारह साल का एक लड़का हाथ में एक पतली छिकुनी लिए, सीटी बजाने की कोशिश करता हुआ इसी ओर चला आ रहा है।

साइकिल के सामने की ओर टांग कर जो थैला ले आ रहा था, उस पर फिर एक बार नजर पड़ी। थैले के नीचे की ओर एक जगह भीगी-सी थी। गोल दाग उभर आया था। लगता है, मिठाई की कागज की पोटली फट ही गई है। नियमानुसार पोटली को निकालकर कुछ ठीक-ठाक कर लेना चाहिए था, पर आलस लग गई।

—ओ मुन्ने, दक्षिण पाट किधर से जाते हैं, बताओ तो! लड़के के नजदीक आने पर पूछा।

—कहां जाना है?

—दक्षिण पाट।

लड़के ने तीनों राहों पर एक-एक बार नजर डाली। कुछ देर देखते रहने के बाद अपनी छिकुनी उठाकर कहा—"इस ओर।"

उसकी छिकुनी ने जिस राह का इशारा किया, मैं उसी से होकर तो यहां तक पहुंचा हूं। मुझे हंसी आ गई। हंसता हुआ बोला—"ठीक है, जा।" फिर कुछ क्षण सोचकर साइकिल पर सवार हो दाहिनी ओर की राह से आगे बढ़ गया।

दक्षिण पाट! मां की इच्छा अगर पूरी हो, तो वही मेरे भावी संबंधियों का गांव है। अब छब्बीस साल का हो चुका हूं। विवाह के सवाल से छुटकारा पाने की युक्तियां घट गई हैं। फिर अब युक्ति दिखाने की जरूरत या इच्छा भी नहीं है। इसके अलावा मां की वजह से कुछ बातें घटाकर और कुछ बातें बढ़ाकर सोचनी पड़ती हैं। मां के लिए करने को अनगिनत विषय हैं। इसी कारण धूप निकलने के साथ-साथ साइकिल लेकर दक्षिण पाट की राह खोजता हुआ निकल पड़ा था। परंतु इस यात्रा में मेरे अंतर की आवश्यकता की प्रेरणा की अपेक्षा मां के प्रति दायित्व की चेतना का प्रभाव ज्यादा रहा है और यही भावना मन को रह-रहकर बोझिल बना रही है। लड़की के परिवार

वालो से जान-पहचान कर व्यवस्था करने, लड़की को खुद देखकर पसंद-नापसंद करने के लिए, मैं खुद ही आया हूं। मैंने एक बार सोचा, इसमें उद्यम, कौतूहल, संकोच, मन में आशा-निराशा के द्वंद्व—और आवश्यक हो तो कुछ-कुछ विलासी कल्पना की भी जरूरत होती है। साइकिल तेजी से चला दी। सामने टगा थैला घटं-भटं करता हिलने-डुलने लगा।

थैले में केले की दो छीमियां, कई तरह की मिली-जुली मिठाइयां आधा सेर, तीन रुपए गज का ब्लाउज का कपड़ा एक गज और नए साल का एक कैलेंडर थे। इनमें से एक भी चीज के बारे में मेरी राय नहीं थी। सिर्फ मां की बात पर दुकान से सब कुछ खरीद लिया था। हालाकि मेरे अपने कमरे मे टंगे नए साल के कैलेंडर को दीवार पर से उतारकर जब वह थैले में भर दे रही थी, मैंने एतराज किया था। पर मां ने कह दिया—'अरे रहने भी दे, तू तो तुरंत एक और ले आ सकता है। मगर वह गांव की जगह है, तिस पर लडके-बच्चों का घर टहरा, ले जा इसे। वे खुश होंगे।' मां तो रंग-बिरंगे चित्र की बात ही सोच रही थी—समझा रही थी।

इसके बाद आनंद-चित्त से ही घर से निकला था। मां बाहरी दरवाजे तक आई थी। साइकिल पर मेरे सवार होते ही शायद उसे पिताजी की याद आ गई थी। लेकिन मुझे उस वक्त दूसरी एक बात की याद आ गई थी। वैसे दक्षिण पाट जाने में मुझे जरा भी दुविधा नहीं थी, पर यह बात कल्याणी के कान में डाल देना उचित था।

तुरत एक बार ब्रेक कस दिया। जरूरत की अपेक्षा लगभग दस हाथ आगे जाकर ही साइकिल रुकी। पुरानी साइकिल। लौटकर बगल से निकले जा रहे आदमी को पुकारा—"अजी, सुनिए जरा, दक्षिण पाट जाने की राह यही है न?"

वह आदमी नजदीक आ गया। बोला, "ओह, आपने गलती की। उंस तिराहे पर से ही मुड़ना चाहिए था। मगर जब इतनी दूर आ ही गए तो वापस जाने की जरूरत नहीं। कुछ ज्यादा घूमना पड़ेगा, फिर भी इधर से ही जाइए। थोड़ी दूर जाते ही मवेशियों के आने-जाने की एक पगडंडी मिलेगी, उसी ओर से जाने पर सीधे पक्की सड़क मिलेगी। उसी सड़क से होकर जाने पर, बरजहा के बाद ही दक्षिण पाट पहुंच जाएंगे।

—बहुत अच्छा।

—मगर उस पगडंडी से होकर साइकिल चलाने में आपको कठिनाई हो सकती है।

—होने दीजिए। नौजवान ठहरा। खुद ही यह बाद कहकर खुद हंस पडा। वह आदमी भी हंसा। मै फिर साइकिल पर सवार हो गया।

तकलीफ झेल भी सकता हूं, नकार भी सकता हूं। छब्बीस साल का नौजवान ठहरा। मेरी इस छब्बीस साल की उम्र में से पिछले दस सालो की बातें ऐसी याद हैं, जिन्हें कभी भूल नहीं सकता। हो सकता है कि मां को उससे ज्यादा याद हो। अगर

पिताजी रहते तो शायद वे बातें उस तरह से याद नहीं भी रह सकती थी। दूसरों के यहां धान कूट कर, दूसरों के कपड़े बुनकर मा मुझे पढ़ाए, ऐसी स्थिति को सहन न करने की मानसिक अवस्था मेरी हो गई थी। चुरा-छिपाकर भी क्यों न हो, खुद कमाकर एक ही दिन में मा को छुटकारा दिलाने की बात मन में सोचता हुआ, मैं खुद अस्थिर हो उठा था।

हालांकि अब मै सोचता हूं, वह बीता हुआ जमाना बड़ी भावुकता का जमाना था। एक दिन देखा कि प्राथमिक विद्यालय का मेरा सहपाठी इकराम अपने सामने खाल उतारे एक बकरे को उल्टा टांगे हुए बैठा है। उसके पास ही दाब-कटारी और तराजू-बटखरे पड़े है। निस्संदेह मुझे उत्साह मिला। पान-बीड़ी की एक दुकान खोलने के लिए मां से पैसे मांगे। मां ने मेरी उम्र दस साल घटाकर छाती से लगा लिया और रोने लगी। मैं भी रोने लगा था।

उस दिन के बाद स्वयं कमाऊ बनने के लिए कभी मां की इजाजत मांगने नहीं गया। जिस दिन काम करने के लिए सचमुच योग्य बना, मां ने खुद ही मुझे आगे बढ़ा दिया। हालांकि किरानी के काम की अपेक्षा ज्यादा योग्य बनाने की बाट जोहते हुए तब तक वह ज्यादा निःसंबल हो आई थी। उसी की बात पर वह नौकरी पाने के उद्देश्य से रामदास सिरस्तादार से मिलने उसके घर गया था—अपने चेहरे पर नम्रता का भाव और चलने-फिरने में गंभीरता बनाए हुए।

और उसी दिन कल्याणी से मेरी पहली मुलाकात हुई थी।

पांच साल पहले उस दिन मैंने सोचा था कल्याणी सिरस्तादार की बेटी होगी। पहली नजर में ही मुझे वह बड़ी भोली लगी थी। अत्यत सहज, सरल भाव से उससे बातचीत भी हुई थी। उससे और ज्यादा नुकसान पहुंचाने की कोई इच्छा भी मेरी नहीं थी।

कल्याणी ने अपने घर के बारे में बताया था। उसके मां-बाप हैं नहीं। बड़ा भाई अकर्मण्य ठहरा। वह कल्याणी को सिरस्तादार के यहां रखकर खुद छुट्टा होकर दिन बिताता है। कल्याणी वैसे सिरस्तादार के यहां नौकरानी नहीं है। लेकिन वह आखिर है क्या, इसका जवाब जब नहीं मिलता तभी उसे बुरा लगता है। सिरस्तादार के अपने भी बाल-बच्चे हैं।

मां की, और खुद अपनी बात जब कभी सोचता, हमेशा उसके साथ कल्याणी की बात भी याद आ जाती। और किसी की भी बात न सोचकर, भला बीच-बीच मे कल्याणी की ही बात की याद क्यों आ जाती है? इसके पक्ष में मैं अपने मन में ही युक्ति-संगत कारण ढूंढ़ रहा था। लगभग दो साल बाद उससे बात करते समय उसकी पहले की सहज-सरलता के बारे में धीरे-धीरे मेरे मन में संदेह पैदा होने लगा था। एक दिन सचमुच दिखाई पड़ा, कल्याणी काफी नाप-तोल कर बातें करती है, जरूरत समझकर ही हंसती है, घर की खबर की अपेक्षा अच्छा-बुरा, कुशल समाचार पर ही

ज्यादा बल देती है।

कल्याणी अचानक ही अपने बारे में ज्यादा सचेत-सी हो उठी थी। उन्हीं दिनो कल्याणी को केंद्र कर मै सोचने लगा था—कि लड़किया अगर बुद्धिमती हों और अपने बारे में सचेत हों उठे, तो शायद उनसे सामान्य आदान-प्रदान भी रहस्यमय और जटिल बन जाता है।

अचानक पगडंडी पर साइकिल के सामने दो लड़के आ गए। दुर्घटना रोकने हेतु पगडंडी के किनारे कतरा जाते ही साइकिल का अगला पहिया पास की भेबेली लता[1] और ढेकिया[2] की झाड़ियों मे जाकर उलझ गई। गिरते-गिरते संभल गया, और किसी तरह मे साइकिल पर से उतर गया। साइकिल को पीछे की ओर खीच निकाल रहा था, तभी गुर्राने जैसी आवाजें आई—अरे, क्या साइकिल आंख मूंदकर चलाते हो ?

सोलह साल और बारह साल के दो लडके सामने आ गए।

—अरे मैं तो ठीक ही आ रहा था। तुम्हीं लोग तो पेड़ों की ओट से अचानक सामने आ गए, तो भला मैं क्या करता ?

—क्या करते ? अगर कुछ कर ही नही सकते तो भला साइकिल वाला बने ही क्यों हो ?—कहते हुए दोनो आगे बढ़ गए। छोटा लड़का कह रहा था—"उंह, मानो किसी ने साइकिल देखी ही नहीं हो, साइकिल चलाकर दिखलाने आया है। बडा लाट बना है।"

मुझे जरा-सी हंसी आ गई। थैले को कुछ ठीक-ठाक कर टांग लिया और फिर साइकिल पर सवार हो गया। उस व्यक्ति के कहे अनुसार सचमुच उस पगडंडी ने कल्याणी की चिता का सूत्र खंडित कर मुझे अपनी यौवन-शक्ति का अनुशीलन करने को विवश कर दिया।

सिर के ऊपर पगडंडी के दोनो ओर से ढले हुए बांसों के झुरमुट सामने की ओर कुछ देर पहले बडी तेज बारिश हो जाने के बाद आने-जाने वाली बैल-गाडियों के पहियों, गाय-भैसों की टांगों के खुरों, लोगों के पैरों की अविकृत साक्षी या मेरी कमजोर-सी साइकिल की मौत-सी वह पगडंडी। मिठाई बंधी कागज की पोटली के फटने के बारे मे अब कोई संदेह ही नही रहा। फिर भी मैंने सोचा, अब यहां कुछ और करने को भला रहा ही क्या ? हालांकि जरूरत होने पर आत्मीय-संबंधी के यहां पहुचकर यात्रा-विवरण के साथ मिठाई-केले-कपडे के एकाकार होने का स्पष्टीकरण देने की कोशिश करनी होगी। कुछ शर्म की बात होगी। पर समझाने पर वे शायद समझ जाएं। और समझना तो जरूर चाहिए। कम से कम अपने भावी संबधी से तो मुझे ऐसी आशा करनी ही चाहिए।

हालांकि आशा करने के बावजूद बहुधा फल-प्राप्ति से वंचित भी रहना पड़ता

---

1 भेबेली लता—एक तरह की जगली लता जिसे बीमारी में दवा के रूप मे खाते हैं।

2 ढेकिया—फार्न जातीय जगली पौधा जिसे साग बनाकर खाते हैं।

है। शायद कल्याणी भी यही प्रमाणित करने की कोशिश कर रही थी। गोल चेहरे, गोरे रंग, चमकीली और तेज नजर, बालों को बार-बार सहलाती-घुमाती पतली उंगलियों वाली कल्याणी को खूबसूरत ही कहा जा सकता है। उससे आगे चलकर मुझे बहुत कुछ पाने की आशा थी। हालांकि मैंने खुद ही आशा की थी, और निराश भी अकेले मैं ही हुआ था। अगर मेरा विश्लेषण सही था, तो यह कहा जा सकता है कि कल्याणी की आंखों में प्यार था, बातों में सहानुभूति थी, और अंतर में भी जरूर प्यार भी था। परंतु वह सब मेरे ही लिए है, यह बात पहले सोचने का जैसा आधार मिला था, बाद में उसी तरह संदेह में भी डूब गया था।

लगता है कि कल्याणी पिछले तीन साल मेरे साथ सिर्फ जबानी आदान-प्रदान भर का संपर्क रखती आई थी। पर आत्म-संतुष्टि हेतु उसी में मुझे आंतरिकता भी मिल रही थी। किशोर-किशोरी में अगर दोस्ती हो, तो या तो वह बढ़कर प्रणय में बदल जाती है, या घटकर सामान्य परिचय के स्तर पर ही रह जाती है—इस बात पर विश्वास करने का वैसे मन तो होता है, पर विश्वास करने पर नुकसान मेरा खुद का ही हो जाता है।

एक बार सिरस्तादार के परिवार के साथ मैं भी घूमने गया था। कुछ दिनों के लिए। उस नई जगह में कल्याणी मेरे साथ लग गई थी। मेरे साथ हंसी-खेल कर, विभिन्न जगहों में सैर कर वह आनंद उपभोग करती थी। उसकी खिली हुई सरलता वाले वे दिन मेरे लिए भी बडे आनंद से गुजर रहे थे। उसके सामने अपने को प्रकट करने के मौके के बारे में पहले बीच-बीच में मैंने न सोचा हो, ऐसी बात नहीं। पर उस नई जगह में उसे हमेशा अपने समीप पाने पर भी उस मौके का उपयोग करने की बात, मेरे मन में कभी आई ही नहीं। अब तो एक सामान्य-सी व्याख्या का सहारा लेकर आश्वस्त होता हू और अपने में हसता भी हू; उस नई जगह मे, जरा-सा खुले मन से उन चंद दिनों में मेरा सहारा लिए बगैर उसका तो चारा भी न था, कोई और आदमी तो वहां था ही नहीं। सीधा-सादा-सा आदमी पाकर, उसने मुझसे कुछ बेगार करवा लिया। होशियार लड़की है, इसमें तो कोई संदेह ही नहीं।

अगर इसी तरह से सोचा जाए तो मेरी आशाओं के सारे मार्ग बंद हो जाएं। वस्तुतः कल्याणी मुझे बड़ी भाती है। उसके बारे में ऐसा नीरस चितन करना भी असहनीय-सा लगता है।

आगे चलकर मां की वजह से एक नए चिंतन का मार्ग खोलने के लिए विवश हो गया। मा की वजह से ही मैंने सोच लिया कि दिन को पहाड खोदने का काम अब से बंद करना होगा। मुहल्ले के विभिन्न तबकों के लोग विभिन्न भाषा-शैली में मुझसे जो बातें कहते, उनका मतलब आखिर मे एक ही जैसा होता, मां के आराम के लिए जल्द ही मुझे विवाह कर लेना चाहिए।

एक दिन मेरी हम-उम्र इंदी की मां ने नल के पास अपनी कमीज की धुलाई

करते देखकर कहा—"अरे, बताओ तो, और कितने दिन भला ऐसे कपड़े धोकर बिताओगे ?

—ऐसे ही चलेगा ! मुझे तो लगता है कि दिन तो अच्छे ही कट रहे हैं।

—अरे ! हां-हां, कटेंगे क्यों नहीं दिन ?—कहकर इंदी की मां मुंह पर कपड़ा रख हंस पड़ी। उसके इशारे बीच-बीच में भले ही अरुचिकर हों, पर ज्यादातर समय में यथेष्ट आमोदजनक भी होते हैं। मैं भी हंस पड़ा और कहा—"तुम्हारे स्वभाव में, देखता हूं, अब भी कोई हेर-फेर नहीं हुआ।

—अरे हमारी बात छोड़ दो, तुम खुद अगर कुछ करना चाहते हो तो कर लो नहीं तो हमसे बताओ, हममें वह ताकत है कर डालने की।

—वाह, कर क्यों नहीं डालोगी ? अगर चाहो तो तुम गंठजोड़ करवाने की एक दुकान ही खोल दे सकती हो। मैंने हंसते हुए कहा।

इंदी की मां झट मुड़कर वहां से चली गई।

शांति के बूढ़े बाप ने भी एक दिन मुझे अपने पास आराम से बिठाकर कहा था, "बेटे, तेरे बाप ने जो कुछ किया, किया। अब जो हो गया सो तो हो गया। वह सब अब सोच-विचार कर क्या होगा ? मगर तेरी मां है, उस बेचारी पर तू नजर देना। उसने तेरे लिए बड़ी तकलीफें झेली हैं। वह सब अब तेरे सामने क्या दुहराना ? तुझे तो सब कुछ मालूम ही है। तेरी शादी हो जाए तो भी वह बिचारी बुढ़िया तुम्हें देखकर अपने दिन गुजार सकेगी !"

—जी हां, दादा, मगर हाथ में और कुछ रुपया-पैसा जुटा लूं, तभी हिम्मत कर सकता हूं।

—हां, हां, बेटे, समझ-बूझकर कुछ कर। अब तो तुम खुद समझदार हो गए हो।

शांति का बाप मेरे पिताजी से उम्र में बहुत बड़ा है। आंखों से उसे अच्छी तरह दिखाई नहीं पड़ता, आवाज सुनकर ही आदमी को पहचान पाता है। अरसे तक दुनिया को देख-सुन लेने के बाद अब अपने आखिरी दिन की बाट जोहता हुआ बैठा रहता है। संसार की माया शायद वह अब तक छोड़ नहीं पाया है। इसी कारण उसकी हर बात में विदा लेने का एक बोझिल-सा स्वर सुनाई पड़ता है।

एक दिन रसोईघर के दरवाजे पर खड़े होकर बड़ी बुआ ने कहा—"पवन, क्या तू मां को अब भी रसोईघर छोड़ने नहीं देना चाहता ?"

मैंने जवाब दिया—"बुआ, बीच-बीच में तुम लोग कुछ मदद कर दो, तब तो काम बन जाए।"

इसी तरह सभी कहा करते हैं। मेरे साथ ही काम करने वाला किरानी उपेन, जिसका विवाह पिछले साल हुआ था, वह लड़की दिखाने के लिए मां को ले गया था। बीच में मौका पाकर उसने संक्षेप में मुझसे कह दिया था—"इस बार तेरी बारी है।"

आखिर जिस दिन मां ने खुद कहा, मैंने उसी से सुझाव मांगा। पर उससे

कल्याणी के बारे में बता नहीं सका। वैसे दो-एक बार मेरी छाती धड़क उठी थी, पर कुछ कहा नहीं जा सका। अब सोचता हूं, मां पुराने विचार की ठहरी, नई बात उसे न सुनाना अच्छा ही हुआ था। साथ ही मां को अपनी जिंदगी का सर्वश्रेष्ठ दायित्व पालन करने का पूरा मौका दिया जाए, तो उसे शांति मिलेगी, वह सुखी होगी।

मां के ही सुझाव पर आज थैला-पोटली लिए दक्षिण पाट में लड़की का घर देखने निकला हूं। मगर सोच रहा हूं, कि अगर यह बात कल्याणी के कानों में डाल देता तो शायद अच्छा होता।

वह पगडंडी एक चौड़ी-सी सड़क से जा मिली थी। जैसा कि राह बताने वाले ने कहा था, पक्की सड़क के नाम पर सिर्फ जहां-तहां दो-एक कंकड़-पत्थर सिर निकाले हुए थे। समय पर ही एक आदमी मिल गया। उसके बताए अनुसार दक्षिण पाट की राह पर साइकिल चला दी। मगर कुछ दूर आगे बढ़ते ही उतरना पड़ा। पूरी सड़क को घेरे हुए गायों का एक झुंड चला आ रहा था।

साइकिल के साथ ही कतराकर सड़क के किनारे जहां खड़ा हुआ था, वहां एक आदमी के घर का बाहरी दरवाजा था। कतराकर किनारे हटते-हटते अड़कन वाले दरवाजे के एक ओर गोबर की ढेरी पर जा चढ़ा था। गायों का एक-आध झुंड निकल रहा था, तभी पीछे की ओर से तेज गले की आवाज कानों में आई। मुड़कर देखा, घर के दरवाजे के पास एक बूढ़ी औरत खड़ी है।

—"उसी सुबह को झाड़ू लगाने के बाद से वह झाड़ू इसी बीच राह पर पड़ी है। उसी के ऊपर से यह दसियों बार आई-गई हैं। झाड़ू जरा वहां से हटाकर रख दें, इतना भी कायदा नहीं है! अब तुम्हीं लोग जरा बताओ तो, यह सब भूतनी-प्रेतनी का स्वभाव भी क्या अपनी आंखों से देखा जा सकता है? मगर यही बात कहते ही महारानी मुंह फुलाकर उस कोने में जा घुसी हैं। जाने दो, हमें भी तो किसी ने साथ बांदी बनाकर नहीं भेजा है न! समय पर आकर जब उसे खाना नहीं मिलेगा, और झड़ाई-पिटाई पड़ेगी, तब खुद समझेगी।"

ये बातें टट्टियों के उस पार के घर वाले के आंगन में खड़ी दो महिलाओं को संबोधित कर बहू जैसी किसी के बारे में कही जा रही थीं। टट्टी के दूसरी ओर खड़ी एक महिला ने बातों में भाग लेते हुए कहा —"लगता है, रसोई-वसोई नहीं बनाई है?"

—अरे कैसी रसोई? जरा तुम लोग ही खुद देख जाओ, बटलोई जहां की तहां पड़ी हुई है।

गायों का झुंड निकल गया। मैं साइकिल पर सवार हो गया। मेरी पत्नी होगी मां की बहू।—अतः इस बारे में मां ने सुझाव के मुताबिक काम कर अच्छा ही किया है—इस तरह सोच-विचार कर निस्संदेह होने की कोशिश की।

अस्पताल का साइनबोर्ड देखकर समझ गया कि मैं बरजहा गांव के बीच से होकर ही जा रहा हूं। एक बार लगा कि मुझे प्यास लग आई है। कुछ दूर जाकर एक

घर के बाहरी दरवाजे पर उतर गया। एक गाय को भगाती हुई एक औरत बाहरी दरवाजे तक आ पहुंची थी। गाय मेरी बगल से ही निकल गई। औरत की उम्र ज्यादा नहीं थी। उसने मुझे देखते ही हाथ की लकड़ी को फेंक दिया और जल्दी से ओढ़नी सिर पर लेकर अंदर जाने के लिए मुड़ गई।

मैंने कहा—"क्या मुझे एक गिलास पानी दे सकती हैं?"

औरत जरा ठहर गई। मुड़कर देखे बगैर "आ जाइए" कहती हुई खुद घर के अंदर चली गई। मैं टट्टी से साइकिल टिकाकर आंगन के बीच खड़ा हो गया। थोड़ी ही देर में वह औरत अपने हाथ में पीतल का एक लोटा लिए निकली। कुछ कहे बगैर लोटे को जमीन पर रख कुछ हटकर खड़ी रही।

लोटा हाथ में उठाकर मैंने पूछा—"दक्षिण पाट यहां से और कितनी दूर है?"

औरत ने अपनी ओढ़नी को कुछ और खींचकर कहा—"मुझे पता नहीं, घर में कोई पुरुष-आदमी नहीं है।"

मैं पूरा पानी नहीं पी सका। लोटा जमीन पर रख, जल्दी-जल्दी सड़क पर आ गया और साइकिल पर सवार हो गया। उस औरत की बोली का लहजा और एक बार मेरे कानों में बज-सा उठा। अपने-आप पर कुछ संदेह-सा हुआ। क्या मैं उससे बातचीत लंबा करना चाहता था? संदेह के साथ-साथ अपने ऊपर हंसी भी आ गई।

कुछ देर बाद एक बार लगा कि अब मैं जरूर दक्षिण पाट गांव में प्रवेश कर चुका हूं। एक पीपल के पेड़ के नीचे बांस की फट्टियों से बनाई एक बेंच पर बैठे दो आदमी बातें कर रहे थे। मैंने एक से पूछा—यही दक्षिण पाट है न?

—जी हां।

—मनेश्वर शर्मा का घर पहचानते हैं?

—जरूर, जरूर, इधर से जाकर सीधे जो राह दाहिनी ओर मुड़ गई है, उस ओर मुड़कर किसी से पूछने पर वह दिखा देगा।

दूसरे ने कहा—अब दूसरे से पूछने की क्या जरूरत है भला! थोड़ी दूर जाते ही दो नारियल पेड़ों वाला जो बाहरी दरवाजा है, वही मनेश्वर बापू का घर है।

—ठीक है।—कहकर मैं आगे बढ़ गया।

मगर इस बार तो सचमुच छाती धड़क उठी। संबंध भी कौतूहल-मूलक है, उसके अलावा मैं खुद भी प्रार्थी ठहरा। मन में संकोच का भाव जग उठा। मैंने कुछ संभावनाओं के बारे में सोचा, कुछ सवालों के जवाब के बारे में सोचा, पहले जिसे कभी देखा नहीं, उस लड़की के बारे में सोचा। फिर एक बार कल्याणी की याद आ गई। आखिरी बार उसके बारे में भी कुछ सोचा।

बताए हुए रास्ते से होकर मुड़ गया। कुछ आगे बढ़ने पर दो नारियल के पेड़ों वाला एक बाहरी दरवाजा दिखाई पड़ा। ब्रेक दबाकर पैडिल कई बार उलटी मारी। अपनी हालत समझकर हंसी भी आ गई। धीमे-धीमे पैडिल मारकर आगे बढ़ा। जितना

ही देर करने की कोशिश करता; लगता था कि नारियल के वे पेड़ उतना ही आगे बढ़े आ रहे हैं। फिर देखभाल कर भी साइकिल को उन दोनों नारियल के पेड़ों के बीच रोक नहीं सका। कुछ आगे जाकर उतर पड़ा। वहां से घूमकर साइकिल को नारियल के पेड़ से टिकाकर उस घर पर नजर डाली। सामने की ओर बिना बरामदे का एक घर, जिसके छप्पर फूस के बने थे। घर की दीवारें बड़ी चिकनी मिट्टी से लिपी-पुती थीं। यहां-वहां एक-दो जगह चूना लगा हुआ था। ऐसा लगा, मानो पड़ोस के लोगों की सफेदी की हुई दीवारों वाले घर देखकर बच्चों ने शौक के मारे ही चूना पोत दिया हो। घर की ऊंची फर्श को सुबह ही बड़ा चिकना कर लीपा गया था। इसकी निशानी भी दिखाई पड़ रही थी।

बाहरी दरवाजे की अड़कन खोलकर साइकिल को हाथों से धकेलते हुए आंगन के एक ओर से होकर अंदर चला गया। आंगन के बीच में सूखने के लिए धान पसारा हुआ था। बीच में एक खंभा गड़ा था, जिसके ऊपरी सिरे पर कौवे का एक डैना टंगा हुआ था। साइकिल को घर के चबूतरे से टिका दिया। सावधानी बरतने के बावजूद पैडिल की खरोंच से चबूतरे की जरा-सी मिट्टी उखड़ गई। सिर उठाने पर देखा, तेरह-चौदह साल का एक लड़का मेरे चेहरे की ओर देख रहा है। आंखें चार होते ही मैंने उससे पूछा—पिताजी घर में हैं न, मुन्ने ?

—जी, नहीं हैं।

—कहां गए हैं ? मैंने जल्दी से पूछा।

—जी, वे नामघर में गए हैं।

—कब आएंगे ?

—पंचायत खत्म होने पर आएंगे।

—कितनी देर होगी ?

—पता नहीं, मगर क्यों ? क्या जरूरत है ?

कुछ देर सोचा, फिर कहा, "उनसे मिलना था। नामघर कितनी दूर है ?"

लड़का स्थिति समझ गया था, इससे अच्छा लगा। उसने कहा, "ठीक है, आप चलकर अंदर बैठिए, मैं पिताजी को बुला लाता हूं। आइए।"

मैं अंदर चला गया। कमरा बहुत ही साफ-सुथरा था। एक कोने के खंभे पर हिरन का एक सींग टंगा था। उसी सींग में लाल-पीला कागज लगाया हुआ बास का एक धनुष और मनसाल की गोलियों की एक माला भी टंगी थी। भावी संबंधियों के घर के लोगों की 'भाओना'[1] अभिनय और धर्म दोनों में मति है। ऐसा अनुभव हुआ। सुबह ही लिपी फर्श पर से पैरों की निशानियां सूख चुकी थीं।

मैं कमरे की अकेली कुर्सी पर बैठ गया। तभी चारों ओर से मुझे चार प्राणियों

---

1 भाओना—शकरदेव और उनके शिष्यों द्वारा रचित पौराणिक नाटक अभिनय।

घेर-सा लिया। तीन लड़के, एक लड़की। लड़के क्रम से लगभग आठ, छह और चार साल के होंगे और लड़की नन्हीं-सी थी, चल सकती थी, शायद तुतला भी सकती थी। छोटा लड़का और नन्हीं लड़की दोनों नंग-धड़ंग थे। दूसरा लड़का घुटने तक की एक बड़ी-सी कमीज, जो शायद उसके बड़े भाई की होगी, पहने, दो कपड़ों की जरूरत पूरी कर रहा था। उसी ने मुझसे पहले-पहल पूछा—"अइ, तू कहां से आ रहा है?"

मैंने हंसते हुए कहा—"बहुत दूर से आ रहा हूं।"

मगर चार साल वाले को शायद यकीन नहीं हुआ। उसने कहा—"ई-ह, बहुत दूर से आ रहा है, क्या वो—वहां से नहीं आया है?"

आठ साल वाले से पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है, मुन्ने?"

उसने कहा—"मनोहर।"

समझ गया कि उससे बातचीत चल सकती है। पूछा—"मां घर में हैं?"

—नहीं है, घाट पर गई है।

—घर में कौन है?'

—बड़ी दीदी है।

इसी बीच दरवाजे से झांककर अंदर के आंगन में जिसकी झलक भर देखी थी, अंदाजा लगाया कि वही बड़ी दीदी होगी।

मैंने मन ही मन कुछ सोचा। आते समय मां ने जो कुछ सिखलाया था, उसे याद किया। बड़ा संकोच हुआ, शर्म भी आई।

इसी बीच चुपचाप मेरे पीछे जाकर खड़े हो गए छह साल वाले ने मेरी कमीज पकड़कर खींची, मेरी मनःस्थिति उसकी रसिकता को अपनाने की नहीं थी। हालांकि मनोहर ने उसे डांटकर कहा—ऐ गधे, ऐसा नहीं करते। ठहर, बप्पा को आने दे। बता दूंगा।

मैं उठा। साइकिल से थैले को उतारा। खोलकर ब्लाउज का कपड़ा निकाल अपनी जेब में भर लिया और थैला मनोहर के हाथ देकर कहा—"यह ले जाकर अंदर दे दो।"

कहना चाहता था, 'दीदी के हाथ में,' पर जबान से बात निकली नहीं। मनोहर के पीछे-पीछे दो प्राणी दौड़ गए। नन्हीं बच्ची को बात समझ में आने में कुछ देर लगी। आखिर खुद को अकेली पाकर, एक बार मेरी तरफ देख, थप्-थप् कदम बढ़ाती वह भी अंदर भाग गई। रूमाल निकालकर मैंने भी एक बार अपने मुंह को पोंछ लिया। मां-बाप की गैर-हाजिरी में विषय सहज ढंग से शुरू हो सका, इससे मन को अच्छा लगा।

जिस लड़की की झलक भर दिखाई पड़ी थी, उसके रूप के बारे में सोचने लगा। शरीर का रंग तो गोरा ही लगा था। कदम भी वह धीरे-धीरे बढ़ा रही थी। ऊंचाई भी शायद कल्याणी जैसी ही होगी। अंदर से कुछ शोर-गुल की आवाज आई। कोई कह

रहा था, 'रख-रख', कोई 'दे-दे' कह रहा था, बीच में एक चीख रहा था—'मैं देखूं, मैं देखूं'। उन सभी को देने, लेने और देखने में शासन कौन कर रहा है—मैंने अंदाजा लगाया।

उस तरह से ज्यादा देर अकेले नहीं रहना पड़ा। छह साल वाला और चार साल वाला दोनों बाहर आए। उन दोनों के ही हाथों में छिलका उतारे एक-एक केला था। इसी बीच दोनों ने एक-एक हबक्का मार लिया था। दूसरे हाथ में छिलका बिन उतारा एक-एक साबुत केला था। समझ गया कि फिलहाल दो-दो केले प्रत्येक के हिस्से में आए हैं। छह साल वाला मेरे पास आ गया। अपनी कमीज के निचले हिस्से में नाक से बहता हुआ नेटा पोंछकर उसने अपना एक घुटना कुर्सी के एक कोने पर चढ़ा लिया। फिर अपने बाएं हाथ का केला मेरी ऊपरी जेब से लगाकर कहा—ऐ- ये फंटन?

मैंने कहा—"हूं।"

उसने बांया हाथ फैलाकर कहा—"घड़ी एक तू भी बना दे ना।"

उसका हाथ पकड़कर मैंने सोचा, इस तरह फाउंटेन-पेन से हाथ पर घड़ी बनाने की व्यवस्था के बारे में भला इसे पता कैसे चला? हालांकि इसमें अचरज की या नई कोई बात नहीं थी, फिर भी यह बात मन में आई कि इसके पहले किसने इस तरह से घड़ी बना दी होगी? पर बे-सिर पैर के ऐसे सोच-विचार बंद करने के उद्देश्य से उससे पूछा—तेरी दीदी क्या कर रही है रे?

उसने कहा, "धूप में लकड़ी पसार रही है।"

—जाकर कह दे, मैं बुला रहा हूं।

—किसलिए?

—यों ही—तू जा।

जोर से 'दीदी, दीदी', पुकारता, दौड़ता हुआ वह अंदर चला गया। मैंने जरा-सी थूक घोंट ली। मां की कही हुई बात फिर से याद की।

कुछ ही देर में छह साल वाला निकल आया। अब दूसरे केले पर उसका हमला चला। मैंने पूछा—तूने कह दिया?

उसने हुंकारी भरी। यों ही कुछ समय बीता। जेब से ब्लाउज का कपड़ा निकाल, तह लगाकर दोनों हाथों में छिपाकर रख लिया। छह साल वाले से फिर कहा—जा, दीदी को फिर बुला ला।

उस कमरे में घुसते ही उसने कान फाड़ने वाली चीख भरी—"ओइ दीदी!" और दूसरे ही क्षण स्तब्ध-सा रह गया। उसकी धीमी आवाज कानों में आई—"अरी, तुझे बुला रहा है न; और तू भाग रही है?"

वह स्थिति मुझे भी असहनीय-सी लगी। लगा, मानो कान-सिर गर्म हो गए हैं। कुछ सोचकर कपड़े को फिर से जब में भर लिया। कुछ देर बाद शरीर का एक हिस्सा छिपाकर, एक पैर दरवाजे की चौखट पर रख मनोहर की दीदी आ खड़ी हुई। कुछ देर

रुककर उसने पूछा—किसलिए बुला रहे थे आप ?

आंखें खूबसूरत थीं, नजर ऐसी थी, मानो चाहें तो उससे अर्थ निकाला जा सकता है। शरीर का रंग चमकदार और गठन लावण्य पूर्ण थी। लड़की वास्तव में सुंदर थी।

—किसलिए बुला रहे थे ? उसने आंखों में नजर डालकर, पूछा।

—तुम्हारा नाम क्या है ?—अप्रस्तुत-सा होकर पूछने में मुझे हक-बकी लग गई।

—सादरी।

सिर झुकाकर मैंने मानो उस नाम को याद रखने की कोशिश की। दूसरा सवाल क्या पूछूं, मन में ही विचार किया। सिर उठाकर देखते ही उससे आंखें चार हुईं। अगर स्थिति अनुकूल होती तो शर्म के मारे सिकुड़ी छुईमुई-सी लड़की को देखकर खुशी ही होती परंतु मुझे लगा कि मैं खुद अपना संतुलन ही नहीं रख पा रहा हूं। बुलवाकर उससे बात न करना बुरा होगा, ऐसा मानकर तुरंत पूछ बैठा—"तुमने कितना पढ़ा-लिखा है ?"

इस बार मानो वह शर्म के मारे बिलकुल मुरझा-सी गई। मैं भी समझ गया, सवाल बड़ा ही पारंपरिक-सा हो गया है। फिर भी उसने कहा—"छठी श्रेणी तक। मिडिल की परीक्षा नहीं दी।" मैंने तुरंत सोचा, पूछूं कि क्यों नहीं दी परीक्षा ? पर नहीं पूछा। फिर एकटक देखने लगा।

लड़की भी खूबसूरत, आवाज भी मीठी। कम से कम जहां तक मेरी पसंद का सवाल है। अब तो मेरी आवाज ही चुक गई। मैंने जेब में हाथ डाला। ब्लाउज के कपड़े पर हाथ पड़ते ही मानो मेरी सांसें छोटी हो गईं। मैंने देर नहीं की। हाथ आगे बढ़ाकर कहा—हां, यह ले लो जरा।

—क्या है ?

—कुछ भी नहीं, सिर्फ छोटी-सी चीज है।

—किसलिए ?

—यों ही, तुम ले लो न !

—नहीं, नहीं, मैं नहीं लूंगी। घर में पिताजी आदि कोई नहीं है।

—कुछ नहीं होगा। तुम ले लो। मैं पिताजी से बता दूंगा।

वह सिर झुकाए खड़ी रही। हाथ फैलाए रहने की मेरी ताकत ही मानो नहीं रही। शायद कानों में भनभनाहट गूंज उठी। कुछ देर बाद वह धीरे-धीरे आगे बढ़ आई और मेरे हाथ से कपड़ा ले लिया। फिर मुड़कर झट से अंदर घुस गई। मैं स्तब्ध-सा बैठा रहा। मानो तूफ़ान का एक झोंका निकल गया।

कुछ देर अकेले बैठा रहा। चार साल वाला लड़का, मनोहर आदि कोई न था। सभी बाहर निकल गए थे। मैं सादरी के बारे में ही सोचता रहा। कुछ ही देर बाद बाहरी दरवाजे पर एक आदमी दिखाई पड़ा। नंगा बदन देखकर लगा, आदमी कर्मठ

है। वह अंदर आ गया। समझ गया, सादरी का बाप है। कुर्सी पर जरा सीधा होकर बैठ गया। उसने आते ही पूछा—बप्पा, सुना है कि तुम मुझे ही खोज रहे थे—क्यों ?

—जी हां।

—कहां से आए हो ?

—शहर से।

—क्या बात है, बताओ। मैं तो तुम्हें पहचान नहीं पाया।

सिर झुकाए ही मैंने कहा—"आपके घर के बारे में बिपिन भैया ने मां से बताया था। उसे सुनकर मां ने एक चक्कर लगा जाने के लिए कहा था। इस कारण इधर चला आया।

सादरी का बाप मेरे चेहरे की ओर देखता रह गया। मुझे लगा, यह मेरी चुनाव-परीक्षा है। कुछ क्षण बाद उसने कहा—"तुम भला किस बिपिन के बारे में कह रहे हो ?"

—शहर में रहनेवाला बिपिन, सुना है, जो नाते में आपका भगिना लगता है।

उसने सिर झुकाए कुछ सोचा। फिर कहा—मेरा भगिना लगता है ? अच्छा, बात क्या है आखिर, जरा बताओ तो ?

बिपिन भैया ने मां को जो खबर दी थी, और मां ने जिसके लिए मुझे भेजा था—मैंने सारी बात कह सुनाई। सादरी की चर्चा भी की।

—अच्छा, तुम्हारे बाप का नाम क्या है ?

—महीकांत शर्मा, वे दिवंगत हो चुके हैं।

तभी बाहर 'धरं' सी आवाज हुई। समझा, मेरी साइकिल गिर पड़ी है। उठकर दरवाजे के पास जाकर देखा कि मनोहर हांफता हुआ गिरी साइकिल को उठाने की कोशिश कर रहा था। और शेष दोनों अपराधी-जैसे खड़े हैं। मेरे पीछे-पीछे सादरी का बाप भी निकल आया था। वह गरज उठा—"अरे गधो, साइकिल रखते हो या नहीं ? अरे बदमाश, अंदर जा, पैंट पहन ले।"

मैं फिर वापस आकर कुर्सी पर बैठ गया।

उसने कहा—"अच्छा बप्पा, बताओ तो सही, आखिर मेरा मकान तुमने कैसे ढूंढ़ निकाला है ?"

—कई लोगों से पूछताछ करता हुआ यहां पहुंचा हूं।—उसके सवाल की सार्थकता न समझकर मैंने उसके चेहरे की ओर देखते हुए कहा—"और फिर बिपिन भैया ने भी बताया था कि 'मनेश्वर शर्मा' का नाम कहने पर कोई भी आदमी घर दिखा देगा।

—मनेश्वर शर्मा ?

—जी हां।

वह कुछ परेशान-सा हुआ। धीमी आवाज में कहा—ओह, तुमने तो अच्छी-सी

गलती कर डाली। भला यह घर तुम्हें किसने दिखा दिया ? छेः।"

मेरी छाती जोर से धड़क उठी। सिर झन्ना गया। पर कुछ कह नहीं सका। आंख खोलकर सिर्फ उसके चेहरे की ओर देखता रह गया।

—मनेश्वर शर्मा का घर आगे रह गया। सरकारी सड़क पर जाकर कुछ दूर जाते ही, दाहिनी ओर जो राह मिले, उसी ओर से घुसकर दो-चार मकान छोड़कर मनेश्वर शर्मा का घर है। उस घर के बाहरी दरवाजे के सामने भी नारियल के दो पेड़ हैं। ओह, बड़ी गलती हो गई तुमसे।

पिछली बातें मेरे कानों में ऐसी लगीं मानो किसी ने उबलता तेल डाल दिया हो। मेरा सिर चकराने लगा। अब वहां क्षणभर भी रह नहीं सका। "ठीक है, मैं अब चलूं। आप बुरा न मानें। समझे न ?"—कहकर मैं दरवाजे से बाहर निकल गया। किसी की कोई बात सुनने के लिए रुका नहीं। बाहर निकलकर देखा, साइकिल जहां रखी थी, वहां नहीं है। फिर मैं पलभर भी रुका नहीं। एक ही सांस में नारियल पेड़ों को पार कर राह पर खड़ा हो गया। देखा, थोड़ी ही दूरी पर तीनों बच्चे एक साथ साइकिल को पकड़कर घुमा रहे हैं। पर कोई चढ़ा नहीं है। मैं उनके पास पहुंचा।

छह साल वाले ने कहा—ऐ, मुझे जरा चला न।

उसके कहते ही चार साल वाला 'मुझे भी, मुझे भी' कहता हुआ रोने ही लगा। उस समय मैं अपनी अलग दुनिया में था। जब मैंने साइकिल की हैंडिल पकड़ी, पैडिल पर अपने दोनों पैर रखकर चार साल वाला और पिछली मडगार्ड के दोनों ओर पैर रख छह साल वाला दोनों साइकिल पर सवार हो चुके थे। उनके साथ ही कुछ दूर साइकिल धकेलता ले गया। तभी पीछे की ओर से दौड़ता हुआ बड़ा लड़का मनोहर आया और मुझे खाली थैला सौंप दिया। मैंने निर्विकार ढंग से उस थैले को ले लिया। साइकिल पर सवार दोनों बच्चों को वह उतार कर ले गया।

एक ही छलांग में मैंने साइकिल पर सवार हो, शरीर और साइकिल की दया-माया तजकर तेजी से चला दी। मुझे लग रहा था, सादरी खिलखिलाती हंसती मेरे पीछे-पीछे खदेड़ती चली आ रही है। और बच्चों के खाए हुए केलों के छिलके मेरी पीठ पर बरस रहे हैं।

पहले तिराहे पर उस छोटे बच्चे ने जो राह दिखाई थी, अब समझ में आ गया कि वही राह सही थी। सचमुच बच्चों के शरीर में देव रहते हैं।

किस राह से, कैसे आकर घर पहुंच गया, पता ही नहीं चला। एकदम पिछवाड़े के आंगन में पहुंचकर साइकिल से उतर पड़ा, पर उतरने के पहले ही मैं स्तब्ध-सा रह गया।

अरे, कल्याणी !

रसोईघर के दरवाजे की टट्टी से शरीर टिकाए, कल्याणी खड़ी थी। स्थिर उज्ज्वल-दृष्टि, सुदर देह, अधरों पर शांत हास। बहुत दिनों की, लगभग छह साल पहले

की पुरानी कल्याणी। खंभे से साइकिल टिकाकर उससे पूछा, "अरे कल्याणी, तुम! कब आई?"

जैसे वह बहुत देर से उत्तर देने के लिए तैयार थी, ऐसे ढंग से बिन रुके कहने लगी—"बहुत पहले—सुबह ही आ गई थी। न जाने कब से जाऊं-जाऊं कर रही हूं, पर दादी तो जाने ही नहीं दे रही। कह रही है, खाना खाकर ही जाना है। लेकिन मैं तो खाना-वाना खाऊंगी नहीं।"

आंगन की डोरी पर पसारे हुए अध-भीगे अंगोछे से मैंने अपने कपाल और गले का पसीना पोंछ लिया।

1953

वृंदावन

शहर के एक सिरे से लेकर आखिर तक के सभी मुहल्लों में रहने वाले लोगों के नाम एक ओर से उपेन सोचता आया था। दफ्तर में एक साथ काम करने वाले लोगों के नाम भी जहां तक हो सका याद करने की कोशिश की। अगर कहीं भूल से किसी का नाम छूट जाए तो शादी के बाद बात सुननी पड़ेगी। कोई अगर कहीं राह में मिल जाए तो कह उठेगा—"गुप-चुप शादी कर ही ली न? अच्छा, ठीक है..."

या तो दूर से दिखाई पड़ जाने पर—'शादी में आमंत्रित नहीं कर सका'—ऐसा बहाना बनाने के लिए तैयार होना पड़ेगा। या खुद ही पूछना पड़ेगा—'अरे, आप तो शादी में नहीं आए।' तब हो सकता है कि वह आदमी मुंह फुलाकर कह दे—'मातिले रणलैको याबा', नेमातिले भोजलै को नायाबा' याने 'कोई बुलाये तो रण में भी चला जाना, मगर बिन बुलाए भोज में न जाना!'

तब उपेन को कहना पड़ेगा, 'क्यों? क्या आपको पत्र नहीं मिला? अरे, ये लड़के बड़े लापरवाह हैं, जानते हैं न! सिर्फ आपको ही नहीं, बहुत-से और लोगों को भी 'दिया है, दिया है,' बताकर पत्र दिया ही नहीं। हालांकि मैंने खुद अपने हाथ से सबके नाम-पते लिख दिए थे।"

इतनी सारी संभावनाओं के बीच जाने की अपेक्षा, अब समय रहते ही, शांत दिमाग से सबका नाम-धाम याद कर लेना अच्छा है। जहां तक हो सके उसके सामने मेज पर निमंत्रण-पत्रों का ढेर लगा था, लिफाफे पड़े हुए थे। कुछ लिफाफों पर पते लिखे हुए थे, कुछ दूर-दराज में रहने वाले इष्ट-मित्रों के लिए, कुछ पर 'बुकपोस्ट' लिखकर डाक टिकट भी लगाए जा चुके थे। कलम पत्रों पर रखे उपेन सोच रहा था—और किन-किनको आमंत्रित करना है। तभी अंदर की ओर के दरवाजे का परदा हटाकर दरवाजे के सामने निजरा आ खड़ी हुई। उसने पुकारा—मामाजी!

उपेन मारवाड़ी मुहल्ले के बारे में सोच रहा था। 'बाबूजी, बाबूजी' कहने वाले बहुत-से लोगों से उसकी जान-पहचान रही है। यहां तक कि दुकान में घुसते ही इलायची-दालचीनी की कटोरी आगे बढ़ा देने वाले कई लोगों से उसकी जान-पहचान है। पर मुसीबत यह है, उनमें से बहुत-से लोगों का पूरा नाम वह जानता नहीं, कोई मुरारीलाल है, तो उसकी उपाधि का पता नहीं, कोई आशकरण है, तो उसके पीछे लाल लिखता है या कोई कुछ, पता नहीं।

निजरा ने फिर पुकारा, —मामा। इस बार उसकी आवाज कुछ ऊंची थी।

उपेन ने सुना, पूछा—क्या बात है निजरा ?

—ऊं—ह, एक बार बुलाने पर जैसे सुनते ही नहीं।—कहती हुई निजरा मेज के पास चली आई। उपेन बोला—अरे, मैं कुछ सोच रहा था। क्या बात है ? पुकार क्यों रही थी ?

मेज पर पता लिखी चिट्ठियों को यों ही उलट-पुलट कर देखती हुई निजरा ने पूछा—क्या कहते हैं, उसे…तो चिट्ठी दी है न ?

—किसे ?

—वह जो आदमी एक दिन शाम को हमारे यहां आया था ! निजरा ने उसे याद दिलाने की कोशिश की।

उपेन बोला—अरे, हमारे यहां तो हर शाम कितने सारे लोग आया-जाया करते हैं, पता नहीं, तू किसके बारे में बता रही है।

—अरे नहीं, नहीं। वह जो आदमी अपने साथ एक नन्हीं बच्ची को ले आया था। चाय पीते हुए जिसने सफेद प्याली की घुंडी तोड़ डाली थी, वह—जो आदमी, आपके बराबर ऊंचा था लगभग काला चश्मा लगाए हुए—वह !

उपेन कुछ देर सोचकर याद करने की कोशिश करता रहा। फिर कहा—ओ, वह चंद्र राजखोवा ! हां-हां-तूने तो अच्छी याद दिला दी। मैं तो बिलकुल भूल ही गया था।

उपेन तुरंत कुर्सी पर सीधा हो गया और कलम उठाकर एक लिफाफे पर पता लिखने लगा।

—'इस्, सब कुछ भूल ही जाते हैं', कहती हुई निजरा अपनी ठुड्डी को मेज के सिरे से लगाकर चिट्ठियों की ढेरी से एक लिफाफा निकाल उसे उलट-पुलटकर देखने लगी। उसे रखकर एक बिना पता लिखा आमंत्रण-पत्र उठा लिया और उसकी तहें खोलकर वैसी ही उपेक्षा की दृष्टि से उस पर छपे अक्षरों पर नजर दौड़ाने लगी जैसे गणित-शास्त्र का कोई विदग्ध विद्वान् बच्चों के प्राथमिक गणित की किताब पर नजर डाल रहा हो। उसके बाद पूछा—मामा, इसमें आपका नाम छपा है न ?

उपेन एक लिफाफे पर चंद्र राजखोवा का नाम लिखकर उसके नीचे अंग्रेजी में 'लोकल' लिख रहा था। सिर झुकाए हुए ही उसने पूछा—"किसमें, री ?"

निजरा ने आमंत्रण-पत्र को उठाकर दिखाते हुए कहा—इसमें।

उपेन ने सिर उठाकर कहा—हां।

दूसरे ही क्षण निजरा ने मेज के सिरे पर अपनी कोहनी टिकाकर कुछ और ऊंचा होने की कोशिश करते हुए पूछा—"इसमें और किसका नाम है, मामा ?"

उत्सुकता के मारे उसकी आंखें चमक उठीं। उपेन को लगा, अगर वह कह दे कि 'इसमें तेरा भी नाम है' तो निजरा खुश हो जाएगी और उसी आशा से ही उसने यह

बात पूछी है। परंतु वह बात कहते ही वहां कैसा धमाका हो जाएगा, यह भी उपेन को पता था। वह तुरंत दौड़ती हुई निकल जाएगी, चीख-चीखकर दादी से बताएगी, वृंदावन बूढ़े से कहेगी। शादी-विवाह के नाम पर पिछले कई दिनो से जो आत्मीय-स्वजन वहां आए हुए हैं, उन सबसे बताएगी, फिर बाहरी दरवाजे तक जाकर अपने संगी-साथी झुंड भर लड़कों को इकट्ठा कर समझाएगी,—'समझे न, मामा ने विवाह के पत्र में मेरा नाम भी लिखा है।" यहा तक तो गनीमत है। उसकी उमंग को सह न पाकर उससे जलने वाली कोई लड़की अगर पूरी घटना की छानबीन कर उससे कह दे—'हमारी बड़ी दीदी तो कहती है कि पत्र में तुम्हारा नाम है नहीं';—तो उसके बाद निजरा का मामा बड़ा है या उस जलनेवाली लड़की की बड़ी दीदी बड़ी है—इस बात को लेकर एक प्रचंड महाभारत ही मच जाएगा। और आखिर में अगर यह बात प्रमाणित हो जाए कि मामा ने निजरा से धोखा किया था, तो फिर दादी, वृंदावन बूढ़ा आदि पैरों पड़कर भी उसे खाना नहीं खिला पाएंगे। कोई प्यार करना चाहेगा तो चपत मारकर उसका हाथ हटा देगी; भले ही रोए नहीं, पर उसका चेहरा देखने पर ऐसा लगेगा, बारिश न होने पर भी समूचा आकाश ऐसा उफन आया है कि किस क्षण, क्या हो जाए, पता नहीं। मानो घर-बार सब कुछ बहा ही ले जाने वाला है।

बड़ी मुसीबत है। इस बच्ची को लेकर उपेन जितना परेशान है, महीने के आखिर में सरकारी माल-खाने के रुपए-पैसे का हिसाब पाई-पाई मिलान करने में भी उतनी परेशानी नहीं होती। इस बच्ची के सामने जरा-सी असावधानी से जैसी मुसीबत खड़ी हो जाती है, हजारों की सरकारी रकम संदूक में भरकर, कुंजी जेब में डाल पिकनिक में निकलकर कई घंटे असावधानी में गुजार देने में भी वैसी मुसीबत नहीं है।

इसी कारण उपेन ने पहले तो अपना सिर इधर-उधर हिलाया, उसके बाद कहा—'नहीं री, और तो किसी का नाम नहीं है।' उसने सोचा था, यह बात सुनते ही निजरा हताश हो जाएगी, आंखें फैलाकर उसकी ओर देखेगी, पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। इतनी आसानी से अगर उसकी भावना समझ में आ जाती तब तो बात ही कुछ और होती। उसने निर्विकार भाव से पत्र को फिर से तह कर लिया, जहां से उठाया था, वहीं रख दिया, और टिकट लगा एक पत्र उठाकर सिर्फ पूछा—नानी का नाम किसलिए नहीं दिया?"

उपेन को हंसी आ गई। निजरा की बात का जवाब दिए बगैर उसने जल्दी-जल्दी कहा, 'रख, रख, इन्हें उलट-पलट मत कर। मैंने इन्हें तरतीब से लगा रखा है। रख दे!'

—अरे मैं उलट-पलट कहां रही हूं। जरा देख ही तो रही हूं।—निजरा बोली।

—मेरा लिखना पूरा हो जाने दे, तब आकर देखना। अभी जरा अंदर जा न!

—उंह, नहीं, नहीं, मैं आपके पास ही रहूंगी।

—ओ, क्या तुझसे बातें करते रहने से ही मेरा काम हो जाएगा? कितने पत्र अभी लिखने को पड़े हैं, क्या दिखाई नहीं देता?—उपेन ने मेज पर पड़े पत्रों को

दिखाया।

निजरा बोली—किसे पत्र देना चाहिए, यह बात तो मैंने ही बताई थी न ?

—ठीक है, ठीक है, अभी तो चली जा। याद आए तो फिर आ जाना। अब जाकर देख तो भला नानी क्या कर रही है ? और नानी के पास बैठकर सोचती रह। याद आने पर मुझे बता जाना। समझी न ?

—उफ् राम !—वास्तव में निजरा बड़ी समस्या में पड़ गई थी। उसने असली बात को बड़ी विरक्ति से प्रकट करते हुए कहा—"नानी ने मुझे आपके पास रहने के लिए ही भेज दिया है।"

तो यह बात है। उपेन ने अंदाजा लगाने की कोशिश की कि मां ने किस कारण निजरा को उसके पास रहने के लिए भेज दिया है। उसने उसे पास बुलाकर कहा—"जरा इधर आ, सुन !"

निजरा तुरंत उसके पास चली आई। बड़ी महत्त्वपूर्ण गोपनीय कोई सलाह पाने की अभिलाषा से गला उठाकर कान उपेन के मुंह के पास ले गई। उपेन बोला—"तू नानी के पास ही जाना। समझी न ?"

—हूं ! निजरा को मानो किसी रहस्य का पता चल गया हो। उसने सिर हिलाया और आगे की बातें सुनने के इरादे से कान उसके मुंह के और नजदीक ले गई। वृंदावन बूढ़ा जब सोता हो तो उसकी नाक में एक सूत डालकर सुर-सुरा देना, नानी की चादर का सिरा एक डोरी से बांधकर उसे कुर्सी से बांध देना, आदि जैसी गुप्त सलाहें प्रायः उपेन के साथ होती ही रहती हैं।

उपेन ने धीमे से कहा—"नानी से जाकर कहना, मामा ने मुझे आपके ही साथ रहने को कहा है, यह भी कहने को कहा है कि मै कोई गोलमाल नहीं करूंगी।" और दूसरे ही क्षण उसने निजरा को 'जा-जा दौड़-जा' कहकर उसकी पीठ पर एक हाथ लगाकर धकेल दिया।

थोड़ी दूर से अपने होंठों को कुछ नुकीला कर, भौंहों पर बल डाल, लंबी-सी 'ओ—ह' की आवाज कर निजरा ने मामा की ओर नजर डाली, इसके बाद पर्दे को हटाकर अंदर चली गई। जाते-जाते राह भर में वह बड़बड़ाती रही—'नानी कहेगी, मामा के पास जा—मामा कहेंगे—नानी के पास जा—कितनी मुसीबत है।'

निजरा का बड़बड़ाना घर भर के लोग सुनते हैं। और बात करती है तो कई घर की दूरी तक सुनाई पड़ती है। नानी सुवर्ण लता ने पूछा—"कैसी मुसीबत है री निजरा ?"

ऐसे समय में तुरंत जवाब दे देना, इस बात की निशानी है कि उसका गुस्सा शांत हो चुका है। निजरा को बीच-बीच में वैसी बात अच्छी नहीं लगती। वह नानी के पास ही स्तब्ध सी बनी खड़ी रही।

सुवर्ण लता पुराने जमाने की अपनी बड़ी पेटी का ढक्कन खोलकर इधर-उधर के

सामानों में से चुन-चुनकर शराई-ढक्कन निकाल रही थी। वह पेटी अरसे से खोली ही नहीं गई थी। बहुत दिन पहले की बुनी हुई चीजें वैसे ही बिखरी पड़ी हुई हैं। कपूर की बू भी मानो उन चीजों से लिपटी हुई है। कई दिनों से सुवर्ण लता सोच रही थी, कि पेटी को खोलकर चीजों को तरतीब से सहेजकर रख दे। मगर चाहे आलस के मारे हो, या किसी और वजह से हो, मन में सोची हुई वह बात मन ही में रही, चीजें सहेजी नहीं जा सकी हैं। बेटे के विवाह के कारण छोटी-मोटी चीजों के बारे में सोच-विचार करते समय अचानक उसे उन शराई-ढक्कनों की याद हो आई। आटा-मैदा मंडप की छत के लिए टीन, मोटर-गाड़ी, बैंड-पार्टी, ढोल बजाने वाले आदि जैसे बड़ी चीजों से सुवर्ण लता का कोई सरोकार नहीं, परंतु छोटी-मोटी कुछ चीजें, पहले से किसी को जिनकी याद ही नहीं रहती, या जिन पर ध्यान ही नहीं दिया जाता, मगर समय पर उनके न मिलने पर कुहराम मच जाता है—सब लोग परेशान हो उठते हैं,—तू साइकिल लेकर अमुक के यहां चला जा—तू तमुक के यहां जा, खोजकर ले आ—छोटी-मोटी चीजें जैसे—धान की सीस, शराई-ढक्कन, नन्हीं-सी एक कटारी, हाथ में लेकर चलने लायक एक छोटी-सी कंघी, बत्ती पूरने के लिए एक मुट्ठा कच्चा धागा—आदि-आदि। इन चीजों के बारे में उसकी फिक्र ज्यादा है। उपेन तो शायद दिनभर इधर-उधर चक्कर लगाकर पी. डब्ल्यू. डी. ऑफिस से चार तिरपाल और विवाह के दूसरे ही दिन वापस करने का वादा कर नाट्य-मंदिर से पचास कुर्सियों की बात तय कर आया है। मगर घर में कदम रखते ही सुवर्ण लता पूछ बैठेगी—"चंद्र गोसाई के यहां जाकर 'दुनरी' का पता लगाया था?" 'दुनरी' बांस या पीतल का बना जापी-टोपी जैसा एक पात्र है।

—नहीं लगाया। उनका गुस्सा सीधे तालू तक पहुंचा। उपेन का भी और मां का भी। उपेन सोच रहा था—इतनी सारी चीजें जुटाने की फिक्र में मेरा सिर चकरा रहा है। तिस पर यह कहां की 'दुनरि' कहां की क्या— !

और मां सोच रही थी—चक्कर लगाना ही तो देख रही हूं। काम तो कुछ भी हुआ नहीं। आज तक वह 'दुनरि' ही नहीं आ पाई है।

इसी कारण शराई-ढंकनी निकालने के लिए सुवर्ण लता ने पेटी खोल ली थी। शराई-ढंकनी के अलावा हो सकता है कि दो-चार और चीजें निकल आएं। मगर पेटी का ढक्कन खोलते ही जैसे उसका कलेजा मरोड़ गया। बेटी मनोरमा की शादी के बाद पेटी को जिस तरह से बंद किया था, उसी तरह है। उसमें से कुछ चीजें इधर-उधर हटाकर शराई-ढंकनी खोजने में मानो उसके नीचे से और बहुत-सी बातों की तहों को हटाकर पहले हो गए विवाहों की बातें उभर आईं। तभी निजरा की बड़बड़ाहट सुनाई पड़ी—कितनी मुसीबत है।

पूछने पर निजरा ने जब कोई जवाब नहीं दिया, तब सुवर्ण लता ने एक बार उसके चेहरे की ओर देखा। पर उसका चेहरा देख, उससे कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुई। क्या जाने, पूछने पर उसकी डांट भी सुननी पड़े।

एक-एक कर कई रंगों की कई शराई-ढंकनी निकालने के बाद जब उनके सिरों पर लगी मणियों जैसी कांच की गोलियों की मालाएं चमकने लगीं, तो निजरा खुद ही पास आकर उन कपड़ों को हाथ से उलट-पलटकर देखने लगी। इसके बाद अचानक सिर उठाकर उच्छ्वसित स्वर से बोल उठी—नानी, समझी न, विवाह में किस-किस को बुलाना है, मामा भूल गए थे। मैंने उन्हें याद दिला दी।

—अच्छा किया, नातिन! सुवर्ण लता बोली—इस घर में तो अब सिर्फ तेरा दिमाग ही सही है, और तो सब बावले हो चुके हैं।

सिरे पर कांच की गुरिया लगाई हुई एक शराई-ढंकनी से अपना सिर ढंक कर निजरा बरामदे में निकल गई। दो-तीन बार इधर-उधर आने-जाने के बाद अचानक उसने तय किया, ऐसे रहने पर चलेगा नहीं, काम करना चाहिए।

विवाह का दिन जितना करीब आता जा रहा है, घर के काम-काज भी बढ़ते जा रहे हैं। इसी कारण घर में लोग भी बढ़ गए हैं। उपेन की विधवा चाची लगभग बीस दिन पहले ही आ गई, बुआ की बिटिया सुरमा, बड़े भाई के विवाह के बहाने ससुराल से पहली बार मायके आई है। और आने के बाद से ज्यादातर उपेन के यहां ही समय बिता रही है। मंडप-छत, लोगों को खिलाना-पिलाना आदि का दायित्व मामा महीधर ने पहले ही अपने अनुभवी कंधों पर ले लिया है। इसी कारण अकेला उपेन कुछ छूट पा सका है। पूरे रसोईघर को सुरमा के जिम्मे सौंप कर बूढ़ी सुवर्ण लता कुछ फुरसत ले सकी है। कम से कम सुरमा जब तक रहे, वह कुछ सांस ले सकती है।

मगर सांस नहीं ले पाई है निजरा ही। चाहे जो भी जितना काम क्यों न करे, जब तक निजरा हाथ नहीं लगा देती, तब तक मानो कुछ तरतीबवार होता ही नहीं। सुरमा रसोई तो ठीक ही बनाती है, सब्जी-तरकारी-भाजी सब कुछ खाने में अच्छी ही लगती हैं, पर नानी बैंगन-भाजी नहीं खाती, मामा को फूलदार थाली में ही खाना परोसना है, ये बातें निजरा के सिखाए बगैर होती ही नहीं। पास-पड़ोस के लोगों को तांबूल-पान देकर न्यौता देने के उद्देश्य से सुवर्ण लता खुद ही निकलती, उसके साथ-साथ तांबूल-पान की 'खराही' यानी छोटी-टोकरी वृंदावन ले चलता, पर पीतल का 'बटा' कौन ले जाए? ले जाने वाला भला और कौन होगा निजरा के सिवा। बुलाओ निजरा को।

—मैं अगर साथ न चलूं तो नानी कहीं जा ही नहीं सकती। कहती हुई निजरा जब अंदर से चीख मारती, तो उसके पहले ही वह फ्राक बदल चुकी होती, सिर्फ कंघी लेकर सुरमा के पास जाने भर की देर रहती।

संक्षेप में अगर निजरा नजर न दे, तो यह घर घर बना रहे या नहीं, संदेह है। उसने अपने सिर से शराई-ढंकनी को उतारकर पास की कुर्सी पर रख दिया और बरामदे से नीचे उतर गई।

वृंदावन बूढ़ा पिछवाड़े जहां दूल्हे को नहलाने के लिए काठ या केले के पौधे से मंदिरनुमा 'बेड़' बनाया जाएगा, वहां की जगह को बराबर कर रहा था। ज्यादातर काम

वैसे मजदूर ही कर गए हैं, सिर्फ जगह-जगह की ऊबड़-खाबड़ जमीन को फावड़े से छीलकर बराबर करना बाकी था, वृंदावन वही कर रहा था। निजरा जाकर वहीं खड़ी हो गई। वृदावन का फावड़ा चलाना देखती हुई वह बोली—"ओ भैया। सुनते हो, मेरा वह तुलसी का पौधा न काटना, कहे देती हूं।"

पिछवाड़े अकेले-अकेले काम करते-करते वृंदावन को कुछ ऊब-सी हो रही थी। बीच में एक बार सब्जी के छिलके फेंकने आकर सुरमा ने पूछा था, 'भैया, क्या चाय पीओगे?' उसके बाद काफी देर तक उसे किसी ओर की आवाज तक सुनाई नहीं पड़ी थी। अब निजरा की आवाज सुनकर उसने सिर उठा, ऐसे देखा, जैसे वह मन ही मन अब तक उसी का इंतजार कर रहा हो। मुह चलाने के लिए निजरा से ज्यादा य़ोग्य उसके लिए और कोई नहीं है।

कुछ देर स्तब्ध-सा निजरा की ओर देखते रहकर उसने कहा—'ऊंह, किसलिए नहीं काटूंगा? मेरे फावड़े के सामने जो भी आएगा एक ओर से सबको साफ करता जाऊंगा। उहं, बड़ी महारानी आई है, हुक्म देने के लिए। अभी सब कुछ काट डालूंगा।' आखिरी बातें उसने इस तरह से कहीं, मानो सारी धरती को बराबर कर डालने के इरादे से ही उसने हाथ में फावड़ा उठा लिया है। निजरा की तो बात ही क्या तैंतीस करोड़ देवता भी उसे अब पकड़ नहीं सकते। और अपने सामने की जमीन पर वह इतनी तेजी से फावड़ा चलाने लगा, मानो जितनी जल्दी हो सके तुलसी के पौधे के पास तक पहुंच जाना ही अब उसका एकमात्र इरादा हो।

—ऊंह, पौधा तो मेरा ही है—समझे। निजरा जल उठी।

—ऊंह, इन्हीं का पौधा है यह! वृंदावन की नाक सिकुड, नीचे का होंठ उलट, उसका झुर्रीदार चेहरा ऐसा विकृत हो उठा मानो किसी पके कटहल पर हमला कर गाय ने उसके एक हिस्से को हबक लिया हो। उस विकृत चेहरे से ही उसने कहा—ऊंह, लगता है कि यह जमीन के नीचे से तुलसी के पौधे को ले आई हो।

दोनों में से कोई भी किसी से घटकर नहीं है। घुटने तक फ्राक पहने निजरा जैसी है, घुटने तक धोती पहने वृदावन भी वैसा ही है। मगर अब निजरा मानो कुछ मुसीबत में पड़ गई। तुलसी का पौधा जमीन के अंदर से ही निकला है, यह तो उसने खुद ही देखा है। हालांकि उसे यह भी पता है कि वह खुद जमीन के अंदर जाकर उसे नहीं ले आई है। इसलिए वह क्या कहे, सोचकर बूढ़े वृदावन के चेहरे की ओर देखकर भौंचक्की-सी रह गई। उसके आत्म-सम्मान में कुछ चोट-सी लगी, इसके बाद उसे गुस्सा आ गया। बोल उठी—"अरे देखो न, यह कैसा कर रहा है? बड़ा काम कर दिखलाने चला है। हुंह!"

—क्यों नहीं दिखलाऊंगा? जब काम कर रहा हूं, तब तो जरूर दिखलाऊंगा। क्या मैं तुम्हारे जैसा हूं?—वृदावन ने झट उलटकर जवाब दिया।

—ऊंह, क्या मैंने कोई काम नही किया है?

—कौन-सा काम किया है, तूने, बता तो, कौन-सा काम किया है तूने ? ऐसा लगा कि बूढ़ा उसकी ओर झपट ही पडने वाला है।

वृंदावन को फंदे में डालने के इरादे से निजरा ने अपनी गरदन बढ़ाकर, चेहरे को हिला-हिलाकर कहा—कल, वह उधर तुम लोगों ने जो गड्ढा खोदा था—क्या उस समय मैंने काम नहीं किया था ?

हां, काम किया था। महीधर और वृंदावन सामने की ओर मंडप का खंभा गाड़ने की व्यवस्था कर रहे थे। खंभों को एक ही कतार में रखने के लिए एक रस्सी लगाकर निशानी लगाने की जरूरत थी। निजरा पास ही थी। महीधर ने कुछ देर उसे रस्सी का सिरा पकड़े रहने के लिए थमा दिया था। अतः निजरा ने काम किया था। पर जैसे ही उसने वह बात पूरी की, वृंदावन 'उहं, बड़ा भारी काम किया था'—इस हंसी उड़ाने के लहजे में '*ऊ-ऊ—*' कहकर चीख उठा।

निजरा तुरंत मुड़कर भुन-भुनाती वहां से चली गई। वैसे वृंदावन तो बदमाश है ही, पर आज वह ऐसा बदमाश हो गया है कि निजरा के लिए उसके पास ठहरे रहना भी उचित नहीं है। जाते-जाते वह कहती गई—'ठहरना, मामी आ जाएं तो मैं सब कुछ बता दूंगी, हां।'

निजरा जिधर गई, उस ओर कुछ देर देखते रहकर बूढ़े वृंदावन 'हो-हो-कर कुछ देर अपने आप हंसता रहा। अद्‌भुत संतोष की हंसी। संतुष्टि सिर्फ उसकी हंसी में ही रही हो ऐसी बात नही, उसके माथे पर से बहकर आए पसीने की बूंदों में भी जैसे मिलकर निकल आ रही थी। इस तरह से झगड़ने के बाद मानो उसे ऐसी ताकत मिल जाती है कि बगैर कुछ खाए-पीए वह दिनभर फावड़ा चलाता रह सकता है।

निजरा ने स्नानघर में जाकर जल्दी-जल्दी अपने पैरों पर कुछ पानी डाला। पिछवाड़े से आकर अंदर घुसने के पहले पैर धो लेना चाहिए। भीगे पैरों से ही वह थप्-थप् दौड़ती हुई रसोई-घर में चली गई। चूल्हे पर सब्जी छन-छन कर रही थी; निजरा का आना सुरमा को पता नहीं चला था, उसकी आवाज पाकर मुड़कर देखा—बुआ, क्या मैं सब्जी काट दूं ?

—ओ, अभी आई हो ? सब्जी तो कट चुकी। सुरमा ने हंसकर कहा।

—क्या भाजी नहीं बनाओगी ? निजरा ने आशा बिलकुल नहीं छोड़ी थी !

—भाजी, तरकारी-दाल सब बन चुकी, ठीक है, तुम शाम को सब्जी काट देना। मैं तुम्हें खुद बुला लूंगी।

—आज तो भात-सब्जी-तरकारी बड़ी जल्दी बन गए, क्यों, है न ?—भीगी-सी आवाज में प्रश्न कर निजरा वहां से हट आई।

आज उसे कहीं हाथ लगाना ही नहीं पड़ा। फिर भी घर के सारे काम ठीक तरीके से ही चल रहे हैं। हालांकि उस वृंदावन की बात को छोड़कर। सिर्फ आंगन में मिट्टी के गिलास ऐसे ही पड़े हुए हैं, यह तो ठीक नहीं लग रहा है। बहुत-से गिलास।

इतने सारे गिलास किसलिए ? उसके पूछने पर मामा ने बताया था—विवाह में बहुत-से लोग आएंगे, इसी कारण गिलास भी बहुत हैं। रिक्शे पर से उतार कर पिछवाड़े के आंगन तक लाने में कई तो टूट ही गए और सब वैसे ही ढेरी में पडे हुए हैं। मामा ने कहा था, गिलासों को धो-धाकर तरतीब से रखना है। निजरा ने सोचा, धोने के पहले इस तरह ढेरी में पड़े रहने की बजाय अगर आंगन में कतारों में लगा दिया जाय तो क्या बुरा है ? वह गिलासों को खोल-खोलकर कतारों में सटा-सजाने में जुट गई। बीच में सुरमा ने एक बार उसे वैसा करने से मना किया। मगर निजरा बोली—"जरा ठहरो न, देखो कितना सुंदर लग रहा है।"

बहुत दिनों से तह में पड़े शराई-ढंकनियों को निकाल कर उन्हें धूप में पसारने के इरादे से सुवर्ण लता ने बाहर आकर देखा, आंगन में गिलासों से मधुमक्खी का छत्ता-सा बन गया है। उसने सुरमा से धीमी आवाज में पूछा—भला उसे उस काम में किसने लगा दिया ?

—वह तो खुद ही लगी है। मैंने तो मना किया था, पर मानी नहीं। क्या किया जाय ?

दूर ही से सुवर्ण लता ने पुकारा—निजरा। सुन तो जरा, इधर आ। मगर निजरा ने सिर ही नहीं उठाया। बुढ़िया ने फिर पुकारा—सुन रही है या नहीं।

—जरा ठहरो, कुछ देर बाद आ रही हूं।

—ठहरने की जरूरत नहीं, आ, जल्द चली आ।

—उफ् राम, एक काम भी करने नहीं देतीं, सिर्फ पुकारती रहेंगी, सिर्फ पुकारती रहेंगी—कहती हुई परेशान-सी निजरा उठ आई। सिर्फ ऐसा आज ही हुआ हो, ऐसी बात नहीं। जब कभी वह कोई जरूरी काम करती रहती है, नानी उसे बुलाएगी ही, यह तो तय है।

—कपडे में वह सब क्या लगाया है ?—सुवर्णलता ने उसकी फ्राक के पीछे की ओर दिखाया। आंगन में बैठकर गिलास सजाने में उसमें काफी धूल लग गई थी, अपने बांएं हाथ से झटककर निजरा ने धूल झाड़ दी।

—भला, कपड़े गंदे क्यों करती है ? सुवर्ण लता कुछ और भी कहना चाहती थी, निजरा बोली—"काम करने पर क्या कपड़े गंदे नहीं होते ?"

—अरे, तू जो इन कामों में जुटी है, क्या दूल्हे-दुल्हन को नहलाया है ? सुवर्ण लता ने पूछा।

—ओह, गजब हो गया। निजरा ने जीभ को निकाल दिया। असली काम ही तो वह भूली हुई है। 'उफ् राम' कहती हुई जिस तरह असंतुष्टि प्रकट कर वह दूल्हे-दुल्हन के पास दौड़ गई, उससे पता चला कि कामों के बोझ के कारण वह कुछ भी संभाल नहीं सकी है। चारों ओर एक ही साथ नजर रखने के कारण अगर कहीं कोई काम पड़ा रह गया है, तो वह निजरा का दोष है ही नहीं। भला, एक लड़की और कितना करे ?

गत्ते की बनी एक पेटी में सिर्फ एक-दो ही नहीं, चौदह-पद्रह दूल्हे और सत्रह दुल्हनें, अपनी इच्छा के मुताबिक सोए पड़े हुए हैं। किसी दूल्हे का पैर अगर किसी दुल्हन की नाक पर चढ़ा हुआ है तो भी किसी को कोई शिकायत नही है। सिर्फ़ कल जिस जोड़ी की शादी हो गई है, वे पेटी के किनारे पीठ लगाए खड़े हैं। उनके भाग्य का एक मात्र नियत्रण करने वाली निजरा उन्हें जिस तरह से रहने को कह गई थी, वे उसी तरह से पड़े हुए हैं, किसी ने किसी की ओर एक हाथ भी आगे नहीं बढ़ाया है।

इतने सारे दूल्हे-दुल्हनों में किस दिन किसका विवाह होगा, यह निजरा ही तय किया करती है। बीच-बीच में हालांकि वह नानी से भी सुझाव लिया करती है। कल जिसका विवाह हो गया है, उसे कुछ दिनों तक सिर्फ बैठे-बैठे दूसरों का विवाह देखते भर रहना पड़ता है। कभी-कभी विवाह के नाम पर कुछ खाना भी मिल जाता है। दस-पंद्रह दिन बीतने के पहले फिर से उसका विवाह नहीं हो सकता। अगर कभी निशानी लगाने में निजरा से गलती हो जाए, तो चार-पाच दिन के अंदर उसका फिर से विवाह हो सकता है। पर बीच में गलती पकड़ में आ जाए तो विवाह रुक भी सकता है। कई बदमाश दूल्हों का विवाह होते-होते रुक भी गया है। ऐसा भी हो सकता है, कि निजरा किसी दूल्हे को पेटी के किनारे टिके रहने को कह गई हो, मगर वह नहीं रहा हो, उसे सिर्फ बार-बार सोना ही चाहिए। 'बात कहने पर भी सुनाई नहीं पड़ती?' कहकर निजरा अगर उसकी ओर कुछ देर देखते रहने के बाद उसे थपच्चा मार कर सुला दे, तो फिर उसका विवाह होने से रहा। जो प्रजापति[1] कितनी साधना के बाद माथे पर बैठा था, वह फुर्र से उड़ गया; फिर कब आकर बैठे, कौन जाने?

इतने सारे दूल्हे-दुल्हनों के झमेले को निजरा के सिर पर सुवर्णलता ने ही थोप दिया है। मेज के पास बैठकर जब निजरा मामा के अधलिखे पत्रों को खुद लिखकर पूरा करने लगती या सुवर्ण लता के करघे पर बैठकर तकुआ चलाने लगती, या गर्मी के मौसम में बाहर सोने के लिए बनाई गई वृंदावन की चारपाई पर कांटी ठोंकने लग जाती, तब सुवर्ण लता उसे पुकार लेती—"अरी, इधर आकर देख तो जरा, यह क्या है।"

निजरा के पास आने पर सुवर्ण लता फटी चादर के कपड़े से पुतला बनाकर दिखाती। वह पुतला कुछ देर निजरा को सम्हाले रख सकता है। फिर उपेन मामा एक दिन एक थैला लेकर निकला; जान-पहचान वाले दर्जियों की दुकानों का चक्कर लगाकर रंग-बिरंगे कपडों के टुकड़े थैले में भरकर ले आया। पहले कुछ दिन सुवर्ण लता ने दोपहर को बैठे-बैठे दूल्हे-दुल्हनों के पुतले बना दिए, मगर बाद में निजरा खुद भी पुतले बनाने लगी। मगर पुतलों को कपड़े पहनाते समय वह बड़ी परेशानी में फंस जाती।

---

1 प्रजापति—असम-बंगाल में प्रचलित किवदती के अनुसार विवाह का देवता। तितली को भी प्रजापति कहते हैं और तितली को प्रजापति का प्रतीक माना जाता है।

उसकी पसंद का पीला रेशमी कपड़ा सिर्फ एक ही टुकड़ा है। वह कपड़ा किस दुल्हन की चादर बने, इस बारे में नानी से उसकी कई बार बहस हो चुकी है। आखिरकार यह तय हुआ था कि जिस दिन जिसका विवाह हो, उस दिन वही दुल्हन वह चादर पहने। मगर विवाह हो जाते ही उसे उतार देना होगा। वैसी ही और कुछ चादरें ला देने के बारे में वह मामा से कई बार कह चुकी है, पर उपेन का कहना है कि वह दुकानों में हमेशा जाकर वैसे कपड़े का पता लगाता है। पता चला है कि वैसे कपड़ों का पार्सल अब तक मारवाड़ी के गोदाम में पहुंचा ही नहीं है। शायद दो-एक दिन में आ पहुंचेगा या नहीं, पता नहीं।

पर यह बात सही है कि दूल्हे-दुल्हनों के साथ निजरा का दिल लग गया है। इसी कारण जब उसे बहुत ज्यादा काम करते देखती, तो सुवर्ण लता दूल्हे-दुल्हन को नहलाने की बात कह देती।

माथे पर बूंद भर पानी डाल निजरा दूल्हे-दुल्हन को नहलाती। फिर कपड़े पहना देती। बीच में कभी अचानक रसोई-घर की तरफ जाती हुई बिल्ली को देखकर डांटती—"अरी चोरनी, कहां जा रही है? ठहर, मैं आ रही हूं।" तब तक बिल्ली हो सकता है कि दूसरी ओर निकल जाए, मगर उधर टिकाकर रखा हुआ दूल्हा बेचारा कतरा कर उलट जाता। निजरा तुरंत कह उठती—ओह-ओह; क्या गुस्सा आ गया है तुझे? तुम्हारे लिए जो दूध रखा है, उसे पीने के लिए वह बिल्ली आई थी न। मैंने तो उसी को डांटा था, तुम्हें तो कुछ नहीं कहा था न।

उन्हें पहनाने-ओढ़ाने के बाद नानी की बारी आती है। अब सुवर्ण लता को विवाह-गीत गाना है।

किसी जमाने में सुवर्ण लता विवाह-गीत गाया करती थी, मगर आजकल तो सबकुछ गड्ड-मड्ड हो गया है। बहुत देर तक सोचने पर ही कोई नई कड़ी याद हो पाती है। परंतु जिस अवसर पर जो विवाह-गीत गाना चाहिए, वह गीत तो याद ही नहीं पड़ता। दुल्हन के हवन की जगह बैठने के समय, वह गीत गा देती है, जो असल में पानी भरने के समय ही गाया जाता है। गीत की दो कड़ियां कई बार गाने के बाद ही सुवर्ण लता के मुंह की बोली धीरे-धीरे धीमी होकर सुनाई देना बंद हो जाती है, बहुत दूर की किसी चीज पर उसकी नजर बंध जाती है। आंख की पलक झपकाने की भी मानो उसको सुध नहीं रहती। उसके मुंह की गुनगुनाहट मानो विवाह-गीत में आए राजा जनक की बेटी सीता के साथ ही पाताल में समा जाती है।

निजरा चीख पड़ती—क्या हो गया नानी? गाती क्यों नहीं? चुप क्यों हो गई? गाओ न?—आखिर क्यों? सुवर्ण लता भला बीच-बीच में चुप क्यों हो जाती है? यह बात वह इस नन्हीं-सी बच्ची को समझाए भी तो कैसे? कभी-कभी उसे लगता है, उसकी छाती को कुछ ऐसी चीज जोर से दबाए दे रही है, जिससे कि निजरा को अपने पास बैठाकर सारी बातें शुरू से आखिर तक उगल डाले। निजरा समझे या न समझे,

बात खत्म होते ही वह निजरा को अपनी छाती से लगाकर जितना हो सके रो ले, एक बार अगर वह जी भरकर रो ले तो हो सकता है कि छाती पर का वह बोझ हल्का हो जाए।

इसी घर में, इसी आंगन में, मनोरमा के विवाह के अवसर पर इस शहर के 'बिया-नाम' याने विवाह-गीत गाने वाली सबसे निपुण लड़कियों ने 'बिया-नाम' की ऐसी झड़ी लगा दी थी कि रात की आखिरी घड़ी में मंडप में बैठी हुई बुढ़ियों ने कहा था, 'बाबा रे, क्या इन लड़कियों के मुंह में दर्द भी नहीं होता?' दूल्हे के साथ जो विवाह-गीत गाने वाली औरतें आई थीं, वे अपनी जबान बंद कर केवल मुग्ध एवं अभिभूत दृष्टि से उनकी ओर देखती रह गई थीं। वहां उपस्थित एक संगीतकार उन लड़कियों से देर तक चर्चा कर एक छोटे-से नोट-बुक में कुछ लिखता जा रहा था। दूल्हा हवन के स्थान पर जैसे ही बैठा था, उन लड़कियों ने उसके सिर के बाल, माथे से लेकर चेहरे को ढंके रुमाल तक का वर्णन करते हुए ऐसे 'जोरा-नाम' याने "दूल्हे-दुल्हन को मिलाकर गाए जाने वाले गीत" गाए थे कि मिलिट्री में काम करने वाला प्रसन्न भी शर्म के मारे पसीने-पसीने हो गया था।

वही आखिरी बार था। उसके बाद फिर कभी सुवर्णलता को न 'बिया-नाम' सुनाई पड़ा है, और न उसने सुनने की कामना ही की है। फिर भी कभी-कभी अचानक रात की आखिरी घड़ी में बहुत दूर से आने वाली 'केतेकी' चिड़िया की पुकार की भांति तेज, मर्मस्पर्शी और करुण अनुभूतियां लेकर जैसे पांच साल पहले की वह 'बिया-नाम' की झड़ी उसके कानों में गूंज उठती है।

'जोरा-नाम' में लड़कियां गा रही थीं, मनोरमा के पास बैठा हुआ प्रसन्न ऐसा लग रहा था मानो एक सुंदर-से सिधौरा के पास एक जंग खाया हुआ सूटकेस हो। वह महज विवाह की मस्ती में बावली-सी हो उठी लड़कियों के 'जोरा-नाम' का ही वर्णन था। बाद में उन्हीं में से एक ने यह भी कहा था कि प्रसन्न की अपेक्षा आधा भी सुंदर कोई मिल जाए, तो वह दूसरे ही दिन उससे विवाह कर लेगी।

और मनोरमा का रूप! उसके बारे में तो सुवर्ण लता को कभी कोई फिक्र ही नहीं थी। लोग कहा करते, अगर लड़की होकर ही पैदा होना है, तो मनोरमा जैसी होकर पैदा होना चाहिए।

अतः प्रसन्न के साथ मनोरमा का विवाह करवाकर सुवर्ण लता ऐसी सुखी हुई थीं जिससे ज्यादा सुखी किसी मां का होना संभव नहीं और सबसे ज्यादा सुखी थी मनोरमा खुद। प्रसन्न जहां जाकर नौकरी करता था, वहां जाने के बाद उसने मां के नाम लंबी चिट्ठी लिखी थी, हालांकि बड़े भाई उपेन के नाम छोटी-छोटी चिट्ठी लिखी थीं। चिट्ठी की भाषा और लहजे से सुवर्ण लता को पता चल गया कि लड़की को जन्म देने के बाद पाल-पोस कर बड़ा करने का जो दायित्व उस पर था, वह अब सोने की सीढ़ियों से होकर उसके कंधे से उतर गया।

विवाह के बाद मनोरमा ने देखा, कि प्रसन्न को अपने जीवन के आधार के रूप में पाने हेतु हालांकि वह बहुत दिनों से सपने संजोए हुए थी, परंतु प्रसन्न के मन में इतना अपना, इतना मोहक, इतना स्वप्नमय एक इंसान उसके लिए खुले दिल से, अपार उत्सुकता से, उच्छल प्रेम-पात्र से उसे अपनाने हेतु बाट जोह रहा था, यह बात उसने सोची तक न थी। जीवन-यौवन का कैसे पूरी तरह उपभोग किया जाए, यह बात सचमुच वह सोचा करती थी। परंतु किसी समय के लिए इतना आनंद, इतनी शांति, इतनी विह्वलता जमा थी, ऐसा भी कोई समय आएगा जबकि वह सात समुद्रों की दहाड़ को भी नीचे करने वाली प्यार के मृदुल गुंजन के ताल-ताल में नाच सकेगी—जैसी बातें वह सपने में भी सोच नहीं पाई थी। उन दिनों वह मां के नाम चिट्ठी पर चिट्ठी लिखा करती, 'मां, उपेन भैया का विवाह अगले साल ही करना होगा, समझी न ? मैं महीने भर पहले ही वहां पहुंचूंगी।'

उपेन के विवाह के कारण भले ही न हो, पर मनोरमा मैके आई। उन दिनों उसके पैर भारी थे, छह महीने का गर्भ था। और कुछ दिन बाद भी आ सकती थी, परंतु उन्हीं दिनों प्रसन्न को सरकार ने किसी सीमांत-अंचल में भेज दिया। सुनने में आ रहा था कि उस सीमांत-अंचल में कुछ लोग हथियारों से लैस होकर सरकार को परेशान कर रहे हैं। अतः प्रसन्न जैसे चतुर नौजवान की वहां बड़ी जरूरत हो गई है।

जिस दिन प्रसन्न सीमांत की ओर रवाना हो रहा था, मनोरमा फूट-फूटकर रोई थी। उसके बाद वह हर दिन अखबारों में सीमांत के समाचार शुरू से आखिर तक ढूंढ़ा करती थी।

मनोरमा के अंग-अंग को सजाकर मानो उन दिनों नारीत्व उसे पूर्णता की ओर ले जा रही थी। नलकूप से बाल्टी-भर पानी ले जब कभी वह रसोई-घर में जाती, तो देखने वाली अनुभवी पड़ोसिनें सुवर्ण लता के पास आकर काना-फूसी कर कहतीं—'अब उसे भारी चीजें ज्यादा उठाने-रखने न देना।' और ये बातें सुवर्ण लता के कानों में ऐसी लगती थीं, मानों मधु की बरसात हो।

उसके बाद ही इस बच्ची का जन्म हुआ था। सीमांत से प्रसन्न ने लिख भेजा था, 'उसका नाम 'निजरा' रखना। 'निजरा' यानी झरना।' फिर उसके आगे वर्णन करते हुए लिखा था—'घने कंटीले जंगल के बीच से दुर्गम पहाड़ी पगडंडी से होकर किसी पर्वतीय 'निजरा' के पास पहुंचकर जब उसके किनारे खड़ा हो जाता हूं, तो कैसे लगता है, यह भला तुम लोग क्या समझोगी ?

उसके बाद फिर कैसे क्या हो गया, कोई समझ नहीं सका। मनोरमा को भी उस दिन अखबार में ज्यादा खोज-बीन करनी नहीं पड़ी। पहले ही पृष्ठ पर बड़े अक्षरों में वह समाचार छपा था। कुछ ही देर बाद सरकार के आदमी आ पहुंचे और उपेन, मनोरमा सुवर्ण लता से मिले। बताया, विद्रोहियों ने प्रसन्न को सुदूर के ऐसे सीमांत में भेज दिया है, जहां से अब वह लौटेगा नहीं।

इस समाचार से मनोरमा को पागल हो जाना चाहिए था, पर पागल हुई सुवर्ण

लता, पागल हो गए उपेन, वृंदावन। दूसरे दिन सुबह तीन महीने की निजरा को गोद में लिए हुए सुवर्ण लता मनोरमा की आत्मा को अभिशाप देती, चीखती हुई पूछ रही थी, क्या यही तुम लोगों का ज्ञान है? यही तुम लोगों का प्यार है? इस कोमल कली-सी नन्हीं बच्ची के, अपने पेट की इस बच्ची के चेहरे की ओर एक बार भी क्यों नहीं देखा? अगर इस पेट से जनमी हुई बच्ची का स्नेह भी तुझे बांधे नहीं रख सका, तो भला तू मां बनी ही क्यों थी? इस दुनिया में भला ऐसी मां कौन होगी जो इस तरह से नन्हीं-सी बच्ची को छोड़कर ..' सुवर्ण लता की रुलाई की चीख-पुकार में आगे के शब्द खो गए।

किसी मां को ऐसा करना नहीं चाहिए मगर न जाने कैसे वह मनोरमा ने कर डाला। उस समय कितनी रात हुई होगी, कोई बता नहीं सकता। मनोरमा एक पुर्जा लिखकर छोड़ गई थी—'मां, उपेन और तुम्हारे जिम्मे निजरा को सौंपकर मैं पूरी तरह निश्चित हूं। पूरा भरोसा रखकर जा रही हूं। अगर वह इस बच्ची के जीवन के साथ उपस्थित रहे, तो वह स्थिति उसके पिता की अनुपस्थिति को ही ज्यादा उभार कर रखेगी और यह उस बच्ची के लिए एक ऐसी क्षति होगी, जिसकी कभी पूर्ति नही हो सकती। इस बच्ची की जिंदगी की भलाई के लिए उपेन और सुवर्ण लता जो कुछ करेंगे, जिंदा रहकर भी मनोरमा उससे ज्यादा कुछ भी नहीं कर सकेगी। वह अपने जीवन का सारा आशीर्वाद इसे दिए जा रही है। इस दुनिया से अलग अगर कहीं जाकर वह रहेगी, तो उसकी कामना यही है कि वहां से वह उसे निरंतर आशीर्वाद देती रहे।

उस पुर्जे के आखिर में मनोरमा ने बड़े भाई उपेन और मां सुवर्ण लता से क्षमा मांगी थी।

सुवर्णलता की प्राण-शक्ति मानो तभी खत्म-सी हो गई थी। हालांकि उसे रोने-धोने का मौका ही नहीं मिला था। तीन महीने की निजरा के लिए उसे मनोरमा बनना पड़ा था। उसके बाद निजरा बड़ी होती गई; उसी के लिए सुवर्ण लता को फिर हंसने को मजबूर होना पड़ा है।

मनोरमा के चले जाने के कुछ दिन बाद तक वृंदावन की आंखों की ओर देखना भी असंभव हो उठा था। वही लोगों की ओर देखने से डरने लगा था, या लोग उसकी ओर देखने से डरने लगे थे, पता नहीं, पर कोई किसी की ओर देखता नहीं था। मनोरमा जब परीक्षा देने जाती तो वृंदावन ही दोपहर को एक डिब्बे में जलपान ले जाकर उसे स्कूल में दे आता। उसी वृंदावन के साथ हर दिन लड़ाई-झगड़ा, खींचा-तानी, पकड़ा-पकड़ी कर मनोरमा बड़ी हुई थी। उसकी नजरों के सामने ही मनोरमा ने तिल-तिल कर अपने शरीर का ऐश्वर्य जुटाया था, फ्राक छोड़ ब्लाउज पहना था, और बहुत दिनों तक उसकी पीठ की ओर खुले ब्लाउज के पीछे वही पिन लगा दिया करता था।

कभी इस घर में मजदूरी करने वाले के रूप में वृंदावन आया था, यह बात मनोरमा ने मानो उसे भुलवा दी थी। आखिरकार जब वृंदावन मन-ही-मन यह बात

सोच रहा था कि उससे निजरा की छीना-झपटी कर झगड़ेगा, तभी उसे अपने हाथों में फावड़ा लिए मनोरमा के पीछे-पीछे मरघट में जाना पड़ा था।

उपेन-वृंदावन-सुवर्णलता ने तो काफी दिन ऐसे ही किसी तरह से निकाल दिए। परंतु जैसे ही निजरा की जबान खुली, वह बात समझने लगी, तो तीनों ही संत्रस्त हो उठे। बच्ची के गाल से होकर अगर बूंद भर आंसू बह जाता, तो सुवर्ण लता को लगता कि उसके गले से होकर जहर की ही एक बूंद चली गई हो। उसका शरीर जरा भी गर्म लगता, तो उपेन डाक्टर के दरवाजे पर दौड़ जाता, और जब तक वह जगी रहती, वृंदावन तो उसका पीछा ही नहीं छोड़ता था।

उपेन ने उसके लिए रंग-बिरगी तस्वीरों वाली कुछ किताबें ला दी थीं और सुवर्ण लता ने बैठे-बैठे उसके लिए पुतले बनाकर दूल्हे-दुल्हन में उसके मन को कुछ हद तक लगा दिया। नहीं तो निजरा इस तरह से घर के काम-काज में जुट जाती मानो वृंदावन और सुवर्ण लता के लिए और कोई काम ही बचा नहीं रहेगा।

एक दिन जब निजरा दूल्हे-दुल्हन का विवाह करवाने में जुटी हुई थी, नानी ने उससे पूछा—तेरे मामा का विवाह होने वाला है, तुझे पता है या नही ?

उस दिन निजरा ने सोचा था, इन कई दिनों में जिन दूल्हों का विवाह नही हुआ है, जल्दी-जल्दी उनका विवाह करवा कर उसी बीच मामा का विवाह भी करवा देगी। मगर धीरे-धीरे जब उसने देखा कि मामा के विवाह का आयोजन कुछ दूसरे ढंग से शुरू हुआ है, तब उसे कुछ थमक जाना पड़ा। फिर जब उसे यह पता चला कि मामा के विवाह के बाद उनके यहां एक मामी आएगी, उसके कुछ ही घंटों में पडोसियों से पता चल गया कि उपेन का विवाह कोई ऐसा-वैसा विवाह नहीं है, इस विवाह के बाद उनके यहां एक औरत आएगी; वह औरत उपेन की क्या लगेगी पता नहीं, पर यह सच है कि निजरा की मामी लगेगी।

देखते-देखते निजरा ने अपने यहां एक मामी की सर्जना कर डाली। बाहर निकलते मामी, अंदर जाते मामी, खाना खाते मामी, लेटते-सोते मामी। सिर्फ मामी ही मामी। अगर रिक्शे पर सवार होकर कहीं जाते समय उपेन उसे साथ न लेता, तो अब वह हठ नहीं करती, सिर्फ यही घोषणा कर देती, 'ठहरो, मामी के आने पर बता दूंगी। हां।' उसे जबरन दूध पिलाने, आंखों में साबुन लग जाने प भी उसे नहलाना न छोड़ने आदि जैसे अनेक अपराधों में, निजरा की मामी की अदालत में सुवर्ण लता को भी अपराधी बनकर विचार की प्रतीक्षा में रहना पड़ा। फिर वृंदावन की तो बात ही क्या थी ? उसकी उद्दंडता तो इतनी बढ़ गई थी कि निजरा ने उसे सावधान करना भी छोड़ दिया था। उसने वृंदावन से बता दिया—'कितना चिढाते हो, चिढ़ाते रहो, मामी आ जाए, तो देख लूंगी, समझे न !' कुल मिलाकर स्थिति ऐसी हो गई थी कि मामी के आने के दो-एक दिन के अंदर ही नियमानुसार वृंदावन को फांसी हो जाना आवश्यक है। उपेन तो जिंदा रहेगा या नहीं, वह मामी की करुणा और किस्मत पर निर्भर है, हालांकि

सुवर्ण लता घर में रह तो पाएगी, मगर उसे कितने समय उपवासी रहना पड़े, पता नहीं।

उपेन को इसके बाद ऐसा लगने लगा कि पास के कमरे में ही निजरा की कोई मामी बैठी हुई है। एक दिन जब वह शाम को विवाह के बारे में सोच रहा था, मन में पुलक अनुभव कर निजरा को उसने अपने बिलकुल करीब बुलाकर धीमे से पूछा—'अरी, तेरी मामी भला देखने में कैसी है री ?

सर्वस्वत्व संरक्षित कर रखने वाले प्रकाशक की भांति निजरा कह उठी—'जाइए, जाइए मैं नहीं बताऊंगी; और मामी आ जाएगी तो आपको दिखलाऊंगी भी नहीं।' और झट से मुड़कर वहां से चली गई। चीख-पुकार के डर से उपेन भी चुप रह गया।

विवाह का आयोजन लगभग पूरा हो आया था। विवाह का दिन भी करीब आ गया। हालांकि दो-चार छोटी-मोटी चीजों के लिए सुवर्ण लता के मन में कुछ कमी महसूस होती रही। उसके लिए उपेन को भी झिड़की सुननी पड़ी थी। ऊब कर जैसे ही वह कहना चाहता, तभी निजरा कह उठती—'हां-हां, जानती है न, मामा कोई काम करते ही नहीं, सिर्फ ऑफिस जाते हैं, और घर आते हैं।' और इसके बाद फिर किसी बहस की गुंजाइश ही कहां रहती ?

कभी शहर की ही लड़कियां थीं, मगर उनका विवाह देहात में हुआ, ऐसी नाते-गोते की बहुत-सी महिलाएं आकर उस घर में इकट्ठी हो गई थीं। उनके बाल-बच्चों को लेकर निजरा के कामों का आदि-अंत नहीं रहा। उनकी माताएं पूड़ियां तल रही हैं, लड़के-लड़कियां पास ही घूम-फिर रहे हैं, एक-एक पूड़ी हाथ में देने पर वे उसे लेकर आंगन में दौड़े जा रहे हैं। दौड़-धूप में किसी की अधखाई पूड़ी जमीन पर गिर गई है, उसे उठाकर जैसे ही वह खाना चाहता है, निजरा मना कर अंदर से उसे अच्छी पूड़ी ला देती है। कामों के बीच समय निकालकर वह ये बातें सुवर्ण लता से बता-बताकर खुद आश्चर्य भी प्रकट कर रही है। कुछ नन्हीं-नन्हीं बच्चियां निजरा की दूल्हे-दुल्हनों की पेटी किसी तरह से पाकर निकाल ले आई थीं, निजरा किसी तरीके से उनके हाथों से निकालकर वह पेटी ले जाकर मामा की पेटी के नीचे छिपा आई। इन सारे कामों के बावजूद उस घर में इकट्ठे हुए छोटे-बड़े सभी लोगों को यह बात समझाने में उसे काफी तकलीफ उठानी पड़ रही थी कि उसकी मामी आने वाली है। हालांकि सभी लोग एक-दो बार बताने पर ही वह बात समझ जाते थे, इसी से उसे अच्छा लग जाता था।

मगर एक बात निजरा को बड़ी बुरी लग रही थी और गुस्सा भी आ रहा था। एक बार उसने अपने सोने के कमरे में जाकर देखा, कीचड़-सने पैरों से ही बिस्तर पर चढ़कर किसी ने उसके बिस्तर पर कीचड़ के दाग ही दाग लगा दिए हैं। मामा के बड़े दोनों तकियों के पास ही उसका जो छोटा-सा तकिया था, उसे कोई तिरछा कर गिरा गया है। यह बिस्तर अगर जरा-भी गंदा होता है, तो मामा वृंदावन पर बिगड़ते हैं। अब बिस्तर की ऐसी हालत देखकर वह तुरंत सुवर्ण लता के पास गई और कहा—"नानी,

गंदे पैरों से चढ़कर किसी ने हमारे बिस्तर को गंदा कर दिया।"

सुवर्ण लता ने तुरत बिस्तर का कपड़ा बदलवा दिया। परंतु रात को जब वह सोने गई तो देखा कि फिर किसी ने बिस्तर को बिखेर दिया है। गुस्से के मारे वह रो पड़ना चाहती थी। बिस्तर-चादर को फिर बदल देने के बाद अपने नन्हे-से तकिये पर सिर रखकर निजरा सो गई। विवाह के बारे में सलाह आदि देने वाले लोगों के अपने-अपने घर जाने के बाद आधी रात को उपेन सोने आया, निजरा के शरीर को कपड़े से अच्छी तरह ढंक दिया, और सावधानी से लेट गया जिससे निजरा की नींद उचट न जाए।

निजरा की मांग के अनुसार विवाह के दिन उसके पहनने के लिए 'मेखला-चादर' की एक नई जोड़ी रखी हुई थी, निजरा ने उस दिन सबेरे ही उसे पहन लिया। उसे कपड़े पहनाने में सुरमा को घटों लग गए, दसियों 'सेफ्टी-पिन' लगाने पड़े। परंतु दोपहर के थोड़ी ही देर बाद उसने फिर फ्राक ही पहन लिया। 'मेखला-चादर' पहनने में बड़ी झंझट है। पहली बात तो यह है कि उसे जो भी देखता 'कइना' याने दुल्हन कहने लगता। दूसरी बात, विवाह-घर की उस चहल-पहल में उसके करने को इतने सारे काम निकल आए, कि उनके मुताबिक दौड़-धूप करना उसके लिए कठिन हो गया। पैर उलझ-पुलझ जा रहे थे। शाम को जब बहू-बेटिया मिलकर पानी लाने जा रही थीं तो अपने बगल में एक नन्हा-सा घड़। लिए, 'मेखला-चादर' पहने निजरा उन सबके आगे-आगे चली। घड़े में भरकर वह जो पानी लाई थी, उसका ज्यादा हिस्सा मामा की देह पर उंड़ेलकर थोड़ा-सा पानी उसने इसलिए बचाकर रख दिया कि जरा समय मिलते ही वह अपने पुतले दूल्हों को भी उससे नहला देगी।

उसके हम-उम्र लड़के-लड़कियों ने ठीक तरह पूड़ी-दाल-मिठाई खाई है या नहीं, इसी विषय को लेकर पूरी शाम निजरा बिलकुल व्यस्त रही। लड़के-लड़कियों को पुकार-पुकार कर पूछती थी, 'अरे ओ! तुम सबने पूड़ी-मिठाई खाई है या नहीं?' कोई जैसे ही कहता 'नहीं खाया', तो वह तुरंत जाकर वृंदावन से बताती, वह इंतजाम करता। उसके थोड़ी-ही देर बाद कोई दूसरी लड़की निजरा के कानों में कहती—उन सबने तो पहले एक बार खा लिया था, समझीं। इतना झूठ बोलती हैं, मैया री।'

बीच-बीच में निजरा यों ही मामा के पास दौड़ जाती। उसके बाद फिर सुवर्ण लता के पास जा, धप्प से बैठकर कहती, 'उफ् राम, ऐसी थकावट लग रही है कि क्या बताऊं।' सुवर्ण लता उसे बांहों में लेकर कुछ देर अपने पास बैठाये रखना चाहती, पर बिठा नहीं पाती। वह अचानक उठकर दौड़ जाती।

सुबह ही उपेन और सुवर्ण लता ने वृंदावन से कह रखा था, 'वह कहा-कहां क्या-क्या करती फिरे, पता नहीं। तुझे और कोई काम करने की जरूरत नहीं, दिनभर निजरा के साथ ही साथ रहना।' और वृंदावन वही कर रहा था। लड़के-लड़कियों, किशोरियों, बहुओं, बूढ़ियों आदि के बीच से, वह निजरा के पीछे-पीछे चक्कर लगाता

फिर रहा था। और दिनभर उसके इस सवाल का जवाब देते-देते वह ऊब उठा है कि वह भला अपना विवाह कब करेगा? खासकर वहां आई कुछ किशोरियों पर कौन-सी उमंग चढ़ गई है, वह समझ ही नहीं पा रहा था। उससे ठिठोली करने के लिए वे बहाने ढूंढ़ रही थीं। हालांकि उसने भी दो-तीन को अच्छा-सा जवाब दे दिया है। वैसे दो-चार लड़कियों की ठिठोली उसे अच्छी भी लगी है। कॉलेज में पढ़ने वाली गोरी-सी उस लड़की ने उससे पूछा था, ओ वृंदावन, चाहे जो हो, तुम्हारा नाम तो बड़ा ही सुंदर है। पता नहीं, तुम्हारे अंदर कितने सारे लीला-खेला भरे हैं।

वृंदावन हंस पड़ा था, पर उसकी वह हंसी मुरझाई-सी थी। फिर उसने धीमे से कहा था—ओ बिटिया, हमारे वृंदावन के लीला-खेला के बारे में भला क्या कहना है? गोपियों को इकट्ठा कर लीला-खेला करने में श्रीकृष्ण मस्त हो उठते हैं, इधर किसी बेचारे ग्वाले की जान निकल जाती है। हमारे इस वृंदावन में तो उसी बदकिस्मत ग्वाले की ही लीला-खेला चलती है, बिटिया।

वह लड़की बटा में पान-सुपारी-मसाला सजाकर बाहर भेजने के दायित्व में थी। इस घर में तो हर एक की बातें बड़ी ऊंची-ऊंची हैं। किसी की ओर जरा-सी उंगली भी नहीं उठा सकते। कहती हुई वह फिर अपने काम में जुट गई।

दुल्हन का घर वहां से लगभग तीस मील दूर था। निजरा उपेन के पास बैठ बारात के साथ वहां गई। काफी कोशिश करने के बावजूद वह जगी नहीं रह सकी, दूल्हे के बिलकुल पीछे सुरमा की गोद में सिर रखकर वह सो गई। दुल्हन को जब मंडप में हवन-स्थली के पास ले आए, उस समय आंखें मलती हुई वह फिर जग उठी। विवाह की रस्म पूरी होने के बाद दुल्हन जब फिर अंदर गई, तब निजरा सुरमा से बार-बार कहने लगी, 'मैं मामी को देखूंगी।' सुरमा उसे अंदर ले गई। खुद हंसी हुई दुल्हन को 'भाभी' कहकर पुकारा, उसके बाद निजरा को आगे बढ़ाकर उसकी पहचान कराई। दुल्हन रूपाली ने सिर उठाकर निजरा को देखा। निजरा ने भी उसे देखा। वह दुल्हन की ओर एकटक देखती रही। नई मामी उसे कैसी लगी, वह बता नहीं सकी, पर मंत्र-मुग्ध-सी वह देखती रह गई। दुल्हन की ओर इस तरह से कोई कभी देखता नहीं रहा है। अचानक वह शरमा गई और मामी की आंखों में नजर डाले सुरमा के पास सट आई। अपना हाथ आगे बढ़ाकर निजरा को अपने पास खींच लेने की इच्छा रूपाली की हुई थी, मगर वह भी शरमा गई। रोते-रोते फूल-सी उठी उसकी आंखें सिर्फ झलमला उठीं।

सुबह बारात जैसे ही लौटकर बाहरी दरवाजे के पास पहुंची, सुवर्ण लता हाथों में एक थाली लिए बेटे-बहू के स्वागत हेतु निकल आई। उसके हाथ थर-थर कांप रहे थे। अपूर्व उत्तेजना के मारे उसकी जबान लड़खड़ा गई। उपेन के मोटर से उतरते ही उसके दोनों गालों से होकर लगातार आंसुओं की धारा बह चली।

रात-भर विवाह-घर के सामानों की निगरानी में जुटा वृंदावन, दूल्हे-दुल्हन को घेरे

हुए लोगों के पीछे खड़ा था। उसने अपने अंगोछे के सिरे से एक बार अपनी आंखें पोछ लीं। अभी उस दिन तक जो उपेन उसकी कमर में अंगोछे का एक सिरा बाधकर ठिठोली करते हुए पुकारता था—'ओ मां, आकर देख, मैं चोर पकड़ लाया हूं।' वही उपेन आज विवाह कर आ रहा है।

दूल्हे के साथ जाने वाले सभी जल्दी-जल्दी अपने-अपने घर चले गए। जो लोग बारात के साथ जा नहीं सके थे, अब दुल्हन को उन सबने घेर लिया। एक बूटेदार पाटी[1] पर हाथ-पैर सिकोड़े रूपाली बैठी थी। उसके चारों ओर बैठी लड़कियां, भाभी, बुआजी, मामीजी, आदि-आदि अपने नाते तय कर पुकारने लगीं। उससे लगातार बातें करती रहीं। अंत में किसी-किसी ने एक गाना सुनाने के लिए भी रूपाली पर जोर डाला। रूपाली सिर्फ हंसती हुई छोटी-छोटी बातों में जवाब देती जा रही थी। वह लगभग सभी को 'तुम' कह रही थी। दोपहर बाद रूपाली उसी पाटी पर सो गई। लड़कियां अब अपनी-अपनी बातों में जुटी उसके इर्द-गिर्द बैठी रहीं।

निजरा बाहर अपनी हमजोलियों से यही बखान कर रही थी, कि उसकी मामी देखने में कितनी अच्छी है। अंत में वह सो गई।

शाम होने से पहले सुवर्ण लता ने उसे धीमे-धीमे झकझोर कर जगा दिया। तकिये से सिर उठाते ही उसने पूछा—'मामी कहां है नानी ?'

न जाने किस अज्ञात कारण से यह पहली बार अचानक सुवर्ण लता की छाती धड़क उठी, क्षण-भर के लिए उसे लगा, मानो जिंदगी के जमा-खर्च का हिसाब करने का उसका समय हो गया।

दूसरे दिन 'खोबा-खुबुनी'[2] उत्सव था। बहुत-से लोग आ-आकर दुल्हन को देख जा रहे थे, दूल्हे-दुल्हन को लेकर तरह-तरह के हंसी-मजाक कर रहे थे। सब लोग जब ऐसे आमोद-प्रमोद में डूबे रहते हैं, उसके करने के लिए कोई काम-काज रहता नहीं, तो वैसी स्थिति में वृंदावन को बड़ा अकेलापन महसूस होता है। कुछ दूर एक बेंच पर बैठा हुआ वह लोगों के बीच बैठे उपेन और रूपाली की ओर देख रहा था, अचानक कहीं से आकर निजरा उसके पास खड़ी हो गई। मंडप के नीचे की बिजली-बत्तियों के इर्द-गिर्द पतंगे मंडरा रहे थे, उनमें से एक आकर निजरा की आंख में पड़ गया है, उसे निकाल देना है। वृंदावन उसे झट-पट अंदर एक बिजली-बत्ती के नीचे ले गया, आज दिनभर निजरा उसके सामने आई ही नहीं। वह अपने कामों के पीछे-पीछे चक्कर लगाता रहा है, निजरा रूपाली के साथ घूमती रही है। और रूपाली के साथ तो अब तक उसकी जान-पहचान भी नहीं हुई है। अंगोछे का एक सिरा नुकीला बनाकर जब वह आंख में पड़े पतंगे को निकाल रहा था, निजरा के गालों से आती हुई एक खुशबू

---

1 बेंत की बुनी हुई महीन चटाई।

2. खोबा-खुबुनी—विवाह के तीसरे दिन होने वाला एक उत्सव।

उसकी नाक में आई। बिलकुल वैसी ही खुशबू जिसकी पहचान खो-सी गई थी। मनोरमा के जाने के बाद तो इस घर से उस तरह की खुशबू-भाप आदि की व्यवस्था ही खत्म हो गई थी। हजामत बनाते समय उपेन अपने चेहरे पर कुछ लगाता है, पर वह तो निजरा के गालों पर आने की चीज है नहीं।

कुछ सोचते हुए अचानक वृंदावन ने पूछा—अरी, तू तो आज दिनभर मुझसे बोली ही नहीं। क्यों?

—नहीं बोलूंगी, जाओ। भला तुम बार-बार मुझे खिझाते क्यों रहते हो? कहती हुई निजरा फिर दौड़ गई। ऐसा जवाब तो वृंदावन को उससे बहुत बार मिल चुका है। मगर आज मानो उसका मन यह कहना चाह रहा था—'तुझे अब कभी नहीं खिझाऊंगा, मां, और कभी नहीं खिझाऊंगा। तू मुझसे बात करती रहना।' उसे लगा, इतने दिनों तक उसने निजरा को जितना खिझाया है उसके लिए उससे माफी मांग ले, उससे विनती करे जिससे कि वह उससे बोल-चाल करती रहे।

'खोबा-खुबुनी' उत्सव का खान-पान खत्म कर लोग चले गए। सिर्फ पड़ोस की दो-चार लड़कियां दुल्हन के साथ खाना खाने के लिए रुकी रहीं। पहले सुवर्ण लता, निजरा और उपेन ने खाना खा लिया, इसके बाद दुल्हन को लेकर लड़कियां खाना खाने बैठीं। खाने के हर कौर के साथ-साथ उनकी जबान की फुलझड़ियां छूट रही थीं। सुरमा ने अपने विवाह की स्मृतियों को कुरेद-कुरेद कर जगाने की कोशिश की, मुंह में कौर और हंसी साथ-साथ लिए कुंवारी लड़कियों के भावी विवाह में कैसा-कैसा आयोजन किया जाएगा, उसका एक-एक कार्यक्रम भी तय किया गया। रूपाली ज्यादातर हंसती रही। बीच में सिर्फ इतना ही कहा—उसके विवाह के आयोजन में बड़ी जल्दबाजी की गई। बड़े भाई को निश्चित समय पर दफ्तर से छुट्टी ही नहीं मिली। इससे सारा आयोजन ज्यादातर पिताजी को ही करना पड़ा आदि।

निजरा पूरा समय उन्हीं के साथ बैठी रही। एक बार वह उठी और कांच के एक गिलास में पानी भरकर इतनी होशियारी से उसे उठाए उनके सोने के कमरे में गई जिससे न तो पानी ही गिरे और न गिलास ही। उस कमरे के बिस्तर आदि को शाम से ही इधर-उधर किया जा रहा था, यह तो वह देख रही थी, परंतु आखिरी-सजावट देखकर तो उसकी आंखें चमक उठीं। बिस्तर बहुत ही सुंदर ढंग से सजाया गया था। सिर्फ कपड़े चादर आदि ही नहीं, काठ की चारपाई भी बदल गई है। न जाने कैसी बड़ी अच्छी खुशबू आ रही है। पानी का गिलास मेज पर रखकर, उसे कागज से ढंक कर वह बाहर निकल आई। स्नान-घर में जाकर उसने घिस-घिस कर अपने पैर धोए और अपनी नन्हीं चप्पल उसने पैरों में पहन लीं। इसके बाद फिर रसोई-घर के दरवाजे पर जाकर देखा, मामी आदि खाना खा चुकी थीं, जूठन लगे हाथ सूखकर खुरदरे हो गए थे, मगर बातें खत्म नहीं हुई थीं।

बरामदे में सुवर्ण लता अकेले बैठी थी। निजरा उसके पास पहुंची, पीछे की ओर

से जाकर उसे बांहों में भर लिया। मानो कोई अद्‌भुत-सा स्पर्श मिला हो, ऐसी अनुभूति से सुवर्ण लता ने आंखें मूंद लीं। निजरा बोली—नानी, मामी ने कहा है, मुझे मोटर पर चढ़ाकर कहीं ले जाएगी।

पता नहीं क्यों, सुवर्ण लता का मन मानो साथ ही चीख पड़ा, 'नहीं-नही, मत जाना मां, तू मत जाना।' परंतु वह सिर्फ यही कह सकी—'ठीक है, मां, चली जाना। अब चल, हम सो जाएं, रात बहुत हो गई है न! क्या तुझे नींद नहीं आ रही है?'

—नींद आ रही है। चलो, सो जाएं। निजरा के यह कहते ही सुवर्ण लता उठ खड़ी हुई।—'आ जा।' कहती हुई वह अंदर चली, निजरा भी उसके पीछे-पीछे चली। बीच के कमरे से दाहिनी ओर जाने पर उपेन का सोने का कमरा था, बांईं ओर के दरवाजे से घुसने पर सुवर्णलता का सोने का कमरा। बांईं ओर मुड़कर सुवर्ण लता ने पुकारा, 'इधर आ', निजरा उपेन के कमरे की ओर जा रही थी। सुवर्ण लता बोली—'इधर आ, भला उधर कहां जा रही है?'

—'मैं जाकर सो रहती हूं।' कहती हुई निजरा और एक कदम आगे बढ़ी।

—सोने के लिए ही तो बुला रही हूं। आ, तू मेरे पास सो रह।

—'उं···ह' कहती हुई निजरा ने अत्यंत अविश्वास और अवज्ञा भरे लहजे में एक आवाज दी और अपना मुंह टेढ़ा कर दिया।

—अरे, ऊंह क्या करती है? आकर देख तो जरा, तेरा बिस्तर कितने सुंदर ढंग से मेरे साथ लगा रखा है। कहती हुई सुवर्ण लता उपेन के कमरे की ओर कदम बढ़ाती निजरा का हाथ पकडकर खींच लाई। निजरा नानी के इस तरह की ठिठोली का कोई मतलब समझ न पाने के कारण उसके चेहरे की ओर देखने लगी, और जब नानी 'ऐसा करना ठीक नहीं। तू इधर आ।' कहकर उसे सचमुच खींचकर ले जाने लगी, तब तो उसका अविश्वास पलभर में ही हवा हो गया। साथ ही वह चीख पड़ी—'ऊंह', नहीं-नहीं, मैं तो मामा के साथ ही सोऊंगी।' नानी उसे जितनी बार अपनी ओर खींचती उतनी बार वह भी चीखती रही—मैं मामा के साथ ही सोऊंगी।'

उपेन दूसरे कमरे में बैठा हुआ था। निजरा की आवाज से उसकी छाती अचानक धड़क उठी, न जाने कैसी एक तीव्र अनुभूति मानो उसकी छाती को ऊपर धकेल कर बाहर निकल आना चाहती थी।

जल्दी-जल्दी कटोरे में पानी डालकर हाथ घंघोर कर धोने के बाद सुरमा भागती हुई रसोई-घर से निकल आई और तुरंत निज़रा को गोद में उठा लिया। फिर सुवर्ण लता के बिस्तर पर उसे बैठा कर बोली—'जरा देख तो, तेरा बिस्तर कितने सुंदर ढंग से बिछा दिया है। नन्हीं बच्चियां तो नानी के साथ ही सोया करती हैं न! नानी तुझे प्यार करेगी न! दुत्, बुद्धू लड़की कहीं की।'

अब तक उपेन के बिस्तर के पास निजरा का बिस्तर जैसा होता था, आज नानी के पास वह उससे कहीं बहुत ज्यादा बढ़िया था। उसके नन्हे-से तकिये पर बगुले के

पंख जैसा सफेद कपड़ा बिछा दिया गया था। सुंदर, छोटी-सी बिछाने की चादर भी डाल दी गई थी। पर निजरा ने हाथ-पैर पटककर समूचे बिस्तर को लस्त-पस्त कर दिया, सुवर्ण लता और सुरमा के लगातार समझाने-बुझाने के बीच-बीच में वह, 'नहीं चाहिए, नहीं चाहिए, मैं तो मामा के साथ ही सोऊंगी।' कहती हुई चीख उठती थी।

रसोई-घर में थाली के सिरे पर लगे चावल के दानों को खुरच-खुरचकर बेचारी-रूपाली मानो सिर से पैर तक पसीने-पसीने हो उठी। समूचे शरीर का खून मानो आकर उसके चेहरे पर जम गया। सिर्फ निजरा की आवाज ही उसके कानों में गूंज रही थी।

उपेन के चेहरे का रंग उड़ गया था। पिछले तीन सालों से, जब से निजरा की बोली फूटी है, तभी से वह उसी के साथ सोती रही है। वह खुद उसके लिए एक छोटा-सा तकिया बनवा लाया था। जब तक नींद नहीं आती, वह हमेशा उसे किस्से-कहानियां सुनाया करता। जिस दिन उसे कोई नई कहानी याद नहीं आती, उस दिन जैसे ही वह—'किसी देश में निजरा नाम की एक बच्ची रहती थी' कहना शुरू करता—वैसे ही वह कह उठती—'हुंह, जाओ, झूठ है यह!' आधी रात का कोई सपना-वपना देखकर जब निजरा सोते समय 'ऊंह-आंह' किया करती, तो वह धीमी आवाज देता—क्या हुआ है निजू? ओ निजू! कोई जवाब दिए बगैर निस्तब्ध होकर सोई पड़ी निजरा के शरीर पर के कपड़ों को ठीक कर उसकी देह पर एक हाथ रखे, वह सो पड़ता। पिछले साल-भर से सोने के पहले वह निजरा का लाया हुआ एक गिलास पानी पी लेता। वही निजरा भला आज उसके साथ क्यों नहीं सोएगी? यह बात भला वह कैसे समझेगी? क्या समझेगी?

आंगन की बिजली-बत्तियां बुझा देने के बाद बाहर कुछ अंधेरा-सा हुआ था। उसी अंधेरे में खड़े होकर वृंदावन गरदन ऊंची कर खिड़की से झांक-झांक कर निजरा को देखने की कोशिश कर रहा था। अंदर आने की हिम्मत वह जुटा नहीं पा रहा था। निजरा रो क्यों रही है, यह बात मानो एकमात्र वही समझता है और पूरी तरह अंतर की गहराई तक अनुभव भी करता है। वह भी मानो निजरा की ही भांति रो उठना चाहता है। अब तक तो उपेन के नहाने के पहले उसके शरीर में वह तेल मालिश कर दिया करता था, दफ्तर जाने के लिए पहनने के कपड़े निकाल दिया करता था, सुपारी काटकर जेब में भर दिया करता था, और कितना सारा कुछ किया करता था, मगर अब कल से वह क्या करेगा? बांएं हाथ की हथेली से वह अपनी छाती को मलता हुआ लंबी सांसें लेने लगा। मन-ही-मन मानो रो-रोकर कह उठा—रोले मां, रोले।

रो-रोकर निजरा आखिर सो गई। शायद वह थक चुकी थी। तकिए पर उसने सिर नहीं रखा था। बाद में सुवर्ण लता ने उसका सिर उठाकर तकिए पर रख दिया। देर रात तक उसे भी नींद नहीं आई थी। बीच में एक बार उपेन के कमरे का दरवाजा बंद करने की धीमी-सी आवाज आई। पूरा घर उस समय धूप की खुशबू से महक रहा

था। धूप की खुशबू के बीच आखिर सुवर्ण लता को नींद आ गई। वृंदावन को भी।

रात कितनी बीती होगी, पता नही। अचानक सुवर्ण लता की नींद खुल गई। जल्दी-जल्दी उठकर उसने बिजली-बत्ती जला दी और बिस्तर के पास लौटकर देखा कि निजरा बिस्तर पर बैठी हुई है। अपार करुणाभरी विनती मानो उसकी आंखों में छलछला रही थी। वह जैसे बहुत कुछ कहना चाहती है, पर जैसे उसका अपना जाना-पहचाना कोई भी नहीं है, ऐसी एक असहाय दृष्टि से डरी-डरी-सी वह नानी की आंखों की ओर देख रही थी।

सुवर्ण लता ने बिस्तर पर चढ़कर एक हाथ से निजरा को अपने पास सटा लिया। कुछ देर तक वह कुछ भी कह नहीं सकी। फिर उसकी ठुड्डी पकड़कर चेहरे को उठा धीमे से उसने पूछा—'क्या हुआ है, मां ?'

निजरा के दोनों नथुने अचानक फूल उठे, होंठ कांप उठे। आंखों के कोनों में आंसुओं की दो बूंदें छलक आईं, उसने एक-एक शब्द बोलते हुए कहा—'मैं मामा के पास जाऊंगी।'

सुवर्ण लता ने उसे बांहों में भरकर छाती से सटा लिया। शोक-दुख-वेदना के मारे मानो निजरा बिलकुल ढह-सी गई थी। उसकी रुलाई की कोई आवाज नहीं निकली। शायद वह समझ गई थी कि इस रात के सन्नाटे को परेशान करना नहीं चाहिए। पर उसका सारा शरीर मानो रुलाई की हर लहर के साथ-साथ झनझना उठ रहा था। उसकी उस रुलाई की हर लहर का अनुभव सुवर्ण लता का हृदय कर रहा था।

सुवर्ण लता की आंखों से बहती हुई आंसुओं की धारा निजरा के सिर पर गिर रही थी और वह उसके सिर को हथेली से सहलाकर बालों को तर किए दे रही थी। उसने और एक बार जी-भरकर मनोरमा को कोसा। रात की इस आखिरी घड़ी में इस नन्हीं-सी बच्ची की आंखों से झरते हुए आंसू देखने के लिए मनोरमा चाहे जहां भी हो, एक बार यहां आ जाए, क्षणभर के लिए।

सुबह होते ही रूपाली निजरा को बिस्तर से उतारकर ले गई और खुद उसके हाथ-मुंह धुलवा दिए। दोपहर को सामने बिठाकर खाना खिलाया। शाम को तेल और कंघी लेकर उसके बाल संवारने में जुट गई।

जब वह निजरा के चेहरे पर पाउडर लगा रही थी, उसने मामी के चेहरे की ओर देखते हुए पूछा—'मामी, कल रात को मामा ने पानी पीया था न ?'

दिनभर रूपाली को इसी सवाल की आशंका थी। सुनते ही उसका चेहरा लाल हो उठा। बोली, 'हां, पीया था।'

पीया था! असल में उपेन ने रात को सोने के पहले गिलास भर गुनगुना गर्म दूध ही पीया था।

निजरा ने कुछ देर मौन रहकर फिर पूछा—मामा ने आपको किस्सा सुनाया था ?

अगर इस समय धरती रूपाली को छिपने के लिए जरा-सी जगह दे देती! उपेन

ने जो किस्सा उसे सुनाया था, वह मानो आज तक और किसी ने न सुनाया है, न और किसी ने सुना ही है। वह बोली—'हां, निजरा, किस्सा तो सुनाया था, अच्छा तुम्हारे पास लाल फीते कितने हैं ?'

निजरा को सजा-धजा कर छोड़ने के पहले रूपाली ने उसका चेहरा एक बार अपनी छाती से सटा लिया। रूपाली की गर्म व कोमल छाती के अनुपम स्पर्श से निजरा की वेदना मानो काफी हद तक शमित हो गई।

शाम को नानी के पास जाकर निजरा ने डरते-डरते पूछा—'नानी, आज तो मैं मामा के साथ सोऊंगी न ?' नानी ने उसको दूल्हे-दुल्हन की पेटी कहां रखी है, ढूंढ़ लाने के लिए भेज दिया।

अब अपने दूल्हे-दुल्हन को लेकर निजरा पहले जैसी बावली नहीं हुई। रात को सिसकी भरने में भी मानो वह थक गई। मगर यह बावली लड़की अब इतना मौन हो गई जिससे वृंदावन को लगा कि उस घर से मानो कुछ ऐसी चीज खो गई है, जिस कारण उसका हृदय हाहाकार कर उठा है। वह विवाह हो जाने के बाद उसके लिए अनगिनत काम निकल आए हैं जरूर। मगर काम करते समय अगर कोई आकर नुक्स न निकाले, बार-बार आकर उसे तग ही न करे तो भला वह काम कैसे कर सकता है ? दूल्हे को नहलाने की जगह के उस तुलसी के पौधे को उसने काटा न था, बल्कि उसकी जड़ में मिट्टी डालकर उसे सीधा ही कर दिया था, यह देखने के लिए भी तो वह बच्ची उसके पास नहीं आई। उपेन ने निजरा के लिए रंग-बिरंगी जो किताबें ला दी थीं, बैठी-बैठी उनके पन्ने पलटकर निजरा को कौन-सा आनंद मिल रहा है, वृंदावन की समझ में नहीं आया, उसे वे किताबें बड़ी दुश्मन-सी जान पड़ीं।

उपेन जब तक घर में रहता, जहां तक हो सके, निजरा से दूर-दूर रहने की कोशिश करता। उस नन्हीं-सी बच्ची के आमने-सामने होने की हिम्मत ही मानो वह खो चुका था। ओट से जब वह निजरा पर नजर डालता तो उसे अपने को बड़े अपराध का अपराधी-जैसा महसूस होता।

विवाह के बाद 'आठ मंगला'[1] के लिए जाने का दिन आ गया। रूपाली ने फिर से विवाह के दिन की सजावट की, कपड़े पहने। उपेन ने भी। बिलकुल उसी तरह, जैसे कि निजरा के पुतलों का कुछ दिन बाद फिर से विवाह होता है। उपेन-रूपाली आदि घर से रिक्शे से जाकर मोटर पर सवार होंगे। उनके निकलते समय सामने की ओर सुवर्ण लता और निजरा बाहरी दरवाजे तक आईं। दूधवाला जिस राह से दूध देने आता, वृंदावन भी उसी राह के सिरे पर जाकर खड़ा हो गया। उपेन और रूपाली दोनों ने सुवर्ण लता के पैर छुए। इसके बाद रूपाली ने निजरा के गालों को सहला कर प्यार किया। तब बुझी हुई नजरों से निजरा ने रूपाली की ओर देखते हुए पूछा—'मामी,

---

1 'आठ मगला'—विवाह के आठ दिन बाद मायके में आयोजित होने वाला एक अनुष्ठान।

आप फिर आएंगी न ?'

सुवर्ण लता ने निजरा को खीचकर सटा लिया। रूपाली चुपचाप जाकर रिक्शे पर सवार हो गई। रिक्शे पर चढ़ते समय पहिए के मडगार्ड से उसका पाट का मेखला लग जाने के कारण उसके पांव कुछ निकल गए थे, रूपाली ने झुककर जल्दी से उसे हाथ से छुड़ा लिया।

रिक्शे पर से मुड़कर निजरा की ओर देखने की भी हिम्मत रूपाली की नही हुई।

1959

शर्म आती है

नहाने के लिए पिछवाड़े आकर निर्मली अचानक ठिठककर रुक गई। वह दंग रह गई थी। आमतौर पर निर्मली इसी समय नहाने के लिए आया करती है। बीच में एक बार उसने मां की भांति सुबह नहाने की कोशिश करके देखा था मगर बाद में छोड़ दिया। उसने तय किया, नहाने के नाम पर इस तरह से सजा भुगतने का कोई मतलब नहीं। देह पर डालते ही ठंडा पानी जिस ओर से बह जाता है, उसी ओर लगता है कि अंग सुन्न हो गया हो। मल-घिस कर नहाना असह्य-सा लगता है। इसके बाद कपड़ा बदलते समय ठंडक मानो बिलकुल दबोच लेती है। वह सिकुड़कर बिलकुल प्रश्नसूचक निशानी जैसी बन जाती है। दोनों घुटने एक-दूसरे के साथ टकराने लगते हैं और ठक्-ठक् बजने लगते हैं। ठंडक के मारे जबान से गाने निकलने लगते हैं, मगर वे गाने भी गाने नहीं रहते, कंकड़ भरी सड़क पर चलती हुई मोटर गाड़ी ग्रामोफोन बजाते चलने पर उससे जैसे गाने निकलते हैं, निर्मली की जबान से भी निकले गाने वैसे ही होते हैं।

इसी कारण निर्मली मां की तरह सुबह-सुबह नहाने की कोशिश छोड़ चुकी है। वैसे मां सुबह-सुबह इसलिए नहाती हैं क्योंकि उसे रसोई-घर में घुसना पड़ता है। निर्मली भले ही सुबह-सुबह नहाए या न नहाए, उसे यों भी रसोई-घर का चूल्हा छूने नहीं दिया जाता। सुबह घर के जो-जो काम उसे करने होते हैं, उन्हें वह नहाए बगैर भी कर सकती है। खाना खाने के पहले कभी एक बार नहा ले तो काम चल जाता है। सुबह-सुबह बर्फ की चट्टान जैसे ठंडे पानी से लड़ाई करनी होगी, इसका कोई मतलब नहीं होता।

पहले, अरसे पहले, जिन दिनों निर्मली स्कूल जाया करती, उन दिनों नहाने की बात कुछ अलग थी। घर में घड़ी न थी, मगर चौराहे पर खड़ी रत्ना, जर्जिना आदि से मिलने की बात पक्की थी। अगर वे किसी तरह से पहले निकल जातीं तो स्कूल जाने के लिए निर्मली का कोई और संगी-साथी नहीं था। इसलिए पिताजी के निकल जाने के कुछ ही देर बाद वह पहले दिन गूंथी हुई चोटी को खोलती हुई पुकार उठती, 'मां, मेरा हो गया।' जिसका मतलब था, मेरा स्कूल जाने का समय हो गया, तेरी रसोई हो चुकी है या नहीं?

इसके बाद पिछवाड़े जाकर दोनों बाहों पर दो लोटे पानी डालते ही उसका नहाना पूरा हो जाता। पीठ जगह-जगह बिना भीगे रह जाती। देह पर जो पानी पड़ता,

उसी को दोनों हाथों से फैलाकर वह पूरी देह भिगोने की कोशिश करती। कभी-कभी, 'उफ्, आज बड़ी देर हो गई भाई, रत्ना आदि चली जाएंगी तो मेरी मौत हो जाएगी।' कहती हुई पैरों पर दो-तीन लोटे पानी डाल, हाथों को कुहनी तक भिगोकर भीगी हथेलियों से चेहरे को घिसती हुई निकल आती थी। चोटी गूंथने के पहले बालो में अगर थोड़ा-सा तेल लगा लेती, तो तेल-सने हाथों को हाथ-पैर पर मल लेते ही वे चमक उठते थे।

आगे निर्माली ने स्कूल जाना छोड़ दिया। झंझट खत्म। सुबह-सुबह अब नहाने की कोई जरूरत न रही—खासकर इन जाड़ों में।

आजकल नहाने के लिए निर्माली धूप निकलने की बाट जोहती रहती। सरकारी नल से पानी लाकर वह बड़ी बाल्टी को ऊपर तक भरती। घड़े से दो घडे और छोटी बाल्टी से एक बाल्टी पानी देते ही बड़ी बाल्टी भर जाती है। धूप निकलने पर वह बाल्टी के पानी पर भी पड़ती है। निर्माली के विचार से धूप में पानी कुछ गर्म होता है, कम से कम ठंडक कुछ घट जाती है। पानी की गरमी के बारे में ऐसा ही अंदाजा लगाने के कुछ देर बाद वह एक जोड़ी मेखला-चादर लेकर पिछवाड़े आती है। सुपारी के पेड़ से रसोई-घर के सिरे पर की दीवार तक बंधे तार पर मेखला-चादर टांग देती है, और चट्टान पर बैठ जाती है।

यह चट्टान कहां की है, कौन, कब यहां लाया था, इसका कोई पता निर्माली को नहीं है। मगर जन्म से ही वह इस चट्टान को देखती आई है। इस चट्टान पर बैठकर, खड़े होकर वह नहाती रही है। बाप भोलानाथ डाकिया नंगे पैर चलते-चलते बिवाई-फटे पैरों की एड़ियां इसी पर घिस-घिस कर महीन करता रहा है। संक्षेप में, इस घर का सभी धोवन-धावन का काम इसी चट्टान पर होता आ रहा है। पानी पड़ते-पड़ते नीचे की जमीन ढीली होने पर चट्टान जब-तब कुछ ज्यादा नीचे दब-सी जाती, तो कभी-कभी भोलानाथ, उसे हिला-हिलाकर कुछ हाथ दूर हटा देता। कुछ दिन में ही वहां की जमीन भी गीली हो जाती, और वहां आसपास कीचड़ हो जाता। निर्माली के नहाने की बड़ी बाल्टी का निचला हिस्सा भी उसमें धंस-सा जाता। थाली-कटोरी मांजने-धोने के लिए लाई गई राख और पुआल के मुट्ठे इधर-उधर बिखरकर जगह का रूप भद्दा कर देते थे।

चट्टान पर बैठकर निर्माली चादर को हटाकर अपनी पीठ खोल देती है। बाल्टी के पानी में कुछ उंगलियां डुबोकर बहुत देर तक यों ही खुरचती-नचाती रहती। जिसे आजकल गाया नहीं जाता, बहुत दिन पहले सीखे हुए ऐसे एक गीत की कुछ कड़ियां वह घुमा-फिराकर गाती रहती; मगर देह पर पानी नहीं डालती।

कभी-कभी मां दूर से गुस्से और व्यंग्य से डांट उठती, 'अगर नहाना है तो नहा ले, नहीं नहाना है तो चली आ। वहां क्या खेल-तमाशा कर रही है?'

—खेल-तमाशा भला कहां कर रही हूं? पानी कितना ठंडा है, आकर देख क्यों

नहीं जाती ?—निर्मालो कह उठती।

—ऊं-ह, मां गौरीप्रभा ताने मारकर कहती, उसी पानी से पौ फटने के पहले ही मैं नहा लेती हूं। हमें ठंड नहीं लगती। इसे ही ज्यादा ठंड लगती है। ऊं-ह !

—अच्छा, अच्छा, किसी के सोकर उठने से पहले ही तुम कैसा नहाती हो, हमें मालूम है, अच्छी तरह। हमें दिखलाकर नहाना जरा तब समझूंगी कि कितने चम्मच पानी डालती हो देह पर।

ऐसे में कुछ समय तक मां-बेटी के बीच 'तू' के बदले 'तुम' का संबोधन चला करता।

चट्टान पर बैठे रहने के कुछ समय बाद निर्माली देह पर पानी डालती। कभी-कभी 'एक-दो और तीन' कहकर शुरू करती और उसके बाद एक ही सांस में दस-बारह लोटे पानी डाल लेती। यह बात वह अच्छी तरह जानती है कि एक बार अगर देह को ठीक से भिगो लिया जाए, तो फिर और कोई चिंता नहीं। पर पहला लोटा पानी डालने की ही हिम्मत नहीं होती।

परंतु आज उसी निश्चित समय पर नहाने आकर निर्माली दंग रह गई। खुली देह को चादर से अधढंका कर नहाने के बाद बदलने के लिए मेखला-चादर बाएं हाथ के केहुने की मोड़ में रखकर वह पिछवाड़े आई थी। मगर कपड़ों को तार पर टांगने के इरादे से सिर उठाते ही वह स्तब्ध-सी रह गई।

पिछवाड़े निर्माली के घर की सीमा पर की टट्टी के उस पार जो बाड़ी है, उसी बाड़ी में एक नौजवान खड़ा था। जिस क्षण उस लड़के पर निर्माली की नजर पड़ी, वह उस समय दूसरी ओर देख रहा था। निर्माली अपनी छाती पर की चादर का दाहिना सिरा दाहिनी ओर ऊपर और बायां सिरा जहां तक हो सके बाईं ओर बगल के नीचे तक खींचने की कोशिश की। ऐसी स्थिति में वह क्या करे कुछ तय नहीं कर पाई। उसने एक बार सोचा, घर के अंदर दौड़ जाए। परंतु ऐसे दौड़ने पर यह साफ प्रकट हो जाएगा कि वह शरमा गई है। जैसे कुछ हुआ ही न हो, ऐसा भाव बनाकर उसने कुछ देर अपनी नजर जमीन की ओर नीचे कर ली और अपने हाथ के कपड़े तार पर फेंक दिए। कपड़ों से उसका चेहरा आड़ में आ गया। परंतु मेखला और चादर के बीच जो जरा-सा फांक रह गया था, उसके बीच से निर्माली ने देखा, वह लड़का घूम-फिर रहा है। इधर-उधर नजरें डाल रहा है, बीच-बीच में निर्माली के घर की ओर भी देख ले रहा है। कपड़ों की आड़ में चेहरा छिपाने के बाद शर्म के मारे निर्माली के दोनों कान गर्म हो उठे। न जाने कितनी देर से वह लड़का उसे देख रहा था। वह भी कितनी असावधान थी !

चादर से अपनी देह को जितना हो सके ढंककर, निर्माली अत्यंत गंभीर कदमों से, जरा भी चंचलता प्रकट किए बगैर घर के अंदर आ गई। एक बार उसने सोचा, कि मां से पूछे, वह कहां का लड़का है, क्यों आया है ? पर उसने नहीं पूछा। पूछने में भी

उसे शर्म आ गई।

निर्माली के घर के दाईं ओर एक पेंशन प्राप्त दारोगा का घर है। चोरों के डर से हो या दूसरे किसी कारण से, कोलतार के ड्रमों को फाड़कर बने टिनों से ही अपने घर के परिसर की ऊंची चहारदीवारी दारोगा ने बना ली थी। जिसके फलस्वरूप निर्माली के घर का पिछवाड़ा भी आड़ में हो गया था। बाईं ओर लकड़ी का व्यापार करने वाले आदमी के घर के बांस की टट्टी पर तरह-तरह की जंगली और लौकी आदि की बेलों ने घने रूप से फैलकर उधर बिलकुल आड़कर दिया था। कम से कम ताक-झांक किए बगैर उधर से कोई निर्माली आदि को देख नहीं सकता, अब रह गया सिर्फ पिछवाड़ा।

पिछवाड़े एक बाड़ी थी। जब से निर्माली की आंखें खुली हैं, बाड़ी को जैसा-का-तैसा वह देखती आई है। बरसात के दिनों में छोटे-छोटे जंगली पौधों से वह बाड़ी बिलकुल भर जाती। जाड़े के दिनों में अपने आप सारे पौधे सूख जाते और बाड़ी साफ हो जाती। उस बाड़ी के एक सिरे पर जो घर है, दारोगा की टिन की दीवार के कारण निर्माली के घर से वह दिखाई नहीं पड़ता। निर्माली के घर से उस घर तक सीधे जाया भी नहीं जा सकता। सड़क पर से जाकर चौराहे पर मुड़ने के बाद ही उस घर का बाहरी दरवाजा मिलता है। सिर्फ उसके पिछवाड़े की बाड़ी ही निर्माली के घर के पिछवाड़े पड़ती है। बहुत दिन पहले उस घर में पंद्रह-बीस नन्हीं लड़कियों को लेकर एक बालिका-विद्यालय शुरू हुआ था। कुछ दिन बाद सभी लड़कियां पास के देवला देवी प्राइमरी स्कूल में चली गईं। उनकी वह 'बाइदेउ' याने बहनजी को भी उसी स्कूल में नौकरी मिल गई। संक्षेप में कमजोर स्वास्थ्य के कारण ज्यादा दिन वह विद्यालय टिक न सका और दूसरे विद्यालय की छाती में विलीन हो गया।

उसके बाद वह घर काफी दिनों तक खाली पड़ा रहा, फिर वह 'नर्स-क्वार्टर' बना। पहले-पहल दो-एक दिन निर्माली और गौरीप्रभा ने उनकी कोई असुविधा होगी या नहीं, इस बारे में सोच-विचार किया था। पर जब देखा कि उस घर की सारी लड़कियां नर्सें ही हैं, कोई रसोइया तक नहीं है, तब दोनों ही आश्वस्त हुई। उस चट्टान पर धूप में बैठे-बैठे नहाने में निर्माली को जरा भी असुविधा नहीं होती थी। बल्कि वही कभी-कभी टट्टी के पास जाती, उधर से नर्सें आतीं। बीच की टट्टी से पेट टिकाए सभी हंस-हंसकर बातें करतीं। लेकिन धीरे-धीरे उन नर्सों की बातचीत का ढंग निर्माली को खटकने-सा लगा। काले रंग की, ऊंचे कद की, सामने के दो दांत कुछ निकले, चश्मेवाली नर्स ने एक दिन निर्माली के हाथ में चिकोटी काटकर कहा था, 'तुम्हारे जैसा चेहरा अगर हमारा होता तो ।'

याने निर्माली जैसा चेहरा होता तो वह इस दुनिया में क्या कुछ नहीं कर गुजरती।

अचानक एक दिन उस 'नर्स क्वार्टर' में आधी रात को चीख-पुकार, शोर-गुल सुनाई पड़ा। दूसरे दिन जितने मुंह उतनी बातें। कोई कहता था—चोर घुसा था। कोई कहता था, चोर तो नहीं, कुछ और ही था। भला बात कहने वालों का अकाल थोड़े ही

था ? आखिर कुछ ही दिनों में वहां से वह 'नर्स-क्वार्टर' उठ गया। उसके बाद से उस घर में और कोई आया न था। उस बाड़ी में भी किसी दिन कोई प्राणी किसी की नजर में नहीं आया था। पिछवाड़े आकर निर्माली को किसी दिन यह देखने-सोचने की जरूरत नहीं पड़ी कि उसकी चादर सही जगह पर है या नहीं।

परंतु आज तो नहाने जाकर शर्म के मारे लाल होकर वह घर के अंदर आई। अंदर आकर उसने कुछ क्षण सोचा कि क्या किया जाए ? इसके बाद मां की दो, उसकी अपनी एक, कुल तीन चादरें लेकर वह बाहर निकल फिर पिछवाड़े आई। झप्प से एक बार नजर डालकर देखा कि वह लड़का घूम-घूमकर बाड़ी को देख रहा है। निर्माली ने तीनों चादरों को तार पर टांगकर फैला दिया, नहाने की जगह अच्छी तरह आड़ हो गई। हालांकि चट्टान पर छांह पड़ गई, पर उसने उसकी परवाह नहीं की।

चट्टान पर बैठकर निर्माली ने दूसरे दिनों जैसी देर नहीं की। बैठते ही देह पर पानी डालने लगी। पर जैसे ही उसकी पूरी देह भीग गई, चादर उसके देह के हर मोड़ में लिपटकर समा गई, तभी मानो हवाओं की आंखें खुलीं। कितने जोरों से बहनी चाहिए, इसका अंदाजा हवाओं ने मानो तभी लगा लिया। तार पर टंगी चादरें हवा में उड़ने लगीं। दो चादरों के बीच एक-एक फांक निकल आने लगी। चादर जिस ओर से उड़ जाती थी, उसी ओर देह को सिकोड़कर वह अपने को छिपाने की कोशिश करने लगी। चादर के फांक से झट से एक-एक बार झांककर वह देख लेती थी—वह लड़का खड़ा होकर उनके घर की ओर देख रहा है।

साबुन लगाकर घिस-रगड़कर नहाने की झंझट वैसे भी निर्माली की कभी नहीं रही। उनके यहां तो कहना चाहिए कि नहाने के साबुन का चलन ही नही। कभी-कभी नहाने के समय जिस साबुन के टुकड़े को वह ले लेती, मां गौरीप्रभा उसी से हल्दी-मसाला पिसा हाथ धोती, बाप भोलानाथ डाकिया बाडी के बैंगन-मिर्च के पौधे पर मिट्टी चढ़ा आकर उसी से हाथ धोता, निर्माली उसी से अपना ब्लाउज भी धोती। सिटी बस पर एक साथ बैठकर स्कूल जाने वाली किसी पुरानी सहेली के यहां अगर कभी जाने की बात होती, या कहीं और जाने की बात होती तो निर्माली उसी साबुन के टुकड़े को एक भीगी चादर में घिसकर उसीसे अपनी गरदन, कुहनी तक दोनों हाथ, यानि शरीर का जो हिस्सा कपड़े से बाहर निकला होता, उसी को मल लेती। सिटी बस पर अगर उसे यह पता चलता कि उसकी पिछली बेंच पर कोई मर्द या नौजवान बैठा है, तो उसे बड़ी परेशानी होती। उसे लगता, मानो वह आदमी उसकी गरदन की ओर बड़े गौर से देख रहा है। और जब गरदन अच्छी तरह साफ भी न रहे तो उसकी परेशानी और बढ़ जाती।

रोज-रोज साबुन लगाकर नहाने की बात तो आती ही नहीं, क्योंकि वह साबुन कुछ ही दिनों में बिस्कुट जैसा पतला होकर एक दिन बीचों बीच टूट जाता, उसका एक टुकड़ा आमतौर पर खो जाता, दूसरा टुकड़ा देखते-देखते अदृश्य हो जाता। दूसरा नया

साबुन घर लाने में भोलानाथ को कई दिन लग जाते हैं।

आज तो साबुन लगाने की बात ही नहीं थी, हवा बहने पर निर्माली को चट्टान पर खड़े रहना भी कठिन हो गया। हवाओं का मालिक मानो पेड़ पर बैठा है। इसी भाव से उसने आंखें तरेरकर ऊंचे पेड़ों के हिलते हुए पत्तों पर एक बार नजर डाली। चट्टान पर से उतरी। बदलने के लिए तार पर टंगे मेखला-चादर को खींचकर तार से उतार लिया और रसोई-घर की ओट लेकर दौड़ गई ?

कपड़े बदलकर कुछ देर बाद निर्माली भीगे कपड़ों को होशियारी से पसारने के लिए बाहर निकली। वह लड़का तब भी इधर-उधर देखता हुआ बाड़ी में घूम रहा था।

दिन-भर निर्माली को शर्म आती रही। बीच-बीच में दूसरे कामों में लगे रहने पर भूल जाती जरूर, पर अचानक जैसे ही उसकी याद आ जाती, उसका कान-सिर गर्म हो उठता। ऐसी शर्म की स्थिति में इसके पहले कभी पड़ना पडा हो, उसे याद नहीं। प्रफुल्ल के सामने भी उसे ऐसी शर्म में पड़ने की बात याद नही। और तो और जिस दिन उसने सुना था कि प्रफुल्ल के साथ उसका विवाह होने वाला है, उसके दूसरे दिन प्रफुल्ल के सामने आने में भी उसे उतनी शर्म नहीं आई थी।

प्रफुल्ल जिन दिनों निर्माली के यहां आया था, उन दिनों निर्माली शाम होने के बाद भी भूगोल की बही लाने के लिए अकेले रत्ना के यहा जाकर फिर बेरोक-टोक लौट आ सकती थी। जल्दबाजी में हाथ धोकर फ्रॉक में ही हाथ पोंछ सकती थी। गौरीप्रभा से जब प्रफुल्ल अपने बारे में, अपने गांव के बारे में कहता रहता, तो वह पास बैठी सुनती रहती।

प्रफुल्ल किसी गाव का लड़का था। अपना कह सके, ऐसा कोई भी उसका है नही, गांव के स्कूल से एक बार मैट्रिक की परीक्षा में बैठा था, मगर फेल हो गया और एक बार परीक्षा में बैठकर किस्मत आजमाने की उसकी बड़ी इच्छा थी, पर कोई चारा न था। किसी कामकाज की खोज में वह शहर आया, सोचा था, कुछ काम कर शहर में ही रह जाएगा, हो सके तो एक बार प्राइवेट रूप से परीक्षा में बैठेगा। काम तो उसे मिल गया, डाकघर के डाकिए का। शुरू-शुरू मे काम सीखने के लिए उसे एक अनुभवी डाकिए के साथ दे दिया गया। वह अनुभवी डाकिया था, भोलानाथ।

प्रफुल्ल बड़ी जल्दी काम सीख गया, इसलिए भोलानाथ को वह भा गया, ऐसी बात नही थी। जरा होशियार हो तो जल्द ही डाकिए का काम सीख लेना कोई बड़ी बात नही। बहुत-से लोग सीख लेते है, परंतु बहुत-से डाकियों ने तो कामों में चतुराई का परिचय भी दिया है। भोलानाथ को प्रफुल्ल भा गया था। इसका कारण कुछ और था। काम के अलावा मानो उस लड़के को और कुछ चिता ही नहीं थी। काम पूरा कर अगर जरा-सी फुरसत मिली, तो डाकघर के अंदर के कोने के किसी टूल पर चुपचाप ऐसे बैठा रहता, मानो किसी से नए काम का कोई हुक्म पाने के इंतजार मे हो। कभी कोई अनावश्यक बात भोलानाथ ने उसकी जबान से नहीं सुनी। अगर कभी उससे कोई

स्वाभाविक गलती हो जाती और भोलानाथ उसे सुधार देता, तो वह शर्म के मारे पानी-पानी होकर सिर झुका लेता, पछताता रहता। बिलकुल अपना-अपना-सा लगने वाले जिसका दुनिया में अपना कोई न था, उस प्रफुल्ल को भोलानाथ कभी-कभी बुलाकर अपने यहां ले आता, हंसते हुए बातें करता और गौरीप्रभा से एक प्याली चाय बनाने को कह देता।

अगर कभी इस मुहल्ले में चिट्ठी बांटने का भार पड़ता तो चिट्ठियां बांटकर दोपहर को वह कभी-कभी भोलानाथ के यहां आ जाता। घर में नींबू रहने पर गौरीप्रभा उसे एक गिलास शरबत पिलाती, या चाय ही पिलाती। निर्माली उसे 'ककाई देउ' याने 'बड़े भैया' कहती। उसके सामने संकोच करने की उसकी कोई इच्छा न थी। कभी-कभी वह दुकान से आधा दस्ता कागज, एक टुकड़ा रबड़ या ऐसी ही दो-एक चीजें ला देने के लिए मां से पैसे लेकर उसे थमा देती। प्रफुल्ल दूसरे दिन चिट्ठियां बांटने के बाद वह सामान खरीदकर गौरीप्रभा के हाथ में थमा देता।

इसके बाद अनेक दिन निकल गए। उन दिनों प्रफुल्ल भोलानाथ के परिवार का और अपना बनकर क्रमशः नजदीक आता गया। कभी-कभी शाम को 'एक्सप्रेस-चिट्ठियों' और तार वितरण के काम के लिए भोलानाथ को अगर डाकघर में ही ठहरना पड़ जाता, तो प्रफुल्ल ही हाथ में थैला लिए गौरीप्रभा से पैसे ले बाजार से सामान लाने निकल पड़ता। अगर गौरीप्रभा एक रुपया देती और सामान लाने में डेढ़ रुपया खर्च होता, तो उस ज्यादा रकम का हिसाब कोई न रखता। न प्रफुल्ल और न ही गौरीप्रभा। कभी-कभी काम का बोझ ज्यादा होने पर भोलानाथ घर की ओर ध्यान देने का मौका ही निकाल नहीं पाता था। इधर लकड़ी की कमी के कारण गौरीप्रभा का चूल्हा जब नहीं जल पाता, गीली लकड़ी की आग फूंकते-फूंकते नाक का पानी और आंख का पानी मिलकर एकाकार होते, तभी प्रफुल्ल चुपचाप गाड़ी भर लकड़ी लाकर भोलानाथ के पिछवाड़े के आंगन में डाल जाता। भोलानाथ या गौरीप्रभा अगर लकड़ी की कीमत देना चाहते तो प्रफुल्ल नहीं लेता था, शर्माता था। ज्यादातर रात को वह भोलानाथ के यहां ही खाना खाता। वैसे वह वहां से आधा मील दूर किसी गांव के एक विद्यार्थी के साथ एक झोंपड़ी में रहता। वह लड़का वहां के स्कूल में पढ़ता था और उसका गांव दूर होने के कारण वहीं झोंपड़ी बनाकर रह रहा था। प्रफुल्ल भी खाना खाकर रात को सोने के लिए वहां चला जाता। पहले दिन जब वह खाना खा रहा था तो शर्म के मारे सिर ही उठा नहीं पाया था। मगर आजकल सहज हो गया है।

उन दिनों स्कूल से आते निर्माली का चेहरा लाल हो उठता। आधी राह जाते ही उसकी कांखों के नीचे का ब्लाउज भीग जाता। घर में किताब-बही रखकर चादर के सिरे से मुंह पोंछकर, बांस के पंखे से दो-तीन बार हवा करने के बाद ही उसे पता चलता कि उसकी पीठ भी पसीने से तर हो गई है। ऐसा हो गया कि सड़क के किनारे की पान-दुकानवाला भी अचानक निर्माली की तबीयत की खबर लेने लगा। कभी-कभी

चलनी से झरते आटे की भांति झींसीं पड़ते समय जबकि दूसरे लोग उस पर ध्यान दिए बगैर चले जा रहे होते, पान-दुकानवाला निर्माली से कहता—ओ मुन्नी, यों भीग क्यों रही हो ? बारिश रुकने तक कुछ देर यहां ठहर क्यों नहीं जाती ?

किताब-बही, स्कूल की फीस, स्कूल का खर्च सिर्फ यही थोड़े ही है ? गरीब की लड़की को बाट-घाट में, सड़क-गली में, समाज में और बहुत कुछ खर्च करना पड़ता है। सहज-सरल, अकेला, निर्धन डाकिया भोलानाथ समझ गया था, इतना खर्च चुकाने की उसकी सामर्थ्य नहीं है। उसने गौरीप्रभा से कहा—'जो हो गया, बस, उतने से ही काम चल जाएगा। रहने दो। और ज्यादा पढ़ने-लिखने की जरूरत क्या है ?

ज्यादा दिन स्कूल में अनुपस्थित रहने के कारण एक दिन जर्जिना-रत्ना आदि उसे ले जाने के लिए उसके यहां आई। मगर निर्माली नहीं गई। लेकिन रत्ना आदि के चले जाने पर वह रोती रही। एक दिन गौरीप्रभा ने भोलानाथ से धीमे से कहा—"उसकी ओर नजर है या नहीं तुम्हारी ?"

भोलानाथ अचानक चौंक-सा पड़ा। पूछा—'आखिर क्या हो गया है, उसका ?'

गौरीप्रभा ने कहा—'वैसे तो कुछ हुआ नहीं है। पर वह कैसी होती जा रही है, नजर है या नहीं ?'

भोलानाथ की समझ में बात अब आई। उसने कहा—ओ, उसके चेहरे की बात कह रही हो ? भला, होगी नही, क्यों ? मां कोई कम थोड़े है ? कहकर अपनी रसिकता की बात पर खुद ही हंसने लगा।

कभी गौरीप्रभा का चेहरा भी ऐसा था, कि दसों लोगों की आंखें उस पर ठहर जाती थीं। ललाट को सिकोड़कर, आंखें फैलाकर उसने कहा—'भला देखो न, क्या कह रहा है। न जाने इस आदमी को कभी-कभी क्या हो जाता है। बुढ़ापे में मति भ्रष्ट हो जाती है क्या ?'

कुछ देर आसमान की ओर देखते रहकर भोलानाथ ने एक लम्बी सांस ली। फिर मानो अपने-आप से ही कहता हुआ, इस ढंग से बोला—अरे, जिन लोगों के पास खिलाने-पहनाने को पूरा है, उन्ही लोगों के यहां ऐसा चेहरा सुहाता है। वैसा चेहरा लेकर वह मेरे यहां पैदा हुई है, अब भला मैं उसे ढंककर रखूं तो कैसे ?

गौरीप्रभा के किए संकेत के बारे में भोलानाथ दो-चार दिन सोचता रहा। फिर उसने एक दिन प्रफुल्ल की चर्चा छेड़ी।

इसके बाद की घटना संक्षिप्त है। गौरीप्रभा को कोई एतराज नहीं था। प्रफुल्ल से जब वह बात बताई गई तो उसके चेहरे की स्थिति जैसी हो गई वह देखने ही लायक थी। दो-चार दिन तो उसने निर्माली के घर की ओर मुंह ही नहीं किया। उसे ऐसा लगता था, मानो संसार का हर घर, हर बाहरी दरवाजा भोलानाथ के घर का ही बाहरी दरवाजा हो। परतु उसके गूंगे-से जीवन का अप्रत्याशित विस्मय, आकस्मिक विकलता और अनजान अनुभूतियों के घने कुहरे के बीच हर बाहरी दरवाजा मानो ओझल होकर

खो चुका था। डाकघर में बैठे, सिर झुकाए उसने भोलानाथ से अनेक बातों की चर्चा की। कम से कम उसे एक घर चाहिए। गांव की जमीन बेचकर यहीं, कही एक छोटा-सा घर बना सके तो उसको सुविधा हो। एक साल, ज्यादा से ज्यादा दो साल का समय तो कोई ज्यादा लंबा है नहीं; इसमें भोलानाथ की सम्मति थी।

बात निर्माली के कानों में भी पड़ी। मगर जैसे ही वह बात उसके कानों में पड़ी, उसकी छाती धड़क उठी। अनेक अजीब-अजीब-सी बातें उसके मन में जग उठीं। एक निर्माली के मानस में मानो बहुत-सी निर्मालियों का जन्म हो गया। उनमें से कोई हंस रही थी, कोई रो रही थी, कोई-कोई एक-दूसरी को चिकोटी काट, गुदगुदा कर चिढ़ाने लगी। किसी को डर लगा, और कोई किसी के निर्भय आश्रय में परमशांति से, गहरी नींद में इस तरह से तल्लीन हो गई, मानो फिर कभी वह जगने वाली है नहीं।

परंतु उसके बाद जिस दिन प्रफुल्ल उनके यहां आया, निर्माली को उतनी शर्म नहीं आई। जिसे वह इतने दिनों से देखती आ रही थी, धीरे-धीरे जो उस परिवार का अपना ही आदमी बन गया था, उससे शर्माने की कोई सुविधा भी उसे नहीं थी। बड़े सहज रूप से उसकी जबान से 'ककाई देउ' याने बड़े भैया का सबोधन भी गायब हो गया।

कभी-कभी निर्माली को शर्माने की इच्छा भी होती। भोलानाथ जब डाकघर चला जाता, खा-पीकर गौरीप्रभा एक 'पाटी' बिछाकर सो रहती, तब निर्माली अपने हाथ में एक पंखा लेकर बैठ जाती, छाती की चादर गोद में पड़ी रहती। गरमी के दिनों की निर्जन दोपहर में उसे लगता कि वह ब्लाउज बिलकुल अनावश्यक है। अपने शरीर की ओर देखकर उस समय निर्माली को शर्म आने लगती। अपने शरीर पर उसे अजीब लोभ लग जाता। उस समय अगर प्रफुल्ल वहां से निकले, तो शायद वह आड़ में दौड़ जाए। नहीं-नहीं, प्रफुल्ल कब आया—पता न चलने का बहाना बनाए, कुछ असावधान क्षण ऐसे ही गुजार देगी, फिर अचानक संत्रस्त होकर वह खुद लाल पड़ जाएगी, इसके बाद बात पूछने पर प्रफुल्ल भी जवाब देने में तुतलाने लगेगा, कुछ कहना चाहते हुए, कुछ और ही कह डालेगा।

परंतु सचमुच जब ऐसे समय में कभी प्रफुल्ल आ पहुंचता, तो पलक झपकते ही वह दरवाजे की ओट में चली जाती। शर्म के मारे उसके कान-सिर गर्म हो उठते। क्या कहना है—कुछ सोच न पाकर अंत में वह कुछ जोर-जोर से कई बार खासता। खांसी की साफ आवाज से 'प्रफुल्ल कब आया ?' इस बारे में गलती करने का कोई बहाना ही नहीं रहता।

प्रफुल्ल के सामने शर्माने की कोई सुविधा निर्माली की नही थी। जरूरत भी नहीं थी। परंतु उसे शर्म आई आज। नहाने जाकर शर्म के मारे छिपने का उसे सहसा अवसर नही मिला था।

मां से वह यह बात पूछे या नही, इस झिझक में पड़ी होने के बावजूद उसने शाम

को मां से पूछ लिया—'नर्स-क्वार्टर में क्या कोई आया है मां ?'

मां बोली—'हां, लगता तो ऐसा ही है। मैंने भी उस बाड़ी में देखा था, कोई घूम-फिर रहा था।

निर्माली ने सीधे नहाने की बात नहीं छेड़ी, सिर्फ इतना ही कहा—'तब तो देखती हूं, हमारी असुविधा ही होगी।'

—हां, अब तो कुछ करना ही पड़ेगा। गौरीप्रभा ने कहा।

दूसरे दिन सुबह बड़ी बाल्टी में पानी भरते समय निर्माली ने देखा—बाड़ी में कोई है नहीं। परंतु धूप निकलने के बाद जब वह नहाने गई, तो देखा कि वह लड़का बाड़ी की जमीन पर फावड़ा चला रहा है। वही लड़का, नीले रंग का धारीदार पाजामा और सफेद कमीज पहने हुए है। कमीज के हाथ को बांह तक चढ़ाए फावड़ा चला रहा था।

निर्माली ने तार पर तीन चादरें फैलाकर उस चट्टान पर बैठ, नहा लिया और चली आई। भीगे कपड़ों को पसारते समय उसे पता चल गया कि वह लड़का बीच-बीच में उनके घर की ओर देखा करता है।

खाने-जीने की इच्छा रखने वाला उत्साही नौजवान ठहरा। किराएदार बनकर शायद उसने तय किया होगा कि बाड़ी को इसी तरह से परती छोड़ने की बजाय अगर इसे काम में लाया जाए तो खाने के लिए कुछ साग-सब्जी भी निकल आएगी, और काम करने पर तंदुरुस्ती भी ठीक रहेगी। उसने बाड़ी को साफ किया, जमीन खोद डाली, और कुछ देर होने के बावजूद उसमें गोभी के पौधे रोप दिए। फिर एक दिन केले के पौधे के तने के छिलके उतार उसके छोटे-छोटे दोनों से गोभी के पौधों को ढंक दिया। सुबह धूप निकलने पर वह बाड़ी में आता। थोड़ी देर के लिए पौधों के ढकनों को हटाकर, पौधों में पानी डालता। पौधों की सावधानी से देखभाल करने का समय भी यही है। इसी समय धूप-पानी नियमानुसार मिलने पर ही पौधे अच्छे होते हैं।

पर यही तो निर्माली के नहाने का समय है।

गौरीप्रभा ने भोलानाथ को बता दिया था कि उस घर में कुंवारे लड़कों के आने के बाद उनकी, खासकर निर्माली की पिछवाड़े आने-जाने, नहाने-धोने में बड़ी असुविधा हो रही है। भोलानाथ ने आश्वासन दिया, हां, कुछ तो करना ही होगा। परंतु एक टट्टी लगाने में भी तो कम से कम पांच-छः बांस चाहिएं। कुछ बंडल सनई चाहिए। कम से कम दस रुपए का धक्का है।

इसी बीच रसोई-घर की ओट में सूखे कपड़े रखकर, तीन चादरें तार पर फैलाकर उसकी ओट में नहा लेना, निर्माली की आदत बन गई। कभी-कभी हवा कपड़े उड़ा देती, कभी नहीं उड़ाती। कपड़े बदलने के लिए कभी-कभी वह रसोई-घर की ओट में नहीं आती, चट्टान पर ही बदल लेती। पर एक तरह की अजीब-सी शर्म उसे मानो हमेशा संकुचित किए रखती।

एक दिन तार पर फैला देने के लिए तीन चादर रखकर अचानक उसने देखा कि वह लड़का बाड़ी में नहीं है। क्षणभर वहीं खड़े रहकर वह चली आई। अंदर के आंगन में कुछ देर वह यों ही कुछ करने के बहाने घूमती-फिरती रही।

गौरीप्रभा ने उसे नहाने जाते देखा था, अब आंगन मे उसे चक्कर लगाते देख उसने सोचा, शायद बाड़ी में कोई होगा। तीन चादरों से तो पूरी बाड़ी की आड़ नहीं की जा सकती! कई दिन खुद उसे ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ा था।

कुछ देर बाद निर्माली ने फिर पिछवाड़े जाकर देखा, लड़का आ गया है। धीरे-धीरे उसने तीनों चादरों को फैला दिया और चट्टान पर चढ़कर देह पर पानी डालने लगी।

उस दिन शाम के बाद भोलानाथ रसोई-घर के बरामदे में बैठा ठंड के मारे सुन्न-से हो आए अपने हाथ-पैर सेंक रहा था, उसके पास प्रफुल्ल भी बैठा था।

गौरीप्रभा ने कहा—'पिछवाड़े का कुछ इंतजाम क्यों नहीं कर देते? बाड़ी में दिन-भर लोग काम करते रहते हैं। मेरा काम तो जैसे-तैसे निकल जाता है, उसको तो बड़ी असुविधा हो रही है न?'

इतने दिन बाद भोलानाथ को मानो आज ही समय मिला। पूछा—'भला कहां के लोग आ गए यहां?'

गौरीप्रभा बोली—'पता तो नहीं! जहां तक मेरी नजर पड़ी है, मैंने प्रफुल्ल जैसे एक लड़के को ही देखा है। शायद वह बाड़ी में गोभी के पौधे लगा रहा है।'

प्रफुल्ल सिर झुकाए बैठा हुआ था, उसने सिर उठाकर गौरीप्रभा की ओर देखा।

दूसरे रविवार को धूप निकलने के साथ ही एक घोड़े गाड़ी पर गाड़ी-भर सनई, बांस, आदि लिए प्रफुल्ल घर के बाहरी दरवाजे पर रुका। भोलानाथ और प्रफुल्ल ने मिलकर दिनभर काम कर उस चट्टान के चारों ओर टट्टी का घेरा लगा दिया। अंदर जाने के लिए रसोई-घर की ओर से सिर्फ एक राह रखी।

दूसरे दिन जब निर्माली नहाने चली, तो गलती से तीनों चादरों को अपने हाथों में उठा लिया था; मगर याद आ जाने पर उन्हें रख दिया। पिछवाड़े आकर जैसे वह उस घेरे के अंदर घुस रही थी, बाल्टी का पानी पीने के लिए आया हुआ एक कौवा वहां से उड़कर भाग गया। नहाकर बदलने के लिए वह जो मेखला-चादर ले आई थी, उन्हें हाथ-बढ़ाकर एक टट्टी पर रख दिया। फिर उसने उस बाड़ी पर नजर डाली। पर उसकी नजरें मानो बुरी तरह से आहत होकर लौट आईं। टट्टी उसकी आंखों के सिर्फ कुछ ही हाथ दूर थी। क्षणभर के लिए एक अनजान मौन वेदना से निर्माली की छाती में मरोड़-सी उठी।

कुछ कदम आगे बढ़कर निर्माली टट्टी के पास गई। दोनों हाथों की उंगलियों से उसने सनई को दोनों ओर कुछ हटाकर जरा-सा फांक किया और उसी फांक में आंख लगाकर उसने बाड़ी पर नजर डाली। लड़का बाड़ी में ही था। वह पौधों को देखता

हुआ धीरे-धीरे घूम-फिर रहा था। अपने दोनों हाथों से निर्माली ने सनई का कुछ और फांक कर लिया। हां, अब वह लड़का अच्छी तरह दिखाई पड़ने लगा था। वह निर्माली के घर की ओर ही देख रहा था। पर निर्माली तो उसे दिखाई नहीं पड़ रही थी। निर्माली ने बंधी सनई को और अधिक फांक करने के लिए हाथों पर जोर कुछ और बढ़ा दिया। फांक—कुछ और ज्यादा हो जाय। नहीं, फांक थोड़ा फैला जरूर, पर ज्यादा नहीं। ज्यादा नहीं होगा।

मगर निर्माली को तो ऐसा फांक चाहिए जिससे नहाते वक्त उसे शर्म लगती रहे।

परंतु उसके लिए तो अब कोई चारा नहीं है। प्रफुल्ल ने टट्टी की गांठें बड़ी मजबूती से बांधी हैं।

1959

दुर्भिक्ष

बहुत दिनों से, दूर से ही देखते-देखते दुर्गा देवी की प्रतिमा के संबंध में एक धारणा मन में बना लेने के बाद, मानो एक दिन प्रतिमा से देव-देवी, जीव-जंतु सभी ने उतरकर नंदिनी को घेर लिया। दुर्गा आई, सरस्वती, लक्ष्मी, कार्तिक, गणेश आए, असुर आया, सुंदर मोर आया, सिंह आया; जी उबा देने वाला मनहूस उल्लू आया; आखिर तक चूहा भी आ गया, केले के पौधे, कमल के फूल आदि जो बचे रहे, उनकी रखवाली करते हुए कैलास की बिलकुल ऊंची-सी चोटी पर निर्विकार बैठे रहे सिर्फ भोलेनाथ।

नंदिनी क्षणभर स्थिर रह सके, इसका कोई चारा नहीं रहा। इतने सारे लोगों को इस तरह से आस-पास घूमते-फिरते रहने की घटना उसने जिंदगी भर में नहीं देखी थी।

उस घर में रहने वालों में पिता परितोष बाबू, मां सीतादेवी, बहन मानसी और नौ साल का भाई बुलबुल के सिवा और कोई न था। पड़ोसियों/में छोटे-से दो कमरों वाले घरों में रहने वाले जगरू, तूफानी आदि ही हैं। पर इनके होते हुए भी नंदिनी आदि के बंधु-बांधवों की संख्या बढ़ी नहीं है। फायदा सिर्फ यही हुआ कि शाम होने के बाद इन पर्वत-पहाड़ों, जंगलों और दूर के खेतों-मैदानों से फैलकर आते भयावह सन्नाटे को वे रोके रखते हैं। नंदिनी के घर के आस-पास अगर कभी साही या सांप निकल आते, तो वे हो-हल्ला करते हुए पास आ जाते। कुएं से पानी भरते समय कभी रस्सी टूटकर बाल्टी कुएं में गिर जाती, तो जगरू आकर निकाल देता।

असिस्टेंट स्टेशन मास्टर परितोष बाबू खुद स्वीकार करते हैं कि इतना छोटा रेल-स्टेशन दुनिया भर में और कहीं है, ऐसा उन्हें मालूम नहीं। दिनभर में सिर्फ एक अप और एक डाउन, बस ये ही दो रेलगाड़ियां इस रेल-स्टेशन पर केवल दो मिनट के लिए रुकती हैं। आजीवन कारावास की सजा मानो सिर पर लिए हों, ऐसे चेहरों वाले दो-एक यात्री कभी-कभी यहां उतरते हैं और परितोष बाबू से आमना-सामना होने की घटना को बड़ी सावधानी से बचा कर स्टेशन के दूसरी तरफ के खेतों-मैदानों में उतर जाते हैं। कच्चू और मकई बोरों में लिए कभी-कभी दो-एक यात्री रेल पर चढ़ने आ जाते हैं और रेल पर चढ़ने के पहले परितोष बाबू को दो-एक अच्छे-से पंचमुखी कच्चू और मकई का बढ़िया-सा गुच्छा दे जाते हैं। कभी-कभी मेलगाड़ी या एक्सप्रेस की क्रासिंग होने को होता तो एक-एक मालगाड़ी बहुत देर तक इसी स्टेशन पर खड़ी रहती। उस अवधि में परितोष बाबू रेल के गार्ड से बड़ी सहृदयता से बातें करते।

"अच्छा, तो विनोद बाबू को आप भी पहचानते हैं? अरे—बाप रे बाप! बड़े ही सांघातिक आदमी थे। कार्यालय के नीचे के कर्मचारियों का जीवन दुखी कर डालते थे। मगर फायदा क्या हुआ आखिर? प्रोमोसन तो नहीं मिला, आखिरी दो सालों की इंक्रिमेंट भी कट गई।"

दूसरी किसी मालगाड़ी के गार्ड को कांचड़ापाड़ा के दीनदयाल बाबू के बारे में जानकारी होती! क्या कहा? दीनदयाल बाबू रिटायर हो गए? वैसे काले-काले बाल, बत्तीस ओरिजिनल दांत रहते हुए वे रिटायर हो गए? उनकी लड़कियों का विवाह हो गया या नहीं? उनकी तो छः लड़कियां हैं। बड़ी तीनों का हो गया? अच्छा, खैर, कम से कम कुछ काम तो कर लिया।

बातों के बीच ही कभी-कभी नंदिनी एक थाली में बाड़ी में हुए केले और लंबे पपीते के टुकड़े एक गिलास गर्म पानी के साथ रख जाती। केले और पपीता खाने के बाद गार्ड बाबू दुगुने जोर से शुरू कर देते—"अगर ऐसा ही होना था, तो भला ज्ञान घोश, पी.सी. सेन ने क्या बुरा किया था? आप ही बताइए।"

मेल और एक्सप्रेस गाड़ियों के अप और डाउन, ये चार रेलगाड़ियां इस स्टेशन पर रुकती थीं। रेलों के आते समय परितोष बाबू नीचे की ओर चाहे कुछ भी पहने रहे हों, कार्यालय की दीवार के कांटे से वर्दी के साथ की कमीज उतारकर पहन लेते और हाथ में केले के पत्ते-सी हरी झंडी लिए कार्यालय के बरामदे में मूर्ति जैसे खड़े हो जाते। लंबी रेलगाड़ी जब प्रचंड वेग से निकल जाती, तो उसके थोड़ी ही देर बाद हाथ में खुरपी लेकर वे बाड़ी में चले जाते। ओ नंदिनी! अरे ओ बुलबुल! इस पौधे से खीरा किसने तोड़ा?

खुरपी चलाते-चलाते बहुत-सी चिंताएं परितोष बाबू को बिलकुल घेर लेतीं। इस 'पांडव-वर्जित' निर्जन-से अंचल में अगर उन्हें ऐसे ही समाए रहना पड़े तब तो उनका सर्वनाश ही हो जाएगा। आस-पास कहीं कोई सुविधा नहीं, इसी कारण मानसी को उसके चाचा-चाची के यहां रहकर पढ़ने को भेज दिया है, मगर उसकी पढ़ाई असल में होती नहीं। बीच-बीच में घर आने पर वह रो-रोकर मां से कहा करती—घरेलू काम-काज करने में ही उसका पूरा समय निकल जाता है। घर में चाची की गाली सुननी पड़ती हैं, स्कूल में मास्टर-मास्टरनी की।

—'अच्छा, अच्छा। किसी तरह से यह साल निकल जाए। प्रोमोशन मिलते *रहना भी तो बड़ी बात है।' कहते हुए परितोष बाबू ने आंख-कान बंद रखकर तीन* साल गुजार दिए हैं।

तूफानी साइकिल के पीछे बैठाकर बुलबुल को पांच मील दूर के एक स्कूल में ले जाता और ले आता।

और नंदिनी घर में ही रहती। तीस मील दूर के चाचा-चाची के यहां नौकरानी की तरह गाली सुनती मानसी की अपेक्षा घर में शांति से बैठी बाड़ी के केले और

पपीता खाती रहने वाली नंदिनी के लिए ही परितोष बाबू ज्यादा चिंतित रहते। पर उन्हें कोई उपाय सूझता न था। अप-डाउन बहुत-सी मालगाड़ियों के गार्डों के जरिए उन्होंने बहुत-सी जगहों में, बहुत-सी खबरें भेजीं, परंतु सभी गार्ड फिटर माल उतारकर आने वाली खाली डब्बों की रेलगाड़ियों के गार्ड बनकर वापस आ गए। तबादले के लिए उन्होंने आवेदन भेजे, और दो-दो महीने पर एक-एक स्मरण-पत्र भेजते रहे। पर उनके पत्र किसी को मिले है, इसकी भी कोई खबर नहीं मिलती। बड़ी परेशानी है। कभी-कभी नंदिनी बाड़ी में जाकर बाप के साथ ही काम करना चाहती, मगर बाप उसे जबरन अंदर भेज देता। नंदिनी उनके साथ भला खुरपी चलाए? बिलकुल असहनीय।

नंदिनी के लिए काम लगभग कुछ भी नहीं है। सिर्फ चार काम उसके लिए खुद-ब-खुद नियमित हो गए हैं। सुबह सात बजे अप-मेल गाड़ी निकलती है। बड़ी लंबी रेलगाड़ी। यात्रियों से ठसाठस भरी हुई। रातभर सोए रहकर एक स्टेशन के बाद के स्टेशन पर कुछ खाने-पीने के लिए यात्री उत्सुक रहते। कुछ लोग, जो मिले वही खाने को ललचाए रहते हैं। एक बंद रात बिताने के बाद जगमगाती दुनिया से संबंध स्थापित करने हेतु मानो सभी यात्री रेल की खिड़कियों पर कब्जा जमा लेना चाहते। वह रेलगाड़ी—जब वहां पहुंचकर निकल जाने लगती, उस समय नंदिनी मां के नहाकर उतारे हुए भीगे कपड़े उठाकर सामने की टट्टी पर पसारने आती। टट्टी पर उस समय सुबह की सुनहली धूप पड़ती। टट्टी से पचास गज की दूरी से रेल निकल जाती। उस समय नंदिनी के लंबे बाल उसकी पीठ पर खुले पड़े रहते। रात को सोते समय सिकुड़न पड़ी पुरानी साड़ी उसके गदराए शरीर पर उसके घटे हुए दायित्व बोध का परिचय देती, पड़ी रहती। लहराती हुई रेलगाड़ी निकल जाती। रेलगाड़ी से आती कोई भी नजर नंदिनी के शरीर से टकराए बगैर नहीं जाती। कम से कम नंदिनी को ऐसा कोई यात्री दिखाई नहीं पड़ता था। जिसकी नजर उस पर न हो। कोई-कोई यात्री कुछ अजीब-अजीब-सी आवाजें करते, कोई-कोई नंदिनी को हाथ के इशारे से बुलाते, डब्बे के दरवाजे खोलकर खड़े कोई-कोई विचित्र-विचित्र हाव-भाव दिखाते। कोई-कोई तो ऐसे निकल जाना चाहते मानो उनकी नजर उस पर नहीं पड़ी है। पर अचानक आंखें चार होते ही झट सिर मोड़ लेते, खिड़की से शरीर का आधा हिस्सा बाहर निकाल देते। कोई-कोई दरवाजे से झुक जाते।

रेलगाड़ी के निकल जाने के बाद मां के पास जाने के पहले नंदिनी शरीर पर की साड़ी की सुध लिया करती। उसके पहले यह बात भूली रहती। गोलाप गंज स्टेशन में जब उसका बाप तार बाबू की नौकरी करता था, उन दिनों जहांनारा नाम की उसकी एक सहेली ने कहा था—'भला चलती हुई रेल के पसिजरों से शर्म कैसी? अगर पूरी तरह निरापद रहकर कुछ लोगों को नाच नचाना चाहती है, तो वैसे लोग चलती रेलों के पसिजर ही हो सकते हैं,। सचमुच बड़ी भयंकर लड़की थी वह जहांनारा।

लगभग नौ बजे दूसरी ओर से डाउन एक्सप्रेस आती। तब तक नंदिनी नहा-धो

चुकी होती। बाल-वाल संवारकर, धुली साडी पहन। वह बड़ी खुली-खुली-सी हो जाती। डाउन एक्सप्रेस आते समय वह अपने कपड़े पसारने आती। तब तक मा के कपडे अध-सूखे से हो गए होते। उन कपड़ों को कुछ सिकोडकर वह अपने कपडे पसारने की जगह निकाल लेती। उस डाउन एक्सप्रेस के लोग आमतौर पर उसके पहले के किसी स्टेशन पर खा-पीकर कुछ तरोताजा बने आते। उनके पेट शात रहते पर मन इधर-उधर भाग-दौड़ मचाते रहते। नौ बजे धूप कुछ और चमकीली हो उठती, लोगों की नजरें और ज्यादा चमकीली होतीं। उस धूप और नजरों से नंदिनी दूसरी बार नहाया करती।

तीन बजे के बाद टट्टी पर पसारे गए कपड़े सूख जाते। तब उन्हें उतारने का समय होता। उसके घंटे भर पहले नंदिनी की नींद खुलती। उसके बाद पीछे की ओर पैर फैला बैठकर एक केले के पत्ते पर खट्टे कमरख के टुकड़े लेकर नमक-मिर्च मिला, आधे घंटे तक खाया करती, फिर कपडे सहेजने के बहाने वह सामने चबूतरे पर बैठ जाती और कुछ देर बाद दूर डाउन मेल के आने की आवाज सुनाई पड़ती। वही एक ही रेल-बडी लंबी।

लगभग चार बजे नंदिनी कुछ सजावट करती। वैसे उसे तो कहीं आना-जाना था नहीं। फिर भी एक दिन को तो विदा देनी थी न, शायद इसीलिए मैले-कुचैले रहकर दिन को विदा देना ठीक नहीं। गोलाप गंज में रहते समय वह हर शाम को पहन-ओढ़कर जहांनारा के साथ घूमने निकल जाती। जहांनारा कहती—'जाते समय दिन को भलीभांति देख लेना चाहिए।' बाप की फरमाइश पर मालगाड़ी का कोई गार्ड जो प्रसाधन-सामग्री ला देता, उन्हीं से नंदिनी अपने को अच्छी तरह से सजाती। अच्छी-सी साड़ी पहन लेती। तब तक बुलबुल भी स्कूल से आ जाता। बुलबुल को साथ लेकर निवास और स्टेशन—घर के बीच रेल-लाइन के अगल-बगल की खुली जगह पर नंदिनी चक्कर लगाती। चक्कर लगाने का मतलब एक तरह से दौड़-धूप कर खेला ही करती। वह न खेले तो बुलबुल को बडी असुविधा होती। चक्कर लगाते या खेलते-खेलते जब नंदिनी के गाल-मुंह लाल हो जाते तभी अप-एक्सप्रेस आती। शाम की रेल। पहाड़ी जगह की शांत, सुदर, उदासी भरी शाम। नंदिनी के चेहरे का कोई हिस्सा अगर लाल हुए बगैर रहता, तो रेल वह कसर पूरा कर देती। बुलबुल पूछता—दीदी, भला वे लोग क्या कहते हैं ?

नंदिनी तृप्ति-भरे स्वर मे कहती—उनके सिर कहते हैं, खाक !

इसके बाद शाम हो जाती। सीता देवी पूजा-घर में घुस जाती। उसके देह-मन की पूरी ताकत से बज उठे शंख की आवाज जैसे ही कान में पडती, नंदिनी दीवार पर टंगे भोलानाथ के चित्र की ओर देखकर एक धीमा-सा नमस्कार कर लेती।

इसके बाद चारों ओर के पहाड़ों, जंगलों और दूर के खेतों-मैदानों से भयावह निस्तब्धता उस स्टेशन पर उतर आती। नंदिनी की बाड़ी में दो-एक बन-बिलाव आदि जंगली जानवर चहल-कदमी करने लगते। तूफानी दूर से एक ही स्वर में बहुत सारे गाने

चीख-चीखकर गाता रहता। उसके कानों की मुख्य बात होती स्नेह-प्रीति-प्रेम। अगर तुम किसी को प्यार करने का वचन देते हो, तो वह वचन हमेशा तुम्हारे दिल की धड़कन बनकर तुम्हारे साथ ही रह जाना चाहिए।—अगर तुम और मैं, दोनों ही परदेसी हों, तो फिर हमारा और दुख कैसा? ओ सखी, भला मैं क्या करूं? मेरा तो प्रियजन आया ही नहीं। —आदि-आदि।

रसोई बनने के पहले ही नंदिनी और बुलबुल दोनों सो जाते हैं। सब्जी काट देने के बाद रसोई-घर में नंदिनी का कोई और काम नहीं रहता।

वही नंदिनी आज लोगों को देखकर विभ्रांत हो गई।

सीता देवी उसके पहले दिन मानसी को देखने गई थी, अगले दिन आने वाली थी। दो-रात घर चलाने का दायित्व नंदिनी पर था। ऐसे ही दिन वह घटना हो गई। उस स्टेशन और उसके अगले स्टेशन—इन दोनों के बीच एक लंबा-सा पुल पड़ता था। उसी पुल पर किसी शैतान ने एक बम-विस्फोट कर दिया। रेल का तो कोई नुकसान नहीं हुआ मगर पुल कुछ क्षतिग्रस्त हो गया। दो डब्बों वाली एक जरूरी रेलगाड़ी इसी ओर से निकल गई। जाते समय एक उच्च अधिकारी अपने साथ परितोष बाबू को भी साथ लेता गया। इसके बाद डाउन एक्सप्रेस गाड़ी आकर इसी स्टेशन पर रुक गई। सैकड़ों लोग थे। रेल यहां से कब जाएगी, इसकी कोई निश्चयता नहीं थी।

नंदिनी को पहले-पहल तो बड़ा मजा आ रहा था। कोई पूजा-पूजा-सा लग रहा था। बुलबुल को साथ लेकर वह एक बार टट्टी के पास तक आ गई। उसका मन हुआ, इधर गार्ड के डब्बे से उधर इंजन तक पूरी रेलगाड़ी के किनारे-किनारे पैदल चलकर वह एक बार घूम आए। मगर उसका जाना नहीं हुआ। उनके घर की सीध में जो डिब्बा था, उसमें कुछ नौजवानों की टोली थी। बहुत दूर से आ रहे थे। शायद इसीलिए वे बिलकुल घर के जैसे पहनावे पहने हुए थे। दो-एक के पहनावों से लग रहा था, हो सकता है कि मिलिट्री हों। नंदिनी जैसे ही टट्टी के पास पहुंचकर खड़ी हुई, उन सबने ऐसी नजर से उसे देखा—मानो उसे बिलकुल निगल ही जाना चाहते हों। दस-बारह लोग इसी बीच डब्बे से नीचे उतर आए थे। नंदिनी के खड़े होते ही और दस-बारह लोग छलांग मारते डब्बे से उतर आए।

तेज गति से जाने वाले यात्रियों के सामने साड़ी के आंचल की बात भी अधभूले रहा जा सकता है, परंतु लोगों के सामने खड़े होने पर? नंदिनी जल्दी से अंदर घुस गई। मगर बुलबुल दो कदम आगे बढ़ गया। उसे बड़ा मजा आ रहा था। एक आदमी ने उसे पुकारा—'बच्चे! जरा इधर तो आना।'

कुछ ही समय में डाउन एक्सप्रेस के सैकड़ों यात्री स्टेशन की खुली जगह में उतरकर चक्कर लगाने लगे। समय निकला जा रहा था। पहले स्टेशन में उन लोगों ने पेट में जो कुछ डाला था, वह हजम हो चुका था। बहुत-से लोगों को प्यास लगने लगी थी।

सबसे पहले नंदिनी के घर के आमने-सामने जो डब्बा था, उसके एक आदमी ने बुलबुल को पुकारकर कहा—ओ बच्चे ! दीदी से कहना जरा एक गिलास पानी दे।

अस्त-व्यस्त-सी नंदिनी पीतल के एक चमकते गिलास में एक गिलास पानी भेजकर दीवार के छेद से झांककर देखने लगी। सुंदर-सा एक नौजवान बुलबुल के हाथ से गिलास ले पानी पी रहा था। खाली गिलास बुलबुल को थमाकर उस आदमी ने उससे कुछ कहा।

इसी बीच कई लोगों ने बुलबुल को घेर उससे उनके परिवार और घर में रहने वाले लोगों के बारे में सब कुछ पता कर लिया था।

खाली गिलास हाथ में ले बुलबुल दौड़ता हुआ अंदर चला गया। उसने हंसते हुए नंदिनी से कहा—दीदी, उसे एक गिलास पानी और चाहिए। इस बार तुझे ले जाने को कहा है। कहता है, तू खुद अगर दे, तो पीने में पानी और अच्छा लगेगा।

—छिः, तू तो बड़ा ही दुष्ट हो गया है आजकल। —कहते हुए एक अजीब स्वर में नंदिनी ने बुलबुल को डांटा।

पर नंदिनी के कंठ से यह स्वर ज्यादा देर तक लगा नहीं रह सका। यात्रियों में लगभग सभी को प्यास लग आई। मगर इस पांडव-वर्जित, जन-हीन स्टेशन पर पीने के पानी का कोई इंतजाम नहीं। परंतु उन यात्रियों को इस बात का किसी तरह पता चल गया कि सहायक स्टेशन मास्टर के घर में एक कुआं है। पहले तो एक-दो, उसके बाद झुंडों में लोग परितोष बाबू के घर के पिछवाड़े घुस आए। पहले तूफानी बाल्टी से पानी भरकर उन्हें देता जा रहा था। उसका हाथ दुखने लगा तो जगरू वह काम करने लगा। पर कुछ देर बाद यात्री खुद ही बाल्टी से पानी भरने लगे। एक तोंद वाले जनेऊधारी यात्री ने अपने लोटे से एक-एक लोटा पानी लेकर परितोष बाबू के रोपे पुदीने के पौधों के पास खड़े होकर नहा भी लिया।

यात्रियों को कुछ देर बाद भूख भी लग आई। पानी पीने के लिए खड़े एक आदमी ने यों ही जांचने की मुद्रा में एक खीरा तोड़ लिया और चबाने लगा। थोड़ी ही देर में बहुत-से लोग उस बाड़ी में घुस आए, और खीरा, पपीता आदि खाने लायक जो भी चीज मिली एक ओर से सब कुछ खत्म करने में जुट पड़े। पहले-पहल तूफानी और जगरू ने लोगों को रोकने की कोशिश की, लेकिन लोगों की असुर-सी मूर्ति देखकर बाद में वे सभी चुपचाप रह गए।

नंदिनी घर के अंदर घुसकर एक बंद खिड़की के फांक से लोगों की करतूतें देख रही थी, परंतु उसने एक बार देखा, कुछ औरतें चली आ रही हैं। नंदिनी भी पिछवाड़े चली आई। औरतें कुएं के पास न जाकर नंदिनी के पास चली आईं। उन सबने पहले नंदिनी के घर-परिवार आदि के बारे में पता किया और उसके बाद पानी मांगा। इतने सारे लोगों को कुएं के पास शोर-गुल मचाते देखकर एक महिला ने आजकल के लोगों की उद्दंड प्रवृत्ति पर एक भाषण ही दे डाला। बाड़ी के पौधों और दूसरी चीजों को नष्ट

करने के कारण नंदिनी ने अफसोस किया। उसकी बात पूरी होने से पहले ही एक प्रौढ़ महिला आगबबूला हो उठी। किसी के अंदाजा लगाने के पहले ही वह झट से कुएं के पास चली गई और सारे लोगों को ऊंची आवाज में गालियां देने लगी। तुम लोगों की क्या जरा भी विचार-बुद्धि नहीं है? लाज-शर्म नही है? इस संकट के समय पानी पीने को मिल रहा है, क्या वही काफी नहीं है? जिस पर तुम लोग यह बाड़ी बरबाद किए दे रहे हो?

उस महिला की प्रचंड दशभुजा-दुर्गा जैसी मूर्ति देखकर ही शार.द उस बाड़ी में इधर-उधर घूमते लोग वहां से हट गए। ज्यादातर लोगों ने सोचा, वह घरवाली है। एक तुंदिल-से व्यक्ति ने हाथी के सूंड उठाने के लहजे में अपना हाथ उठाकर नंदिनी के पास खड़ी उस पूरी मंडली को मनोवांछा पूरी होने का आशीर्वाद दिया और वहां से निकल गया।

गुस्से में भरी उस महिला ने उन लोगों के नजदीक जाकर कहा—"तुम सबने पानी पी लिया न? जाओ, अब अपने कंपार्टमेंट में जाकर बैठे रहो। मैं यहीं रहूंगी। इस विदेश-परदेश में पड़े हुए ये हमारे ही लोग हैं। जब तक रेल नहीं जाती, मैं यहीं रहूंगी। अचानक इस लड़की पर कौन-सी आफत आ पड़े, क्या पता?"

फिर वह नंदिनी की ओर देखती हुई गरज उठी—'भला तू भी कैसी लड़की है? मां घर में नहीं, तो बाप को तूने यहां से क्यों जाने दिया? ऐसी जवान लड़की को क्या घर में अकेले रहना चाहिए? कोई पाटी-वाटी है या नहीं? चटाई-वटाई? ला, जरा बिछाकर अपने शरीर को सीधा कर लूं? भला, तुम लोग अब यहां रुकी क्यों हो?'

उसकी बात सुनते ही शेष सारी औरतें पन-पनाती वहां से निकल गईं। नंदिनी मंत्र-मुग्ध-सी उठकर बीच के कमरे में एक पाटी बिछा दी। पाटी वह बिछा ही रही थी, तभी बुलबुल दौड़ता आया और नंदिनी के हाथ में एक चाकलेट देकर बोला—'यह तुझे दिया है। और उस आदमी ने तुझसे क्या कहने को कहा है, जानती है? कहा है—'

'चुप रह'—नंदिनी ने डांटकर बुलबुल की जबान रोक दी। मगर साथ ही उसका चेहरा सुर्ख हो गया।

वह मोटी-सी महिला बड़े आराम से पाटी पर बैठ गई। "वहां के उस शोर गुल में रहने की बजाय, यहीं जरा आराम कर लूं"—कहती हुई—उसने एक लंबी सांस ली। फिर वह अपनी गाथा सुनाने लगी। वे सभी किसी समाज कल्याण के काम में मंडली लेकर आई हैं। वह मंडली-नेत्री है। मंडली की और महिलाओं को भी चुनकर वही लाई है। हालांकि वे सभी लक्ष्मी-सरस्वती-सी हैं, पर बात यह है कि उनपर कड़ी नजर रखनी चाहिए। नारी-कल्याण के बारे में उस महिला का आग्रह इतना ज्यादा है कि इस छोटे से स्टेशन में अकेली नंदिनी को कोई असुविधा हो सकती है, यह बात भी वह सहन नहीं कर सकती। इसके ये सारे लोग एक ही जगह के तो हैं नहीं।

पूरा दिन निकल गया पर रेल के चलने की कोई खबर नही आई। परितोष बाबू भी नहीं आए। नंदिनी ने बुलबुल को एक बार पकड़कर जबरन खाना खिलाया। वह तो घर मे रहना ही नहीं चाहता था। अचानक एक बार वह दौड़ा आकर कुछ कहने के लिए 'बाइदेउ'[1] कहकर पुकारता और नंदिनी उसे आंखें तरेरकर चुप रहने का संकेत करती। बेचारे बुलबुल के पेट में दीदी से कहने के लिए न जाने कितनी सारी बातें इकट्ठी हो गई थीं।

वह महिला भी दिनभर नदिनी के ही साथ रही। पका पपीता और केले खाकर उसने नारी के संयम-धर्म आदि के बारे में नंदिनी को बहुत-सी कथाएं सुनाई, बहुत से उपदेश दिए। बीच में एक बार उसने फिर नंदिनी के दिए हुए पपीते और केले की सराहना की। पहले से तोड़े हुए और दो पपीते घर में थे। उनमें से बड़े पपीते को नंदिनी ने लाकर महिला के हाथ घर ले जाने के लिए दे दिया। महिला ने—'उंह, यह भला क्यों दे रही है ?—कहकर एतराज प्रकट कर ले लिया और कहा कि नंदिनी वास्तव में 'लक्ष्मी' लड़की है।

शाम हो आई। उस दिन नंदिनी अच्छी तरह से खा-पी नहीं सकी। उसे लग रहा था, तबीयत कुछ खराब है। पर साथ ही उसे यह बात भी याद आ रही थी कि रेल के सैकड़ों यात्री भी बिना खाए-पीए पड़े है।

घर के कोने-कोने में अंधेरा होते देख नंदिनी को कुछ डर भी लगने लगा। कुछ देर पहले उस डब्बे के युवक तालिया बजाते हुए गा रहे थे—

'दिल दे दिया, दर्द ले लिया'

शायद बुलबुल उसी आदमी के साथ है। अचानक खबर आ गई, रेल चलने वाली है। चलने वाली का मतलब पहिए घूमने ही वाले हैं। उस महिला को ले जाने के लिए दो औरतें आई। महिला ने नंदिनी को बांहों में भरकर सिर चूमा। नंदिनी के शरीर में झुरझुरी दौड गई।

आखिकार दो डिब्बों वाली वह रेल लौटी। उससे परितोष बाबू उतरे। उसके बाद डाउन एक्सप्रेस के पहिए घूमे। झीने अंधेरे में बुलबुल के कंधे पर निर्जीव-सा हाथ रख नंदिनी टट्टी के पास खड़ी रही। डब्बे के बहुत-से लोगों के कंठों से निकली बहुत-सी आवाजें उसके कानों में आई। परंतु वह किसी का चेहरा देख नहीं सकी।

इसके बाद उस स्टेशन पर जो सन्नाटा उतर आया, वह और ज्यादा भयावह था। तूफानी ने भी उस दिन अपना राग नहीं छेड़ा।

रात को जल्दी-जल्दी खाना खा-पीकर, क्लांत विमर्श परितोष बाबू हाथ में एक टार्च लिए बाडी को देखने गए।

---

1. बाइदेउ—दीदी।

बिस्तर पर जाकर तकिए पर सिर रख, बुलबुल का सिर अपनी ओर घुमाकर, नंदिनी ने व्यस्तता से, परम आग्रह से पूछा—'वह आदमी तुझसे क्या-क्या कह रहा था रे? बता तो! हां, लेकिन सब कुछ बताना, समझा?'

दिनभर दौड़-धूप करने के कारण बुलबुल को बड़ी थकावट लग रही थी। नींद उसे दबोच रही थी।—"वह आदमी तुझे—" कहते हुए उसने भोलानाथ की तस्वीर वाली दीवार की ओर अपना मुंह फिरा लिया। उसे नींद आ गई।

—मुझे? मुझे क्या?— नंदिनी को बडी रात तक नींद नहीं आई।

1969

जंजीर

मछली मारने की बंसी में ढोरहा सांप लग जाने पर मछुवे की जैसी उत्तेजना होती है, कालिदास से आमना-सामना होने पर अंबिका को भी वैसी ही उत्तेजना होती है। अवांछित, अखाद्य, डरावना मगर बिना विष का ढोरहा सांप! भले ही गुस्सा आए, या विरक्ति हो, बंसी को खींच हिलाकर कुछ मजा लिया जा सकता है; साथ ही बंसी से सांप को छुड़ाने की चिता से उद्विग्न भी हुआ जा सकता है।

कंकड़-भरी राह से आकर पक्की सड़क पर पैर रखते ही अंबिका ने एक बार दूर के बाजार पर नजर डाल ली। उसके बाद तल्लीनता से कुछ आगे बढ़ी। तभी कालिदास ने आवाज दी—'कौन हो-ओ? अंबिका हो क्या? वाह, ये तो कबूतर है! कहां मिले? कहां ले जा रही है?'

अंबिका को लगा, कालिदास उसके पीछे-पीछे आ रहा था, राह के आखिरी हिस्से में झाड़ियों के बीच की पगडंडी से तिरछा निकल आया है। नहीं तो, फट्ट से वह यहां तक कैसे पहुंचता?

—है न? कहां मिले ये कबतूर? तुम लोगों के घर में तो कबूतर पाले नहीं हैं। कालिदास पूछता हुआ अंबिका के साथ-साथ कदम बढ़ाने लगा।

कल से ही इन कबूतरों के बारे में बता-बताकर अंबिका परेशान हो उठी थी। वह जगन्नाथ के यहां से आ रही थी। कई दिन से जगन्नाथ का घर-बार से नाता टूटा-सा है। वह मिटिंग-विटिंग में जुटा हुआ है। घर-बार से कब नाता जुड़ेगा, इसका भी कोई ठौर-ठिकाना नहीं है। विशाल आमसभा के आयोजन का काम ठहरा! कई दिन पहले वह मिल में धान दे आया है, पर चावल ले आने का समय ही नहीं निकाल सका है। इधर घर में चावल नहीं है। इसीलिए जगन्नाथ की पत्नी ने अंबिका को बुलवा लिया था ताकि वह ढेंकी से कूटकर कुछ दोन[1] चावल तैयार कर दे। परसों दिनभर और कल सवेरे तक धान कूटने का काम पूरा कर अंबिका टोकरी में लगभग दो किलो चावल ले, डाले से ढंककर घर लौट रही थी। उस समय दूर के मैदान में आम-सभा का आयोजन हो रहा था। लोगों के सिर से भी ऊंचे बनाए मंच पर चढ़े हुए लोग अंबिका को दिखाई पड़ रहे थे। उस सभा के बारे में अंबिका काफी दिनों से सुनती आ रही थी, पर उसके अनुसार मैदान में लोगों की वैसी भीड़ नहीं थी। हालांकि

---

1 दोन—लगभग चार किलो की एक माप।

मूल सभा शाम को ही होने वाली है। तब ज्यादा लोग होंगे। एक बात और है—जगन्नाथ की पत्नी ने ढेंकी-घर में बैठकर अपने पति का बखान करते हुए कहा था—असल में इस सभा मे इस 'मौजा'[1] के सभी गांवों के लोगों के आने की बात थी, मगर किसी बात पर विरोध हो जाने के कारण चंद्रपुर समेत रेल मार्ग के उस ओर के दस गांवों के लोग अलग हो गए। सुना है कि उन गावों के लोगों ने भी चंद्रपुर के मैदान में अलग से सभा का आयोजन किया है। हालांकि टाउन के बिलकुल नजदीक होने के कारण, जगन्नाथ ने पत्नी से दृढ़ता के साथ कहा है कि इसी सभा में लोग ज्यादा होंगे। इन्ही बातो को सोचती दूर की सभा की ओर देखती हुई अंबिका आगे बढ़ी जा रही थी, तभी सभा-मंडप से नगाड़े, भोरताल,[2] शख, हुलहुली और तालियों की आवाजें सुनाई पडीं। कदम बढ़ाना बंद कर अंबिका मच की ओर देखती रही। उसे दिखाई पड़ा—मंच के ऊपर के लोगों के बीच से चिड़ियों का एक झुंड आकाश मे उड़ चला है। भला चिड़ियां कहां से उड़ीं ? अब अंबिका की नजर मंच के लोगों से हट कर चिड़ियों का अनुसरण करने लगी।

नगाड़े और भोरताल की आवाजों से भ्रमित होकर चिडियां इधर-उधर चक्कर लगाने लगी। लोगो की तालियों और चीख-पुकार आदि ने शीघ्र ही उनकी गति बदल दी। और कुछ समय बाद उन चिड़ियो में से कुछ चिड़िया लोगों के सिरों पर मंडराना छोड़, गांव की ओर चली आईं। कुछ देर जिधर चाहे उधर ही चक्कर लगा, एक बार वे अंबिका की ओर उड़ने लगी। अंत में वे नीचे भी उतर आई। अबिका ने देखा, वे तो कबूतर हैं। देखते-देखते वे और नीचे उतर आए। वहीं एक पुरानी झोंपड़ी थी, जिसमें किसी ने दुकान खोली थी मगर नुकसान होने के कारण उसे वैसे ही छोड़ गया था। एक कबूतर उसी की छत पर आ बैठा। उसके बाद एक और, फिर एक-एक कर पूरा झुंड उसी पर उतर कर बैठ गया। वहां बैठकर सारे कबूतर इधर-उधर चौकन्ने से देखते रहे। अंबिका की उपस्थिति से मानो वे फिर सत्रस्त-से हो उठे। अंबिका कुछ देर निश्चल-सी वहीं खड़ी रही, इसके बाद उसने टोकरी से मुट्ठी भर चावल निकाल राह किनारे की खुली जगह पर थोड़ा-थोड़ा बिखेरने लगी। अंत में कबूतरों ने उत्सुकता से इधर-उधर देखना छोड़ दिया। थोड़ी देर बाद उनमें से एक-एक कबूतर उतरकर चावल चुगने लगे। अंबिका चावल बिखरेती उनके पास पहुंच गई। पर कबूतरों ने उसकी भी परवाह नहीं की। एक चक्कर लगाकर अंबिका ने चादर डाला और हाथों से झपट्टा मारकर उनमें से कुछ कबूतरों को पकड़ लिया। जो पकड़ में नहीं आए, वे कबतूर क्षणभर में जिधर मौका मिला उधर ही उड़कर चले गए। अंबिका के डाले चादर और हाथों में सिर्फ़ चार कबूतर ही कैद हो पाए। चावल के साथ उन कबूतरों को भी एक ही साथ टोकरी में रख, डाले से ढंककर अंबिका घर ले आई।

---

1 मौजा—तहसील।

2 भोरताल—बड़ी झाझ।

उसके आने के बाद से ही घर में शोर मचा रहा। उसके पांच बच्चों में से दो बच्चे घर में थे। 'कबूतर कहां मिले?' कहकर वे दोनों शोर मचाने लगे। दूसरी एक अध-टूटी टोकरी से अंदर की फर्श पर उन कबूतरो को ढंककर अंबिका ने उन्हें—'शोर न मचाना, टोकरी न छूना, अगर कबूतर किसी तरह उड़ जाएं, तो तुम्हें जिंदा नही छोड़ूंगी।' आदि कहकर डांटने के सिवा और कुछ नहीं बताया।

अंबिका के घर के आंगन के दूसरे सिरे पर बूढ़े दयाराम का घर है। सामने के बरामदे में सुबह से शाम तक बैठा हुआ बूढ़ा आंखें फैलाए दुनिया का रग-रूप देखा करता और एक मात्र सहारा अपनी बूढ़ी-पत्नी के सजाकर दी हुई तम्बाकू की चिलम के जरिये दुनिया की सारी चिता-भावना को धुआं बनाकर उड़ा देता। शोर सुनकर बूढ़े ने पूछा—'क्या है री अंबिका, कहां से क्या मिला है तुझे?'

—कौन-सी चीज मिलने की बात सुन ली तुमने? कुछ नहीं मिला है।— अंबिका ने अंदर से ऊंची आवाज में कहा।

—कुछ मिला नहीं, कह देने भर से ही क्या होगा? भला, बात छिपा क्यों रही है? कबूतर कहां से मिले?' बूढ़ा निर्विकार स्वर से चीखने लगा।

—ऐ,—झूठमूठ बात न बढ़ा। चुप रह।—कहती हुई अंबिका ने ताना मारा।

बूढ़े ने मानो पवन-गगन को सबोधित कर कहा—'ठीक है, अभी तो मैं चुप रह जाता हूं—।' मगर मैं पता लगाए बगैर रह जाऊंगा, ऐसा न सोचना। कहां का कबूतर कहां आया है, किसके घर का कबूतर लापता हुआ है, भला मैं इसका पता लगाए बगैर क्या यो ही रह जाऊंगा? गांव भर में पता लगवाऊंगा न । ठीक से पूछने पर तो बताती नहीं। कोई बात होगी जरूर; तभी तो छिपा रही है।

अंबिका के तीनों बड़े लड़के-लड़की जब आम-सभा से लौटे, तब शोर-गुल और ज्यादा बढ़ गया। सुबह से दोपहर तक बिना कुछ खाए-पीए सभा-स्थल में चक्कर लगाते रहने के कारण उनके सूखे से चेहरे कबूतरों का नाम सुनते ही दमक उठे। अब तक दोनों छोटे बच्चे टोकरी के फांकों के बीच से, फर्श पर कान लगा, टोकरी के किनारे और जमीन के बीच के फांक से कबूतरों को देख रहे थे। छोटा बच्चा झाड़ू से एक सींक तोड़ लाया और उससे कबतूरों को खोंच-खोंच कर उन्हें अपने जैसा ही चंचल बनाने की कोशिश करने लगा। परंतु बड़ा लड़का तो घर में घुसते ही टोकरी का एक सिरा उठाकर नीचे की ओर झांकने लगा। कबूतर कहीं उड़ न जाए इस डर से अंबिका 'हेइ-हेइ' कर उठी, साथ ही लड़का भी चीख पड़ा—अरे, ये तो वही कबूतर हैं जिन्हें मीटिंग में उडाया गया था। हम तो वहां बिलकुल पास रहकर देख रहे थे। मां, ये तुझे कैसे मिले? कहां मिले? क्या तू भी मीटिंग में गई थी? इन्हें आखिर कैसे पकड़ पाई? —उसके सवालो के मारे मां की जबान ही बंद हो गई।

आंगन के दूसरी ओर के बरामदे में बैठे बूढ़े दयाराम ने कहा—'ओ, तो यही क्यों नहीं बताती? मीटिंग के कबूतर हैं। जा, सीधे-सीधे जाकर जिसे लौटाना है, लौटा

आ !'

—क्या कहा ? इन्हें भला लौटाना किसको है ? क्या मैंने इन्हें मीटिंग से पकड़ा है ? बात-बात में झूठ-सच आवाज देने वाले उस बूढ़े पर अब अंबिका को सचमुच गुस्सा आ गया था।

उस बूढ़े के लिए भी जिंदगी में अब तो सिर्फ वही काम बचा था। वह बोला—'तू पकड़ नहीं लाई ? तो क्या वे कबूतर उड़कर खुद तेरी टोकरी में घुस गए थे ?'

—हां, जरूर आ घुसे थे।—कहकर अंबिका ने ताना मारा। पर मन-ही-मन उसे डर भी लगा। अगर यह बूढ़ा सचमुच गांवभर में यह बात फैला दे कि उसने मीटिंग के कबूतर पकड़े हैं, तब क्या होगा ? अगर मीटिग के लोग उसके आंगन में आ खड़े हों, तब ? पर डरने के बावजूद वह यह तय नहीं कर पाई कि उसे करना क्या है ? उसने सिर्फ बच्चों को शोरगुल करने से मना किया।

बच्चे जब तक जगे रहे, उनका समय सिर्फ कबूतरों की चिंता में ही बीता। बड़ा लड़का मां से कहने लगा—मां, मांस-तरकारी खाए बहुत दिन हो गए, आज कबूतर-मांस ही बना न !

बड़ी लड़की पूछने लगी—'मां, बता न इन कबूतरों का क्या करेगी ? एक मुझे देगी क्या, मैं पालूंगी ?' तभी छोटी बच्ची पुकार उठी—'हां, मुझे भी एक देना होगा।'

एक कबूतर की टांग को डोरी से बांधकर उस डोरी का सिरा अपने हाथ में देने के लिए बहुत देर तक रोता-झींकता रहकर, आखिर जोर-जोर से रो-रोकर, छोटा लड़का भी सो गया। दोनों बड़े लड़के दोपहर बाद फिर आमसभा में गए थे। सभा-मंडप से घर लौटते समय उनके मन में यह भावना जग रही थी कि रात को कबूतर-मांस के साथ खाना मिलेगा। और उसी कारण वे दौड़ते हुए घर आ रहे थे। घर पहुंचकर वे दोनों कुछ देर चुपचाप रहे और उसके बाद कुछ कहे बगैर छूछा भात खाकर बिस्तर पर पड़ गए। टोकरी पर सिल और लोढ़े को चढ़ाकर सबके बाद जब अंबिका बिस्तर पर गई, तो उसे भी थकावट और परेशानी ने दबोच लिया था। सोने की कोशिश करते समय उसके कानों में दयाराम बूढ़े के घर से आती हुई गुनगुनाहट सुनाई पड़ी। क्या वह बुड्ढा अब भी उन कबूतरों की ही चर्चा कर रहा है ? उसकी बुढ़िया के अलावा क्या उसके घर में कोई और आदमी है ? एक बार आंगन में निकलकर वे लोग किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं, क्या सुन आना चाहिए ?

पर थोड़ी ही देर में बूढ़े के यहां से कोई आवाज आनी बंद हो गई। उसके कितनी देर बाद दूसरे कमरे से पहले 'खटक्-खटक्' और बाद को 'घटर्' से एक आवाज आई, वह अंदाजा नहीं लगा सकी। मगर आवाज सुनते ही वह एक ही छलांग में बिस्तर से उठकर बत्ती हाथ में ले दूसरे कमरे में दौड़ गई। उसे सिर्फ झलक-भर दिखाई पड़ी कि एक बनबिलाव टट्टी के ऊपर के एक छेद से निकलकर भागा है।

बिलकुल काला बनबिलाव ! कबूतरों को ढंकने वाली टोकरी पर उसकी नजर पड़ी। उसके ऊपर रखे लोढ़े को बनबिलाव ने गिरा ही दिया था। अब अंबिका ने लकड़ी की कुर्सी को भी उलटकर टोकरी पर रख दिया।

रातभर में अंबिका की नींद कई बार टूटी, 'खिटिक्-खिटिक्', 'खुटुक्-खटाक्' आदि आवाजें उसे परेशान करती रहीं। और दिन तो सियार बांसों की झुरमुटों के बीच 'हुआं-हुआं' करते हैं लेकिन उस रात को तो जैसे दो सियार बिलकुल घर के चबूतरे के पास पहुंच गए थे। उनकी जोर की आवाज से बड़े लड़के की नींद टूट गई। आंखें खोले बगैर उसने अस्पष्ट आवाज से पूछा—'मां, ये सियार इतने नजदीक क्यों आए हैं ?'

—'पता तो नहीं। शायद कबूतर खाने आए हैं। और भला किसलिए आएंगे ?' अंबिका ने विरक्ति से कहा।

—खा जाएं तो मुझे खुशी ही होगी। हमें तो तुमने खाने नहीं दिया है न।—कहते हुए लड़के ने करवट बदली और फिर सो गया।

एक लंबी सांस को अंबिका ने कुछ देर छाती में दबाए रखा। फिर उसने भी करवट बदली। रात के शेष समय में उसे लगा कि नींद आने की कोई संभावना नहीं है।

ऐसा हो नहीं सकता। हां, हो नहीं सकता। कबूतरों को न पाले रखा जा सकता है और न बेटे-बेटियों, बन-बिलाव, सियार आदि को ही खाने दिया जा सकता है। आखिर में उसने सारी हवाई बातों को छोड़ दिया। रुपया मिले, बस असली बात यही है।

सुबह उसने बड़े लड़के से एक कोमल बांस काट लाने को कहा। बांस लाने के बाद उसने लड़के से पूछा—'खपच्ची बनाकर एक दड़बा बना सकेगा ?'

बरामदे में बैठे दयाराम बूढ़े ने आवाज दी—"अरी अंबिका, इतना दिमाग न दिखा। क्या वह लड़का खपच्ची से दड़बा बना सकता है ? वह दड़बा मुझे बनाने के लिए कहने पर क्या तेरी नाक कट जाती ? देखूं-देखूं अरे ओ। हां, बांस इधर ले आ। जा, अंदर से लंबी नाल वाली कटारी उठा ला। अरी, कबूतर कितने हैं ?

लड़का मुंह फुलाकर बात कहे या न कहे, दुविधा में पड़े रहने के बाद बोला—'चार हैं।'

एक दड़बे के बदले बूढ़े ने छोटे-छोटे दो दड़बे बना दिए। काम करते-करते वह अपने आप बड़बड़ाता रहा—'अगर चारों कबूतर एक ही आदमी ले तब तो अच्छी बात है। मगर कोई अगर दो ही खरीदना चाहे ? अगर वह कबूतर के साथ-साथ दड़बा भी ले जाना चाहे तो ? तब तो तुझे परेशानी में पड़ना होगा। जब तक बिक न जाएं, तब तक उन कबूतरों को भला तू कहां रखेगी ?—आदि-आदि।

अंबिका ने दो-दो कबूतरों को एक-एक दड़बे में भर लिया और सूरज ढलने पर

दो मील दूर शहर के समीप के बाजार की ओर चल पडी। उसके जाते समय छोटे बच्चे फूट-फूटकर रो रहे थे। बड़ा लडका कुछ कहे बगैर घर से निकल मां की उल्टी दिशा मे कहीं चला गया। मंझला लड़का घर के चबूतरे पर ऐसा बैठा था मानो किसी बात में उसका मन न लग रहा हो। अबिका मंझले बच्चे को यह कहकर डांटना चाहती थी कि रोते हुए उन नन्हे बच्चों को क्या, वह अपनी पीठ पर बकुची बांध कर बहला नहीं सकता ? पर कुछ भी कहे बगैर वह बाहरी दरवाजा पार कर निकल गई। उसने सोचा, सारे बच्चों के मन कडवे हो गए हैं, उन्हें डांट-डपट न करना ही अच्छा है।

अपनी भावनाओं में तल्लीन-सी अंबिका पैदल चलती हुई लगभग डेढ़ मील गई होगी, बड़ी सड़क पर पहुंचने पर दूर का बाजार भी उसकी नजर में आने लगा था, तभी सामने से अचानक यह कालिदास आ निकला। बसीं में फंसा ढोरहा सांप।

कल से लेकर आज थोड़ी देर पहले दरवाजे से निकलने तक इन कबूतरों ने उससे जितनी बातें कहलवाई हैं, वे ही काफी है। इसलिए कालिदास के सवाल का जवाब देने की इच्छा अंबिका की नहीं हुई। तिस पर सवाल था कालिदास का।

कुछ दूर आगे बढ़कर कालिदास अजीब ढंग से हंस पड़ा। बोला, 'हा-हां, जानता हूं। तू भले ही न बताए, मुझे पता है। ये क्या वे ही कबूतर नहीं हैं, जिन्हें कल मीटिंग में उड़ा दिया गया था ?

अंबिका ने गला टेढ़ा कर, आंखें फैला कालिदास की ओर नजर डाली। कालिदास कहता गया—मैं कल उस बूढ़े के यहां गया था न। शायद तब तक तू सो गई थी ! बूढ़े ने ही इन कबूतरों के बारे में बताया। उसने कहा था—वह तो कबूतरों को बेचेगी ही। लेकिन बाजार में ले जाते समय कोई ईर्ष्यालु आदमी उसे 'ये मीटिंग में उड़ाए गए कबूतर हैं' बताकर परेशान भी कर सकता है। इसलिए तू उस पर नजर रखना। हो सके तो तू भी बाजार जाना। वहां भी तो गांव के लोग पनपनाते फिरते हैं। अगर कोई छेड़-छाड करे तो तू कोई युक्ति निकालकर बात बदल सकता है। मैंने बूढ़े की बात पर 'हां' कर मान लिया था, पर आज बाजार जाऊं या न जाऊं,' यह सोच-विचार ही करता रहा। मगर दूसरे एक काम से इस ओर आना पडा। उन्हीं को खाकर जिदा रहने वाले और किसी भी प्राणी को वह पाल नहीं सकती। और मांस खाकर कबूतरों को बेकार गंवाने जैसा काम करने की ताकत भी उसकी नहीं है। लड़के ने क्या कहा था ? बहुत दिनो से मास-तरकारी नही खाया है ? बहुत दिन का मतलब, अरे तूने खाया था कब ? बाप जब था, तब ! उस्—वे बातें इतने दिन याद रखना उचित नहीं है बेटे।

कबूतर जब आकाश से धरती पर उतर रहे थे, उस समय अंबिका के मन मे एक बात बिजली-सी कौंध गई थी। कम से कम कुछ रुपए मिल जाएंगे। जगन्नाथ की पत्नी और तीन-चार किलो चावल देगी। उस चावल के साथ ये रुपए मिलाकर कम से कम दो-चार दिनों के भात और महीने भर के तेल-नमक आदि का इंतजाम हो जाएगा।

लड़के-लड़कियों के उपद्रव के मारे दिन मे वही भावना उसके मन मे कई बार उलट पुलटकर आई थी। क्या इन्हें बेचना है? नहीं तो नहीं ही बेचेगी। क्या एक कनबूतर को पका ही डाले? दो लड़के बड़ी आशा लगाए हुए हैं। या सभी को उडा ही दे? वह दयाराम बूढा भी पता नही क्या कर डाले। मगर रात को चूंकि अब तुझमे भेंट हो गई—तो फिर चल—वहा से हो आए!'

अबिका सामने की ओर देखती हुई कदम बढाने लगी। विरक्ति और गुस्से के मारे उसकी भौहें तन गई, कुछ देर बाद कालिदास ने पूछा, अरे! देखते है कि तू तो बात ही नही करती।

—'भला उस बुड्ढे को तुझे इतनी सारी बाते बताने की क्या पड़ी थी?'—अबिका ने भन्नाकर पूछा।

—तू भला उस बुड्ढे पर गुस्सा क्यो उतार रही है? उसने तो तेरी भलाई के लिए ही यह बात बताई है।

—उंह, मेरी भलाई के लिए!—अंबिका मन-ही-मन भुनभुनाई। उसके कदम बढ़ाने की भंगिमा से इस बार और ज्यादा विरक्ति प्रकट हो उठी। कालिदास बोला, 'बुड्ढे ने जो भी कहा है, भलाई के लिए ही कहा है। अगर मेरे आने के कारण तुझे बुरा लग रहा है तो, बता दे। मैं वापस चला जाऊं।

अंबिका ने कोई जवाब नहीं दिया। पर कालिदास लौट जाए, यह कहने मे भी उसे डर लगा। इन कबूतरो को लेकर कोई गोल-माल भी तो हो सकता है। फिर भी बुड्ढा किस इरादे मे इस कालिदास को बार-बार उस पर लाद दिया करता है, इसी चिता ने उसे उद्विग्न कर दिया।

कालिदास उन्हीं के गांव का है। अंबिका के पति नीलकांत का वह हम-उम्र है। नीलकांत और कालिदास दोनों एक ही आदमी की जमीन अधिया पर लेकर खेती-बारी कर रहे थे। विवाह के बाद नीलकांत ने अंबिका से बीच-बीच में यह भी बताया था कि उन दोनों के मन का भी मेल है। नीलकात को इसी कालिदास की जबान से पहले-पहल अंबिका का परिचय मिला, ऐसा उसने बताया था। मां-बाप मर चुके। टूअर लड़की ठहरी, मामा के यहां काम-काज कर बड़ी हुई। उसके दोनों बड़े भाई तो उसकी खबर जितना कम मिले, उतना ही खुश होते हैं! आदि-आदि।

किसी बात पर अंबिका नीलकात को भा गई और उसने उससे विवाह कर लिया। विवाह का मतलब पंद्रह-बीस लोगों को आमत्रित कर नीलकांत ने चाय-मिठाई खिला दी और उसे ले गया। परतु कुछ ही दिनो बाद उसे अपना घर छोड़ देना पड़ा। उसे अंबिका का गांव ज्यादा पसंद आ गया। दयाराम बूढ़े से जरा-सी जमीन की चर्चा जैसे ही नीलकात ने की, दयाराम ने तुरंत आंगन के सामने की जमीन, बाड़ी के बास, खभों के लिए अमलतास के दो पेड आदि और जिस चीज की जरूरत हो, लेने के लिए नीलकांत से कह दिया। थोडे ही दिन में दयाराम बूढ़े के आंगन में घर खडा हो गया।

उस घर में नीलकांत की दुनिया बसी, पांच लड़के-लड़कियों से वह दुनिया आबाद हुई। उसके बाद एक दिन नीलकांत मर गया और अंबिका के लिए वह दुनिया सूनी हो गई।

अंबिका के विवाह के पहले कालिदास को कोई सख्त बीमारी हुई थी। चंगा होने के बाद भी लोग कहा करते थे कि उसके दिमाग में कुछ खराबी रह गई। नीलकांत के विचार से उसके दिमाग में कोई खराबी नहीं, उसका बड़ा भाई संपत्ति हथियाने की लालच से ऐसी बातें फैलाकर षड्यंत्र कर रहा है। पर कुछ दिन बाद, पता नहीं क्यों, कालिदास गांव छोड़कर निकल गया। एक बार खबर आई कि किसी जगह जाकर वह कांसे-पीतल का व्यापार कर रहा है और पैसेवाला बन गया है। एक बार उसे यह खबर दी गई कि उसके बडे भाई का परिवार बिलकुल बरबाद हो गया है। अब उसके घर की जमीन बचाने के लिए उसे आना चाहिए। मगर कालिदास तब नहीं आया। लगभग तीन साल पहले वह गांव में आया पर साथ कोई न था। कहते हैं कि शादी-विवाह करने की उसे फुरसत ही नहीं मिली। उसे सिर्फ पैसे कमाने का ही चस्का लग गया था। अपने साथ वह काफी रकम भी लेता आया था।

दयाराम बूढ़े के आंगन में बैठा वह पिछले बारह सालों से अपनी वीरता के किस्से-कहानियां सुना-सुनाकर हाथ-पैर चमकाता रहता। एक दिन जब उसका मन चंगा था, अंबिका उससे पूछ बैठी—'तू अगर ऐसा ही वीर है, तो फिर एक लड़की क्यों ला नही सका?' अंबिका के सवाल से अचरज में पड़कर कालिदास बोला—'ओ! लड़की लाने के लिए भी क्या वीर होना जरूरी है? दादा, इसकी बात सुन रहे हो? अरे जो लोग घर में रहते हैं, वही लड़की लाया करते हैं। वीर तो तरह-तरह के युद्ध-विग्रह करने में दिशा-दिशा में देस-परदेस में चक्कर ही लगाया करते हैं। है न दादा?

अंबिका ने हंसकर पूछा, अच्छा! तो यह बात है? अब जाकर वीर पुरुष घर में आ घुसे हैं, क्यों?

परंतु कुछ ही दिनों में अंबिका की वह हंसी हवा हो गई। कालिदास उन्हीं के यहां बैठा बातें कर रहा था। बच्चे बिस्तर पर चढ़कर इधर-उधर उछल-कूद कर रहे थे, बत्ती के धीमे उजाले में अंबिका का चेहरा बड़ा ही शांत और कोमल-कोमल-सा दिखाई पड़ रहा था? वह चाहे जैसी भी क्यों न हो, मिट्टी से लिपी-पुती दीवार पर पड़ी उसकी परछाई एक सुगठित शरीर वाली नवयुवती-सी लग रही थी। कालिदास कुछ देर उस परछाई पर नजर डाले रहा, फिर धीमे स्वर में हंसते हुए कहा—'एक बात तू जानती है या नहीं अंबिका? मेरी मां एक दिन मेरे ही लिए तुझे देखने आई थी, तुझे पता चला था या नहीं?'

पास ही कोई अजीब तरह की तेज आवाज होने पर पेड़ के पक्षी जैसे चौंक-से पड़ते हैं, स्तब्ध-से रहकर उस आवाज की गति-प्रकृति निर्णय करने की कोशिश करते हैं, उसी तरह अंबिका भी चौंककर ठिठक गई थी। स्तब्ध-सी होकर उसने कालिदास के चेहरे की ओर देखा था। कालिदास बेवकूफ गूंगे जैसा हंस रहा था। अंबिका की नजर

मानो उस हंसी को क्षणभर से ज्यादा सह नही सकी। कच्ची कटी सुपारी का छिलका उठाने के बहाने उसने झट से अपना चेहरा उजाले से ओझल कर लिया था।

कालिदास ने फिर पूछा—तुझे पता चला था या नहीं ?

बत्ती के दूसरी ओर देखती हुई अंबिका ने धीमे स्वर में कहा था—'क्या जाने। मुझे तो उन सब बातों का कोई पता नहीं।'

कालिदास अब खुलकर हंस पडा। फिर बोला—'ओ, तुझे उसका कोई पता ही नहीं चला था ? दरअसल मां को तो मैंने ही भेजा था। समझी ? कह दिया था—जा, तू ही जाकर देख आ। मां को भी पसद आ गई थी। मगर क्या हो ! उस समय नीलकांत ने आकर कहा—अंबिका से मुझे ही विवाह कर लेने दो।—कहा का मतलब है, उसने उसी बीच अपने मन में तय ही कर लिया था। तब मैंने भी कह दिया कि ठीक है, तुम ही कर लो विवाह !

इसके बाद कालिदास ने फिर एक बार हंसते हुए पूछा, 'नीलकांत ने शायद ये बातें तुझसे बताई ही नहीं थी न ? हा, और भला वह कहता ही क्यों ? अगर कहने की बात होती तब कहता न !'

अंबिका को कोई जवाब देते नहीं बना था। और दिन ऐसे समय में वह कालिदास से कह देती—हां, अब तू जा। काफी रात हो गई, उधर भात सूखकर कर-कर चावल हो गया होगा।

परंतु उस दिन उससे वह बात कहने की ताकत ही जैसे उसमें नहीं थी। बिस्तर पर चढ़कर उछल-कूद करने वाले बच्चों से उसने कोमल जड़ता-मिश्रित स्वरों में पूछा था—'तुम सब अब यों ही चीख-पुकार मचाते रहोगे या खाना खाओगे ?'

बच्चों में से दो बच्चे मां के सवाल को भी अपने उछल-कूद का अंग बनाकर गला फाड़-फाड़कर चीखने लगे—'खाना खाएंगे, खाना खाएंगे।'

दो बच्चे जो कुछ कहते हैं, शेष दो अगर उनका विरोध न करें तो खेल जमता नहीं। इसलिए शेष दो बच्चे चीखने लगे—'नहीं खाएंगे, नहीं खाएंगे। चीखते रहेंगे।' उन दोनों पक्षों में किसकी आवाज का जोर कितना है और कौन ज्यादा तेजी से शब्दों का उच्चारण कर सकता है, इसकी होड़ चल रही थी। इस शोर-गुल के बहाने अंबिका कालिदास से दूर हट गई थी। वह रसोई-घर के दरवाजे की ओर कदम बढ़ा रही थी।

अबिका की जबान बंद हो जाना ही जैसे उस दिन कालिदास के लिए संतोष का विषय हो गया था। 'अरे बच्चो, इतना शोर क्यों मचाए हुए हो ? जाओ, चुपचाप खाना खाकर सो रहो।' कहकर वह खुद भी आंगन में निकल आया था।

किसी आंशका के मारे जिस तरह कोई चिडिया पत्तियों के बीच चुपचाप छिपी हो, उसी तरह उस रात को अंबिका अपने बच्चो के बीच सिकुड़ी हुई समाई रही।

उसके बाद बहुत दिन बीत गए। अंबिका कालिदास से बहुत कुछ बातें करने के बावजूद अपने मन का संकोच मिटा न सकी। उसने कई दिन सोचा था कि कालिदास

की बातों में किसी तरह का उलझाव नहीं है, इसलिए वह उसके सामने तन-मन से सीधे होकर खड़ी हो जाएगी। मगर ऐसा सोचते ही अचानक कालिदास हो-हो कर हंसता कोई दूसरी बात छेड़-छाड़ उसे गूंगा कर देता। कभी-कभी वह कहता—"देख तो जरा, मैं ठहरा अकेला आदमी ! आधी रात तक तेरे साथ हंसी-मजाक करता, नोक-झोंक करता बैठा रहता हूं। क्या तू एक दिन भी यह बात नहीं कह सकती, कि अरे निठल्ले, रात के दो पहर तक तो यहीं बिताया, अब शेष दो-पहर रात के लिए क्यों घर जाने की बात करता है ? मैं जानता हूं, तू तो कहेगी नही। लेकिन मैं घर जाकर क्या सोचता हूं, जानती है ? सोचता हूं—तू नहीं कहती तो खैर न कह। मैं भी तो यह बात कह सकता हूं कि अंबिका, अब और घर क्या जाऊ ? एक बोरा दे-दे यहीं बिछाकर पड़ा रहूं।"

कालिदास जब तक वहां रहता दोनों बड़े लड़के तो सोते ही न थे। उसी समय को पकड़े रहकर वह आधी रात बिता देता, ऐसा ही होता था, उसकी बातो का लहजा। कभी-कभी अंबिका दांत-पीसने लगती, कभी-कभी कड़ी बात कहकर उसकी जबान बंद कर देना चाहती, परंतु ज्यादातर वह शर्म और डर के दबाव से बिना हिले-डुले चुपचाप बैठी रहती।

कभी-कभी अचानक अंबिका का यह पूछने का जी होता—मगर तूने दूसरी लड़की से विवाह क्यों नहीं किया ? परंतु यह भावना मन में आते ही वह अपनी जबान का सिरा दांतों से दबा लेती। नहीं, नहीं, यह बात तो उससे पूछी ही नही जा सकती। वह कहां की बात उठाकर कहां ले जाएगा, बातों-बातों में उसे ले जाकर किस खड्ड में डाल देगा, क्या पता ? जब कभी ऐसी रसीली हल्की-सी बात अंबिका के मन में आई है, तभी वह दुगुनी सतर्कता से अपने को संयमित करती रही है। और यह तय करती रही है—वह तो खुद किसी बात को गैर जरूरी राह से बढ़ने नहीं ही देगी बल्कि कालिदास भी कभी जरा भी उड़ना चाहेगा तो तब उसके पंख कतर देगी। कभी-कभी वह सोचती कि उसे ऐसी भद्दी गालियां सुना दे, जिससे वह सीधा हो जाए। मगर वह काम करने का उसका मन नही होता। उतनी चोट सह सके, उस आदमी का इतना दर्द ही नहीं है।

परंतु एक दिन अंबिका अपने मन और आवाज कठोर बनाने को लाचार हो गई। उस दिन दयाराम बूढे ने अंबिका को अपने बरामदे मे बुलाकर बड़े जतन से बैठा कर पूछा था—अंबिका ! यह बेचारा कालिदास तेरे हाथ की रसोई एक समय खाने के लिए बड़ा ही आग्रह करता है। अगर ऐसा है, तो बेचारे को रसोई बनाकर एक वक्त खिला क्यों नहीं देती ?

अंबिका को अचानक गुस्सा चढ आया। वह कह उठी—खुद ही आधा पेट खाकर गुजारा कर रही हूं। फिर उसे किसके भंडार से लाकर खिलाऊं ?

बूढ़ा बोला—ऊंह, सामान के अभाव से बात थोड़े ही पड़ी रहती है ? अगर तू बता दे कि क्या चाहिए तो वह मछली-मास आदि जिस किसी चीज की जरूरत हो, वह

तो खुद ही ला देगा न। दरअसल तेरा मन होना चाहिए।

ओ—। अंबिका मानो क्षणभर में बहुत-सी बातें समझ गई। कालिदास अंदर-अंदर बहुत आगे बढ़ आया है। तब तो उसने दयाराम बूढ़े से भी बहुत कुछ कहा होगा। भला क्या-क्या कहा होगा ?

नहीं, नहीं, यह बात नहीं हो सकती। अंबिका ने उस दिन जबान खोलने के इरादे से ही जबान खोली। भला इन बातों में सिर घुसाने की तुम्हे क्या पड़ी है ? उसके पास रुपए-पैसे हैं, चाहे मछली खाए, मांस खाए, चाहे राज-भोग खाए, शहर के होटल में जाकर क्यों नहीं खा आता ?

—उफ़, तू तो बात समझती नही। बूढ़े ने उसे समझाने के लहजे में कहा, "वह बेचारा तो होटल का राजभोग खाना नहीं चाहता है न। वह तो तेरे हाथ की बनाई "

अबिका ने बूढ़े को बात पूरी करने नहीं दी।

—भले ही उसे समझ मे आए या न आए, कम से कम तुम्हें तो लाज-हया की समझ होनी चाहिए थी ? मैं तो अब समझ गई हूं न, कि तुम्हीं ने उसे शह दे-देकर मेरे पीछे लगा दिया है। सीधे मेरे घर मे घुसने की तो उसे हिम्मत ही नहीं पडती। आकर घुसता है तुम्हारे यहा, मंत्र लेता है तुमसे, और मंत्र लेकर किसी बहाने झट से आंगन पार कर मेरे घर में घुस जाता है। तुमसे मैंने आज बता दिया, वह आएगा तो उसे भी बता दूंगी—आज से वह आंगन पार कर मेरे दरवाजे पर कदम न रखे। हा!

—अरी, सुन तो जरा, भला इतना नाराज क्यो हो रही है आखिर?— बूढ़े दयाराम ने एक निरीह, शांत मृदुल हसी हंसते हुए पूछा।

अंबिका ने और ज्यादा कठोर स्वर मे पूछा—भला तुम उसकी ओर से इतनी वकालत क्यो कर रहे हो ? मैं तो अकेली औरत ठहरी; आज वह मेरे साथ चुहलबाजी करे, कल मेरे हाथ की बनी रसोई खाए, परसो एक कोने में बोरा बिछा कर सोया रहे, और चौथे दिन मेरी छाती पर सवार आवेश के मारे अंबिका का गला रुंध गया। कुछ क्षण बाद रुआंसी होकर उसने कहा—'उसके बाद क्या फिर मै इस गांव में रह पाऊंगी ?'

कुछ देर बूढ़ा और अंबिका दोनो स्तब्ध-से रह गए। फिर बूढ़े ने धीमी आवाज में धीरे-धीरे कहा—'अबिका यह सच है कि मै उसकी ओर से वकालत कर रहा हूं। मगर किसलिए कर रहा हूं, जानती है ? तू तो इतने दिनों से मेरे आमने-सामने रहकर देखती रही है न , कि मेरे रुपए-पैसे, धान-चावल की कोई कमी नहीं है, मगर उसके सिवा तो मेरा और कोई नहीं है। मेरी जिदगी अब खत्म होने को हो। लेकिन यह जिदगी सूनी-की-सूनी रह गई। इसी कारण इस दुनिया में जो आदमी जो कुछ चाहे, अगर वह चीज उसे मिलते देखता हूं, तो मुझे बड़ी खुशी होती है। नीलकात ने थोड़ी-सी जमीन मांगी थी, मैंने जमीन के साथ-साथ घर भी दे दिया था। हां, बस जाए, एक दुनिया बस जाए। जितने दिन बीत रहे हैं, लोगों को अपना मन चाहा मिलते देख

उतना ही ज्यादा अच्छा लगने लगा है। नहीं तो भला और क्या देखकर मुझे सुख मिलेगा? यह कालिदास—वह भी कुछ ही दिनों में शायद मेरे जैसा ही निठल्ला हो जाएगा। वह आज एक बार तेरे हाथ की रसोई खाना चाहता है। इसमें रखा ही क्या है? उसे खाना मिलना चाहिए। तू पेट के दाने के लिए दौड़-धूप कर रही है। अगर तेरी यह यातना मिट सके तो मिटनी चाहिए। मेरी आंखों के सामने ही वैसा होना चाहिए। तभी तो मुझे सुख मिलेगा?'

क्षणभर रुककर बूढ़ा फिर उदासी भरे स्वर में कहने लगा—'और तू इस गांव में रहने की बात कह रही है न? तुझे क्या गांव के लोगों ने सिर पर उठाए रखा है? या तुझे बिलकुल गरीब-बेसहारा समझकर क्या वे लोग नाक-भौं बिना सिकोड़े, 'हट-हट-दूर-दूर' किए बिना रहते हैं? अंबिका, समझती है न, लोगों के रहने के लिए ही गांव चाहिए। जिंदगी भर सजा भोगने के लिए तो नहीं चाहिए न।'

उस दिन अंबिका और ज्यादा डर गई। बूढ़े के तरह-तरह के तर्जन-गर्जन, डांट-डपट की अपेक्षा उस दिन की धीमी आवाज में कही गई बातों से उसका मन ज्यादा मुरझा गया। अपना सारा गुस्सा उसे कालिदास पर उतारने की इच्छा हुई। अब तो उसकी परछाई की बात सोचने पर भी उसे डर लगने लगा। उसने कुछ घुमा-फिरा-कर कालिदास को समझा दिया—जैसे वह अंबिका और अंबिका के घर के साथ नाता न रखे।

जैसा कि अंबिका चाहती थी, कालिदास ने भी उसके साथ बातचीत बंद करने का भाव दिखाया। परंतु अंबिका को एक बात से बड़ा मजा आया। उससे बातें न करने को भी जैसे कालिदास ने एक बडा अच्छा खेल समझ लिया था। उससे बिना बोले बूढ़े के बरामदे में जाते समय उसकी सरस भंगिमा देखने लायक होती। बाते नहीं करता था पर अंबिका से आंखें चार होते ही ऐसी हंसी हस देता कि क्या कहना। ऐसी स्थिति में अंबिका हंसे या रोए, कुछ तय नहीं कर पाती थी।

एक दिन किसी बात पर अचानक उसने कालिदास से पूछ लिया—भला तू इस तरह से होंठ दबाए किसलिए हंसता रहता है?

कालिदास बोल उठा—'तू तो अब जी खोलकर हंसने ही नहीं देती न।' और इतना कहकर वह हो-हो कर हंसने लगा।

वही कालिदास! बंसी में फंसा ढोरहा सांप! बाजार पहुंचने तक सारी राह अंबिका के साथ-साथ कदम बढ़ाता रहा। पर उन दोनों में बातों का आदान-प्रदान बिलकुल नहीं हुआ। बीच में एक बार अपनी ओढ़नी सहेजने के लिए दोनों दड़बों को एक ही हाथ में ले रही थी, तब कालिदास ने जल्दी-जल्दी पूछा—अगर असुविधा हो रही है, तो दड़बों को मुझे दे, मैं ही ले चलूं।

अंबिका ने मना कर दिया। बाजार पहुंचते ही कालिदास सारी बातों में आगे बढ़कर भाग लेने लगा। अंबिका इस बाजार में पहले बहुत बार आई थी। पर वह

ढेंकिया[1] पुदीना, शहजन पकी सुपारी, भतुवा साग[2] आदि बेचने आई थी, कबूतर बेचने कभी नहीं आई थी।

—इधर आ। कहता हुआ कालिदास बाजार के एक खास अंचल की ओर बढ़ गया। उस अंचल में मछली, पाठा-खस्सी का मांस, बत्तख-मुर्गी, कबूतर, कछुआ आदि तरह-तरह के मछली मांस की खरीद-फरोख्त होती है। कालिदास ने एक बार जल्दी से उस कतार को एक सिरे से दूसरे सिरे तक देख लिया। "अरी, आज तो यहां कबूतर दिखाई ही नहीं देते !" उसने कहा, फिर गरदन उठाकर दो-तीन बार इधर-उधर देखने के बाद बोला—'तो फिर हमें यहीं बैठना होगा।' मुर्गी बेचने की जगह के पास ही बत्तख-कबूतर बेचने की जगह थी, वहीं कुछ खाली-सी जगह पर खड़े होकर कालिदास ने अंबिका को पुकारा।

उसके पास के मोटे-से, मुच्छड़ लुंगी पहने व्यापारी ने तिरछी नजर से कालिदास, अंबिका और कबूतरों की ओर देखा। वह बड़ा व्यापारी था। उसकी दुकान पर एक छप्पर लगी थी, वह खुद भी एक चारपाई पर बैठा हुआ था और चारपाई के चारों ओर बड़े-बड़े बहुत-से दड़बे पड़े हुए थे। कुछ दड़बे खाली थे। पर ज्यादातर दड़बों में विभिन्न रंगों, विभिन्न आकृतियों की झुड-के-झुंड मुर्गियां भरी थीं। सिर्फ एक दड़बे में बत्तखों का एक झुंड बैठा हुआ शायद झपकी ले रहा था। कालिदास जगह बदलकर वहां पहुंचा और पूछा—'लगता है तुम्हारे पास कबूतर हैं नहीं?'

उस आदमी ने कहा—'नही, आज तो हैं नही। परसों पच्चीस कबूतर थे सब उठाकर ले गए। रविवार को हाट में जाने पर ही ला सकूंगा कबूतर।'

कालिदास ने पूछा—'पच्चीस कबूतर भला कौन ले गया, भाई?'

—कल जो मीटिग हुई थी, उसके स्वयंसेवक आकर ले गए। कहते हैं कि मीटिंग में बहुत-से कबूतर उड़ाने होते हैं। अगर मेरे पास और भी कबूतर होते तो वे ले ही जाते।

—किस दर से बेचे थे कबूतर? कालिदास जरा भी देर किए बगैर उस आदमी से दोस्ती जोडने में जुट गया। अंबिका ने डरते हुए एक बार उस आदमी पर नजर डाली और सिर झुका लिया। चार कबूतरों की भांति, वह भी एक कबूतर-सी बनकर सिकुड़ी बैठी रही। भला गाव के लोगों, अपने बच्चों, बनबिलाव, सियार आदि से बचकर आखिर क्या उसे इसी के पास पहुंचना था?

—क्या बताऊ? अच्छी कीमत तो मिली नही। वैसे बडे-बडे कबूतर—इन कबूतरों जैसे ही होंगे—ऐसे कबूतरों की बिक्री तीन-तीन रुपयों में होती है। लेकिन उन स्वयंसेवकों ने तो जोड़ी के ढाई रुपए के हिसाब से ले ली। बहुत ज्यादा हठ किया, यह

1 ढेंकिया—एक तरह का जगली फर्न जातीय साग

2 भतुवा-साग—एक जगली साग

सार्वजनिक काम ठहरा—मीटिंग का काम—दे देना पड़ा।

—तो फिर हमें भी ढाई रुपए से कम कीमत पर नहीं बेचना है, क्यों?—कालिदास ने जमीन पर, अंबिका के पास ही बैठकर आत्मीयता के स्वर में पूछा—अच्छा महाजन, एक बात बताओ तो भला मीटिंग में वे कबूतर किस लिए उड़ा देते हैं?

स्वयंसेवकों ने कबूतरों की कीमत घटाने के लिए जो बातें कही थीं, महाजन ने उन्हीं बातों को अनुभवी की भांति दुहराते हुए कहा—कबूतर बड़े ठंडे मिजाज के पक्षी होते हैं। इनसे लोगों का बड़ा मंगल होता है, शांति होती है। देश की जनता के मंगल के लिए, शांति के लिए मीटिंग में इन पक्षियों को उड़ा दिया जाता है। पूजा में फूल, प्रसाद, बलि आदि देने पर जैसे देवी संतुष्ट होती है, उसी तरह मीटिंगों में कबूतर उड़ा देने पर जनता की शांति होती है, लोगों की मनोकामना पूरी होती है।

स्वयंसेवकों ने उससे आगे कहा था—जिस जगह के ऊपर से ये कबूतर उड़ते निकल जाते हैं—उन जगहों की हालत सुधर जाती है। वह जगह हरी-भरी हो जाती है। अगर तुम्हारी दुकान के ऊपर से एक भी कबूतर उड़ जाए तो अह्—और क्या पूछना, तुम्हें और कौन पा सकता है?

अंबिका की ओर मुंह मोड़कर कालिदास ने धीमी आवाज से कहा—'सुन लिया न? इनके ऊपर से उड़ जाते ही नीचे के लोगों की कामनाएं पूरी हो जाती हैं। शांति होती है, मंगल होता है। पर ये तो खुद ही आकर तेरे हाथों में पड़ गए हैं। अब तो तेरी शांति होनी चाहिए, मनोकामना पूरी होनी चाहिए। भला, तेरी कौन-सी मनोकामना थी?

बहुत देर से संत्रस्त मौन रहकर अंबिका ऊब-सी उठी थी। अब दो-एक बातें कह उसे जी कुछ हलका करने की इच्छा हुई। उसने नीरस स्वर में कहा—भला मेरी मनोकामना और क्या होगी? लड़के-लड़कियों के साथ दो जून दो मुट्ठी अनाज पेट में डाल सकूं, तो वही काफी है।

—भला दो जून दो मुट्ठी अनाज की फिक्र तुझे क्यों होनी चाहिए? मुझे तो यह बात समझ में ही नहीं आती!—कहते हुए अबोध-सी नजरों से कालिदास ने अंबिका की ओर देखा। उसकी उस नजर से अंबिका चौंक-सी उठी।

धीरे-धीरे बाजार में लोगों की तादाद बढ़ने लगी। गांव का कोई जाना-पहचाना आदमी इधर आता है या नहीं कालिदास इस पर नजर रखे हुए था। अगर उनमे से कोई आकर इस महाजन को सुना-सुनाकर इन कबूतरों की चर्चा अंबिका या कालिदास से करने लगे, तब तो आफत हो जाएगी? नहीं, वैसा कोई आदमी नहीं आया है। जो आए हैं, सारे-के-सारे अपरिचित हैं। लोग पाठा-खस्सी की दुकानों से जल्दी-जल्दी मास खरीद रहे हैं। कालिदास अंबिका जब यहां पहुंचे थे, उस समय तीन बकरों का पूरा-पूरा मांस टंगा हुआ था। देखते-देखते उनमें एक तो खत्म ही हो गया। उसकी जगह एक रस्सी भर टंगी रही। मांस खरीदकर लोग सामने की दुकानों से आलू, प्याज खरीद रहे थे, शायद गर्म मसाले भी। हाथ में रोहू मछली का बड़ा-सा टुकड़ा लटकाए एक

आदमी महाजन के पास जाकर मुरगे का मोल-भाव कर रहा था। कुछ देर तक लोगों के कार्यकलाप देखकर कालिदास ने अंबिका से पूछा, क्यों री अंबिका, तेरी जीभ मे क्या पानी आ रहा है ?

अंबिका ने कुछ जवाब न देकर अपना मुह दूसरी ओर मोड़ दिया। कालिदास ने पूछा—मुंह मोड़कर लार घोंट रही है क्या ?

अब अंबिका ने जवाब दिया—जीभ में पानी रहे तभी तो आएगा ? वह सब तो कब का सूख चुका है।

यह झूठी बात है।—कालिदास ने एतराज किया। बछड़ा दूध पीना छोड़ देता है तो गाय का दूध निकलना भी बंद हो जाता है। पर क्या इसी से यह कहेगी कि गाय का दूध ही सूख गया है? फिर बछड़ा (होगा—फिर दूध आएगा।) आज तू जायकेदार मांस एक बार खा, देखेगी कि कल फिर मांस के नाम पर सर-सर करती लार निकलने लगेगी। वह सब सूखने की चीज नही है। शरीर के अंदर रहकर बाट जोहने वाली चीजें हैं।

अंबिका ने ऐसा कोई भाव नहीं दिखाया जिससे यह पता चले कि उसने समझा है या नहीं समझा है। अपनी चादर के आचल को कुछ खींच-तान कर उसने जरा सहेज लिया।

तभी कुछ मिलिट्री वाले वहां पहुंचे और पास के उस महाजन से मुर्गे खरीदने में कुछ देर शोर-गुल करते रहे। दड़बों में हाथ डालकर वे मुर्गों के छाती-पेट के घेरे, मांस के परिमाण आदि का अंदाजा लगाते रहे। कीमत के बारे में शोर किया, चुने हुए मुर्गों को तोलते समय बाटों के बदले काम मे लाए जाने वाले पत्थर के टुकड़ों की बात पर बहस की। उनमें से दो व्यक्ति अंबिका के पास आकर कबूतरों के दड़बे उठाकर घुमा-घुमाकर कबूतरों को देखने लगे।—'जो कहना है इनसे तू ही कहना।' कहकर अंबिका दूसरी ओर नजरें मोड़ बैठी रही। मगर उनसे कालिदास को भी कुछ कहना-सुनना नहीं पड़ा। कुछ देर में वे दोनों दड़बों को पूर्ववत् रखकर वहां से चले गए। कालिदास ने दबी आवाज में कहा—वे कबूतर खरीदने थोड़े ही आए थे ? वे तो तुझे देखने के लिए ही आए थे।

अबिका के कान-सर गर्म हो उठे। कालिदास हे-हे कर हसने लगा। शर्म के मारे रग बदले चेहरे को कालिदास की ओर मोड़कर अंबिका ने कुछ ऊंची आवाज में कहा—'भला मुझे देखने को क्या है ?'

—तुझे देखने को क्या है, यह तुझे मालूम हो या न हो, या जानते हुए भी अनजान बनी रहती हो, यह तेरी अपनी बात है। परंतु हम जो जानते है, जानते ही हैं। हम जो जानते है वही सही है। कालिदास ने अंबिका की ओर देखा, उसकी आंखें झलमला उठीं। अंबिका को अपने पूरे शरीर में कालिदास की नजरों की गर्माहट लगने का अनुभव हुआ।

समय निकलता रहा। धीरे-धीरे दिन ढलता गया और शाम हो गई। जिन दुकानदारों के पास 'मेंथल-लाइट' थे, वे यहा-वहां लाइट जलाने का इंतजाम करने लगे। कुछ देर बाद जो बत्तियां स्थिर, साफ उजाला देंगी, वे अभी चिथड़े, स्प्रिट आदि के सहारे धुंधुआती जलती आग के गोले-सी लग रही थीं।

अंबिका सोच में पड़ गई थी। जो ग्राहक हर जोड़ी के लिए दो-दो रुपए देना चाहते थे, उन्हीं के हाथ कबूतर बेच देना अच्छा होता। उस महाजन की बात सुनकर ही कालिदास ढाई रुपए जोड़ी पर अड़ा हुआ है। मगर इधर शाम हो आई। एक दड़बे के कबूतरों ने एक बार 'घुट-घुट, घुट-घुट' आवाज कर बेचैनी दिखाई। देखकर अंबिका बोली, 'शायद इन्हें भी भूख लग आई है।'

कालिदास की जीभ पर मानो रस ही रस झलक आया था। बोला, 'अरे भूख नहीं लगी है। शायद तूने गौर नहीं किया है—उस दड़बे के कबूतर मादा हैं, इस दड़बे का एक नर है, दूसरा मादा। चाहे दड़बे में ही हों, बाजार में ही हों, वे एक-दूसरे को पहचान गए हैं।'

अंबिका ने एक बार दोनों होंठों पर जीभ फेरी। बोली—इतनी देर हो गई, अगर कबूतर बेचे न जा सके, तब तो मुश्किल ही होगी।

—बिकेंगे भला क्यों नही ? जरूर बिक जाएंगे। कबूतर-मांस की महिमा समझने वाला आदमी आखिर निकलेगा ही, तू एक बात जानती है या नहीं, अंबिका।

अंबिका ने कालिदास की आंखों की ओर देखा।

—कबूतर का मांस बड़ा गर्म होता है—क्षणभर रुककर कालिदास ने एक विचित्र स्वर से कहा—कबूतर का मांस खाने के बाद अकेले सहन करना ही कठिन होता है।

अंबिका की जबान से कोई आवाज नहीं निकली। लगा जैसे उसे कोई चीज एक सिरे से लपेटे जा रही है। समूचे शरीर में उसे अजीब तरह की सनसनाहट और बेचैनी का अनुभव हो रहा था। सांप के लिपटने पर क्या ऐसा ही अनुभव होता है ? पर कहां ? उसे तो किसी तरह का कोई डर नहीं लग रहा है। सांप की ठंडी देह के छुअन से तो उसका शरीर झन-झना नही रहा है। बल्कि उसे तो एक तरह की ऊष्मा का अनुभव हो रहा है। क्या कबूतर-मांस की गर्मी की बात सुनकर ही उसे ऐसा लग रहा है ?

कुछ क्षण रुककर कालिदास बोला—अंबिका, मैं एक बात सोच रहा हूं। ये कबूतर मैं ही खरीद लेता हूं। आलू, प्याज, गर्म मसाला जो भी चाहिए, मैं ही खरीद ले रहा हूं। तेरे यहां ही चलकर एक जून अच्छी तरह से खाना खा लूं।

उसी समय बाजार के उस मछली-मांस के अंचल में छाती पर रंगीन बैज लगाए कुछ किशोर-किशोरियां आए। उमंग में भरे हुए उन लोगों ने चीख-पुकारकर मछली खरीदी, सब्जी खरीदी, और आखिर में बकरे के मांस की दुकान में खड़े हो गए। उन्हें देखकर कालिदास को कुछ कौतूहल हुआ। वह एक बार उठकर उनके पास गया। कुछ

देर बाद फिर लौट आया। उसे पता चला कि वे उस पिछली मीटिंग के स्वयंसेवक हैं। मीटिंग खत्म हो चुकने के बाद अब बड़े उल्लास से उनका भोज होने वाला है। भोज खाने के बाद शरीर में ताकत जमा कर कल वे यह देखने जाएंगे कि चंद्रपुर के लोग कौन-सी मीटिग, कैसे आयोजित करते हैं।

यह गैर-जरूरी खबर सुनाकर कालिदास ने फिर धीमी आवाज में अंबिका की आंखों की ओर देखते हुए पूछा, अंबिका, तो तूने क्या तय किया? इतने सारे मुर्गे-मुर्गी, इतने पाठा-खस्सी, इतनी मछली इस बाजार में खत्म हो गईं। इतने सारे लोग भोज खा सकते हैं। क्या हमारी भोज खाने की ताकत नहीं है? अंबिका चल हम भी खाए, तू जरा जायका तो देख ले।

हर दुकान में इसी बीच बत्तियां जल उठी थीं। दूर की बत्तियां टिमटिमाती चमक रही थीं। अंबिका के आस-पास की बत्तियों की लौएं हलकी हवा में चंचल-सी होकर कांप रही थीं। मुर्गी-दुकानदार की दुकान की मेंथल-लाइट के उजाले में कालिदास का चेहरा चमक रहा था, उसकी आंखें भी चमक रही थी। कबूतर एक-दूसरे से सटे मानो सांस रोके, निस्तब्ध से बैठे हुए थे। अंबिका के चेहरे पर उजाला अच्छी तरह नहीं पड़ रहा था। उसके कपोल और गरदन पसीने-पसीने हो रहे थे।

—तो भी वही बात रही। तू यहां थोड़ी देर बैठ। मैं अभी-अभी आ रहा हूं।—कहकर कालिदास आलू-प्याज, गर्म मसाला खरीदने के लिए उठ गया। जाते समय उसने कबूतरों के दड़बों को उठाकर अंबिका के पीछे रख दिया।

चेहरे और गरदन को चादर के सिरे से पोंछकर अंबिका ने कुछ हिल-डुलकर फिर बैठने की कोशिश की। हिलते-डुलते हुए उसे ऐसा लगा मानो उसके शरीर के विभिन्न अंगों में बहुत-बहुत मांस जैसे हिल-डुल उठा। अधभरे किसी घड़े को हिलाने पर जैसा होता है, उसका शरीर भी उसी तरह झकझोर उठा। उसके अंगों में भी इतना मांस है, उसे कभी इसका अनुभव ही नहीं हुआ था।

कुछ देर पहले जहां वे कबूतर थे, उस ओर अंबिका एकटक देखती रही। तो फिर यही हो। हूं। यही हो। नगाड़े, शंख, हुलहुली आदि की ध्वनियों के बीच आकाश से उतरे ये कबूतर अगर उन्हें जरा सुख पहुंचाना चाहते हैं, तो फिर वही हो—

तभी चार लड़के बदहवास से उस अंचल में पहुंचे।

कबूतर? कबूतर हैं कहां? क्या कहा? कबूतर नहीं है? गजब हो गया। कबूतरों के बगैर तो काम नहीं चलेगा। भले ही पचीस न मिलें, कम से कम बीस या पंद्रह, या दस तो चाहिएं ही। हां, यहां कितने हैं? चार?

वे सभी मीटिग के स्वयंसेवक थे। उनकी छाती पर के बैजों का रंग अलग था। वे चंद्रपुर की मीटिग के स्वयंसेवक थे। कल ही मीटिंग होने वाली है। उस मीटिग में भी उड़ाने के लिए कबूतर चाहिए।

—अभी इन चारों को ले लेते हैं। इसके बाद उस दूसरे बाजार में जाकर खोजते

हैं और न मिलें तो इन्हीं चारों से काम चला देना होगा, एक स्वयंसेवक ने कहा।

अंबिका लगातार थूक निगलती रही। असहाय दृष्टि से उसने चारों ओर देखकर जैसे किसी की खोज की। क्षणभर में उसने अपने मन की अनेक चिंताओं से संघर्ष किया। फिर टूटी आवाज में कहा—'एक आदमी ये कबूतर खरीदेगा, कहकर गया है। आप लोग गांव में खोजें तो कबूतर मिल जाएंगे।

—ओ, नहीं-नहीं, गांव के जिस घर से कबूतर लाएंगे, उड़ा देने के बाद वे फिर उसी के यहां वापस चले जाएंगे, ऐसे कबूतरों की हमें जरूरत नहीं। हां, इन्हें दे दो। कितना लोगी बताओ। इन्हें खरीदने की बात जो आदमी कह गया था, उसे समझाकर कहना, इन कबूतरों की मीटिंग में जरूरत है। जनता के काम के लिए चाहिए, लोगों की शांति के लिए चाहिए। मंगल के लिए चाहिए। तुम समझा देना, वह समझ जाएगा।

शरीर का सारा खून जैसे अंबिका के सिर पर इकट्ठा हो गया। उसका चेहरा-गरदन फिर पसीने-पसीने हो गए। देह-मन की सारी शक्ति से वह मानो किसी और अशरीरी शक्ति के साथ प्रचंड बहस में जुट गई।

—बताओ, कीमत कितनी लोगी? अंबिका ने कातरता भरी दृष्टि से लड़के के चेहरे की ओर देखा।

—हां, कितना चाहिए?

अंबिका ने एक बार थूक घोंट कर टूटी आवाज में कहा—'जोड़ी दो रुपए!'

उसने चादर की आंचल से फिर एक बार अपने चेहरे और गरदन को पोंछ लिया।

1970

गंगा स्नान

विवाह के बाद से यह मेखला[1] चंद्रा ने पहना ही नहीं था। आज शाम को पेटी खोलते ही अचानक उसी पर हाथ पड़ गया था। इसी कारण दो घंटे के लिए पहन लिया था। न धोने की जरूरत, न इस्तरी करने की। सिर्फ पहले ही मोड़ के मुताबिक तह कर देने भर से काम हो जाता है।

अलगनी के पास खड़ी चंद्रा बड़ी सावधानी से मोड़ और कोने मिलाकर मेखला को तह कर रही थी। 'पास की ही दो-एक पूजा देख आऊं' कहकर वह गई थी, पर लौटने में देर हुई है, दरवाजे पर कदम रखते ही धूने की गंध मिलने से उसे पता चल गया था। घरेलू काम करने वाला लड़का नंदी किसी के कहे बगैर, खुद आगे बढ़ शाम के समय घर में धूप-धूना नहीं जलाता, यह तो जानी हुई बात है, धूना जलाने का काम या तो तिलक ने खुद किया है या, हुक्म देकर नंदी से करवाया है। और चंद्रा के हिस्से का काम तिलक करे, यह उसके नाराज होने की निशानी है। इसी कारण चंद्रा कहीं रुकी नहीं। बाहरी दरवाजे से सीधे अलगनी के पास पहुंची। चप्पलें उतारने की बजाय पैर झटक कर कुछ दूर फेंक दी। रसोई आदि की उपयोगिता पर ध्यान दिए बगैर सामने जो भी कपड़ा मिला, बदल कर वही पहन लिया। उतारी हुई ब्लाउज को रखना था, इसलिए रख दिया। उतारी हुई चादर को अलगनी के ऊपरी डंडे पर रख दिया, हालांकि उसका एक सिरा जमीन पर आ पड़ा। सिर्फ मेखला के मोड़ों को मिलाने में उसने कुछ यत्न किया। विवाह के बाद आज ही अचानक इस मेखला को उसने पहना था और सिर्फ दो घंटे के लिए।

तिलक ने खुद ही धूना जलाया था, इसी बीच धूपदानी में उसने दो बार कोयले डाले, लगभग पांच बार नया धूना डाला, घर-भर में लगभग तीन बार घुमाया। फिर भी मच्छरों की भन-भनाहट घटी ही नहीं। उसने जिन-जिन जगहों को मच्छरों की आवास-स्थली समझा, उन सभी जगहों में उसने धुआं दिया। घुटने मोड़कर पलंग के तले घुसा, टूल पर चढ़कर पिताजी की बड़ी तस्वीर के नीचे धूपदानी घुसा दी, टंगे हुए कैलेंडरों को बाएं हाथ से झाड़ दिया। इसके बाद जब उसे याद आई कि हो सकता है, अलगनी के कपड़ों में भी मच्छर घुसे रह सकते हैं, तब वह अंदर के कमरे में भी आ

---

1. मेखला—असमीया महिलाओं का पहनावा।

गया। चंद्रा उस समय मेखला को तह कर रही थी।

चंद्रा की ओर एक बार नजर डाल, अपने टंगे हुए कोट के नीचे धूपदानी पकड़े, रहकर तिलक ने पूछा—'क्या बहुत दूर निकल गई थी ?'

क्षणभर में ही मानो चंद्रा की छाती पर से एक बोझ उतर गया। जैसा कि उसने सोचा था, तिलक की आवाज में वैसी कोई गंभीरता नहीं थी। उसका मन इतना हलका हो गया कि जवाब देने में भी उसकी जबान लड़खड़ा गई। कहा—मैंने सोचा ही नहीं था कि उतनी दूर जाऊं। लेकिन एक-एक कर देखते-देखते बिलकुल मारवाड़ी पूजा-मंडप तक पहुंच गई।

तिलक बोला—मैंने तो पहले ही सोचा था। जिन लोगों के साथ गई हो, ऐसा ही होगा।

लावण्य की भाभी, रीना, जैसी कुछ औरतों, लड़कियों को घूमने का जरा भी मौका मिले कि बस, हो गया। तिलक की ऐसी धारणा है, कि उन्हें और कुछ नहीं चाहिए।

चंद्रा हंस पड़ी। हंसते हुए बोली—'नहीं, नहीं, लावण्य आदि के कारण देर नहीं हुई। मुझे ही एक जगह देर हो गई। ओ, समझे, आज मैंने एक ऐसा काम कर डाला, जिसके कारण पूरी राह में लावण्य आदि मेरी हंसी उड़ाती रहीं।

तिलक को किसी रस का आभास मिला। पूछा—'क्या हुआ ? क्या तुमने उनसे यह कहा कि मुझे घर का पहरेदार बनाकर आई हो ? क्यों ?'

—नहीं, नहीं, ठहरिए ! बात यह है कि बार-बार पूछते रहने के बावजूद मै आज आपका नाम जबान पर नहीं लाई।

तिलक अब हंस पड़ा। पूछा—क्यों ? और मेरा नाम जबान पर लाने की जरूरत क्या पड़ गई थी ? क्या किसी ने पूछा था ?

—बात यह हुई कि मैं मारवाड़ी पूजा मंडप में देवी को प्रणाम कर उठी थी। भला कहिए तो वैसे समय में मन में कैसा लगता है ? हमारे जैसे कितनों ने ही हमारे साथ प्रणाम किया था। किसी-किसी के घरवाले भी उनके साथ ही प्रणाम कर रहे थे। मन में कितना अच्छा लगता है। ऐसे समय देवी के सामने आपका नाम जबान पर लाना बहुत बुरा लगा, समझे न।

लगातार बिना रुके बातें करते जाना चंद्रा की आदत है। जरा भी कोशिश किए बगैर वह ऐसी बातें कहती जाती है, जिन्हे सुनकर मजा आता है। सतोष से तिलक के मुंह पर फैली हुई हंसी जैसे एक जगह जम गई। वह हंसी होंठों के सिरे पर जरा-सी लगी रही। मानो वही लड़की है, शर्म जैसे उसे ही आ रही हो।

क्षणभर चुप रहकर उसने पूछा—"भला मेरी बात किसने पूछी थी ?"

तह लगाते-लगाते चंद्रा ने उस मेखला को लगभग एक बित्ता चौड़ा और तीन हाथ लंबा कर दिया था। उसका एक सिरा अपनी ठुड्डी से दबाकर छाती के ऊपर दोनों

हाथ घुमा-घुमाकर वह मेखला को मोड़ रही थी, सिर झुकाए हुए ही उसने कहा—"प्रभात भैया ने पूछा था। बहुत दिन बाद आज ही उनसे मुलाकात हुई थी। उन्हें मेरे बारे में कुछ भी पता न था। उन्होंने पूछा था, मैंने बताया था। मगर आपका नाम नहीं बताया, बता नहीं सकी।

—'कौन प्रभात भैया ?' तिलक ने पूछा।

—शायद आप पहचानेंगे नही। प्रभात काकती। हमारे घर के पास ही रहकर कॉलेज में पढ़ते थे। बडे अच्छे थे, समझे न ! मेरी परीक्षा के समय भी नोट आदि देकर मदद किया करते थे। अगर उनसे नोट न मिलते तो शायद मैं पास ही नहीं कर पाती। हमारे छोटे भाई-बहनों को भी वे बड़ा प्यार करते थे। कुछ साल पहले वे वहां से चले आए। उसके बाद फिर उनकी कोई खबर ही नहीं, आज अचानक मिल गए। मेरे विवाह की बात सुनकर भैया इतना हंसे कि क्या बताऊ ? आपका नाम और घर का पता जानने के लिए कितनी कोशिश की। उसी बात को लेकर लावण्य आदि पूरी राह में मेरी हंसी उड़ाती रही, 'वाह, इतनी भक्ति रखती है !'

चंद्रा मानो बातें करते रुक ही नहीं रही थी। सरल आवेग के मारे वह प्रायः एक नन्हीं बच्ची जैसी हो जाती है। परंतु अचानक तिलक की दबी जबान के प्रश्न पर उसकी हंसी, आवेग—सब कुछ क्षणभर में खत्म हो गया। लंबाई में तह को मोड़ने के लिए अपने पेट पर एक हाथ से दबाकर ठुड्डी के दबाव से उसने मेखला को छोड़ दिया। इससे ऊपर की तहें कुछ खुल-सी गई।

तिलक ने कुछ देर पहले ही धूपदानी से अंगारों को फूंकना बंद किया था। फूंकने के लिए मुंह के जितने पास तक धूपदानी को उठाना पड़ा था, फूंकना बंद करने पर भी अनजाने ही वह धूपदानी को उतने ही ऊपर उठाए रहा। उसने बड़ी उत्सुकता से चंद्रा की आंखों में आंखें डाल पूछा—"कौन प्रभात काकती ? उसका घर कहां है ?'

तिलक की आंखों में नजर पड़ते ही चंद्रा की छाती धड़क उठी। कोशिश करने पर भी वह पहले जैसी उमंग में जवाब न दे सकी। कहा—'डिब्रूगढ़ में। लेकिन क्यों ?'

—'डिब्रूगढ में ?' तिलक साथ ही दबी जबान में चीख पड़ा। क्षणभर के लिए उस कमरे में वे दोनों प्राणी कठपुतलों जैसे खड़े रहे। इसके बाद किसी तरह से अगारे गिर न पड़े ऐसे धूपदानी को पकड़े रहकर तिलक वहां से चुपचाप निकल आया।

तिलक के कदमों से जैसे चंद्रा के चेहरे पर चेतना आई। तिलक के दरवाजे पर पहुंचते ही उसने पूछा—'क्यों, आखिर हो क्या गया, बताइए न ?'

दूसरे कमरे से जैसे एक जड़ता ग्रसित गुनगुनाहट सुनाई पडी। नही, नहीं, कुछ भी नहीं हुआ।

बहुत कुछ हो गया। चंद्रा के चिंतन का सूत्र ही खो गया। हो क्या गया है, उसे कुछ भी समझ में नहीं आया। पहली धड़कन के साथ ही उसकी छाती जैसी संकुचित

हो गई थी, वह मानो अब खुली नहीं। काम करने वाले लड़के नंदी ने इसी बीच दरवाजे के पास खड़े होकर उससे दो-दो बार पूछा—आइदेउ[1] 'चावल कितनी कटोरी लूं ?'—मगर चंद्रा को ध्यान ही नहीं था। शायद उसके तीसरी बार पूछने पर ही बात चंद्रा के कानों में आई थी और उसके जवाब में नंदी अचानक चौंक उठा—

'हमेशा जितना लिया करता है, उतना ही ले ले। अब पूछने क्या आया है ?'

पूछने में नंदी का कोई अपराध नहीं। फर्श पर तेल गिरने, निश्चित संख्या में सारिका चिडियां देखने आदि जैसी चंद्रा की कुछ निशानियां हैं, जिनसे मेहमान आने की सूचना उसे मिल जाती है। फलस्वरूप वह नंदी से एक कटोरी चावल ज्यादा लेने को कह देती है, और प्रायः वह यह दावा करती है कि उसकी बात का नतीजा हाथों-हाथ मिल जाता है। पहले ही मेहमान आने का लक्षण देखकर उनके लिए खाना तैयार रखने की चंद्रा की आदत के कारण नंदी उससे सदैव पूछ लेता कि चावल कितनी कटोरी ले। मगर आज वह दंग रहकर वहां से हट गया। वह कुछ समझ ही नहीं पाया।

तिलक की मनोदशा ऐसी हो गई जिसका कुछ अता-पता पाना संभव न था। अंदर के कमरे से निकलते ही उसके शरीर की सारी शक्ति खत्म हो गई। सिर मानो चकराने लगा। इच्छा न होने पर भी वह अंधेरे में ही जाकर सामने के बरामदे की आराम-कुर्सी पर बैठ गया।

कुछ दिन पहले अमोला पट्टी के चौराहे पर उससे प्रभात की भेंट हो गई थी। बहुत दिन बाद मुलाकात हुई थी। कॉलेज के पहले दो सालों में जिन 'उस्ताद' लड़कों से तिलक की दोस्ती हुई थी, प्रभात भी उन्हीं में से एक था। उसी उम्र में प्रभात और उसके साथी अपने जिन निजी अनुभवों की चर्चा करते थे, उस तरह की दुस्साहसिक घटनाओं की बात तो तिलक आदि की विचारधारा की सीमा-रेखा के बाहर थी परंतु उनसे खोद-खोदकर पूछने, सुनने में उन्हें मजा आता था। परंतु दोस्त के रूप में प्रभात तिलक आदि के प्रति सरल था। बहुत दिन बाद प्रभात को देखकर तिलक उमंग में भर उठा था। —कैसे हो प्रभात, क्या समाचार हैं ? कहां से आ रहे हो ? आजकल रहते कहां हो ? कर क्या रहे हो ? आदि आदि अनेक प्रश्नों से उसने उसे ढंक-सा लिया था। पहले तिलक ने प्रभात का दाहिना हाथ झकझोर दिया और उसके बाद उसकी बांह पर अपना हाथ रख दिया। प्रभात भी बहुत खुश था। उसने एक-एक कर तिलक के सवालों का जवाब दिया—किसी तरह से डिग्री तो हासिल कर ली। बाप ने जबरन चाय-बागान के एक काम मे लगा दिया था, पर पसंद न आने के कारण उसे लगभग छोड़ ही दिया है। एक साहसी याने यूरोपियन कंपनी में नियुक्ति की संभावना है। उस कंपनी के सहायक निदेशक से चाय-बागान के मैनेजर के जरिये वह व्यक्तिगत रूप से मिल भी आया है। अब कलकत्ते में जो इंटरव्यू होने वाला है अगर वह अच्छा हो जाए,

---

1 आइदेउ—मा का संबोधन।

तो काम बन जाएगा। इसी कारण वह अभी कलकत्ते की राह पर है। तिलक को उसकी बातें सुनकर लगा था, वही पहले का ही प्रभात है यह, पेट में कोई बात पचती नहीं, बातूनी प्रभात!

बातें करते हुए वे दोनों काफी दूर चले आए थे। एक बार तिलक ने उससे हंसकर पूछा था—'तूने तो अनेक जगहों का चक्कर लगाया, एक्सपीरियन्स बढ़ा है या नहीं? कुछ मजा-वजा लूटा-वूटा

—अरे बहुत-बहुत। मुझे तो तुम लोग जानते ही हो न। 'इंज्वाय' करने की धुन में रहा करता हूं और करता भी रहा हूं। साफ-साफ। मुझमें वह बनावटीपन, पाखंड नहीं है। मगर हां, जोरहाट में रहते समय मै बिलकुल ही बदल गया था। मुझ जैसा दिलदार आदमी भी कभी 'सेंटिमेंटल' हो सकता है, क्या तुम कभी सोच सकते हो?"

हां, सोच नही सकते। इसीलिए तिलक ने उसकी बात आगे भी सुनने की उत्सुकता प्रकट की। फिर वह जोरहाट की बात ठहरी, उसमें उसका व्यक्तिगत आग्रह भी रहा है। फिर प्रभात ने जिस लहजे में बात करना शुरू किया है, उससे बड़ी रसीली कहानी सुनने को मिलेगी, ऐसी आशा की जा सकती है। फिर प्रभात का जैसा स्वभाव है, संक्षेप में बात खत्म करेगा, ऐसी आशा भी नहीं है। इसलिए एक तामोल[1] खा लेना अच्छा रहेगा। तिलक ने दोनों के लिए दो तामोल खरीदे।

दोनों आगे बढ़ते रहे। प्रभात सुनाता जा रहा था। जोरहाट के एक परिवार के परिसर के अंदर के एक छोटे-से घर में प्रभात ने बी ए. की परीक्षा देने का आयोजन किया था। घरवाले शांतिप्रिय, निर्विकार सज्जन थे। वह घर शायद पहले किसी क्रांतिकारी राजनीतिक पार्टी का कार्यालय था, दिनभर वहां तरह-तरह के लोगों का आना-जाना उसे पसंद न था, इसलिए उस कार्यालय को बंद करवाकर उसने घर प्रभात को दिया था। अकेला, कॉलेज में पढ़ने वाला लड़का ठहरा। हो-हल्ला, शोर-गुल नहीं। किराया कुछ कम मिले, कोई बात नहीं। प्रभात होटल में खाना खाता और उस घर में रहा करता। पहले दो-चार दिन तो उसको नई स्थिति से ताल-मेल बिठाने में ही बीते। उस छोटे-से घर में वह अपनी भावना के मुताबिक रहता। 'वॉली' खेलने लायक कुछ खुली जगह के उस पार मालिक की बड़ी हवेली थी। उसमें मालिक अपनी भावना के अनुसार रहा करता। परंतु एक दिन घर की मालकिन ने उसे बुलाकर 'पोर्टिको' में बिठाया और चाय पिलाई।

मुह में भरी पान की पीक थूकने के लिए तिलक एक बार नाली के पास गया, फिर समीप आ गया।

प्रभात कहता जा रहा था—

यह उसकी किस्मत कहें या क्या कहें, पता नहीं परंतु जिस कारण से वह होस्टल

---

1 तामोल--कच्ची सुपारी के साथ खाया जाने वाला पान।

में रहकर भी पास नहीं कर सका था, जिस कारण से आत्मीय-कुटुंबियों के यहां रहकर भी परीक्षा में बैठने को तैयार नहीं हुआ, जिस कारण से उसे होटल में खाने, झोपड़ी में रहने, खुद जगह झाड़ने-बुहारने की वृत्ति अपनानी पड़ी, उसी कारण ने वहां भी उसका पीछा न छोड़ा। पहले ही दिन जब वह पोर्टिको में बैठा चाय पी रहा था, खुले दरवाजे से इधर से उधर निकल जाती हुई मालिक की बेटी पर उसकी नजर में पड़ गई।

एकांत रूप से नारी को अपने समीप ले आने के साथ समाज, चरित्र, नैतिकता आदि का कितना क्या संपर्क रहा है, प्रभात ने कभी इस बात पर विचार नहीं किया था। परंतु परीक्षा पास करने के लिए कुछ त्याग स्वीकार करना है, यह बात वह कुछ दिन पहले से ही सोच रहा था। इसी कारण चाय पीकर अपने घर के अंदर जा, वह लड़की की बात सोचने लगा—हां, खूबसूरत है। परंतु—"नहीं, नहीं, यह सब कुछ छोड़ना है"—उसने अपने मन को दृढ़ किया, उसे परीक्षा पास करनी ही है।

"परंतु समझे न तिलक," प्रभात सुनाता गया, "लड़की-जात पर मेरी धारणा सामान्य-सी है। मेरा स्वास्थ्य और चेहरा, इसमें कितनी मदद करते रहे हैं, पता नहीं, पर मुझे कहीं भी हार माननी नहीं पड़ी है। कहीं हो सकता है कि दस सिनेमा-टिकट खर्च करना पड़ा हो, कहीं हो सकता है कि बड़ी मेहनत कर साहित्य-संगीत, कला-राजनीति की चर्चा करनी पड़ी है, परंतु कहीं मुझे हारना नहीं पड़ा है!"

तिलक हो-हो कर हंस पड़ा, उसके मुंह से तामोल के टुकड़े छिटककर निकल आए।

—तू हंस रहा है? हंस ले! दिन में अठारह-अठारह घंटे तक पढ़ने वाला बुद्धू! भला तू क्या समझेगा? एक-एक लड़की के पास मैं कितनी आसानी से पहुंच गया, उतनी ही आसानी से उससे दूर भी हो गया। 'यह क्या किया प्रभात दा। अब मेरा क्या होगा?' कहती हुई सिसक-सिसककर रोने वाली लड़की को भी दो महीने बाद सड़क पर मिलने पर 'क्यों भूल गए न?' कहकर मौन-निमंत्रण देते देखा है।—अच्छा, वह सब अब छोड़! लेकिन घर के उस मालिक की लड़की का अदब-कायदा सचमुच अलग था। समझा न। चहारदीवारी के अंदर ही मैं हूं इस पर उसका ध्यान ही नहीं। पोर्टिको की सीढ़ी पर पैर रख मैं अखबार मांगता, अंदर जाकर वह काम करने वाले के हाथ अखबार भिजवा देती। सड़क की ओर देखती हुई अकेले कुर्सी पर बैठी रहती, मैं कमीज के बटन लगाते हुए जैसे ही आगे की झाड़ियो की ओर निकलता, वह ऐसे अंदर चली जाती मानो बहुत देर पहले आग पर चढ़ाए हुए उफनते दूध की याद आ गई हो। समझा न, पहले-पहल तो मुझे बड़ा अचरज हुआ। ठीक है, ठहर। तू कितने पानी की मछली है, देख लूंगा। पहले परीक्षा दे लूं। पूरा महीना भर पढ़ाई की। पता नहीं क्यों, पढ़ने का उत्साह भी आया। परीक्षा भी अच्छी रही।

तिलक फिर एक बार धीमे से हंस पड़ा। उसकी ओर देखकर प्रभात ने पूछा, 'तू हंसा क्यों? ओ, महीने-भर पढ़कर ही परीक्षा अच्छी हुई, यह बात सुनकर? क्या मुझे

तुम लोग अपने जैसा समझते हो? उन दिनों मैंने होस्टल में रहकर पढ़ाई-लिखाई नहीं की, इसी कारण तो तू, भवेश, रत्न ये सभी इतने ऊंचे चढ़कर चक्कर लगा सके। अगर मैं पढ़ाई में लग जाता तो किसी का भी पता नहीं चलता। हा, उसे छोड़ दे अब! परीक्षा के बाद घर गया नहीं। उस लड़की के रंग-ढंग ने मेरी जिद बढ़ा दी। मुझे इसके पहले किसी भी लड़की से होड़ बदनी नहीं पड़ी थी। मगर इस बार होड़ बद ली। तुझसे तो बताया ही न, कि मैं पीछे हट आने वाला लड़का नहीं हूं। इस बार भी पीछे न हटा।

कौतूहल की दृष्टि से तिलक ने प्रभात के चेहरे की ओर देखा। तल्लीन होकर उसकी बातें ऐसे सुनीं, मानो रेडियो के समाचार में उसकी परीक्षा का नतीजा घोषित होने वाला है।

प्रभात कहता गया—"एक दिन घरवाली ने कैरम खेलने के लिए बुलाया। दूसरे दिन उस लड़की से चाय, पूड़ी और आलू-भाजी का दांव रखकर कैरम खेलने बैठा। बेस्ट आफ थ्री। सीधे सेट में जीत गया।

बात कहने के साथ-साथ प्रभात ने चुटकी बजाई। जिस दबी आवाज में वह इतनी देर तक बात कर रहा था, उस लहजे को बदल दिया। एक लंबी सांस लेकर उसी तरह से सांस छोड़ी, मानो अब तक चक्करदार किसी पगडंडी पर चलने के बाद आकर वह खुली सड़क पर पहुंच गया हो।

—'हां, उसके बाद की बात बिलकुल आसान है, समझा न? लेकिन मुझे कुछ ऐसे काम करने पड़े, जो मैंने खुद अपने लिए भी नहीं किये थे। इंटरमीडिएट परीक्षा में 'इंपार्टेंट क्वेश्चन' चुन देने पड़े। यहां-वहां से किताबें खोज-ढूंढ़कर लाकर इंटरमीडिएट के प्रश्नों के उत्तर लिख देने पड़े। रात को बारह-एक बजे तक वह लड़की पढ़ाई-लिखाई करने लगी। मेरी अलार्म-घड़ी भी ले ली। मैं अकेले बिस्तर पर पड़ा रहता, उसकी पढ़ाई की गुनगुनाहट मुझे सोने नहीं देती। इसके बाद एक दिन रात को बारह बजे के बाद, जब चांद डूब गया, पढ़ने की मेज पर से उठकर वह लड़की सामने की झाड़ी में चली आई। पहले-पहल उसने कहा था, बड़ा डर लग रहा है। मगर मैंने उसे अभय दिया।"

—'डेंजरस', तिलक अचानक चौंककर छलांग मार दूर हट गया और तुरंत ऊपर की ओर नजर डाली। ऊपरी मंजिल से किसी ने फूटी बोतल सड़क पर फेंक दी थी और फेंकने के साथ-साथ वहां से हट गया था। तिलक या प्रभात किसी की नजर में नहीं आया।

—'इन लोगों की तनिक भी विचार-बुद्धि नहीं है क्या?' तिलक ने गुस्से और विरक्ति से भरी आवाज में कहा। "किस्मत से मुझे कुछ हुआ नहीं, पर ये टूटे टुकड़े यहां सड़क पर पड़े रहें तो कितने लोगों को कितनी मुसीबतें हो सकती हैं।' टूटे कांच के टुकड़ों की ओर देखते हुए तिलक कह उठा।

प्रभात ने उस घटना पर कोई खास उत्सुकता नहीं दिखाई थी। कहा—'आ-आ; नीचे की ओर नजर रखकर कदम बढ़ाने से ही हो जाएगा।'

कोई जवाब दिए बगैर तिलक ने कदम बढ़ा दिए।

प्रभात ने फिर कहना शुरू किया—'हां, तो सुन! उस रात को उस अभिमानिनी लड़की को मैंने जिन लड़कियों से पहले मिला था, उनके साथ ही मिला दिया। परंतु क्या हो गया, जानता है? पता नहीं क्यों, मेरे लिए दूसरी लड़कियों से इस लड़की का एक अंतर रह गया। उसे अपने समीप लाने में कुछ तकलीफ उठानी पड़ी थी, इसीलिए, या और किसी वजह से हो, उसे मैं दूसरी लड़कियों की भांति भुला नहीं सका। उसका वह प्यार कुछ अजीब-सा लगा था।

बहुत दिन बाद एक बार फिर उनके घर की ओर गया था। पर उनके घर में घुसा न था। सड़क पर से ही देखा था, मैं जिस घर में रहता था, न वह घर है, न हमारे प्यार की वह झाड़ी है, वहां नया मकान बन गया है। जिंदगी में पहली बार के लिए मेरा मन कोमल हो गया था ·

·· अरे दुलाल! तू यहीं रहता है क्या?"

उस लड़की का नाम क्या है, अब उसका क्या हुआ? तिलक पूछना ही चाहता था, तभी दूसरी ओर से आते हुए कॉलेज के जमाने के एक दोस्त दुलाल से उनका आमना-सामना हो गया। इसलिए वह चर्चा वहीं बंद हो गई। क्योंकि दुलाल के साथ संपर्क उतना अंतरंग नही।

लगभग आठ बजे प्रभात ने तिलक से विदा ली। जाते समय कह गया, 'अगर वह नौकरी मिल जाए, तब तो इन्हीं शहरों में चक्कर लगाते रहना पड़ेगा। जरूर मुलाकात होती रहेगी। अच्छा—' हवाई जहाज के दरवाजे पर खड़े होकर जैसे अभिवादन करते हैं, वैसा ही अभिवादन कर प्रभात चला गया।

वही प्रभात, यह प्रभात है। घर है डिब्रूगढ़ में। जोरहाट के एक सज्जन के यहां रहकर पढ़ता-लिखता था। उस सज्जन की लड़की के लिए।" यहां-वहां से किताबें खोज-ढूंढ़ लाकर इंटरमीडिएट के प्रश्नों के उत्तर लिख देने पड़े थे। और "वे अगर नोट न देते तो—" वह लड़की 'शायद पास ही नही कर पाती।" यही प्रभात वह प्रभात है या नहीं, तिलक दुबारा सोचने की शक्ति जुटा नही सका। वह आराम-कुर्सी पर धप्प से बैठ गया। कुर्सी का कपड़ा सिरे पर कुछ फटा-सा था। दूसरे दिन वह होशियारी से बैठता, होशियारी से उठता, पर आज बैठने पर 'मरक' और आधा इंच फट गया, इस पर उसका ध्यान ही नहीं था। उसकी छाती इतनी सिकुड़-सी गई थी जिससे लगा कि वह सांस ही नहीं ले पाएगा।

कुछ देर तक उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह चीख पड़े—"मेरा क्या हो गया? मैंने भला यह क्या सुना?" बीच-बीच में वह अपने सिर को जोर-जोर से मलने लगा—मानो, उसका सिर दर्द कर रहा है। यंत्रणा के मारे वह बेचैन हो उठा है। सिर के

बालों में उंगलियां डालकर अनजाने ही वह बीच-बीच में बाल खीचने लगा।

अंदर चंद्रा वैसे ही खड़ी थी। छाती की धड़कन के सिवा मानो उसमें जीते रहने का कोई लक्षण ही नहीं रह गया था। एक बार यंत्र की भांति उसके हाथ ने मेखला को अलगनी पर रख दिया। पहले की मोड़ के मुताबिक तह किए हुए मेखला के सारे मोड़ खुल कर बिखर गए। कुछ ही देर बाद जैसे उसकी चेतना लौटी। उसके दिमाग में चिंता का तूफान चलने लगा। तिलक को भला यह क्या हो गया? बहुत दिन बाद प्रभात को देखकर तो वह दंग नहीं रह गई थी। मगर उससे ज्यादा तिलक ही क्यों भौंचक्का हो गया? क्या प्रभात का नाम सुनकर? अपने निचले होंठ को दांतों तले दबाए, जमीन की ओर नजर नीची किए, मिट्टी कुरेदती हुई वह सोचने लगी—थोड़ी देर पहले भला प्रभात के बारे में उसने क्या-क्या कहा था? क्या कोई न कहने लायक बात उसकी जबान से निकल गई है? मगर कहां? उसने तो वैसा कुछ भी नहीं कहा है। सिर्फ इतना ही तो कहा था कि प्रभात भैया बड़े अच्छे थे। वैसे ही 'बड़े अच्छे' बताते हुए उसने कितने ही लोगों के बारे में तिलक से पहले बताया है और वह तिलक को पहचानती है : पत्नी अगर किसी के बारे में 'बड़े अच्छे' कहकर प्रशंसा करे तो अपने अंतर में मरोड़ अनुभव करने वाला पति तो तिलक है नही। तब फिर क्या तिलक को पहले ही कुछ पता है? पर उसे पता चला कैसे? वह तो दृढ़ता से इस बात पर विश्वास करती है कि जिदगी की पीछे छोड़ आई कुछ उच्छृंखल दिनों की घटनाएं सिर्फ दो ही प्राणियो के बीच सीमित रही हैं। उसे तो याद नहीं कि सपने में भी किसी से उसने उसकी चर्चा की हो। और दूसरा प्राणी है प्रभात। पर प्रभात को भला तिलक कैसे पहचानता है? और अगर किसी तरह पहचानता भी हो, तो क्या प्रभात उन बातों को उससे खोल दिया होगा? नही, नहीं, वह तो ऐसा कदापि नहीं कर सकता। प्रभात ने तो पहले ही दिन उसे अभय दिया था। कम से कम कोई स्वस्थ, शिक्षित व्यक्ति किसी लड़की की जिदगी सिर्फ दो-चार बातो से नष्ट नहीं कर सकता। तो फिर? हो सकता है कि तिलक के चौंक उठने के साथ प्रभात का कोई संबंध ही नहीं है। किसी और ही बात से वह चौंका होगा। चंद्रा बेकार ही गंदी बातों को मन में ला रही हो! ऐसा हो भी सकता है। वह जल्दी-जल्दी दरवाजे की ओर बढ़ गई। तिलक से वह पूछेगी—भला वह उस तरह से चौंक क्यों उठा है?

दरवाजे के पास जाकर वह ठिठककर रुक गई। उसे साफ-साफ याद आ गया कि तिलक दबी आवाज से 'प्रभात काकती' कहकर चीख उठा था। अब तक चंद्रा की छाती का तनाव कुछ कम हुआ था, पर वह फिर सिकुड़-सी आई। तिलक प्रभात को पहचानता है। उसके बारे में कुछ जानता है। क्या-क्या जानता है? चंद्रा के साथ प्रभात के किसी एक दिन के संपर्क की बात? नही, नहीं, नहीं, नहीं। अकेले-अकेले चंद्रा ने सिर हिलाया। उन बातों का पता तिलक को चल गया है, इस बात पर विश्वास करना चंद्रा के लिए सामने धू-धू जलती आग में समा जाने जैसा ही है। ऐसी किसी

तीव्र और मर्मातक निर्णय पर पहुंचने की वह किसी भी प्रकार से हिम्मत नहीं जुटा सकी। उसने अपने मन को जबरन धीरज बंधाया, हो सकता है कि प्रभात के साथ कभी कोई दुश्मनी रही होगी, जिस कारण उसका नाम आते ही तिलक उत्तेजित हो उठा हो। अगर ऐसा ही है, तब तो वह तिलक से बड़े सहज भाव से पूछ सकती है, 'क्या आप प्रभात भैया को जानते हैं? क्या हुआ है बताइए न!'

और तब हो सकता है कि तिलक कहे—पहचानता हूं, का मतलब? वह ऐसा है—वैसा है, मेरे साथ उसने एक बार ऐसा व्यवहार कर रखा है! मैं उसे जिंदगी-भर भूल नहीं सकता आदि आदि।

तब चंद्रा कहेगी, उफ् राम! वह ऐसा आदमी है, मुझे तो बिलकुल पता नहीं। देखने पर तो वह बड़ा सज्जन-सा लगता है। इस बार से सड़क पर आमना-सामना होने पर उससे बात ही नहीं करूंगी। इतना भयंकर आदमी है वह!' और उसके साथ ही अपने अपराधी मन के कारण अमूलक चिंता का जो बोझ चंद्रा ने अपनी छाती पर चढ़ाए रखा है, वह उतर जाएगा।

चंद्रा और एक कदम आगे बढ़ गई, परंतु साथ ही उसने पास के खंभे को अपने हाथ से पकड़े रखने की कोशिश की। प्रभात का नाम दूसरी बार तिलक के सामने जबान पर लाने की बात से वह सहम गई। अगर 'केंचुवा खोदने में सांप निकल आए तो?' नहीं, नहीं, वह ऐसा कर नहीं सकती। इसके बदले वह मन में यही क्यों न समझ ले कि तिलक को उन बातों की कोई जानकारी नहीं है। वह उनके बारे में तिलमात्र नहीं जानता। तिलक चौंक क्यों उठा, यह जानने की वह कोशिश नहीं करेगी। उसके सामने कभी प्रभात का नाम जबान पर नहीं लाएगी। आज भले ही न हो, पर महीने भर बाद, साल भर बाद किसी बड़े दुर्बल क्षण में, या किसी मधुर क्षण में वह बड़ी सावधानी से, बड़ी चतुराई से तिलक की जबान से यह बात जरूर निकाल लेगी, कि उसके इस तरह से चौंक उठने का कारण क्या है? मगर उसे तो अब ऐसे रहने पर काम नहीं चलेगा न। तिलक को जरूर कुछ हुआ है। सामने की कुर्सी पर उसके बैठने की आवाज उसने सुनी है। वह भी अगर अपने अंदर निर्वाक-निस्पंद होकर खड़ी रहे, तो भला तिलक क्या सोचेगा? अगर तिलक को किसी बुरी घटना का पता चला है, तब तो चंद्रा की वह मौन निस्पंदता उस घटना की गहराई को और ज्यादा बढ़ा देगी। 'जरूर इसमें कोई बात है', ऐसा सोचने में तिलक की वह मददगार ही बनेगी। इसी कारण उसे तो इस समय सहज-सरल बन जाने की ही जरूरत है। अगर तिलक को कुछ हो गया है, चंद्रा को उसका पता नहीं। पर उसे यह दिखाना है, कि उसे कुछ नहीं हुआ, उसके मन में कोई और भाव ही नहीं है। खुशी-खुशी हंसी-मजाक में पूजा देखने गई थी, प्रभात के किसी जान-पहचान वाले से मुलाकात हो गई, अब वह घर लौट आई है, अब वह वही पहले वाली चंद्रा है, इसके बीच में तो और कुछ भी है नहीं।

उसने चादर को सहेज लिया और साथ ही ऐसी व्यस्त हो उठी, मानो कपड़े

बदलने में ही उसे काफी देर हो गई हो। जल्दी-जल्दी वह बीच के कमरे में आई, आवाज में जरा भी कंपन या जरा भी जड़ता लाए बगैर उसने ऊंची आवाज में पूछा—'अजी, पूछती हूं, कहां चले गए? भला लालटेन को इतना धीमा क्यों कर रखा है? उफ् देखा न! एक दिन शाम को लालटेन जलाते ही तेल का खर्च घटाने की बात दिमाग में आ गई! वाह!' लालटेन के छोटे-से पहिए को उसने धीमे से घुमा दिया, आमतौर से जितने पर लालटेन को जलते रहना चाहिए, उससे कहीं ज्यादा होकर लालटेन जलने लगी।

चंद्रा की उस सहज-सरल रसिकता से तिलक फिर चौंक पड़ा। चंद्रा क्या कह रही है, उस पर उसने ध्यान ही नहीं दिया। उसने सिर्फ सोचा, शायद अब वह उसके पास आएगी, उसने अपने मन की पूरी ताकत को एकजुट कर यही कामना की कि चंद्रा उसके पास न आए। इस क्षण में चंद्रा को अपने पास सहन कर पाना, तिलक के लिए बिलकुल वैसा ही है जैसा कि हत्यारे पुत्र की फांसी का समाचार देने वाले अखबार को अपने सामने मेज पर फैला लेना। उसे ऐसी इच्छा हो आई कि वह जैसे उसी जगह रहते-रहते लगातार छोटा होता हुआ बिल्कुल खत्म ही हो जाए। जिससे चंद्रा उसे फिर ढूंढ़ न पाए, और आकर उससे कुछ न पूछे। चंद्रा से क्या बात करे, उसकी बात का क्या जवाब दे, वह खुद नहीं जानता।

चंद्रा आई। पहले-पहल उसने दरवाजे का परदा हाथ से हटाया, अंदर की लालटेन का कुछ उजाला बाहर आ रहा था। उस उजाले में चंद्रा ने देखा, तिलक बैठा हुआ है। एक लंबी सांस भरकर दिल में कुछ और हिम्मत बांध वह आगे बढ़ आई। बोली—'ओ मैया, देखो न, अंधेरे-मुंधेरे कैसे बैठे हुए हैं। क्या लालटेन ला दूं?'

—नहीं, नहीं, उसकी जरूरत नहीं। तिलक संत्रस्त होकर चीख पड़ा। मानो नाटक के नायक-नायिका के अपनी-अपनी जगह, अपनी-अपनी भंगिमा में खड़े होने के पहले ही कोई परदा उठा देने चला हो।

चंद्रा बोली—'तब फिर अंधेरे में कर क्या रहे हो?'

तिलक मौन रहा।

उसके बालों में बाएं हाथ की उंगलिया डालकर जरा हिलाते हुए चंद्रा ने पूछा—'सुन रहे हैं? भला हो क्या गया है आपको?

बालों में उंगलियां तिलक को असहनीय लग रही थीं। चंद्रा की बातों पर वह ध्यान देना नहीं चाहता था, उसने सिर्फ कहा—'कुछ भी नहीं हुआ' मानो किसी सख्त इम्तहान में बैठने चले किसी परीक्षार्थी को 'गुड-लक', 'गुड-लक' कहते हुए लोग आ-आकर उसका नुकसान कर रहे हों, और उसे भी परेशान कर रहे हों। और वह उसके जवाब में बनावटी हंसी हंसकर कह रहा हो "थैंक यू"। तिलक की बातों के लहजे से चंद्रा क्षणभर ठिठकी रही। इसके बाद बालों को छोड़कर बोली—'ओ, घूमने जाने पर लौटने में देर हो गई, इसी कारण गुस्सा आ रहा है। क्यों?' कहने के बाद चंद्रा को

खुद ही महसूस हुआ कि वह जबरन नितांत अवांतर बात कह रही है।

तिलक बोला—"मैं विनती करता हू, काइंडली मुझे कुछ देर अकेले ही रहने दो।"

उसके कहते ही नहीं, कुछ देर खड़ी रहकर चंद्रा वहां से हट आई। हालांकि आते समय स्वाभाविक लहजे में ही कह आई, कैसा-कैसा कर रहे हैं यह? ठीक है, अंधेरे-मुंधेरे दार्शनिक बने बैठे रहिए, मैं महराजीन अब रसोई में लग रही हूं।

रसोई में जुटने में चंद्रा ने घुटनों पर ठुड्डी रख, आधे घंटे के अंदर कुछ आलू काटे। वह फिर वैसे ही बैठी रही। बाद में नंदी उसके सामने से, पहंसुल और सब्जी की टोकरी हटा ले गया।

खाने के लिए किसी को बुलाने का मौका दिए बगैर तिलक खुद आकर खाने की जगह बैठ गया था। बार-बार खट्टी अचार खाने की इच्छा रखने वाले रोगी को डाक्टर के सुझाव पर सिर्फ साबू दाना सिझा देने पर जैसा करता है, तिलक भी उसी प्रकार दो-तीन कौर खाने के बाद ही उठ गया।

चंद्रा ने पूछा—क्या हो गया? उठ क्यों गए? तिलक बोला—खाने का मन नहीं है। खाना खाने की बात हालांकि चंद्रा को भी जैसे याद नहीं थी। नंदी के बार-बार कहने पर तिलक की थाली पर ही बैठ कर उसने भात की ढेरी को थाली भर में बिखेर दिया। कुछ देर तक सानती मिलाती रहकर आखिर वह भी बगैर खाए उठ गई।

नंदी ने एक बार मन-ही-मन पूछा—आखिर इन लोगों को यह क्या हो गया? कहीं अगर कुछ खा-पी आए थे, तो पहले क्यों नहीं बताया? इसके बाद कुछ देर वह मन-ही-मन भुनभुनाता रहा—भला इतना सारा खाना अब मैं क्या करूं? इतना ठंडा खाना भला कल कौन खाएगा? देर तक वह खाना सामने लिए बैठा रहा। इसके बाद खाने लगा। अकेले-अकेले खाते उसे बुरा लगा। चंद्रा के हाथ नहीं लगे थे, शायद इसीलिए सब्जी वगैरह कुछ भी अच्छी नहीं हुई थी।

—'उफ़, देखते नही, बिलकुल जैसे कोई नन्हा बच्चा ही हो, कपड़ा भी ढंग से लेकर सो नहीं सकते।' आदि जैसी बातें चंद्रा की जबान से सुननी न पड़ें, इसके लिए तिलक अच्छी तरह से कपड़े-लत्ते सहेजकर, ऊपर ओढ़कर चंद्रा के सोने के कमरे में आने के पहले ही सो गया। चंद्रा ने कई बार उसकी बांहें पकड़कर झकझोरा, कई बार देह पर से कपड़े हटा दिए, बार-बार पूछती रही—'क्या हो गया है कहिए न?' तिलक का एक ही जवाब था—कुछ भी नहीं हुआ है।'

जब उसने—'ओह, जाकर सो रहो, मुझे तंग न करो।' कहा, तब तो चंद्रा का देह-मन बिलकुल काठ हो गया। कुछ देर बिस्तर पर बैठे रहकर उसने तकिए पर सिर रखा।

कुछ मिनट झपकी-सी आने पर तिलक अचानक जग उठता। ऐसी हालत सारी

रात, बार-बार हुई। 'जग उठता' कहना शायद सही नहीं होगा। रेल इंजन के जलते कोयले वाले चूल्हे का दरवाजा जैसे कोई खोल देता, और उसकी छाती में सर्र-से आग धधक उठती। वह सिर्फ सोचता रहा, उसका यह क्या हो गया? उसने भला यह क्या सुना?

दूसरे दिन उसे कितने बजे दफ्तर जाना है, और वह कितने बजे पहुंचा इसका कोई हिसाब उसने नहीं रखा; पढ़ने वाले लडके-लड़कियों ने कितनी किताबें लौटाईं, और कितनी किताबें 'इश्यू' की गईं, इस पर ध्यान ही नहीं दिया। कुर्सी पर बैठे-बैठे बीच-बीच में वह बाहर की ओर देखता रहा, बीच-बीच में दोनों हाथ मुट्ठी बांधे मेज पर रख, उस पर सिर टिकाए, चुपचाप झुका रहा, बीच-बीच में कलम उठाकर सामने के कागज पर अनगिनत अंट-संट अक्षरों में लिखकर भर दिया, मानो वह अपने अंतर की निर्मम वेदना उस कागज को ही समझाना चाह रहा हो।

उसने मान लिया, शुरू होने के पहले ही उसकी जिंदगी खंडहर बन गई, जीवन का मधु-रस मिल गया, ऐसा जितने दिन ही उसे अनुभव हुआ था, उसका वह हर दिन धोखा-भर था। ऐसे इन चंद दिनों की उसे कोई जरूरत ही नहीं थी। उसे लग रहा था कि बेकारी का मारा कोई आदमी जैसे बिजली की मशीन खराब होने की वजह से, जब तक मशीन की मरम्मत न हो जाए, पंखा खींचने का काम करता रहा हो और मशीन की मरम्मत हो जाने पर उसे जो मजदूरी मिली, उससे कई गुना ज्यादा गठिया का दर्द लिए लौटा हो। उसकी स्थिति ऐसी ही है।

भला चंद्रा ने उससे धोखेबाजी क्यों की? वह तो खुद ऐसे ठग-प्रवंचना आदि के बीच जाने वाला इंसान नहीं है। वह उसकी जिंदगी में आई ही क्यों? तिलक ने तो उसके साथ कोई प्रेम नहीं किया था, किसी विजय-दशमी मेले में देखकर, पता ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उनके घर-मुकाम तक पहुंचकर, उसके मां-बाप के साथ मीठी-मीठी बातें कर खुशामद नहीं की थी। सामाजिक-प्रथा के अनुसार बातचीत शुरू हुई थी, उसे लड़की की फोटो दिखाई गई थी, लड़की के बाप ने उसकी जन्मकुंडली मंगवा ली थी, विवाह-खर्च के लिए उसे काफी रकम कर्ज लेनी पड़ी थी, छः आने भर सोने की अंगूठी पहनाकर विवाह की तारीख तय की थी, उसके वंश के सोलह-सत्रह वृद्ध होम-वेदी के पास रातभर जागरण करते रहे हैं। इतनी सारी सुविधा रहते हुए भी, समय रहते हुए भी उसने भला एतराज क्यों नहीं किया? देह-मन अगर पहले से ही किसी को उत्सर्जित कर दिया था, तो फिर एक अनजान आदमी के साथ विवाह के प्रश्न पर पहले ही दिन उसने अपनी घोर असम्मति क्यों नहीं प्रकट कर दी? लड़की ठहरी, लड़कियां मां-बाप के अधीन होती हैं, दुर्बल होती हैं, खुलकर कुछ कहने का सामर्थ्य उनका नहीं होता। जिस मां-बाप के आदर-स्नेह और पालन-पोषण से वे बड़ी होती हैं, उनके मन को तकलीफ देने या उनकी राय के खिलाफ जाने की हिम्मत और मनोबल उनमें नहीं होता, ठीक है, तिलक भी यह बात मानता है, विश्वास करता है। परंतु अगर इतनी दुर्बल ही

हो, तो सबकी नजर से बचाकर, चुपचाप किसी को वैसी शह देती ही क्यों हो? जिस जबान की भाषा खो जाती हो, जो अंतर दुर्बल हो, जो अंतर मां-बाप के मनोरंजन हेतु कातर हो उठता हो, उस जबान से मन-ही-मन अपना लिए प्रियजन के सम्मुख, निर्जन वातावरण में भला लगातार मीठी-मीठी बातें क्यों निकलती हैं? गुप्त-प्रेम का अभियान चलाने हेतु भला उस अंतर में हिम्मत कहां से आ जाती है? आखिरी संग्राम में जूंझने लायक संबल जुटा सकती हो या नहीं, यह सोचे-बिचारे बगैर भला किसी को धीरे-धीरे अपने नजदीक क्यों आने देती हो, या खुद उसके नजदीक क्यों जाती हो?

अपुष्ट मन के लड़के-लड़कियां किताबों-बहियों के अंदर से चिट्ठी लेन-देन करने की बात पकड़ में आ जाने पर मां-बाप की पिटाई से प्रेम-मुहब्बत को नमस्कार कर लेते हैं! भला उनसे तुम लोगों का अंतर ही कहां रहा। प्रभात को मैं पहचानता हूं, तुम तो नहीं पहचानतीं। अपनी जिंदगी में उसे और जो दसियों लड़कियां मिली हैं, जैसे वह उनके बारे में सोचता नहीं, वैसे ही हो सकता है कि तुम्हारे बारे में भी न सोचता हो। जिस दिन तुम्हें कोई विवाह कर ले जाएगा, उस दिन हो सकता है कि वह सन् 1956 में उत्पादन घटने का कारण क्या है, इस बारे में कलकत्ता की कंपनी से चर्चा करता होगा। तुम तो उस इंसान प्रभात को नहीं जानती न! परंतु अगर वह प्रभात न होकर कोई और ऐसा लड़का होता, जो किसी को वचन देकर, उस वचन को दिन-रात, अपने खून के हर कतरे से समर्थन करता रहता हो, और अपना वादा निभा न पाने पर तिल-तिल लुटाकर निःशेष हो जाने के लिए भी तैयार हो, तब तुम क्या करती? मुझसे विवाह कर मेरी छाती में आश्रय लेकर हो सकता है—कि तुम्हें शांति मिले, हो सकता है कि कुछ दिन बाद एक सुंदर, सुकोमल प्यारा-प्यारा शिशु अपनी गोद में लेकर एक संम्पूर्ण नारी बनकर तुम सब कुछ भूल जाओ, परंतु तुमने जिस जिंदगी को बरबाद कर दिया, उसके लिए जरा आंसू बहाए, ऐसे भला किसको रख आई हो? या क्या तुम सोच रही हो, कि वैसा दिल खोलकर प्यार करने वाला कोई है ही नहीं? या तुम खुद उसी मंडली की लड़की हो, जो किसी भी सक्षम पुरुष की बांहों में अपने को पूरी तरह छोड़ देने को ही प्यार मानती है?

तिलक अचानक सीधा होकर बैठ गया। वह अपने कपोल को उंगलियों से दबा। कर मलने लगा। कुछ दूर बैठे हुए सहायक लायब्रेरियन ने पूछा—'क्या हुआ? तिलक ने सिर्फ सिर हिला दिया, कुछ भी नहीं हुआ। उसने तो जिदगी में न किसी को वचन दिया था, और न किसी को अपने नजदीक ही आने दिया था। इसका करण यह नहीं था कि वह किसी तपोवन में रहकर वेद-वेदांत-चर्चा में दिन गुजारा करता था। वह भी कॉलेज में पढ़ता था, वह भी समाज में रहता था, वह भी समर्थ, सुंदर नौजवान था, कामना-वासना उसे भी मतवाला कर डालती थी। कुछ आनंद भरे दिनों को अपनाने हेतु वह भी बहुत बार आगे बढ़ जाना चाहता था, परंतु जिस आनंद का आखिरी नतीजा उसके कई अंतरंग बंधुओं की जिंदगी में घोर जटिलता लाता रहा है, उसके कई

पवित्रात्मा बंधुओं को रुला मारता रहा है, आगा-पीछा सोचे बगैर वैसे आनंद में छलांग मार देने का धीरज उसे न था। दोस्तों की जबान से किसी शाम की प्रेम-मुखरित कथा सुनकर "अब तो भाई तुम्हीं लोगों का जमाना है" कहकर वह भी कई रात अफसोस करता रहा है। पर उसी दोस्त की ऊपरी मंजिल से छलांग मारकर मर जाने की स्थिति से उबार कर, वह खुद सिहर उठा है। 'नहीं चाहिए, नहीं चाहिए, ऐसा आनंद मुझे नहीं चाहिए।' कहकर अपने जाल-जंजाल से दूर जीवन की तारीफ खुद ही करता रहा है। किसी लड़की से विवाह करने के बाद उससे प्यार करूंगा, ऐसी भावना वाला मनीषी बनने के संकल्प से वह बैठा नहीं रहा था, पर उससे जैसे दूसरों का कोई अनिष्ट न हो, कोई उससे प्रवंचित न हो, उसकी कामनाओं की आग में पंख झुलसाकर कोई जैसे जिदगी भर के लिए पंगु न हो जाए, उसके लिए जितने संयम की जरूरत है, उतना उसका था। सिर्फ एक ही को अपना देह-मन अर्पित करने की भावना रखना महामानवता की नशानी है या युगों पुरानी पारंपरिक अंध-नैतिकता भर है, इन सब की चर्चा कर निर्णय पर पहुंचने की उसको कोई जरूरत नहीं थी पर खुद तो सात घाटों का गंदा पानी पीकर दूसरे से गंगाजल चाहने के पाखंड से उसे नफरत थी। वह खुद तो प्रभात-जैसा नहीं हुआ। होना भी नहीं चाहता था, ऐसी बात वह दृढ़ता से कह नहीं सकता। पर प्रभात जिस वातावरण में था, वैसे वातावरण में न जाने के कारण हो, या उसके अपने स्वभाव की किसी दृढ़ता के कारण ही हो, वह वैसा हो नहीं सका। दुर्बल क्षणों के चंगुल से वह सही-सलामत बच आया। कामना-वासनाओं को कोई धोखा नहीं दे सकता, प्रभात ने दिया भी न था। पर तिलक जैसे लोग तो बच भी सकते हैं चंद्रा को भला यह बात किसने सिखाई है कि किसी आधी रात को जिस व्यक्ति को बिलकुल अपना बना लिया हो, उसकी कोई खबर लिए बगैर हवन की अग्नि-शिखा के सम्मुख किसी दूसरे व्यक्ति के हाथ की मुट्ठी में अपना हाथ दे देने में कोई विचित्रता नहीं है? यह भरोसा उसे किसने दिया कि—"फिक्र न करो, जिस किसी पुरुष की छाती में तुम्हें आश्रय मिल जाएगा, प्रभात कोई एक ही थोड़े है, ऐसे हजारों हैं हर एक·· ?" पूजा-मंडप के शोर-गुल के बीच मिले उस व्यक्ति के बारे में, शाम को घर में धूप-धूना जलाते व्यक्ति से, जैसे कि कोई बच्चा घर में आग लगी देखकर उच्छ्वसित हो, बता रहा हो, बिलकुल उसी ढंग से बताने में जिस निर्भीकता की जरूरत है, उसे वह कहां से मिली?

तिलक ने अपना निचला होंठ दांतों तले दबा लिया। वह चंद्रा से पूछेगा, हां, आज ही पूछेगा, बिलकुल सीधे-सीधे पूछेगा—दो प्राणियों के एक साथ मिलकर दुनिया बसाने का मतलब वह क्या सोचती है? उसने क्या यह मान लिया है कि विवाहित जीवन विचित्रता हीन होता है? वह यह भी पूछेगा, आज ही, कि बीते हुए विचित्रता पूर्ण जीवन में सीखे हुए आंखमिचौनी खेल के जरिए अब भी जिदगी को हरा-भरा बनाए रखना चाहिए, इस बारे में उसकी कोई धारणा है या नही?

तिलक उत्तेजित हो उठा। चपरासी नीलकांत ने पूछा—सर, आपने तो चाय पी ही नहीं ? ठंडी हो गई।

चाय की प्याली की ओर देखते हुए 'ओह' जैसी एक आवाज कर उसने हाथ फैलाया। नीलकांत बोला—'ठहरिए सर, गर्म कर ला रहा हूं।'

तिलक ने एक ही घूंट में पूरी प्याली पी डाली। नीलू के चेहरे की ओर नजर डालकर उसने देखा, वह हंस रहा है। उसे ऐसा लगा, वह भी अगर नीलू की भांति ही कुछ हंस सकता तो अच्छा लगता।

नहीं, नहीं, मर जाने पर भी वह चंद्रा से कुछ पूछ नहीं सकता। ऐसा दुर्दांत साहस उसमें है नहीं। महज थोड़ी-सी असावधानी के कारण उसकी आंखों के सामने कुछ दिन पहले नीलू ने सात नई रजिस्टर बहियों पर एक बोतल स्याही गिरा दी थी जिससे वे बहियां बिलकुल काली हो गई थीं। फिर भी उसे कड़ी बात वह सुना नहीं पाया था। कोई जेबकतरा किसी की जेब से मनी बेग निकालते अगर उसकी नजरों में आ जाए तो डर उसे ही लगने लगता है। जेबकतरा अगर पकड़ा जाए तो बेचारे की हालत कैसी हो जाएगी ? फुटबाल के मैदान में वह दर्शकों की अगली कतार में इस डर से बैठने में नहीं कतराता कि न जाने कब आकर गेंद उसके नाक-मुंह पर आ गिरे, लेकिन जहां अंतर की शर्म-हया का सवाल है, वह बड़ा ही शर्मीला, बड़ा ही कातर है। चंद्रा से यह सब सवाल करने की तो बात ही नहीं, उसकी आंखों से आंख मिलाने में भी तिलक को शर्म आएगी, हिम्मत नहीं होगी। चंद्रा के सामने वह जबान खोलकर बात नहीं कर सका। जितने समय वह घर में रहा, उससे बचता रहा। ज्यादातर सड़क की ओर के बरामदे में बैठा रहा, जिससे कि सड़क से जाने वाले उसे देख सकें। जब तक अंदर रहा, किसी बहाने नंदी को अपने साथ रखा, जिससे कि तीसरे पक्ष की उपस्थिति से ऐसी बातें न छिड़ें जिन्हें वह छेड़ना नहीं चाहता। दो ही दिनों में उसका चेहरा बदल गया चेहरे का रंग उड़ गया।

तिलक जब घर न रहता तो चंद्रा कभी-कभी इस कमरे से उस कमरे तक यों ही टहलती रहती। कभी-कभी जरा-सा सहारा मिलते ही उससे सिर टिकाए ऐसे सोचती रहती, मानो नई बहू एक बड़ी कीमती 'नेकलेस' कहीं रखकर भूल गई हो। याद भी नहीं कर पा रही और न किसी से कह ही पा रही हो ? तिलक के घर आने के साथ-साथ वह जी-जान से स्वाभाविक होने का प्रयास करती; सवाल पर सवाल करती रहती।

मुकदमे वगैरह को अंतर से घिन करने वाले, पर पैतृक-संपदा बचाने हेतु कचहरी में वकील के सामने खड़े आदमी की भांति चंद्रा के सवालों से तिलक को बड़ी परेशानी होती। उसने सिर्फ एक ही विषय को स्थापित करने की कोशिश की—उसे कुछ भी नहीं हुआ है।

चंद्रा ने पूछा—'अगर किसी बात से आपको तकलीफ पहुंची है—तो क्या मुझे

भी उसका भाग मिलना नहीं चाहिए ? मुझसे ऐसा परदा करना तो उचित नहीं है न !'

नंदी पास न था। वह बात कहती हुई चंद्रा सामने की ओर झुककर कुर्सी पर बैठे तिलक के बिलकुल मुंह के पास अपना मुंह ले गई। मानो बहुत दिन पहले जो चुंबक था, लोहे का वह टुकड़ा अब भी चुंबक बना हुआ है या नहीं—जांचने के लिए और एक लोहा उसके पास ले आई हो। तिलक के होंठों के इतने पास से अपने होंठों को कभी वापस ले जाना पड़ा हो चंद्रा को ऐसी याद नहीं आती।

तिलक ने मुंह मोड़ लिया। बहुत ही धीमी आवाज में, एक-एक कर उसके मुंह से कुछ शब्द निकल आए,—'बिलकुल अर्धांगिनी की भांति बात कह रही हो।'

आंखें सिकोड़कर, भौंहों में बल डाले चंद्रा क्षणभर रुकी, मानो ये शब्द कहां से आए, वह समझ न सकी हो ! इसके बाद वह सीधी खड़ी हो गई। विफल होकर लौटे दोनों होंठ मानो जरा कांप उठे। कुर्सी से हटकर उसने पूरा शरीर एक खंभे से टिका दिया। धीरे-धीरे उसकी आंखों में आंसू छलक आए। नथुने फूल उठे, फिर खंभे पर सिर टिकाए वह रोने लगी। निःशब्द, अविराम, लगातार बरसात के पानी की भांति आंसू बहाती रही। तिलक उठ आया। घर के अंदर नहीं रुका, सीधे सड़क पर चला आया।

भला चंद्रा की इस रुलाई का मतलब क्या हो सकता है ? यह नारी जाति कैसी अजीब है ? वे जिंदगी में कितनी बार रोती हैं ? तिलक का ज्यादा अनुभव नहीं है, उसने सुना है, इनके आसुओं में जहर है, अमृत है। उनके आंसू 'चाओदाङ'[1] के उठे हुए खड्ग को भी कंपा सकते हैं; पर सबसे रहस्यपूर्ण बात यह है कि ये जब-तब रो सकती हैं। लापता राजकुमार की पवित्र स्मृति में लगातार साल-दर-साल रोते-रोते उन्मादिनी हो सकती हैं, और दूसरे प्रेमी से अगर चार बजे मिलना तय हुआ हो, तो पहले प्रेमी को तीन बजे आंसू बहाती हुई विदा दे सकती हैं। उनके आंसू से कितनों की जिंदगी की राहें फिसलनदार, कीचड़भरी बनी हैं, उसका क्या लेखा-जोखा है ?

तिलक फंदे में पड़ने वाला नन्हा बच्चा तो है नही। कम से कम मोहांध तो बिलकुल नहीं। वह बिस्कुट कंपनी के पास भीड़ भरे चौराहे पर जा पहुंचा। वहां पहुंच-कर उसका जी हुआ कि वह चीख पड़े—झूठ—सब कुछ झूठ है।

परंतु चंद्रा की रुलाई तो उसके पहले भी उसने देखी है। तब तो उसकी धारणा ऐसी विषैली नहीं हुई थी। तिलक के माता-पिता की दोनों तस्वीरें धूल-धक्कड़ से गंदी-सी हो गई थीं। चंद्रा को उसने कह दिया था उन्हें उतार कर, पोंछ कर फिर उसी तरह टांग दे, उसी समय चंद्रा ने, तिलक के लिए तीन ही दिनों में एक स्वेटर बुन दे सकती है, कहकर दांव लगाया था। तिलक उस दांव के बारे में भूल गया, और चद्रा भी फोटो साफ करने की बात भूल गई। दो-एक दिन बाद तिलक ने फोटो की ओर उंगली से दिखाया 'भूल गई हूं,' 'समय नहीं मिला है' कहकर चंद्रा ने दो कारण दिखाए। कोई

---

1 चाओदाङ—आहोम वशी जल्लाद

गुस्सा या बुरा भाव मन में लाए बगैर तिलक ने पूछा—'अगर काम का बोझ ज्यादा हो गया है, तो बताओ, काम-काज करने के लिए क्या और एक छोटा लड़का या लड़की रख लूं?' उस दिन भी चंद्रा ने कुछ जवाब दिए बगैर चुप रहकर बाद में रोती रही थी। जैसे तिलक गृहिणी के रूप में उसपर अनास्था प्रकट की हो। उस दिन तिलक उसे छाती से लगाकर देर तक प्यार करता रहा : समझाता रहा कि जब से वह आई है, उसे किसी अभाव का अनुभव ही नहीं हुआ।

और अनुभव करने का मौका भी चंद्रा ने नहीं दिया था। उसके आने के दिन से तिलक को कभी घरेलू झंझट के बारे में सोचना ही नहीं पड़ा है। बटन टूट जाने के कारण पिन मारकर कार्यालय जाना नहीं पड़ा है। कमीज की बांह जरा फटते ही नंदी को दे देना नहीं पड़ा है। गंदी बनियान अलगनी के कोने में पड़ी नही रही है। खाली बरामदा छोड़कर दफ्तर निकल जाना नहीं पड़ा है, चंद्रा हमेशा उसके पीछे-पीछे निकल आती है। उसकी पीठ पर अगर छोटा-सा तिनका भी पड़ा हो, तो बरामदे को छोड़ने के पहले ही चंद्रा उंगली से छिटकी मारकर हटा देती है, दफ्तर से लौटकर उसे खाली बरामदे में चढ़ना नहीं पड़ा है, चंद्रा उसकी बाट जोहती खड़ी रहती। पूछती—"छतरी को जो यों ही हाथ में लिए आते हो, भला फैला क्यों नहीं लेते?" उसके दो-एक साथी कहा करते—'किस्मत वाला' है। पड़ोस की कुछ बुढ़ियां चंद्रा के बारे में कहतीं—'लच्छमी' है।

और अपने हृदय के बिलकुल करीब जिस नारी को उसने पाना चाहा था, चंद्रा में उससे भी ज्यादा अलंकरणों से विभूषित, उबालने की बजाय मतवाला कर देने वाली नारी उसे मिली थी। पर आज उसका क्या हो गया? उसे जो कुछ पता चला है, जो कुछ उसने सुना है, उसका कण भर भी तो असत्य नहीं है।

तिलक ने एकबार सिर उठाकर देखा। अनजाने ही वह चलते-चलते कितनी दूर आ पहुंचा है! और ज्यादा दूर जाने की उसकी इच्छा नहीं हुई। वह लौट पड़ा।

भला चंद्रा ने ऐसा क्यों किया? क्यों? ऐसा भी तो हो सकता है कि किसी एक उन्मादी रात को वह हिताहित ज्ञान भूल कर फिसल गई हो! सोने के कमरे से तीस गज दूर के एक सुंदर सुपुष्ट नौजवान के आह्वान की उपेक्षा करना उसके लिए संभव न हुआ हो! और चंद्रा जैसी रक्त-मांस वाली कितनी युवतियां वैसी उपेक्षा कर सकती हैं? क्या तिलक खुद भी कर पाता? उसका मन भले ही उसकी उपेक्षा कर सकता, पर शायद शरीर नहीं कर सकता था। और अगर ऐसा न कर सकने के कारण ही वह जीवन के उस दुर्बल-क्षण में उन उन्मत्त क्षणों का उपभोग कर लेता, तो उसके लिए अपने को कितना अपराधी समझता?

तिलक को एक तामोल खाने की इच्छा हो आई? सड़क के किनारे की एक दुकान में वह चला गया। दुकान की छप्पर को उठाए रखने वाले खंभे में उंगली का चूना पोंछते हुए उसने सोचा, उसकी न कोई गलती हुई है, और न वह सही ही है। चंद्रा

जिंदगी में जैसे फिसल गई थी, क्या उसकी कोई निशानी अब बची है? अगर नहीं, तब फिर उसका अपराध कहां है? जो गलती चंद्रा ने की थी, उसे तो सही माने में उसकी गलती नहीं कहा जा सकता। वह तो शायद उसके उस रक्त-मांस की ही गलती है जिस रक्त-मांस का उपभोग उसने भी किया है।

परंतु,—तिलक ने अनजाने ही अपने घर की ओर तेजी से कदम बढ़ा दिए? पर अचानक उसकी गति कम हो गई? वह सोचने लगा—'पर पूजा-घर में प्रभात से मिलकर वह इतनी खुशी से भरकर क्यों लौटी थी? इतनी उमंग में भरकर क्यों बातें कर रही थी? बहुत दिन पहले 'खो गया' मानकर जिस नेकलेस के बारे में सोचना छोड़ दिया था, पेटी की तली में अचानक मिल जाने पर जैसी खुशी होती है, वैसी ही खुशी से भरकर वह बातें, क्यों कर रही थी? किसी दिन अचानक कहीं फिसलकर गिर जाने के बाद, नहा-धोकर, फिसल जाने की बात भूल जाने का लक्षण तो यह नहीं है। किसी जमाने में खेलते-खेलते कीचड़ से बिलकुल सन जाने पर जैसा हुआ था, उसकी याद को बड़े जतन से हृदय में संजोए रखने जैसी ही यह बात है। प्रभात से मिलकर अब भी चंद्रा में जो उमंग उमड़ आई, वही चंद्रा की जिंदगी में उसकी फिसलन की निशानी है। और प्रभात जैसे नौजवान का दिल भी "जीवन में पहली बार के लिए कोमल हो उठा था। क्यों? प्रभात ने जो कहा था—" "जिन दसियों लड़कियों से वह मिला था, उनकी भांति इस लड़की को भी वह भूल नहीं सका।" ऐसा क्यों कहा था?

घर के सामने खड़े होकर, अंधेरे घर की ओर देखते हुए तिलक सोच रहा था—अंदर जाए या न जाए?

दूसरे दिन दफ्तर की मेज पर कुहनी से टिका हुआ वह सोच रहा था, तो क्या सचमुच वह नष्ट हो जाए? जिस शांति के लिए अपने जीवन को बांधे रहा है, बिना किसी अपराध के उस शांति को वह खो क्यों डाले? नहीं, नहीं, जीवन को वह इतनी आसानी से यों ही छोड़ नहीं दे सकता! इस ग्रंथागार में बैठे उसने जीवन की जटिलताओं के बारे में अनेक बातें पढ़ी हैं। किसी एक प्राणी को अपना बनाने के प्रयास में पढ़ा है कि लोग युग-युग से मुसीबत झेलते आए हैं। उसे भी तो मुसीबत का सामना करना पड़ रहा है। ठीक है। अपना विध्वंस करने के पहले उसे आखिर तक देखना होगा।

तिलक के मन में कुछ बल आया, सारी बातें फिर एक बार सोच देखने की उसे इच्छा हो आई।

भले ही चंद्रा से उसका परिचय नहीं, पर प्रभात को तो वह अच्छी तरह पहचानता है। प्रभात ने खुद ही कहा है—"वह मुड़कर वापस आने वाला लड़का नहीं।" शायद इसीलिए चंद्रा आगे बढ़ने को विवश हुई। प्रभात ने तो यह भी बताया था कि उस लड़की की उपेक्षा से उसकी जिद बढ़ गई थी—वह जी-जान से यह जांचने में जुट पड़ा कि आखिर यह कितने पानी की मछली है। इसका मतलब यह है कि चंद्रा को पढ़ाई की मेज से उठा लाने में प्रभात को काफी मेहनत करनी पड़ी थी। याने प्रभात

के चंगुल में पड़ना न पड़े इसके लिए चंद्रा को भी बड़ा प्रयास करना पड़ा था। आखिर तक शायद उसे दृढ़ प्रतिज्ञ प्रभात के प्रलोभन की माया में पड़ने को विवश होना पड़ा था। अगर बात ऐसी है, तो फिर उसने ऐसा क्यों कहा कि "प्रभात बड़ा अच्छा था।" नोट आदि देकर मदद करने के कारण अब भी वह अहसानमंद क्यों है? लड़की की स्वभाव-सुलभ कोमलता और सामान्य सौजन्य की खातिर ही प्रभात को उसने हंसते हुए जवाब दिया था। परंतु घर आकर तो वह ऐसा कह सकती थी—"एक जाने-पहचाने आदमी से मुलाकात हो गई, उससे ज्यादा बातें नहीं कीं, क्योंकि मुझे पता है कि वह आदमी भलमानस नहीं है।" तिलक अगर पहले से ही प्रभात को जानता-पहचानता न होता, तो चंद्रा यह कहने पर कि वह 'बड़ा अच्छा था।' वही कह देता—"ठीक है। फिर कभी मुलाकात हो जाए तो उसे बुलाना यहां मेरी भी जान-पहचान तो हो उससे।" इसके बाद हो सकता है कि प्रभात भैया आता, कभी एक जून खाना भी खाता, कभी रात को रह भी जाता। सोचते-सोचते तिलक अधीर हो उठा। यह कौन बता सकता है कि दस बजे से चार बजे तक उसके दफ्तर में रहते समय कितने दिन प्रभात ने उसके गेट खोले होंगे, बंद किए होंगे?

छिः छिः छिः छिः! तिलक ने अकेले-अकेले बड़े वेग से अपने सिर को हिलाया। नहीं, नहीं, वह बहुत ज्यादा सोच-विचार कर रहा है। भला चंद्रा को उससे क्या नहीं मिला है, जिससे कि वह इतने नीचे जाएगी? उसे कौन-सा अभाव है, जिससे कि वह इतना कुत्सित हो जाएगी? अपनी पत्नी के बारे में वह जो ऐसी बातें सोच रहा है, उसमें उसके पौरुष का सवाल भी जुड़ा हुआ है। चंद्रा चाहे जो कुछ भी करे, पाप-पुण्य का ज्ञान रखने वाली लड़की होकर वह ऐसा कर नहीं सकती। अगर उसके मन में ऐसी कोई बात होती तो तिलक के सर्वेसर्वा होने की स्थिति में भी वह जरूर प्रभात को अपनाने का कोई-न-कोई जरिया निकाल ही लेती। जिस दिन प्रभात के हाथ चंद्रा ने अपने को खुद सौंप दिया था, उस दिन के लिए वह तो सिर्फ प्रभात को ही दोष नहीं दे सकती। अगर दोष प्रभात का था, तो चंद्रा का भी था, अगर उस रात को उसे आनंद मिला था, तब तो उस रात के लिए प्रभात भूल मानस है। बड़ा अच्छा आदमी! तब फिर आज भला प्रभात को बुरा कहने या उसका अपमान करने को क्या है? और चंद्रा न उसका अपमान कर सकती है और न उसे बुरा कह सकती है, तो क्या इसी से यह सूचित होता है कि वह अब भी प्रभात के प्रति कोमल भावनाएं रखती है? नहीं, ऐसा तो नहीं है। इससे तो शायद यह भी सूचित होता है कि उसके साथ कोई स्वार्थहीन, अनासक्त, सरल सम्पर्क भी है। —तिलक जल्द ही दफ्तर से निकल गया।

चंद्रा को पहले तो अपने मन पर ही विश्वास नहीं हुआ था। घर में घुसते ही तिलक ने चंद्रा के हाथ छतरी थमा कर कहा—'सुनो, वह दर्जी के यहां जिन गर्म कपड़ों का आर्डर दिया था, आज ट्रायल दे आया। परसों देने वाला है। लेकिन अभी तो पैसा ही नहीं है हाथ में।'

यह बात मानो चंद्रा के कानों में गई ही नहीं। जबकि तिलक मौजूद है, तो फिर पैसे हाथ में न होने जैसी एक नगण्य बात भला उसके कानों में जाएगी ही क्यों ?

अचानक उस घर में चंचलता फिर बढ़ गई। नंदी की जबान में फिर फिल्मी संगीत अजीब स्वर में सुनाई देने लगा। चंद्रा बालों की लटों को फिर से कंघी से सवार-कर अच्छा-सा जूड़ा बाधने लगी। तिलक को भी याद आया—'सुनती हो, पपीते का 'खार'[1] खाये बहुत दिन हो गए।'

सोने के कमरे में फिर 'राज-मगन' या आहोम राजाओं के राज्य-नाश की घटनाओं की कथाएं चर्चित होने लगीं। किसी दोपहर को नाई ने नदी की हजामत बनाते समय उसके गाल पर के एक दाने को काट दिया, जिससे काफी खून बहा। नदी जिस ईट पर बैठा हुआ था, उसी को उठाकर उस नाई की जिंदगी पर हाथ फेरना चाहता था, उसे देखकर चंद्रा की हंसी का पार न था। बिस्तर पर सोते हुए भी वह हंसती थी, तिलक भी हंसता था। इस बात पर उनमें चर्चा शुरू हो गई कि शरीर पर तिल, दाने, तुलसी-निशानी आदि रहने पर कुछ होता है, लोगों का ऐसा कहना सही है या नहीं। चंद्रा ने किसी से सुना था, जिसके होंठ पर तिल रहता है, वह विलासी और प्रेमी होता है। तिलक ने पूछा, 'क्या तुम्हारे होंठ पर है तिल ?'

चंद्रा ने अपना मुंह उसके पास लाकर कहा—देख लीजिये; नही है।

तिलक उसके निचले होंठ को उंगली से बिदोर-बिदोर कर देखने लगा। उसने अचानक पूछा—तुम्हारे इस होंठ को पहली बार मैंने ही चूमा है न ?—प्रश्न करते ही सहसा उसे लगा मानो वह बड़ा पापी है।

चद्रा की छाती क्षणभर के लिए धडक उठी। कुछ देर बाद थूक निगलते हुए उसने कहा—'हां।'

तिलक के दिमाग में मानों आग लग गई, उसका हाथ सुन्न-सा हो गया। धोखा है। बड़ा भारी धोखा। ये सरे-आम धोखा दे सकती है ! प्रभात को इसने दूसरी बार के लिए धोखा नहीं दिया होगा, क्या इसका कोई सबूत है ? माग का सिदूर पोंछकर किसी अनजान जगह में अगर इसे रख दिया जाए, तो यही लड़की अपने को दावे के साथ अनसूंघा फूल बताएगी, रक्त-मांस लालच से। अंतर नाम की कोई चीज इसकी है नहीं। इसी कारण अतर के कलुष का भी कोई सवाल ही नहीं है। जिदगी में जो एक बार पाप को छिपाने की कोशिश कर चुकी है, वह अपने अनजाने ही और दस पापों में डुबकी लगाने को तैयार हो रही है। अगर देह की इतनी ही भूख थी, तो यह चंद्रा मेरे पास आई ही क्यो ? वह दिन-रात प्रवंचना का शिकार मुझे क्यों बना रही है ?

दूसरे दिन सहायक लाइब्रेरियन से तिलक ने कहा था—आप कुछ दिन यहां के काम पर नजर रखें। शायद मुझे कुछ दिन छुट्टी लेनी होगी।

---

1 खार—केले के पौधे सुखाकर, जलाकर बनाया क्षार या नमक। उस 'खार' को डालकर बनाई गई असमीया तरकारी।

सहायक लाइब्रेरियन जैसे आसमान से आ गिरा। बोला—मैंने भी तो पंद्रह दिन की छुट्टी ली है। सात तारीख को मेरा विवाह है। सर, क्या आपको पता ही नहीं चला है ?

—विवाह है ?—तिलक उस आदमी के चेहरे की ओर एकटक देखता रह गया। "बैठिए न।" उसने पास की कुर्सी की ओर इशारा कर दिया, मानो देश-भ्रमण में निकले किसी व्यक्ति को किसी अनुभवी आदमी ने सलाह देने के लिए बैठा लिया हो।

अचानक तिलक ने सहायक लाइब्रेरियन से पूछ लिया—अच्छा बताइए तो आप कैसी लड़की से विवाह करेंगे ?

बेचारा दंग रह गया। कुछ दिनों से तिलक के बारे में वह कुछ बे-सिर-पैर की बातें सोचता रहा था, पर, आज के इस सवाल को सुनकर वह सिर्फ यही सोचने लगा कि आखिर सर को हो क्या गया है ? उसने धीमी आवाज में शर्माते हुए कहा—'क्या जाने, लड़की कैसी है, भला अभी ही मैं कैसे बता सकता हूं ?'

—'हां, हां, जरूर!' तिलक ने उसकी बात पकड़कर कहा—"सतह का स्थिर पानी देखकर झील के अंदर क्या है, कोई बता नहीं सकता। मगर कुछ गलती आप न करें, हमारी औरतों की सचाई, नैतिकता आदि के बारे में कुछ लोगों की विचार बुद्धि बड़ी संकीर्ण है। आप जिस लड़की से विवाह करना चाहते हैं, उसका दिल पाने की कोशिश करें और वह दिल आपको तभी मिल सकता है, जबकि आप अपने दिल को बिल्कुल उंड़ेल दें। बहुत-से लोग बर्तन को बिलकुल उलटकर ढाल देने से इसलिए कतराते हैं कि ऐसा करने पर कहीं नीचे जमी हुई तलछट निकल न पड़े। इसलिए वे दिल को भी पूरा खोल देने में डरते हैं। परंतु यह गलत है। आप यह निश्चित रूप से समझ लें कि, अंतर से क्या निकल गया है, यह बड़ी बात नहीं है। अंतर में क्या समा लिया गया है, यही बड़ी बात है। भला कलंक कहा नहीं है ? क्या आप विश्वास करते हैं, जरा ठहरिए, उस लड़की की उम्र कितनी है, आपने क्या सुना है ?

—इक्कीस साल! उसने डरते हुए कहा।—ठीक! क्या आप यह विश्वास करेंगे कि चौदह साल से इक्कीस साल तक ये सात साल उस लड़की ने विवेकानंद की किताबें पढ़कर गुजारे हैं ? क्या आप यह विश्वास करते हैं कि उसकी जिंदगी में किसी दिन कभी कोई प्रलोभन नहीं आया था ? अगर आया भी था, तो भी आप समझ लें कि आपके लिए करने को कुछ भी नहीं है। आप उस लड़की के वर्तमान को लेकर अपना भविष्य निर्माण करने चले हैं, उसके अतीत के गड़े मुर्दे उखाड़कर वर्तमान को दफनाना नहीं चाहते। हमारे पापी मन गुणों और पुण्यों को खोद-खोद कर उसके नीचे पाप है या नहीं, यह देखना चाहते हैं, वैसी गलती आप न करें। समझे।

तिलक ने थके आदमी की भांति लंबी सांस लेकर कहा—'उंह, छि-छि,' मैंने भला आपसे यह सब क्या-क्या कह डाला ? आपका शुभ कार्य सामने है, भला इस समय ये बातें कहने की क्या जरूरत ? छि-छि, खैर आप बुरा न मानें। हां, आप जाइए! आपका जीवन सुखी होगा। मगर हां, आपने तो मुझे विवाह का निमंत्रण दिया ही नहीं ?

—जरूर दूंगा, सर! कहकर वह तेजी से निकल गया।

तिलक की मानो चेतना लौट आई, उसे रुलाई-सी आ गई। अभी-अभी उसने जो बातें कह डाली हैं, भला इसके पहले उसने क्यों नहीं सोचा था? ये बातें वह अपने आपको क्यों नहीं समझा सका है? हो सकता है कि समझा ले जाए। पर उसे तो प्रवंचना बिलकुल सहन नहीं हो सकती! देह के लिए वह बावला नहीं। परंतु एक दिल को पाने की उसकी अभिलाषा है। लेकिन क्या वह दिल दे सका है? हां, देगा, वह सब-कुछ चंद्रा को ही देगा। प्रभात की बात वह मन में नहीं ही लाएगा। प्रभात का यह कहना कि "अन्य दसियों लड़कियों से इस लड़की का एक जो फर्क था—वह मेरे मन में बसा रह गया!" या चंद्रा का यह कहना कि "वह बड़ा अच्छा आदमी है", इनसे दो दिलों के दो ओर से आगे बढ़ आने का जो आभास उसे मिला था, उन सभी बातों को वह तुच्छ समझेगा, समझेगा कि वह झूठ था! प्रभात जिन दसियों लड़कियों से मिला था, भला उनकी जिंदगी में क्या गुजरा है? अगर वे बरबाद नहीं हुई हैं तो फिर वह सिर्फ चंद्रा को ही बरबाद क्यों करे? अगर दुनिया इसी तरीके से चलती है, तो वह भी वैसे ही चलेगा। पूजा देखने जाने के पहले जिस चंद्रा को उसने तहे-दिल से अपना लिया था, पूजा देखकर तो वही लड़की वापस आई थी। इनके बीच में तो सिर्फ एक बात भर आई है। और वही बात उसकी जिंदगी को उलट-पलट डालने में यथेष्ट है, ऐसा भला वह सोचे ही किसलिए?

और वह चंद्रा? भला, उसका क्या हो गया है? उसका चेहरा दिनों-दिन सूखकर मुरझाता जा रहा है। इससे क्या सूचित होता है? वह तो कह सकती थी कि मैं मायके चली जा रही हूं। चंद्रा ने तो तिलक के बर्ताव की कोई कैफियत नहीं मांगी है।

उसी दिन शाम को तिलक चंद्रा को अपनी छाती से लगाये कितनी ही बातें कहता रहा। पर उसे क्या हो गया था—यही नहीं बताया! चंद्रा का शरीर रह-रहकर कांप उठता था।

तिलक ने और कोई बात सोची न थी, चंद्रा ने भी कोई बात जानने की कोशिश नहीं की थी। मानो उसकी हिम्मत ही बिलकुल खो गई थी। एक स्लेट-पेंसिल के लिए झगड़ा करने के बाद बहुत दिन तक बोल-चाल बंद रखने के बाद फिर से बोल-चाल होने पर जैसे उनकी दोस्ती पहले से कहीं ज्यादा गहरी हो जाती है, और जिस कारण उनकी बोल-चाल बंद हो गई थी, सायास उस प्रसंग को दबाए रखते हैं। तिलक और चंद्रा भी उसी तरह दिन गुजारने लगे—बड़े ही आनन्द से, दोनों ही एक-दूसरे के अंतर को सावधानी से बचाए चल रहे थे।

एक दिन तिलक ने अचानक दूर से ही प्रभात को देखा। वह बिल्कुल साहबी ठाठ में था। शायद उसे कंपनी की वह ऊंचे पद की नौकरी मिल गई है। तिलक के मन में यह भावना जग उठी कि वह प्रभात से कुछ बातें पूछे। बड़ी होशियारी से, धीरे-धीरे! यह बात मन में आते ही वह भी सिहर उठा। झट से दूसरी राह पर मुड़कर

वह प्रभात से ओझल हो गया प्रभात नाम के किसी आदमी के साथ उसका कोई संबंध नहीं, वह सोचने लगा। अनजाने में ही सड़क के बीच उसके मुंह से सीटी की आवाज भी निकलने ही वाली थी।

लेकिन घर पहुंचते ही उसका चेहरा देख, चंद्रा कुछ सावधान हो गई। सोने के कमरे में उसने कहा—'समझ रहे हैं, नंदी का कारोबार कुछ अच्छा नहीं दिखाई पड़ता।'

—आखिर क्या हुआ है?

—दोपहर को खा-पीकर वह उसी पानी वाले के यहां जाकर बैठा रहता है। लोग अगर कुछ कहने-वहने लगेंगे तो शर्मिंदा हमें ही होना पड़ेगा।

—'ओ! पानी वाले की उस लड़की के बारे में बता रही हो?' तिलक खिलखिलाकर हंस पड़ा। अरे, होने दो, उसमें क्या बात है। औरत जात ही ठहरी! किसी दिन पानी वाले को पता चल जाने पर पानी के कांवर की बहंगी से एक चोट पड़ते ही लड़की सीधी हो जाएगी। कहां का प्रेम-प्यार कहां हवा हो जाएगा, पता ही नहीं चलेगा।

चंद्रा भी हंस पड़ी। पर उमंग में उसने नारी-जाति की वकालत भी कर दी—'उंहु! ऐसी बात नहीं है जी! सभी औरतें एक ही जैसी नहीं होतीं। अगर उसने सचमुच नंदी को कोई वचन दिया है, तो बहंगी की पिटाई से भी कुछ होने वाला नहीं है। नारी का प्रेम भगोड़ा प्रेम नहीं होता। जिंदगी में एक बार अगर वह किसी को अपना लेती है तो, उसे वह कितने जतन से अपने दिल में रखती है, भला आप लोग क्या समझेंगे?

चंद्रा ने समझा था, खुशी के मारे तिलक उसे बांहों में भर लेगा। परंतु क्या कहते हुए उसकी जबान से क्या निकल गया, इसका पता उसे तब चला जब कि तिलक रात भर दूसरी ओर मुंह मोड़े सोया रहा और सुबह होते ही घर से निकल गया।

उस दिन जो लड़कियां ग्रंथागार से किताबें लेने आईं, उनमें से सब को समय पर किताबें न लौटाने, किताबों पर पेंसिल से निशानी लगाने आदि की शिकायत के साथ-साथ, किताबें वापस लेते समय पन्ने उलटकर देखे बगैर जब वे बाद को 'देखूं, देखूं, जरा मेरी अमुक चीज किताब में ही रह गई', ऐसा कहने आदि जैसी अनेक गलतियां पकड़कर उनसे बड़ा ही रूखा बर्ताव किया। उसे ऐसा लगा, मानो इनके ग्रंथागार से किताबें लेने में भी एक बड़ा व्यंग्य छिपा हुआ है।

पहले प्रेम पर उसे भी बड़ी श्रद्धा रही है। भले ही वह खुद अनुभवी नहीं, मगर उसने सुना है कि प्रथम प्रेम की स्मृतियां बड़ी मधुर हुआ करती हैं। प्रतिष्ठित जीवन के विशाल सागर के कल्लोल-संगीत के बीच प्रथम प्रेम की नन्हीं-सी निर्झर-धारा की कल-कल ध्वनि मूर्च्छना जगा सकती है। किसी एकांत-क्षण में वह देह-मन को शीतल कर सकती है, पुलकित कर सकती है। लगातार प्रचंड बरसात की अनगिनत बूंदों के बावजूद सुबह की पत्ती के सिरे पर टंगे ओस-कण की याद आ सकती है। प्रथम प्रेम

पर उसकी श्रद्धा रही है। पर उसी से वह चंद्रा को भी प्रथम प्रेम पर श्रद्धा रखने की इजाजत कैसे दे सकता है? वह उदार है, तो क्या इतना उदार हो जाए कि उसकी बांहों के बीच से अलग रहते समय बीच-बीच में चंद्रा उस प्रथम प्रेम की गुनगुनाहट याद करती रहे? भला वह इतना उदार कैसे हो सकता है? अगर कोई हो सके तो वह महामानव का नाम लेकर हट जाए! हिंसा, विद्वेष, स्वार्थपरता आदि को लिए हुए तिलक जैसे लोग सामान्य इंसान-जैसे जिंदा रहें।

मेज पर अपने सिर को पटक-पटककर उसे चीख उठने की इच्छा हुई—'चंद्रा, तुम यह क्यों नहीं समझतीं कि मैं तुमसे कितना प्यार करता हूं? यह क्यों नहीं समझतीं कि तुम मुझसे जितना ही छिपने की कोशिश करोगी, उतनी ही साफ हो जाओगी? इसकी बजाय तुम मेरे सामने खुलकर क्यों नहीं आ जातीं? चंद्रा ने बातें सोचना लगभग छोड़ ही दिया था। छोटे-छोटे तीन कमरों के अंदर नन्हे-से दिमाग से दिल के साथ जूझते-जूझते वह लगभग थक गई थी। सोचते-सोचते उसे सिर्फ इतना ही आभास हुआ था, एक दिन शायद कोई दुर्जेय वस्तु उसे ग्रास कर लेगी। पर क्या वह वस्तु मृत्यु से भी बड़ी है? अगर नहीं, तो भला उसे बेकार इतना सोच-विचार करने की जरूरत क्या है? कम से कम मृत्यु तो उसे जब कभी हाथ के पास ही मिल जाएगी। अगर मरना ही पड़े, तो फिर हाथ में जो चंद दिन रहें, उन्हें जैसे वह तिलक के लिए ही खर्च कर सके।

गंभीर चेहरा लिए शाम को जब तिलक घर आया, चाय पीने बैठकर वह पूड़ियों को यों ही चिकोट रहा था। चंद्रा ने उस बारे में कुछ कहा नहीं, क्योंकि कहकर कोई फायदा ही नहीं। उसने पूछा—'गर्म कपड़े लाने के लिए पैसे का इंतजाम करने की बात कही थी न? कुछ इंतजाम हुआ क्या?'

—पैसे भला कहां से मिलेंगे? ऐसे थोड़े ही कहीं पड़े हुए हैं?

—नहीं, नहीं, आपने इंतजाम करने की बात कही थी न, इसीलिए पूछ रही थी।

इसके जवाब में तिलक ने जो कुछ कहा, वैसी बात कितने निर्मम, कितने प्रतिहिंसा परायण होने वाला, कितने नीचे उतर जाने वाला आदमी कह सकता है, स्वस्थ दिमाग से विचार करने पर तिलक खुद भी यह तय नहीं कर पाता। उसने पूछा—"हां, एक बात है, तुम्हारे उस प्रभात भैया को कल देखा था; उसके साथ मेरी अच्छी जान-पहचान है, बहुत दिनों से। क्या उसी के यहां से कुछ रकम उधार ले आऊं?"

चंद्रा ने पहले सोचा, जवाब दिए बगैर रहा जा सकता है या नहीं। अगर जवाब न दे तो तिलक यह सोच सकता है कि प्रभात का नाम सुनकर वह भौंचक रह गई है। और अगर कह दे कि 'लाइए', तो तिलक को लगेगा कि प्रभात के साथ संपर्क साधने का एक मार्ग चूंकि निकल आया, इसलिए वह झट से मान गई। और अगर कह दे कि 'न लाइए', तो वह सोचेगा—

इतना सोचने-विचारने में ही चंद्रा को काफी समय लग गया। फिर वह तो ऐसी

निपुण अभिनेत्री भी नहीं कि जिस नाम को तिलक की जबान से निकलना उसके लिए भूत निकलने जैसे डर की बात समझती थी, वही नाम सुनने के बावजूद वह निर्विकार चेहरा लिए खड़ी रह जाए।

चंद्रा के अंतर में भले ही कुछ हो, तिलक ने गौर किया कि वह पीला चेहरा लिए खड़ी है। जबान में कोई शब्द नहीं। वह मानो जिंदगी-भर की गूंगी है।

'हुंह' जैसी आवाज कर, काठ-सी रूखी हंसी चेहरे पर लिए तिलक बाहर निकल गया।

तिलक से वह चाहे जितना ही सहज सरल क्यों न हो, पहले दिन जब वह चौंक उठा था, उसी दिन से चंद्रा ने क्षण भर के लिए भी यह सोचना नहीं छोड़ा था कि आखिर इसकी वजह क्या है? उसके दिमाग में प्रभात को छोड़कर और दूसरा कोई कारण समझ में नहीं आया था। वजह अगर वही थी, तो उसका निराकरण चंद्रा के लिए उतना आसान नहीं था। तिलक के सामने प्रभात का नाम उच्चारण करने की ताकत भी उसकी जीभ की नहीं थी। और तिलक अगर किसी और बात को लेकर व्यस्त है, तब तो प्रभात का नाम लेना, दूसरी ही समस्या का सर्जन करना होगा।

परंतु आज तो सारा संदेह मिट गया। तिलक अपने को और छिपाए नहीं रख सका। तब तो, तिलक ने चंद्रा की जिंदगी का एक अध्याय पढ़ लिया है। चंद्रा सहसा सिहर उठी।

वह सोच रही थी—परंतु अतीत की कीचड़ को शरीर पर डालकर आपको भला बदला क्यों लेना था? मेरा हृदय चीरकर आप क्यों देखते नहीं कि अतीत से अपने अंतर में कूड़ा-करकट भरकर आपके लिए मैं नहीं ले आई। अगर मेरे बारे में आपको कुछ पता था, तो पहले ही दिन आपने मुझसे साफ-साफ क्यों नहीं पूछ लिया? वह हिम्मत तो आपको रहनी चाहिए थी। और एक लड़की ने क्षणभर की उत्तेजना के वश में आकर कोई गलती कर डाली थी, तो उसे भी माफ कर देना चाहिए था। भला आपने यह क्यों नहीं सोचा कि आपकी इतनी उपेक्षा के बावजूद किस पवित्रता ने मुझे कातर बनाए बगैर रखा है!

चंद्रा के देह-मन की शक्ति बिलकुल खत्म हो गई थी। फिर भी सिर्फ दो-एक बातें कहने के लिए उसने अपने को तैयार किया। "खाना मैं ही बनाऊंगी" कहकर उसने नंदी को पैसे देकर सिनेमा देखने भेज दिया और खुद बैठी शाम के क्षण गिनती रही!

तिलक आया। न कोई भूमिका बांधने का सवाल था और न कोई समय-असमय का ही सवाल था। चंद्रा बोली—'जरा सुनिए न। मेरे लिए आपको जो तकलीफ हुई है, चूंकि वह मेरी आंखों के सामने है, इसलिए मुझे पाप पर पाप होगा, हो सके तो आप मुझे विदा कर दें। मेरे बारे में कैसी धारणा लेकर आप तकलीफ झेल रहे हैं, पता नहीं। मेरे पुराने दिनों की बात आप क्या जानते हैं, यह भी मुझे पता नहीं। मुझे जो कुछ पता

है, आपको बताए देती हूं। बहुत दिन पहले एक दिन आधी रात को मैं प्रभात भैया के पास निकल आई थी। उस रात को मैंने अपने को पूरी तरह उन्हें सौंप दिया था। वे बातें आज पूरी तरह याद नहीं हैं। उस दिन के पहले या बाद को क्या हुआ था, मैं बता नहीं सकती, क्योंकि याद रखने लायक कुछ हुआ ही नहीं था। मेरे लिए तो वह सिर्फ क्षणभर की घटना थी। आपसे मुझे बहुत कुछ कहना था, परंतु आपके सामने मेरी जबान से निकली कोई बात शोभा नहीं देती। सिर्फ एक ही बात मुझे याद रहेगी; मैंने अगर आपको जरा भी वंचित किया है, तो आप भले ही मुझे माफ कर दें, ईश्वर कभी मुझे माफ नहीं करेगा।

कौन-सी शक्ति लेकर चंद्रा इतनी बातें कह गई, उसे खुद ही पता न था। पर बात खत्म होते ही वह बैठ गई; शब्द-हीन रुलाई में वह विकल हो उठी। इस रुलाई-का मानो न प्रारंभ था, और न कोई अंत ही है।

बहुत देर बाद तिलक की निश्चलता टूटी। अपनी आंखों से बहती हुई आंसुओं की धारा को उसने हाथ से ही पोंछ लिया। चुपचाप! इसके बाद उठकर वह चंद्रा के पास गया। उसकी पीठ पर हाथ रखने में उसे आज पहली बार संकोच हुआ। इसके बाद अचानक उसने चंद्रा का सिर खींचकर छाती से लगा लिया। बोला—'सिर्फ इन्हीं चंद बातों, हां, इन्हीं चंद बातों के लिए मैं बाट जोह रहा था चंद्रा! मैं इतने नीचे इसी कारण जा सका था, क्योंकि तुम्हारे प्यार ने मुझे बहुत ऊपर उठा रखा था। मेरे अंतर में अब न कोई क्षोभ है, और न कोई दुविधा ही। क्योंकि मेरी नजर में न आई हो, ऐसी कोई भी चीज शायद तुम्हारे अंतर में नहीं है।"

धीरे-धीरे तिलक की सिसकी भी गूंज उठी।

1959

डैना

शाम होने के बाद बिस्तरों को इधर-उधर खींच-खींचकर सोने की व्यवस्था अलग-अलग कर ली गई। दोनों कमरों के रूप-रंग अलग-अलग हो गए। घर के अंदर का हिस्सा नया-नया-सा लगने लगा। वह सब काम हो चुकने पर कुछ ऐसी बे-सिर-पैर की घटनाएं, जैसे अरसे पहले देखे हुए कुछ दृश्य, कुछ ऐसी घटनाएं जो हुईं तो जरूर थीं, पर कब हुई थीं, याद नहीं। हेमंत के मन के ऊपर से निकल जाने लगीं।

परीक्षा नजदीक आ रही थी, पढ़ने में मन नहीं लग रहा था, इसलिए पढ़ने की मेज को ही एक कोने से दूसरे कोने में ले जाकर, मेज पोश को झाड़-फटक कर फिर से बिछाया और किताबों को सिलसिलेवार सजा लिया गया। वहां एक बड़ा-सा पुराना पेड़ था, जो हमेशा नजर में पड़ता रहता। एक दिन उसके डाल-पत्ते सब कुछ काट-छांट-कर ठूंठ-सा बना दिया गया। अब वह जगह पहले से कुछ अलग थी।

सूना-सूना-सा लगा। पास ही एक 'कल-घर'[1] था, जिसका इंजन 'घर-घर, घर-घर' आवाज करता हुआ चल रहा था। वह आवाज मानो कान में आ ही नहीं रही थी। पर अचानक इंजन बंद हो गया जिससे वहां एक तरह का सन्नाटा तैरने लगा।

और अभी-अभी जब कि ललिता सोने के लिए दूसरे कमरे में जा रही थी, पीछे से उसकी ओर देखते हुए हेमंत को पिछली बातें याद आने लगीं। बस में यात्रियों में ठेलमठेल हो रही थी, उसी के बीच वह किसी तरह जरा-सी जगह निकालकर बैठ गया था, जांघों में दर्द होने के बावजूद वह अपने लड़के को जांघ पर बैठा लेने को विवश हो गया था। दोनों ओर से यात्रियों की ठेलमठेल, तिसपर बस की उछाल; दर्द के मारे बीच-बीच में उसका मुंह सिकुड़ जाता; कुछ देर बाद एक चौराहे पर बस से अचानक बहुत-से यात्री उतर गए, बस खाली हो गई, लड़के को पास के आसन पर बैठाकर उसने दोनों पैर फैला दिए। मुंह से आराम मिलने की एक आवाज की, और हाथों से जांघों को दबाने लगा—आदि-आदि बातें उसके दिमाग में घूमने लगीं।

क्या ललिता दरवाजा बंद कर देगी? क्या अंदर से सिटकनी लगाकर बंद करेगी? नहीं, नहीं, उसने तो ऐसा कुछ किया नहीं। कुछ क्षण हिलते रहकर परदा स्थिर हो गया। उस ओर कुछ देर देखते रहने के बाद हेमंत बिस्तर पर बैठ गया। उसने दोनों

---

1. 'कल-घर'—चाय पत्तियों का कारखाना

पैर फैला दिए। अनजाने ही उसके हाथ दोनों जांघों पर आने-जाने लगे।

मगर अचानक बे-सिर-पैर की वे बातें भला उसके दिमाग में किसलिए आईं? अब हेमंत को यही चिंता होने लगी। वह बस कहां की थी? वे मुसाफिर कौन थे? वह उछाल, झकझोर, यंत्रणा! क्या वह घटना सचमुच हुई भी थी?—क्या गोद में लिया हुआ वह लड़का उसी का था? उसका अपना ही सर्जन था? वह यात्रा कहां से कहां तक की थी? उसकी शुरुआत कहां से हुई थी?

सारी बातें हेमंत को साफ-साफ याद नहीं। किस दिन, किस तरह से वह यात्रा शुरू हुई थी, यह भी याद नहीं। काफी पहले एक दिन ललिता उसके घर के बरामदे में बड़े भाई के लड़के से बहस कर रही थी कि उसके पास का दस रुपए का वह पुराना नोट चलेगा या नहीं। खिड़की के पास हेमंत को खड़ा देख वह पूछ बैठी थी;—देखो तो हेमंत, यह नोट चलेगा या नहीं?—हेमंत ने बाहर आकर नोट को फैला सूरज की ओर उठाकर देखा और कहा—क्यों नहीं चलेगा? जरूर चलेगा।—और तब ललिता ने हंसकर कहा था—तब तुम्हीं जरा इस नोट को तुड़ा दो।—उसी दिन से शुरुआत हुई थी क्या? नहीं, नहीं, शायद उससे भी पहले हुई थी। पौ फटते ही ललिता बड़े भाई की बेटी के साथ जब टहलने निकलती, लौटकर हेमंत के बिस्तर के पास की बंद खिड़की के पास रुककर कहती—अरे नौजवान लड़के का उठने का वक्त ही नहीं हुआ! और वह एक दिन रविवार को उसका काम करने वाला लड़का बाल कटवाने जाकर जब लौटा नहीं, तब ललिता ने कहा था—तुम अब क्या चूल्हा जलाओगे, लो, हमारे ही हिस्से से चाय पी लो, वे शायद उससे भी पहले की घटनाएं हैं। अच्छी तरह याद नहीं। इन छोटी-छोटी घटनाओं में कौन-सी घटना पहले की है, और कौन-सी बाद की, यह याद करने का कोई उपाय ही नहीं रहा है। सारी घटनाएं ऐसी हो गई हैं मानो पीछे छोड़ आए, दूर के, खेत-मैदानों के उस पार के गांवों के जंगल हों। जिनमें कुछ पेड़ ऊंचे हैं, कुछ छोटे-नाटे हैं, यह भले ही बताया जा सके, पर कौन-सा पेड़ पास है। कौन नजदीक है, अंदाजा लगाना कठिन है। सब एकाकार-से लगते हैं।

एक दिन दफ्तर से लौटते ही हेमंत ने ललिता से पूछा था—'बाइदेउ'[1], इंटरव्यू कैसा रहा?

ललिता ने उमंग भरे स्वर में जवाब दिया था—नौकरी मिलने वाली नहीं है।

—क्यों?

—उम्र निकल गई।

—उम्र निकल गई? उम्र कितने साल दिया गया था?

—अट्ठाईस साल।

हेमंत को शायद यह पूछने की इच्छा हुई थी;—आपकी उम्र कितनी हुई? परंतु

---

1 बाइदेउ—बहन जी!

उसने पूछा नहीं। कुछ क्षण चुप रहकर उसने पूछा था—तो फिर आपने आवेदन क्यों किया था ?

—आवेदन किया था—मतलब विज्ञापन में यह लिखा था कि 'स्पेशल केस' में उम्र के बारे में ढील दी जा सकती है।

—'स्पेशल केस' का मतलब ?

—मुझे भी सही-सही पता नहीं। वे लोग किसे 'स्पेशल केस' समझते हैं, मैं तो नहीं जानती। इसलिए सोचा था, कि हो सकता है कि मेरा भी 'स्पेशल केस' कुछ हो। इसी कारण आवेदन कर दिया था।

—मगर ?

—मगर मेरा कोई 'स्पेशल केस' नहीं निकला।

हेमंत को याद है—बातें करती हुई ललिता बरामदे की रेलिंग के ऊपर के काठ पर कतराकर एक ओर बैठ गई थी। फिर कहने लगी थी—मैंने तो सोचा था—हो सकता है कि मेरे चेहरे-मुहरे ही 'स्पेशल केस' हो जाएं !—कहते-कहते वह हंस पड़ी थी। हेमंत ने दूसरी ओर आंखें मोड़ ली थीं।

ललिता का चेहरा सुघड़ नहीं था। गालों की हड्डियां उभरी हुई थीं, गाल पिचके थे, नुकीली नाक से चेहरे को कोई खास मदद नहीं मिलती थी। दोनों आंखें बड़ी-बड़ी थीं। त्वचा का रंग कुछ काला था, और उस पर कहीं-कही काली-काली बिंदियां थीं ! उसका कद ऊंचा था, देह में मांस बहुत कम था। हेमंत प्रायः सोचा करता, इसी नाक, इसी चेहरे और रंग से ही तो बहुत-से लोग बड़े होते हैं। पर ललिता का चेहरा बुरा क्यों हुआ ? किस चीज की कमी के कारण वह देखने में असुंदर बन गई ?

एक दिन हेमंत ने उससे पूछा था—भला अब आप क्या करेंगी ? क्या घर लौट जाएंगी ?

ललिता का अपना कोई प्लान-प्रोग्राम तो था नहीं। बड़े भाई ने इंटरव्यू देने के लिए बुला भेजा था, वह आ गई थी; अब बड़े भाई का कहना था—दोनों लड़के-लड़कियों की परीक्षा है। परीक्षा तक रुक जा; उनकी पढ़ाई-लिखाई में जरा मदद कर दे। इसलिए ललिता को रुकना है। वह उन दोनों लड़के-लड़कियों की 'ट्यूशन' करेगी।

मगर उन लड़के-लड़कियों को पढ़ाने जाकर ललिता को लगा कि उसकी अपनी ही परीक्षा शुरू हो गई है। हेमंत ने पूछा था—क्यों ? आखिर क्या हो गया ?

ललिता ने बताया, आखिर उन्हें क्या समझाऊं ? मैं तो खुद ही समझ नहीं पा रही हूं।

हेमंत बोला—उंह, आप तो यों ही कह रही हैं। वे तो आठवें-नौवें वर्ग के छात्र-छात्रा हैं। ललिता ने बात पूरी होने के पहले ही कह दिया था—ऐसा भले ही हो,

हमने तो वे विषय पढ़े ही न थे। हमारे समय में ये सब थे ही नहीं! आजकल तो कोर्स बिलकुल ही बदल गया है।

एक-दूसरे से सटे हुए सरकारी क्वार्टर। एक पूरे मकान में ललिता का बड़ा भाई रहता। पास के दूसरे क्वार्टर के आधे हिस्से में रहता था हेमंत। वह कुंवारा था। इसलिए उसे पूरा क्वार्टर नहीं मिला था। पर अचानक उसे लगा—ये डेढ़ क्वार्टर मिलकर मानो एक बड़ा क्वार्टर बन गया है। बीच का लगभग चार हाथ की चौड़ाई का हिस्सा सिर्फ ललिता के दौड़ने और छलांग भरने की सुविधा के लिए ही रखा गया है। अपने मकान की सीढ़ी के निचले दो ताखों पर तो ललिता के पांव ही नहीं ठहरते। छलांग मार वह तो पूरी सीढ़ी ही पार कर जाना चाहती। उसके हाथों में स्कूली किताबों की ढेरी होती। उस ढेरी में अनेक अनसुनी-अनदेखी समस्याएं होतीं! वायुमंडल का दबाव, ए प्लस बी, क्यूब, दंड-चुंबक का चुंबकीय क्षेत्र, वड्र्सवर्थ ने 'येरो' बगैर देखे ही उस पर कविता लिखी थी। आदि आदि! हेमंत खुद भी उलझन में पड़ जाता। वह भी तो यह सब नहीं जानता! ललिता कहती, उंह! तुम तो जरा पढ़ लो, तो बता सकोगे! तुम्हारा दिमाग अच्छा है।

पहले-पहल तो ललिता के भाई के वे लड़के-लड़कियां भी उसके पीछे-पीछे आ जाते। वे कुर्सियों पर बैठ जाते। इसलिए ललिता को हेमंत के बिस्तर पर ही बैठे रहना पड़ता। बाद में लड़के-लड़कियां कभी आते, कभी नहीं आते। ललिता के बैठने की कोई निश्चित जगह नहीं थी। दोनों कुर्सियां खाली रहने के बावजूद वह कभी-कभी हेमंत के बिस्तर पर दोनों पैर चढ़ाकर बैठ जाती। कभी-कभी उसके पढ़ने-लिखने की मेज के एक कोने पर अध-बैठी-सी आधा घंटा बिता देती।

एक दिन हेमंत ने अचानक उससे कह दिया, 'बाइदेउ', आप यह सब नौकरी-चाकरी की बात छोड़ दीजिए। कहीं शादी-विवाह कर, घर-परिवार बसा, बिल्कुल जम जाइए।

—आं, क्या कहा तुमने?—ललिता की आंखें फैल गईं। कुछ देर हेमंत की ओर विस्मय भरी दृष्टि से देखते रहकर उसने कहा—'लोग कहते हैं कि मेरी जबान पर लगाम नहीं है। पर तुम तो मुझसे भी बढ़-चढ़कर निकले!

—मैंने कौन-सी बुरी बात कह दी?—ललिता की बात पर हेमंत के मन में संकोच की भावना जगी!

ललिता ने धीमी आवाज में कहा—नहीं, नहीं, तुमने तो कोई बुरी बात नहीं कही। पर बात यह है कि ऐसी बातें आजकल मुझसे कोई नहीं कहता। वह सब अब मुझसे कहने लायक बात भी नहीं है।

हेमंत ने पहले जैसे सकुचाते हुए ही कहा—नहीं-नहीं, भला आप ऐसी बात सोच क्यों रही हैं?

ललिता ने झमककर कहा—अरे जाओ जी, तुम मेरी खुशामद के लिए ही ऐसी

बातें कह रहे हो। समय पर काम में न लगाए सीमेंट की बोरियों को देखा है न? बाद को जिन्हें आंगन में कीचड़ होने पर पैर धौने के लिए रख दिया जाता है? इतना कहकर ललिता हंसने लगी।

एक दिन सन्नाटे भरी दोपहर को हेमंत बिस्तर पर लेटा हुआ था, ललिता बीजगणित की किताब लिए पास बैठी हुई थी। हेमंत बीजगणित का फार्मूला प्रयोग कर एक हिसाब जांचने के नाम पर कुछ और बात सोच रहा था। वह एक तरह की ऊष्मा का अनुभव कर रहा था। उसका मन कुछ बेचैन-सा हो रहा था। कुछ क्षण बाद उसके दिमाग में अचानक प्रचंड साहस जग उठा। अस्वाभाविक भाव से, जबरन होंठों पर हंसी बिखेरते हुए उसने रुक-रुककर कहना शुरू किया—"आपकी उंगलियां छूते ही बताया जा सकता है कि आप बहुत ज्यादा काम करती हैं। मसाला पीसती हैं, कपड़ा धोती हैं, सब्जी काटती हैं, गर्म बर्तन नंगे हाथ से ही पकड़ लेती हैं।

—हां, गरमी के मारे रस सूख गया है, इसका पता मुझे चल गया है।—ललिता ने बेतकल्लुफ हंसी हंसकर कहा।

उसके कुछ दिन बाद ललिता ने हेमंत से कहा—'तुम मुझे 'बाइदेउ' भी न कहना और 'आप' भी न कहना।

हेमंत ने सहज भाव से कहा—'तो फिर क्या कहकर पुकारूं?'

—'अभी तो कुछ भी कहकर पुकारने की जरूरत नहीं।'—ललिता ने बात को संक्षेप कर दिया।

इसके बाद के दिनों में हेमंत की बेचैनी उच्छृंखलता में बदलती गई। एक दिन उसने गले का पसीना पोंछते हुए तुतलाने की आवाज में पूछा—क्या भैया-भाभी की नींद बड़ी झीनी है?

—नहीं, उनकी नींद बड़ी गहरी होती है।

एक दिन रात के आखिरी हिस्से में ललिता ने हेमंत के कानों में कहा—तुम किसी फुल-क्वार्टर के लिए कोशिश क्यों नहीं करते?

—क्यों, क्या तुम मुझे यहां से खदेड़ देना चाहती हो?

—नहीं, नहीं, चाहे जो भी हो, यह तो हाफ क्वार्टर है, हाफ हमेशा हाफ ही है। 'फुल' का मतलब है 'फुल' पूरा। 'फुल' की तो बात ही अलग है।

अचानक हेमंत के पूरे शरीर पर से एक हिचकोला निकल गया! उसे लगा, उसके हाथ-पैर क्रमशः शिथिल होते जा रहे हैं। पर ललिता को जैसे इस शिथिलता का अंदेशा न हो, उसने इसकी कोशिश की। समय बीतने के साथ-साथ एक संदेह की भावना ने उसके मानस को घेर लिया और उसके फलस्वरुप उसे महसूस हुआ मानो उसका पूरा शरीर सुन्न-सा हो गया है।

सुबह देर तक हेमंत ने अपने कमरे की खिड़कियां खोली न थीं। दरवाजे को ललिता उठंगा गई थी, वह वैसा ही था। हेमंत थका-सा इधर-उधर बैठ-उठ रहा था।

'फुल-क्वार्टर' भला ललिता 'फुल-क्वार्टर' की बात क्यों कर रही है। कौन रहेगा उस 'फुल-क्वार्टर' में ?

दोपहर को दफ्तर में भी हेमंत का सिर भारी-भारी-सा लगता रहा। नींद पूरी न होने के कारण ही उसे ऐसा लग रहा है।—ऐसा सोचकर उसे लगा, क्यों न घर जाकर अच्छी तरह सो ले। मगर उसे घर लौटने में भी डर-सा लगा। दफ्तर की छुट्टी होने के बाद भी उसे घर आने की इच्छा नहीं हुई। होटल में चाय पी, एक दोस्त के यहां जाकर उसने रात को नौ बजा दिया। नौ बजे के बाद घर लौटकर उसने देखा, खाना खा-पीकर, काम-धाम निबटाकर ललिता रेलिंग के काठ पर बैठी हुई है।

उन कई दिनों में हेमंत कई बार सोचता रहा था—नहीं, नहीं, ललिता के बारे में चिंतित होने की कोई बात नहीं है। यों ही कहना था, इसलिए उसने 'फुल-क्वार्टर' की बात कही होगी, उसका कोई और मतलब नहीं है। 'जमकर पत्थर बनी सीमेन्ट की बोरी' यह बात भी तो ललिता ने ही कही थी।—और तब हेमंत का मन हलका हो जाता है, दफ्तर का काम आधा छोड़कर उसे उस एकांत दोपहर को लालच से तब घर लौटने की इच्छा हो आती है। वह आता भी है।

परंतु एक दिन वहां से भाग जाने के लिए राह निकालने हेतु हेमंत का मन हाहाकर कर उठा। ललिता ने अस्फुट स्वर में उससे कहा—"तुम तो जानते ही हो, मुझे तो यों भी बड़ी देर हो गई। और ज्यादा देर करने की मुझे इच्छा नहीं है, देर करना अच्छा भी नहीं लग रहा है।"

मतलब ? हेमंत जोर से गरज उठना चाहता था, परंतु जबान से कोई आवाज किए बगैर वह ललिता की ओर देखता रहा। कुछ देर देखते रहकर उसने पूछा—"क्या तुम इन बातों को अलग लाइट में, मतलब कि 'सीरियसली' ले रही हो ?

'मतलब ?' ललिता की आवाज में ऐसा पैनापन था, जो हेमंत के लिए अनजाना था।

हेमंत ने ललिता की बात का कोई जवाब नहीं दिया। इसके बाद वह कई दिन घर नहीं लौटा। उसी दोस्त के यहां रहकर दफ्तर आया गया। पर उन दिनों यह बात लगातार उसके दिमाग में आती रही, कि वह भला इस तरह अलग क्यों रहे ? अलग रहने का मतलब है, भागते फिरना। पर वह किसके डर से भागता फिरे ? क्या उसने किसी स्कूली लड़की को लार्जेन्स से बहलाकर फुसला लाया है ? या छल-बल-कौशल से जंगली हाथी को फंसाकर कीचड़ में लाकर डाला है। यह सब तो उसने किया नहीं। तब फिर ? ललिता को खुद मालूम है, यह एक खेल-भर है। जंगली मुर्गे को गोली मारने जैसा खेल। जमी सीमेंट की बोरी को तकिया बनाकर सोने जैसा एक अस्वाभाविक खयाल। तब भला वह डरे किसलिए ?

उस तरह सोचते-सोचते जब उसके मन में साहस की तीव्रता बढ़ गई, तभी वह घर लौटा। जब तक घर में रहता, वह बड़ा ही निर्भीक, साहसी बने रहने की कोशिश

करता, पर वस्तुतः वह बहुत ही उत्कंठित, उत्सुक बना रहा। एक बार ललिता आई, देर तक चुपचाप बैठी रही। उसकी आंखों से आंसुओं की दो बूंदें बह आईं, इसके बाद चादर से मुंह ढंक लिया और मेज पर सिर टिकाकर रोने लगी। रुलाई-रुलाई-रुलाई-मानो इस रुलाई का कोई अंत न हो। हेमंत पहले तो विरक्त हो उठा, इसके बाद 'क्या करना है', कुछ तय न कर पाने के कारण विचलित अस्थिर हो उठा। क्या आंसुओं की धारा में पड़कर इसकी सांस घुट जाएगी ? इस धारा को तो उसी ने खोदकर ऐसा गहरा कर दिया है जिसमें डूबा जा सकता है। कुछ देर बाद हेमंत को खुद पछतावा होने लगा। उसने ललिता की पीठ पर हाथ रखा। उसे उठाने जाकर मानो वह खुद भी आंसुओं की उस धारा में उतर गया और फिर प्यार व बातों की सीढ़ी बना दी। अंत में ललिता एक बार हंस पड़ी।

पर हेमंत को वही बेचैनी विभिन्न रूप लेकर लगातार घेरे रही। बीच-बीच में वह उद्भ्रांत-सा हो उठता। ललिता की वह हंसी—सुनहले धागे से बूटे बनाए कीमती कपड़े की ओढ़नी के नीचे वह हसी एक बार छिप गई, फिर एक 'फुल-क्वार्टर' की फर्श पर वह हंसी फिर खिल उठी ! दफ्तर की मेज पर काम करते समय कभी-कभी हेमंत की ऐसी इच्छा होती कि कलम की निब को कागज पर दबाकर टेढ़ा कर दे। वह करे क्या ? यहां से दूर किसी ऐसी जगह तबादले की कोशिश करे, जहां कोई आसानी से पहुंच न सके ? मगर वह सब करने के पहले उसने लंबी छुट्टी के लिए एक आवेदन लिखा; फिर सोचने लगा कि छुट्टी के वे दिन कहां और कैसे बिताने हैं। हालांकि उसके जाने की और कोई खास जगह थी नहीं। छुट्टियों में जैसे कॉलेज-होस्टल के लड़के घर जाया करते हैं, वह भी बड़े शांत भाव से अपने गांव के घर चला आया।

एक दिन वहां ललिता का बड़ा भाई जा पहुंचा। "थिंग्स हैड गॉन टू फार।" घटना बहुत दूर बढ़ गई थी। ललिता ने अपने तकिए के नीचे एक चिट्ठी रखकर बहुत अधिक टेबलेट खा लिए थे। अस्पताल में डाक्टर ने उल्टी करवाकर पेट खाली करने के बावजूद वह दो दिन तक अचेत रही।

हेमंत का बड़ा भाई यह घटना सुन अत्यधिक उत्तेजित हो उठा। ललिता के बड़े भाई के साथ आकर वह ललिता को देख गया। छिः-छिः, नही-नही, ऐसा काम कभी नहीं हो सकता। कुरूप। और हेमंत से छह-सात साल बड़ी-बूढ़ी औरत से विवाह कभी नहीं हो सकता। हेमंत की मां दिन-रात रह-रहकर रोती रही। तीन जून उसने खाना ही नहीं खाया। बार-बार वह हेमंत के दिवंगत पिता की याद करती रही।

हेमंत के बड़े भाई की उम्र तीस साल थी। उसके विवाह के बारे में तय हो चुका था। बात सिर्फ इतनी थी कि लड़की पहले बी.ए. की परीक्षा दे ले तो विवाह हो जाए। पर अब और इंतजार करना असंभव था। बी.ए. परीक्षा बाद को देती रहेगी। परंतु अब तो सबसे जरुरी बात है, हेमंत के विवाह की राह साफ करना।

बिलकुल उसी समय से हेमंत धीरे-धीरे बड़ा गंभीर होता गया। घर में सबके

मना करने के बावजूद वह अपने उसी क्वार्टर में रहकर नौकरी में योगदान करने चला आया। कभी-कभी वह सोचने लगा—भला जमे हुए सीमेन्ट में भी इतनी स्निग्धता होती है? कभी-कभी उसके मन में यह भावना होने लगी कि ललिता लिखकर जो चिट्ठी अपने तकिए के नीचे रख गई थी, उसे लेकर पढ़ ले। कभी-कभी उसके मन में यह बात सही जान पड़ने लगी—थिंग्स हेड गॉन टू फार। घटना बहुत आगे बढ़ चुकी है। उसके बड़े भाई का विवाह हो गया। बीस साल की भाभी ने उसे एक पाट-रेशम की कमीज उपहार में दी। उस विवाह के कुछ दिन पहले से कुछ दिन बाद तक हेमंत को कई लड़कियों की फोटो के आमने-सामने किया गया; दो लड़कियों को उसके सामने सशरीर लाया गया, उन्नीस-बीस-बाईस साल की ताजी, किशोरी लड़कियां। हां, हर लड़की हेमंत से बिलकुल अच्छी तरह मेल की है। सत्ताईस साल का खूबसूरत, लंबा- तगड़ा नौजवान है हेमंत! लोग उसके लिए ऐसी किशोरियां ही ढूंढ़ लाए हैं, जिन्हें उसके पास खड़ा करने पर बिलकुल मेल की लगे। दोनों को देखने पर विवाह के बाद ली गई दूल्हे-दुल्हन की तस्वीर जैसा ही जान पड़े। अब हेमंत जिसे पसंद करे, उसे सिर्फ बता भर देना है।

लेकिन हेमंत ने "अभी यह सब छोड़ो न! मुझे अभी तंग न करो"—आदि जैसे दो-एक वाक्यों के अलावा किसी से कुछ नहीं कहा। कभी-कभी एकांत में दो-एक फोटो निकालकर उन्हें गुप्त रूप से देखा भी—कोमल, फूल जैसी उग्र, अंगारे जैसी; उच्छल मानो उमड़ी पड़ती हो। उन फोटो को पेटी में रखकर हेमंत ने ताला बंद किया। ये चीजें आजकल जहां-तहां रखी ही नही जा सकतीं। ललिता पूरे घर में दौड़ती फिरती है। हेमंत आंखें मूद कर देर तक अपने ललाट को सहलाता रहा। बहुत समय बाद वह अपने मन को समझा सका—नहीं, ये सभी लड़कियां बच्ची हैं, पिनपिनी, पुतलियों-सी। कुछ तस्वीरों के कोने में दोनों और डैनों वाली, हाथों में फूलों के गुच्छे लिए हुए दूसरी दुनिया की—जो बच्चियां या नन्हीं परियां होती हैं, ये भी उसी तरह की हैं।—यही नाक, यही चेहरा आदि से ही तो बहुत से लोग आदमी बनते हैं, पर उन्हीं चीजों से भला ललिता का चेहरा क्यों कुरूप हो गया? किस चीज के लिए वह देखने में भद्दी लगती है? इन सब पर विचार करने का कोई अर्थ ही नहीं। ये सब बेकार की बातें हैं।

आंख मूंद कर अपना ललाट सहलाते रहने के लिए हेमंत को न ज्यादा शक्ति मिली, न समय या सुविधा ही। एक दिन उसने 'फुल-क्वार्टर' के लिए आवेदन कर दिया।

उसे 'फुल-क्वार्टर' मिल गया। और एक दिन उसे पता चला,—उस क्वार्टर के बाहर अब उसके लिए कुछ भी नहीं रहा। उसकी मां ने खबर भिजवा दी कि वह उसका मुंह कभी नहीं देखेगी। उसके वंश-परिवार के किसी ने कोई खबर ही नहीं भेजी। उस 'फुल-क्वार्टर' के बरामदे में बैठे-बैठे ही उन सभी लोगों के नाक-भौं-मुंह

सिकोड़े चेहरे उसके सामने प्रकट से हो उठे। उसने सोचा था—उससे सिर्फ तीन साल बड़ा भाई जब यहां आएगा तो पहले जैसा ही उसके साथ एक रात बिता जाएगा। लेकिन नही, वह कभी नही आया। हेमंत को पता चलता है, वह बड़ा भाई बीच-बीच में आता है, पर होटल में रहता है।

अपने यारों-दोस्तों से तो खुद हेमंत की ही दूरी बढ़ती गई। अब वे उसे पसंद ही नहीं आते थे। वे चंद बच्चियों, पिनपिनी, पुतलियों जैसी लड़कियों के साथ रहकर घर-संसार बसाए हुए हैं। उनसे ललिता का परिचय करवाने पर, वे लड़किया आंखें फैलाकर ललिता की ओर देखती रहतीं। फिर बाद में परम भक्ति-भावना से उससे बातें किया करतीं। ऐसे लोग हेमंत को बिलकुल पसंद नही। उसे अब न कोई मित्र पसंद आता और न सड़क पर का कोई आदमी। भले ही ऐसे लोग जबान खोलकर कुछ न कहें, तो क्या हुआ, वे कहना क्या चाहते हैं, हेमत सब समझ जाता है। एक दिन ललिता के साथ रिक्शे पर सवार हो वह शहर की सड़क पर से जा रहा था, उसे देखकर लोगों ने जरूर कोई न कोई चर्चा की होगी। —"वह अपनी बड़ी बहन को अस्पताल लिए जा रहा है।' एक दिन दोनों रात के आखिरी 'शो' में सिनेमा देखने गए। उन्हें देखकर शायद लोगों को अचरज हुआ होगा—'इस लड़के को भला यह औरत कहा से मिल गई ?" हेमंत को ये बातें बिलकुल अच्छी नहीं लगतीं। अच्छी नहीं लगतीं यानि असह्य लगती हैं। दीवारों के अंदर रहना ही अच्छा है। बाहर तो बच्चे-बच्चियों, पिनपिने लोगों की भीड़ दिन-ब दिन बढ़ती ही जा रही है। उन सबके देह-मन अभी बुरी तरह कच्चे हैं, जिससे विरक्ति हो आती है।

उसके बाद हेमंत लगभग निस्तब्ध निर्विकार ही हो चुका है। गांव के पेड़-पौधे, उनके बीच-बीच के छोटे-छोटे घर—इन्हें पीछे छोड़कर दूर की पक्की सड़क पर जाने के लिए वह मानो एक फैले सूखे मैदान से होकर कदम बढ़ाने लगा। विवाह के कुछ दिन बाद ललिता को एक लड़का हुआ। यह घटना हेमंत के लिए ऐसी लगी मानो अपने खेत में सिचाई हेतु खोदी गई किसी नहर के सामने वह खड़ा हो। कम से कम एक बात के लिए यह घटना उसके लिए सुविधाजनक हो गई थी।—दीवारों के अंदर उसके लिए कुछ काम निकल आए। उसकी तनहाई का रूप बदल गया। कभी-कभी उसके मन में यह भाव जगता—हां, होने दें। झुंडभर बच्चे हों, जिनके बीच ललिता छिप जाए। उन बच्चों के शोर-गुल में उसकी लंबी-लंबी सांसें दब जाएं। परतु ऐसा करना भी तो ललिता को बहुत ज्यादा शह देना होगा। उसे बहुत ज्यादा ऊपर चढ़ाना होगा। वैसा करने की हेमंत की प्रवृत्ति नही हुई। अभिमान जैसी किसी चीज ने उसके मन को मानो कैद कर रखा है।

लड़के की उम्र तीन साल होने पर ललिता ने भी सोचा था, फिर से व्यस्त हुआ जाए। संसार-बंधन को कुछ और मजबूत किया जाए। हेमंत को कुछ और घनिष्ठ कर लिया जाए। पर हेमंत की ओर से कोई उत्साहजनक स्वीकृति न मिलने पर वह भी चुप

रही। वैसे भी वह प्रायः चुप ही रहा करती। उसकी तो जैसे कोई शिकायत ही नहीं थी। उसने एक 'फुल-क्वार्टर' चाहा था, वह मिल गया, बस हो गया। और हेमंत को जब लगता कि ललिता की कोई शिकायत ही नहीं है, तो उसके मन में भी बड़ी तीखी विरक्ति होती। हां, सचमुच, अब उसे भला शिकायत क्यों होने लगी? ललिता हेमंत के मन की बात समझ जाती। कभी-कभी वह साफ-साफ आवाज में धीरे-धीरे कहती,—तुम्हें तो बड़ा पछतावा हो रहा है न कि तुम बड़े बुरे फंदे में फंस गए? लेकिन ऐसी चिंताओं में तुम व्यस्त रहते हो, इस बात को जरा कम प्रकट करना। कम से कम, सज्जनता की खातिर। मेरी अवहेलना कर भले ही मुझे सजा दो, मुझसे भले ही बदला लो—पर ये काम कर रहे हो, ऐसा बाहर ज्यादा न दिखाना। जो कुछ समझना चाहिए मैं तो खुद ही समझ लूंगी। समझे न।

दिन बीतते गए। कुछ समय बाद हेमंत की मां का स्वर्गवास हो गया। खबर मिलते ही हेमंत ने घर जाने के लिए दफ्तर से छुट्टी ले ली! उसने सोचा ललिता को ले जाए या नहीं। ललिता ने अलग से अपने आपसे चर्चा की—वह जाए या नहीं। मन-ही-मन सोच-विचार कर उसने हेमंत से पहले ही तय कर लिया—हां, उसे जरूर जाना है और गई भी। दोनों अपने साथ लड़के को भी लेते गए थे। वहीं पहली बार हेमंत अपने घर में सपरिवार बारह दिन रहा। उन दिनों अपनी दाढ़ी-मूंछ काटना नहीं पड़ा था, इसलिए वह मन में कुछ चैन का अनुभव करता था। वह सोचता था, वह कम से कम कुछ ज्यादा उम्र का लगे। परंतु उसे हर क्षण यही अनुभव होता था, मानो सभी लोग उसे सुदर नौजवान ही मान रहे हैं। बाल, कपड़े-लत्ते आदि पर कोई ध्यान न रखने पर भी, नितांत असंयत, असावधान रहने के बावजूद वह अपनी भाभी को जैसा खूबसूरत देख रहा था, लोग उसे भी उतना ही खूबसूरत देख रहे थे। हेमंत ने पचीस दिन की छुट्टी ली थी। पर मुंडन के बाद साफ हो जाने पर, भाभी आदि के तेल-नींबू आदि लगाकर साफ-सुथरा हो जाने पर, उसका वहां रहना कठिन हो गया। बड़ा ही कातर और मुरझाया हुआ होकर वह लोगों के बीच से निकल भागा।

इसके बाद जिंदगी के उसी सूखे फैले मैदान पर कदम बढ़ाना जारी रहा। कुछ दिन बाद हेमंत को लगा कि लड़के के लिए अब एक नया घर बनाना चाहिए। मन में भावना जगते ही उसने घर का काम शुरू ही कर दिया। कुछ दिन तो काफी दौड़-धूप, उमंग-स्फूर्ती में गुजर गए। नए घर में जब वे रहने लगे, तब उसके मन में यह फिक्र होने लगी, लड़के को मैट्रिक परीक्षा के लिए अच्छी तरह से तैयार करवाना है। उसके लिए हेमंत का ज्यादा परिश्रम होने लगा, और ज्यादा तकलीफ होने लगी। पर फिक्र होते ही पैंतालीस साल का हेमत सत्रह साल के किशोर की भांति स्कूली पुस्तकें पढ़ने लगा। जब वह कुछ नहीं करता, तब ललिता सोचती कि वह उसकी अवहेलना कर रहा है। हेमंत उसकी अवहेलना नही कर रहा, यह समझाने के लिए ऐसे ही कामों के अलावा और कोई काम तो है भी नहीं। इस बीच ललिता सचमुच सख्त-सी होने

लगी थी।

और अंत में वह अचितनीय घटना घट गई। अचानक हेमंत के बड़े भाई का देहांत हो गया। पिछले दो महीने से हेमंत बड़े भाई के परिवार को व्यवस्थित करने में जुटा हुआ था। अपने लोगों से अलग-थलग होकर रहने के उसके पछतावे का ओर-छोर नहीं रहा है। वह बहुत ही विकल—बहुत ही व्यस्त हो उठा था—भाभी, कोई चिंता न करो—आखिर मैं तो हूं न।

बड़े भैया की दो लड़कियां हैं, जो दूर के स्कूल मे पढ़ रही हैं। परिवार में जो परिवर्तन आ गया है इसका अनुभव उन्हें करने नहीं देना है। वे वहीं रहकर पढ़ती रहें। भैया के रुपए-पैसे जो हैं, और जो मिलने वाले हैं, उन्हें इकट्ठा कर 'फिक्सड-डिपोजिट' में रख दिया जाए। इस घर को किराए पर दे दिया जाए। उसी सूद और किराए की रकम से ही गुजारा चल जाएगा और भाभी के लिए कोई फिक्र नहीं। वह हेमंत के साथ रहने के लिए चली आए।

और उसी के अनुसार काम हुआ। पांच दिन पहले भाभी हेमंत के यहां आई है। जिस कमरे में लड़का रहता था, उसी को, लड़के के बिस्तर को ही भाभी के लिए दे दिया गया है। हेमंत उन सभी की देख-भाल कर रहा है। किसी तरह की असुविधा तो नहीं होनी चाहिए। उसे जो चाहिए मिलेगा! वह अड़तीस साल की सुंदर और चुपचाप उस कमरे में चहलकदमी कर रही है। मानों उसे और कुछ नहीं चाहिए!

आज दिन ढले पर भाभी ने कहा था—रात को उसे बड़ा डर-सा लगता है। नींद आने पर उसे तरह-तरह के सपने आते हैं, जगे रहने पर भी उसके मन में तरह-तरह की दुश्चिंताएं आती हैं। अकेले सोने में उसे·· ।

अब हेमंत बड़ा व्यस्त हो गया। तुम कोई फिक्र न करो भाभी। यह आज से तुम्हारे साथ ही सोएगी। क्या कहती हो ललिता? ऐसा करना ही तो अच्छा होगा न? हां!

इसके बाद बिस्तरों को उठाया-लगाया गया। इस कमरे का छोटा-सा बिस्तर उस कमरे में ले जाकर दोनों बिस्तरों को एक साथ जोड़ दिया गया। लड़के के लिए हालांकि एक नई चारपाई की जरूरत होगी। या भाभी के लिए कुछ नए फर्नीचरों की जरूरत होगी। जिन्हें बाद में लाया जाएगा। मगर वह सब तो बाद की बात है। तब तक कई दिन लड़का और हेमंत इस बड़ी पलंग पर ही सोचेंगे। क्यों, ठीक रहेगा न? हां, ठीक रहेगा।

और अभी-अभी भाभी के साथ सोने के लिए जब ललिता उस कमरे में जा रही थी, पीछे की ओर से उसे देखते रहते समय उसके दिमाग में कुछ बे-सिर-पैर की बातें आ रही थीं।

बिस्तर पर बैठे अपने दोनों पैर उसने फैला दिए। अनजाने में ही उसके दोनों

हाथ दोनों जांघों पर चलने लगे।

अचानक उसके मन में ऐसा भाव आया मानो एक बोझ उतर गया हो। उसे कुछ चैन की अनुभूति हुई। उसे लगा—उसने संकट में पड़ी हुई दो औरतों की मदद की है। उसका मन हल्का-हल्का सा लगा।

एक किताब पढ़ते-पढ़ते लड़का सो गया था। उसके हाथ से किताब को हटाकर हेमंत ने धीमे से रजाई खींचकर उसके कान तक लाकर उढ़ा दी।

1976

वन भोज

प्रभाकर के बंधु-बांधवों में कई डाक्टर हैं, पर पत्नी रमा की इस छोटी-सी बीमारी के नए-नए लक्षणों के बारे में उनसे बताने की इच्छा उसकी नहीं हुई। इन नौजवान डाक्टरों पर उसका कोई विश्वास नहीं। वे रमा की जांच करेंगे, पचासों प्रश्न पूछेंगे, फिर जांच-पड़ताल के बाद क्या मिला, उसके सवालों के जवाब में रमा ने क्या बताया, ये सारी बातें अपनी युवती पत्नियों से बताएंगे। वे पत्नियां पास-पड़ोस की सहेलियों से बताएंगी, उन सहेलियों में से कोई—'प्रोग्रेसिव लेडिज सोसायटी' के वार्षिक अधिवेशन में समवेत लेडियों में से किसी एक को बतलाएंगी, इसके बाद पंद्रह दिन में ही बात चारों ओर फैल जाएगी,—रमा की,—रमा चौधुरी की,—यानं वह जो प्रभाकर चौधुरी की श्रीमती हैं—" उसके आजकल" अजी, मगर 'इंटरेस्टिंग' बात यह है कि—कहते हैं कि बीच-बीच में"उसे" आदि-आदि।

ऐसे डाक्टरों पर यकीन नहीं किया जा सकता। पर एक डाक्टर की तो जरूरत है ही। इसलिए प्रभाकर ने एक प्रसिद्ध, वृद्ध, डाक्टर को पकड़ा है। उस वृद्ध डाक्टर के यहां बीमार लोगों की लंबी कतारें लगी रहती हैं, किसका कौन-सा लक्षण है, किस रोगी ने क्या बताया है, इन सबको लेकर हंसी-मजाक करने की न उनकी कोई सुविधा है, और न मन में उतनी सरसता ही है।

पर प्रभाकर के लिए मुसीबत तो इस बात पर है कि रमा हर दिन किसी न किसी तरह के विचित्र, अद्‌भुत लक्षण प्रकट करती है, और उनके बारें में बार-बार पूछने के लिए वृद्ध डाक्टर के यहां दौड़ जाना उसे पसंद नहीं। क्या किया जाए, इस बारे में वह सोच-विचार कर ही रहा था, तभी एक दिन उसके हाथ एक किताब पड़ी। किसी प्रसिद्ध डाक्टर की लिखी हुई बड़ी-सी किताब। शंखिनी, हस्तिनी आदि विभिन्न श्रेणियों की नारियों के लक्षण और दैहिक गठन की विशेषताओं से लेकर नन्हें बच्चों के दांत निकलने के समय होने वाली बीमारी और उनके बारे में बरती जाने वाली होशियारी तक के अनगिनत विषयों की चर्चा, इंग्लैंड और अमेरिका के प्रसिद्ध डाक्टरों और मनोवैज्ञानिकों के विचारों से उस किताब के पन्ने भरे हुए थे। दो-तीन दिन शाम को गहरे आग्रह से उस किताब के पन्ने पलटने के बाद प्रभाकर ने तय किया, बात-बात में उस वृद्ध डाक्टर के पास दौड़ जाने की कोई जरूरत नहीं। रमा की बीमारी के छोटे-मोटे लक्षणों के बारे में इसी किताब को वह शब्दकोश की भांति काम में लाएगा।

एक दिन किताब के क़िसी पन्ने पर प्रभाकर ने पढ़ा—पत्नी की ऐसी बीमारी के घर में जरा-सी 'ब्रांडी' रखना अच्छा है। कभी-कभी बीमार के हाथ-पैर ठंडे हो सकते हैं। तब तुरंत चाय-चम्मच से एक चम्मच··· । इसके अलावा बीच-बीच में आधे कप गुनगुने पानी में एक चम्मच 'ब्रांडी' मिलाकर, साफ कपास का एक टुकड़ा उसमें भिगोकर उससे धीरे-धीरे ··आदि।

प्रभाकर के मन में विश्वास जम गया कि जरा-सी 'ब्रांडी' का इतजाम कर रखना अच्छा होगा। परंतु इस शहर में एक बोतल ब्रांडी का इंतजाम कर पाना उसके लिए आसान काम न था। उसे डर था, अचानक हर-हरा कर पानी बरसने के कारण लाचार होकर शराब की दुकान में शरण लेने पर भी, जैसे दूसरे दिन 'शराबी' के रूप में उसकी बदनामी फैल जाएगी। अतः उस शहर में उसने वह काम करने की कोशिश नहीं की। एक बार दफ्तर के काम से दूसरे एक शहर में उसे जाना पड़ा था। उसी शहर की एक दुकान में, शाम होने के काफी देर से वह डरते-डरते घुसा ! और पांच ही मिनट में खरीदने का काम खत्म कर कोट की जेब में बोतल को छिपाने की कोशिश करता हुआ वह दनदनाता निकल गया। किस कंपनी की 'ब्रांडी' है, कैसी 'ब्रांडी' है आदि बातों पर विचार करने का धीरज, साहस, शक्ति और योग्यता आदि उसमें जरा भी नहीं थी। 'ब्रांडी' है, बस ! उतना ही काफी है। ब्रांडी खरीदने का दृश्य किसी जान-पहचान वाले की नजर में न पड़े; इतना ही काफी है।

समय पर रमा को एक लड़का हुआ, पर प्रभाकर को 'ब्रांडी' की बोतल खोलने की जरूरत नहीं पड़ी। उस बोतल को उसने रमा के कीमती गहने-कपड़े रखने की पेटी के एक कोने में छिपाकर रखा था। वह वैसी की वैसी पड़ी रही। रमा के हाथ-पैर कभी ठंडे नही पड़े। और गुनगुना पानी मिलाकर भी 'ब्रांडी' जैसी तेज चीज शरीर के कोमल अंग पर लगाने में रमा को डर लगा। प्रभाकर ने जब किताब का पन्ना खोल- कर ऊंची आवाज में उन पंक्तियों को पढ़कर सुनाया, तब उसने, 'खैर, आज रहने दें, लगा सकी तो कल लगाऊंगी', कह दिया था। पर वह 'कल' आखिर तक पास नहीं आया। 'आज तो खैर आलस लग रहा है।' दूसरे दिन। 'समय नहीं', उसके बाद लगभग महीने भर तो बात भूली ही रह गई। दोनों में किसी को याद नहीं आई। संक्षेप में, लड़का पैदा हो गया, ब्रांडी की बोतल वहीं उसी शहर से निकले पुराने अखबार में लिपटी, रमा के आभूषणों के पास ही एक ही निशानी पर पड़ी रही।

लड़का पैदा होने के बहुत दिन बाद जब रमा फिर से कीमती कपड़ों की पेटी में हाथ डाल सकने लायक हुई, तभी से वह प्रायः प्रभाकर से कहती, 'यह किसी को दे दो। बेकार यहां रखकर··'

प्रभाकर कहता—'रहने दो न। और भला दोगी भी तो किसे दोगी?—देते समय उससे क्या कहोगी?'

लड़का लगभग सात महीने का हुआ। तभी एक दिन शाम के बाद प्रभाकर के मन में एक तरह का अद्भुत आनंद जग उठा। उस दिन उसके दफ्तर के सभी लोग वहां से

एक-सौ सत्तर मील की दूरी पर एक अभयारण्य में 'वन भोज' यानी पिकनिक मनाने गए थे। अपने साथ तीन बकरे और दो पहलवान किस्म के बिहारी रसोइए लेते गए थे। दो-दो बसों की छतों पर तरह-तरह के खाने-पीने, रसोई बनाने के सामान लेते गए थे। प्रभाकर के साथ काम करने वाले चार व्यक्ति अपने साथ शराब की चार बोतलें लेते गए थे। वे जंगल के बीच बने 'फारेस्ट डिपार्टमेंट' के बंगले में रात गुजारेंगे। आधी रात को विदेशी केंद्र मिलाकर 'फुल-वाल्यूम' में ट्रांजिस्टर बजाएंगे, 'थ्री डायमंड्स—फोर क्लब्स' जैसी आवाजों से जंगल को गुंजायमान करेंगे। रात गहरी होने पर अगर उनका 'मूड' आ जाए, तो सब घर की छत पर चढ़ जाएंगे और वहां नृत्य करते रहेंगे। ऐसे 'वन-भोज' में प्रभाकर नहीं जाएगा? यह सुनकर तो पहले-पहल उसके चारों साथी उसकी ओर आंखें फैलाकर देखते रहे। अंत में प्रभाकर की उत्साह हीन भाव-भंगिमा देखकर उन लोगों ने घोषणा कर दी, इस पर जोर डालने से कोई फायदा होने वाला नहीं। यह एक नंबर का पत्नीव्रता है। वन-भोज, पिकनिक का नाम लेते ही इसे घर में घर वाली पीटेगी।

उतने सारे आयोजन लेकर, प्रभाकर को जली-कटी सुनाकर, दफ्तर के लोग पिकनिक पर निकल गए। अब तक तो वे शायद फारेस्ट बंगले तक पहुंच भी गए होंगे। बातें सोच-सोचकर प्रभाकर को अचानक एक अजीब-सा आनंद आया। और एक बार अचानक उसे अपनी उस ब्रांडी की बोतल की याद आ गई। रमा को बुलाकर उसने कहा;—सुनो, जरा वह बोतल देती जाना!

रमा ने पूछा—क्यों? क्या करोगे भला?

प्रभाकर बोला—दो न! जरा कुछ देखना है।

उसकी बात से रमा को लगा, वह शायद उस बोतल के लेबिल पर का कोई पता-ठिकाना देखेगा या बत्ती के उजाले में अंदर की चीज का रंग-वंग देखेगा। रमा ने कोई खास सोच-विचार किए बगैर बोतल को निकाल दिया। परंतु उसके बाद जब प्रभाकर ने एक गिलास पानी और एक खाली गिलास मांगा, तब तो रमा की आंखें विस्मय से फैल गईं।

—क्या कहा?

—अरे कुछ नहीं, यों ही जरा लुत्फ़ उठाना चाहता हूं।—प्रभाकर ने बोतल का ढक्कन खोलने की कोशिश करते हुए कहा। रमा ने तुरंत एक-तरह का शोर मचाने की कोशिश की। नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं कर सकते। ऐसी चीज आप मुंह में नहीं डाल सकते। हां, देखूं, बोतल इधर दे दें। छिः छिः छिः।

प्रभाकर ने आंखें मूंदकर हंसते हुए कहा—"ओह, जरा ठहरो न तुम! शोर-गुल न करो! जरा मजा भर लेना है। और वह भी घर के अंदर कर रहा हूं, तुम्हारे सामने! तुम तो जानती ही हो न, कि मैं तो शराब पीता ही नहीं। आज तो यों ही एक 'मूड' हो आया है।

रमा देर तक जूझती रही। उसके विचार से कोई आदमी शराबी बनने के इरादे से शराब पीना शुरू नहीं करता, वह तो बिलकुल प्रभाकर की तरह ही शुरू करता है। पर प्रभाकर ने उसे निर्मूल आशंका करने से मना किया। जब उसने खाली गिलास में तीन अंगुल तक शराब खिल-खिल आवाज के साथ डाल दी तब रमा 'ऊंह, बू आ रही है।' कहती हुई दूसरे कमरे में चली गई। प्रभाकर साथ ही बोल उठा—"ए-ह, चीज में अच्छी तरह हवा तक लगी नहीं, और इन्हें बू मिल गई। हे ह! अरी ऐसी झूठी बात न कहना। समझीं? उसने गिलास को आंखों के सामने उठाकर उस चीज का परिमाण निर्णय करने की कोशिश की और हंसने लगा।

प्रभाकर से शराब का कोई संपर्क सचमुच नहीं रहा है। बहुत दिन पहले एक अविवाहित कर्मचारी-मित्र के यहां वह मेहमान था। सिर्फ एक रात का। तीसरा एक सहपाठी मित्र शराब की एक बोतल लिए वहां आ पहुंचा। बाप रे बाप! कैसी रात थी वह भी! प्रभाकर को सिर्फ एक ही दृश्य की याद है। वह गृहस्थ-मित्र अपनी कमीज, बनियान, सब कुछ उतार सिर्फ 'अंडर-पेंट' पहने रहकर कमरे की हवा से माने मल्लयुद्ध में उतर पड़ा था। उसके बाद भी दो या तीन बार प्रभाकर यहां-वहां शराब के संपर्क में आया था। परंतु उन दिनों उसने ज़ो कुछ किया, उसे तो 'शराब-खोरी' नहीं कहा जा सकता। मित्रों का अनुरोध ठुकरा न पाने के कारण उसे चखकर देखना भर ही कहा जा सकता है।

गिलास को आंखों के सामने उठाए रखकर उस चीज के परिमाण के बारे में प्रभाकर कुछ तय नहीं कर सका। कितना पानी डालने पर कितना हो सकता है? उसे तो सही माप तौल की जानकारी भी नहीं। कुछ भी तय न कर सकने के कारण और ढाले या न ढाले, इसी अधेड़बुन में और आधा अंगुल तक उसने गिलास में उंढेल दिया। गिलास का जो हिस्सा खाली रहा उसे पानी से भर लिया। इसके बाद उसने रमा को पुकारा—सुन रही हो? इधर आओ न।

रमा ने दूसरे कमरे से झनककर जवाब दिया—जाओ, जाओ, मैं नहीं आ सकती।

प्रभाकर खुद उठकर रमा का हाथ पकड़ एक तरह से खींचता हुआ उस कमरे में ले आया और कमरे के बीच उसे खड़ा कर, गिलास उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—चियर्स!

रमा चादर के सिरे से नाक के छेदों से मुंह का निचला हिस्सा ढंककर विरक्ति और अभिमान से खड़ी रही।

पास के बिस्तर पर सात माह का बच्चा दाहिने हाथ का अंगूठा मुंह में डाले गहरी नींद में सोया हुआ था। नेट की मच्छरदानी के बीच वह साफ दिखाई दे रहा था। उसकी नींद टूट न जाए, इसलिए प्रभाकर ने कुर्सी को होशियारी से खींच कर बिस्तर से कुछ हटा लिया। वह कुर्सी पर बैठ गया और रमा के चेहरे की ओर देखते हुए मुस्कुराया।

रमा ने व्यग्रता से पूछा—'क्या आप सचमुच वह सब पीएंगे?

प्रभाकर ने रमा को बाएं हाथ की हथेली से शांत रहने का संकेत किया और एक

घूंट मुंह में ले लिया। दूसरे ही क्षण उसका चेहरा विकृत हो गया। हालांकि मुस्कुराहट उन विकृतियों के बीच ही छिपी रही। उसका बायां हाथ गले से लेकर छाती तक के हिस्से को सहलाने लगा। रमा को उबकाई आ गई। वह कों-कों करती कमरे से निकल गई।

रमा मेज पर खाना लगाने के काम में जुट गई थी। थोड़ी देर बाद हं. हाथ में गिलास लिए प्रभाकर जाकर उसके पास खडा हो गया। रमा ने उसे डांटा—'वह सब लेकर यहां क्यों आए हैं। जाइए, उधर अंदर रख आइए।'—कहकर रमा ने रसोई-घर की ओर देखा।

प्रभाकर ने उसके इशारे को समझकर कहा—'ओ, गोविंद की बात कह रही हो ? आज उसे इस ओर आने से मना कर देना। आज खाना परोसने का काम तुम खुद करना। आज हमारा इंडोर गेम है। उसका आउटडोर गेम है।

रमा ने संदिग्ध दृष्टि से प्रभाकर की ओर देखा। प्रभाकर ने हंसते हुए कहा—क्या ? क्या तुम यह सोच रही हो कि मुझे नशा चढ़ आया है ? नहीं-नही, मैं यों ही ठिठोली कर रहा हूं।

कितने समय के बाद कितनी बड़ी घूंट निगलनी चाहिए, प्रभाकर को इसका भी अंदाजा नहीं था। लगभग मुंह भर जाए, ऐसी एक घूट निगलने के बाद मुंह बिदोर कर वह कहने लगा, 'लोग यह सब कैसे पीया करते हैं, क्यों पीते हैं, पीकर उन्हें क्या मिलता है, पीना क्या अच्छा लगता है, मैं तो बता नहीं सकता। समझीं न ! कड़वा भी लगता है, तीता भी लगता है, अस्पताल के मिक्सचरों जैसा भी लगता है। धत्-धत्।'

रमा ने तुरंत गिलास की ओर हाथ बढ़ा दिया। 'हां, तब दे दीजिए, फेंक आऊं। भला, आप तब पी क्यों रहे हैं ?'

गिलास को जरा हटाकर प्रभाकर बोला—जरा ठहरो न ! थोड़ी देर बाद क्या जाने अच्छा लगे ही !

रमा डरते-डरते सब काम खुद ही करने लगी और गोविंद को जैसे वहां आने की जरूरत न पड़े इसकी व्यवस्था की। कुछ देर बाद तब खाने की मेज पर गिलास को रख कर प्रभाकर खाना खाने बैठा, तब गिलास में वह चीज आधे से कम थी।

खाने की थाली अपनी ओर जरा खींचकर प्रभाकर बोला—ये चीजें खाने-पीने के लिए साथ क्या चाहिए, जानती हो ? अरसे पहले एक कहानी पढ़ी थी, लार्ड ऑफ सेटिउन की, समझी न। क्या तुम लोगों ने पढ़ी थी वह कहानी ? कहां पढ़ोगी भला तुम लोग ? तुम लोग तो बस पढ़ोगी 'नियतिर परिहास'[1], 'प्रेमिकार बिलै'[2], 'विधिर लिखन'[3] जैसी असमीया कहानियां ! 'लार्ड आफ सेटिउन' कहानी में जो पढ़ा था, वह

1 नियति का परिहास

2 प्रेमिका की मुसीबत,

3 विधि का लेख

आज भी याद है। पुरानी शराब, और 'लोब स्टार'—'लोब-स्टार' जानती हो? 'लोब-स्टार' का मतलब है बड़ी-बड़ी झींगा मछलियां! उन झिंगा मछलियों के ऊपरी खोल को उतार दो, अंदर की असली चीज को इतने बड़े-बडे टुकड़े बनाकर तल लो। इसके बाद एक घूंट यह, और एक टुकड़ा लोब स्टार। ओह!

प्रभाकर ने शराब की एक घूंट लेकर दाल-मिले भात का एक कौर मुंह में डाला। वह कहता गया—'लोब-स्टार।' मगर यहां भला वह लोब स्टार कहां मिलेगा? यह तो जहन्नुम में गया देश है। जरूरत होने पर फतिंगे जैसी झींगा मछली तो मिलती नहीं, और मिले भी तो हरामियों के उपद्रव के मारे खरीदने का उपाय नहीं।

भात के कुछ कौर खाने के बाद प्रभाकर को अचानक इस देश पर बड़ा गुस्सा आ गया। वह कहता गया, 'और सबसे बुरी बात क्या है, जानती हो? यहां न मछली का इंतजाम है, न मांस का। लोगों के लिए एक जून अच्छी तरह से खाने-पीने का कोई इंतजाम नहीं है। ठीक है, नहीं है, तो नहीं है, पर सबसे ज्यादा बेशर्मी की बात यह है कि आदमी को हर दिन कितने सौ ग्राम मछली-मांस-अंडा खाना चाहिए, इसकी लिस्ट ये कुत्ते अमेरिका-इग्लैंड से मंगवा-मंगवाकर लोगों में प्रचार करते रहते हैं? तुम यह बात समझ रही हो या नहीं?

—हा, हां, समझती हूं। अब आप खाना खाइए न! रमा ने अनुरोध के स्वर में कहा।

खाना खाने में प्रभाकर ने कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखाई। गिलास से एक घूंट पीकर वह बोला—'लोगों को खाना नहीं दे पा रहे हैं, यह बात तो उनकी नपुंसक धूर्तता की निशानी है, लेकिन लोगों को क्या-क्या खाना चाहिए था, यह बात सुनाते रहना उनकी पशुता की निशानी है। समझीं? ये सारे के सारे जघन्य चरित्र के पशुओं के झुंड हैं।'

'ये' मतलब कौन हैं? यह पूछने की हिम्मत रमा की नहीं हुई। भात को लगातार मसलते हुए प्रभाकर की उंगलियो की ओर वह देखती रही और दिलो-जान से यही मनाती रही कि प्रभाकर कम से कम दो-चार कौर मुंह में डाल ले। प्रभाकर अचानक कुछ देर के लिए शांत-सुस्थिर आदमी जैसे खाना खाने लगा। फिर अपने आप से कहने की मुद्रा में भुनभुनाने लगा—"देश में इतना पानी है, पर एक मछली नहीं मिलती। क्या ऐसी बात भी हो सकती है कही? इधर वे हरामी हेलीकाप्टर पर सवार होकर पानी देखने आते हैं। मशीनगन से गोली मारकर कुत्तों को खत्म कर दूंगा; तब मजा चखेंगे सारे।"—उसने आवाज को कुछ और चढ़ाते हुए कहा,—"यहां तो वह सब लोब स्टार— टोब स्टार आदि तो चलता नहीं, इसलिए यहां क्या चलता है जानती हो? फुलौरी यानें पकौड़ी। मसूर दाल—खेसारी दाल के बेसन की पकौडी। पाटेटो चिप्स—यानें आलू-भाजी।—बस बढ़िया है।" फिर उसने लहजा बदलकर कहा—"अरे, क्या तुम आज खाते ही रहोगे? उठो-उठो। रात को एक जून उपवास कर कहां

तो देह को चंगा रखना है, और कहां भात का यह पहाड़ लेकर ठूंसते ही जा रहे हो। धूर-धूर—'उठो अब!' कहता हुआ वह उठ पड़ा। बरामदे में जाकर मुंह धोया और लौट कर गिलास हाथ में लिए वह सोने के कमरे में चला गया।

काम-धाम खत्म कर जब रमा सोने के कमरे में पहुंची तो देखा कि प्रभाकर के पास की मेज पर वह गिलास भरा हुआ है। गिलास पर आंख पड़ते ही रमा को डर लगने लगा। उसने झट मच्छरदानी के अदर घुस जाने की तैयारी की। प्रभाकर ने उसकी बांह पकड़ ली और अपनी कुर्सी के पास ही बिस्तर पर उसे बिठाकर कहने लगा—'मैंने बचपन में कुछ गलतियां की थीं, समझीं? इन सब 'कानीया-विद्या'[1] छोड़-छाड़कर मिलिट्री में योगदान करना चाहिए था; तब मैं यह दिखला देता कि मैं क्या कर सकता हूं।' फिर वह किसे-किसे गोली मार देता, उसकी एक सूची सुनाता गया। देश के अनेक विख्यात नेताओं से लेकर मिट्टी के तेल के डिपो के मालिक तक बहुत-से लोग उस सूची में आ गए। अंत में वह अस्वाभाविक स्वर से चीख उठा—"कोई बात नहीं;—गुडुम्, गुडुम्, गुडुम्!

मच्छरदानी के तले बच्चे के हाथ-पैर हिलते नजर आए। रमा ने प्रभाकर को डांटा—भला इतना चीख क्यों रहे हैं?

—'अरे, एक दिन अगर चीख ही लेता हूं, तो क्या हो गया?' प्रभाकर ने निर्भीक रूप से पूछा!

—रात काफी हो गई है। अगर पास-पड़ोस के लोग सुन लें तो

—अरे, छोड़ो भी तुम्हारे पास-पड़ोस के लोगों की बात।' प्रभाकर ने उसकी जबान काटकर कहा—तुम्हारे इन पास-पड़ोस वालों में बताओ तो कौन सज्जन महापुरुष है। शर्मिंदा होने के डर से किसके सामने मुझे चुप रहना है, बताओ तो जरा। खिड़की में से दीखते एक मकान की ओर उंगली दिखाकर उसने पूछा—'क्या उसके डर से?'

—आह!

संत्रस्त होकर रमा को ऐसा लगा कि वह लपककर हथेली से प्रभाकर का मुंह दबा ले।

—ठीक है, अब चीखूंगा नहीं। लेकिन बताओ तो सही यह मजुमदार कितना वेतन पाता है?

—मुझे पता नहीं। रमा ने विरक्ति से कहा।

—तुम्हें पता नहीं, पर मुझे पता है। मेरे वेतन से उसके जैसे तीन-तीन को वेतन दिया जा सकता है। पर असली बात है—वह मेरे जैसे दसों लोगों को खरीद सकता है। कैसे? क्यों नहीं बताती? कहां से मिलते हैं उसे इतने रुपए? तुम कह नहीं

---

1 कानीया विद्या—अफीम की पिनक लाने वाली विद्या, बेकार का काम।

सकतीं, मगर मैं तो कह सकता हूं। और इसी कारण मैं उसे बिलकुल तुच्छ समझता हूं। उसके सामने शर्मिंदा होने को मेरे लिए कुछ है नहीं। कल अगर उसके घर का कोई आदमी कुछ कहे तुमसे, तो तुम कह देना। इस धरती पर के पांच महाद्वीपों के लोग एक भोजन-सामग्री के रूप में शराब पीया करते हैं। परतु उन पांच महाद्वीपों के लोग उसके जैसे रिश्वतखोर नहीं हैं। अगर ऐसा कहने के बावजूद वे जबान खोलते हैं, तो मुझसे बता देना—मैं गोली मार दूंगा।

प्रभाकर गिलास से फिर एक बड़ी-सी घूंट लेकर कुछ देर गुम-सुम बैठा रहा।—यह सब कैसी करतूत कर डाली आज?—कहती हुई रमा ने अफसोस और असहायता प्रकट की। एक बार उसने कहा—'मैं अब सोने जा रही हूं।' तब प्रभाकर ने उसे इशारे से बैठने को कहा। कुछ क्षण बाद वह गंभीर स्वर से कहने लगा—तुम मुझे शराब पीने से मना कर रही हो। जरा-सी शराब पीने पर नाराज हो रही हो? लेकिन क्यों? क्योंकि तुम मुझे प्यार करती हो! तुम मुझे दिलो-जान से प्यार करती हो। ठीक! मैं भी तुम्हें बहुत प्यार करता हूं। तुम बड़ी अच्छी हो। अच्छे दिलवाली हो! परंतु इन पड़ोसियों के बारे में मुझसे कुछ न कहना। मैं इनमें से हर एक को बड़ी अच्छी तरह पहचानता हूं। तुम सच-सच समझना, इनके अंतर जितने काले हैं, आधी बोतल शराब मेरे दिल को उससे ज्यादा काला नहीं कर सकती। इसीलिए मैं किसी की परवाह नहीं करता।

प्रभाकर ने और एक घूंट शराब पी। उसके बाद वह आवेश में लगातार बक-बक करने लगा। 'यहां से, उस अजंता 'सिनेमा-हॉल' तक साफ-सुथरे कपड़े पहने, पक्के मकानों में रहने वाले जितने सारे सज्जन हैं, उनमें से पाच या छह लोगों की बहुओं के पुराने दिनों के प्रेमी इस प्रभाकर के कभी के दोस्त रहे हैं। सरकारी कानूनों की कई धाराओं में से सिर्फ दो एक धारा को ही काम में लगाया जाए, तो उन परिवारों का कोई भी बालिग आदमी जेल से बाहर रह ही नहीं सकता। उनके घरों में एक-एक बोतल जहर हाथ फैलाते ही मिल जाए ऐसी जगहों में रख दो तो देखना कि सालभर के अंदर सारी बोतलें खाली हो जाएंगी।'

नींद और डर के मारे रमा थक चुकी थी। बातों के बीच-बीच में वह बहुत बार प्रभाकर को सो जाने का अनुरोध करती रही। गिलास छीन लेने का प्रयास किया। डांटा कि वह निकलकर बरामदे में सो रहेगी। पर उससे कोई फायदा नहीं हुआ। प्रभाकर ने उससे प्यार जताते हुए कहा—आह! क्यों नाराज होती हो, सिर्फ एक रात के लिए है यह! हमेशा तो सोया ही रहता हूं। अगर एक रात बिना सोए बिता दूं तो क्या होता है? हुंह, तुम बड़ी बे-रसिक हो!

एक बार तो ऐसा हुआ कि रमा को रुलाई आने लगी। तब प्रभाकर बड़े ही शांत, मृदुल स्वर से कहने लगा—रमा, लोगों की इन विचित्र जीवन-धाराओं की बातें सोचकर मुझे प्रायः एक कहानी याद आ जाती है। एक दिन रेल-स्टेशन के प्लेटफार्म पर

होल्डाल पर बैठी एक महिला से तुम्हारी पहचान कराई थी, तुम्हें याद है वह ?

रमा ने याद करते हुए कहा—हा।

—उसकी गोद में एक नन्हा बच्चा था ?

—हां।

—और चार अध-भूखे, दरिद्र-चेहरों के लड़के-लड़कियां आस-पास चक्कर लगा रहे थे ?

—हां—हा।

—उसका चेहरा याद है न ?

—हां।

—उसके चेहरे के बारे में तुम्हारी कैसी धारणा हुई थी ?

—उसे देखते ही मुझे लगा था कि कभी वह सुंदर रही होगी।

—ठीक। तुम बिलकुल ठीक कह रही हो।—प्रभाकर ने अद्भुत उच्च स्वर से रमा की बातों का समर्थन किया। गिलास में बची हुई चीज अपने गले में उंडेल ली, कुर्सी पर बलहीन-सा टिककर बैठ गया। बोला—हां, तुम तो ठीक ही बता रही हो। किसी समय वह—उसका नाम सुप्रभा है—समझी न ? मैंने तो उस दिन यह नाम तुमसे बताया ही था। क्यों, क्या नहीं बताया था— ?

—जी आपने शायद बताया था, मगर मैं भूल गई।

—"ह्वाइ ? क्यों भूल गई ? आदमी का नाम याद रखना अच्छे दिमाग की निशानी है। समझीं ? न भूलना। हां ! किसी समय वह भी बड़ी देखने लायक लड़की थी। चेहरा खूबसूरत था। शरीर का रंग अच्छा था। आंखें अच्छी थी। कद ऊंचा था। बातचीत का लहजा अच्छा था। कुल मिलाकर अच्छी थी। सब अच्छा था।" उस महिला के बारे में मानो और कुछ कहने के लिए, उसका चेहरा आंखों के सामने लाने की कोशिश करने के लिए वह कुछ देर रुका, फिर कहने लगा—"एक बार एक आदमी के साथ उसकी जान-पहचान हुई। सीधा-सादा अच्छा आदमी ठहरा। जान-पहचान यानी उनमें कुछ अच्छा संबंध भी बना। एक दिन उस आदमी ने लड़की के घरवालों को किसी के जरिए यह सूचना भिजवाई कि वह लड़की से विवाह करना चाहता है। अरे बाप रे बाप। मानो उसने बर्र के छत्ते को आग लगा दी हो। उसके वंश—परिवार के सत्तर-अस्सी लोग अपने विषैले टूंड़ पैने कर हन-हनाते फिरने लगे। उस लड़की का जो जीजा उसकी बांहों को बगैर दबाए, पीठ पर बगैर थकियाए बात ही नहीं करता था, वह तो उस आदमी को मारने-पीटने के लिए ही निकल पड़ा था। कारण क्या था जानती हो ? कारण यह था कि उस लड़की का विवाह एक ऊंचे वंश के परिवार में करने का तय हुआ था। कहते हैं कि साठ साल पहले बनाए उनके घर के सामने के बरामदे में मोटे-मोटे खंभे बने हैं, उसी घर में बैठकर गर्डन नाम के एक महामान्य अंग्रेज अधिकारी ने खाना खाया था, ऐसे घर के मुख्य व्यक्ति—यानी भावी दूल्हे के बाप ने

जिन दिनों 'इंटरमीडियट इन साइंस' परीक्षा पास की थी, उन दिनों, कहते हैं कि साइंस की और आगे पढ़ने की कोई बात निकली ही नहीं थी। हेंह। कुत्तों की औलाद कहीं के। हरामी !"

—'छि-छि ! भला ये बुरी बातें जबान पर क्यों ला रहे हैं ?' रमा उत्सुकता से बातें सुन रही थी, पर गाली सुनकर बीच ही में दबी जबान से उसे डांटा।

—इन चंद शब्दों का प्रयोग किए बगैर मैं जो कुछ कहना चाहता हूं, वह ठीक ढंग से बता नहीं पाऊंगा ! समझीं ? भाषा में बल नहीं आता।

बाद की बातें सुनने के लिए रमा बाट जोहती रही। पर प्रभाकर चुप रहा। कुछ देर बाद रमा ने पूछा—हां, उसके बाद क्या हुआ ?

प्रभाकर अचानक उत्तेजित हो उठा। अचानक चीखता-सा वह कहने लगा—"और भला क्या होगा ?" पर दूसरे ही क्षण उसका आवेश घट-सा गया। उसकी शक्ति भी घट-सी गई। मानो उसकी जीभ में ताकत ही नहीं रही, वह उसके वश में नहीं रही—"इसके बाद उस ऊंचे वंश के लाड़ले से उसका विवाह हुआ। उस वंशधर लाड़ले ने सात सालों में और पांच वशधर लाड़लों को जन्म दिया। उस खूबसूरत लड़की की हड्डियों और चमड़ी के बीच का मांस उसने बिलकुल खा डाला ? उसकी पीठ पर उसने बेंत की छडी की बडी-बड़ी निशानियां उभार दीं। थप्पड़ों की चोटों से उसकी दांतों की हड्डियों को चूर कर दिया। क्या तुम यह अंदाजा भी लगा सकती हो रमा, कि कोई शराबी अकर्मण्य, शराब पीने के पैसे न देने के कारण पांच बच्चों की मां, अपनी पत्नी को पीट-पीटकर रात को घर से बाहर निकाल दे, क्या इसका अंदाजा लगा सकती हो तुम ?

प्रभाकर ने फिर शराब की बोतल पर हाथ लगाया। रमा तुरंत सशंकित हो उठी। वह झट बिस्तर से उतर आई और प्रभाकर के हाथ को जोर से पकड़ लिया। अब तो मानो बल लगाने की ताकत भी प्रभाकर की नही रह गई थी।

—एक और बात जानती हो ?—एक विचित्र-सी हंसी हंसकर प्रभाकर ने एक-एक कर शब्दों का उच्चारण करते हुए कहा—'सत्तर साल पहले बने गर्डन साहब की चरण-धूलि से महीयान बने उस घर के मोटे-मोटे खंभों की ओट में ऐसी सारी बातें छिप जाया करती हैं। इसी कारण, समझीं न, हां, इसी कारण पास-पड़ोस के इन सज्जन लोगों की परवाह करने के बारे में मुझसे न कहना। उन्हें मै बिल्कुल अच्छी तरह से पहचानता हूं। आइ नो देम थोरोली !' क्षणभर चुप रहकर उसने फिर कहा—'कैसी खूबसूरत देह-मन वाली वह लड़की · '

रमा ने पूछे या न पूछे इसी उधेड़बुन में पूछ लिया—'उस लड़की में कितने दोष हो सकते हैं। आपको भला उसका क्या पता ?"

—नो-नो—प्रभाकर ने बड़े जोर से मेज पर अपनी हथेली पटकी ! जिससे बोतल, गिलास, एस-ट्रे, चाबी का गुच्छा—सब कुछ झनझना उठा। 'ऐसा हो ही नहीं

सकता।' वह चीख पड़ा। 'आइ नो हर थोरोली।' मै-मैं उसे सबसे अच्छी तरह पहचानता हूं।

—कैसे ?

प्रभाकर को कोई जवाब देते नहीं बना। मच्छरदानी के अंदर बच्चा जोर से रो उठा। मेज पर प्रभाकर के मुक्का मारने की आवाज से वह चौंक पड़ा था। रमा जल्दी से मच्छरदानी के अंदर घुस गई और बच्चे को गोद में लेकर बहलाने लगी। मगर उसकी रुलाई थमी नहीं। बिस्तर पर बैठ उसे गोद में लिए तरह-तरह की आवाजें कर उसे प्यार करने लगी, परंतु वह विकल-स्वर से चीख-चीखकर रोता ही रहा।

उसी रुलाई के अंदर एक बार दूसरे कमरे की दीवाल घड़ी में दो बजने की घंटी बजी। उसके बाद प्रभाकर इस कमरे की फर्श पर 'ओक्-ओक्' कर उल्टी करने लगा। उल्टी का आखिरी हिस्सा निकल जाने पर वह कुछ देर सिर झुकाए बैठा रहा। इसके बाद घिसटता आकर बिस्तर पर चढ़ गया। उसका सिर तकिए पर रहा, पर दोनों पैर नीचे झूले रहे थे।

सुबह जागकर प्रभाकर ने देखा—बाहर तेज धूप निकली है। उसने एक बार जल्दी से फर्श पर नजर डाली। नहीं, फर्श पर कुछ था नहीं। इसी बीच रमा ने उल्टी वहां से धो-पोंछ कर हटा दी थी। उसे एक बार चीख कर रमा को आवाज देने की इच्छा हुई; परंतु वह चुप रहा। उसके पास ही लड़का गहरी नींद में सोया था। वह तो कभी इतनी देर तक सोया नहीं रहता था! रात को वह कितनी देर तक रोता रहा, यह जानने की उसे बड़ी इच्छा हुई। बच्चे के एक हाथ को खींच कर उसकी कोमल-कोमल उंगलियों को उसने एक बार बिदोर-बिदोर कर देखा, फिर उसकी हथेली को बड़े धीमे से चूम लिया। बच्चे के बालों में उंगलियां फेरता हुआ प्रभाकर फिर बिस्तर पर पड़ गया।

रमा की आंखों की पलकों पर कालिमा छा गई थी। जल्दी-जल्दी नहा-धो लेने के बावजूद उसका चेहरा अंधेरा-अंधेरा-सा लग रहा था। "मैं उसे सबसे अच्छी तरह जानता हूं।" और बच्चे की ऊंची आवाज की रुलाई, ये सारी ध्वनियां मानो उसके दिमाग के चारों ओर चक्कर लगा रही थीं। 'रात को जागने के कारण ही उसका सिर भारी-भारी-सा लग रहा है'—खुद को यही बात समझाने का वह लगातार प्रयास कर रही थी।

दूसरे दिन शाम को उसने गोविंद से कहा—बाजार में बड़ी झींगा मछलियां निकलती हैं या नहीं, जरा देखना। बाहर से आई हुई बड़ी-बड़ी झींगा मछलिया।

चार-पांच दिन बाद गोविद काफी दूर के बड़े बाजार से बड़ी-बड़ी दस झींगा मछलियां खरीद लाया। रमा के हुक्म से वह इन कई दिनों सभी हाट-बाजारों में बड़ी झींगा मछलियां खोजने में व्यस्त रहा। उस दिन वह बड़े बाजार में जा पहुंचा था।

रमा ने मछलियों के खालों को उधेड़कर उसके अंदर के मांस की छोटे-छोटे

टुकड़ों में काट, तेल में तल लिया और ज्यादा प्याज डाल बेसन से फुलौरी बनाई। उस दिन रात का उसका आखिरी सवाल था—"कैसे?" इसका जवाब उसे चाहिए। वह बेचैन हो उठी थी, उसके मन में हठ हो आई थी।

रमा रसोई-घर में जब यह सब बना रही थी, प्रभाकर सोने के कमरे में बिस्तर पर चित्त लेटा, बच्चे को पेट पर लिए, उससे बातें कर रहा था—'अरे तू बड़ा होकर क्या बनेगा? सब कुछ करना, पर भई, बड़ा होकर तू मुझे डांट-डपट न करना। इतनी तकलीफ उठाकर तुझे इंसान बनाऊंगा, और बुड्ढा होने पर तू मुझे डांटेगा, यह तो कभी सहन नहीं होगा। हां!'

बच्चे ने दो बार दोनों हाथों से तालियां बजाईं, पर कोई आवाज नहीं निकली।

दो छोटे प्लेटों में तली हुई झींगी मछलियां, और फुलौरियां लिए रमा आई, मेज पर उन चीजों को सजाने के साथ-साथ प्रभाकर ने पूछा—'अरे वाह, यह सब भला क्या है? बड़ा जमकर आयोजन है। क्या तुम यही सब कर रही थीं? मगर बात क्या है? आज अचानक यह सब?

रमा हंसकर बोली—हां, खाइए न! आपकी पसंद की चीज है। और उस बोतल में अभी आधी है न वह चीज, उसे भी खत्म कर डालिए।

बच्चे को कंधे पर लेकर प्रभाकर उठ बैठा। टप् से तली मछली का एक टुकड़ा उसने उठाकर मुंह में भर लिया और रमा की बात पूरी होने के पहले ही कह उठा—'नहीं, नहीं, नहीं,—अब उन सबका नाम भी नहीं लूंगा। मैं तुम्हें वचन देता हूं, अब उन बातों की कोई चर्चा ही न करना।' प्रभाकर बच्चे की पीठ हाथ से सहलाने लगा। मानो उसका मन बच्चे को छूकर शपथ खा रहा हो।

रमा स्तब्ध हो, खड़ी रही। प्रभाकर ने हंसते हुए पूछा—'और उस बोतल का क्या हुआ, जानती हो या नहीं?'

रमा ने शांत दृष्टि से उसके चेहरे की ओर देखा।

—हां, आधी बोतल शराब समेत उस बोतल को फोड़ डाला है, और पिछवाड़े एक गड्ढा खोदकर गाड़ दिया है।

फिर प्रभाकर ने बच्चे से पूछा—"और मुन्ने, क्या तू तली मछली चबा सकेगा रे? बेटे!"

1972

प्रहरी

किसी किले में दो हजार सिपाहियों के साठ दिनों का खाद्य-पदार्थ मौजूद था; अच्छा ठीक है। बीस दिन बाद उनमें से तीन सौ सिपाही चले गए। कितने? तीन सौ! आंखें मूंदकर, मन-ही-मन दो हजार से तीन सौ घटाकर रजनी मास्टर ने अपना सिर हिलाया। हां, समझ गया! दस दिन बाद किले में और आठ सौ सिपाही आए। अब क्या हुआ, अब मामला क्या हुआ? ओ, और आठ सौ आ गए? अब जबानी छोड़कर रजनी मास्टर सीधा होकर बैठ गया। मास्टर ने सोचा था, हिसाब इतना भर ही है। फिर भी उसने आखिरी पंक्ति पढ़ी। 'अब उस खाद्य-पदार्थ से उन सिपाहियों के कितने दिन चलेंगे?' अब तो मास्टर बड़ी सोच में पड़ गया। उसके सिर पर बल पड़ गए। वह हिसाब के प्रश्न की आखिरी पंक्ति पर नजर गड़ाए सोचता रहा। उम्र बढ़ने के साथ ही उसकी आंखों की दृष्टि भी भोथरी हो गई है। वह सोच रहा था किसी पक्ति को पढ़ते-पढ़ते किसी दूसरी पंक्ति पर तो कहीं नजर नहीं चली गई है न? धोती के सिरे से मास्टर ने अपनी आंखें एक बार पोंछ लीं, फिर प्रश्न को शुरू से पढ़ना शुरू किया, एक बार, दो बार पढ़ा और हर बार वह हिसाब और ज्यादा ही पेचीदा, ज्यादा जटिल होने लगा। आखिरकार प्रश्न का सिर-पैर कुछ भी समझ में न आने पर मास्टर ने उस प्रश्न के बदले अंकगणित के पूरे पृष्ठ की ओर असहाय दृष्टि से देखता बैठा रहा। मानो किसी विशाल किले में हजारों सिपाही आ-जा रहे हैं, जाने वाले चले जा रहे हैं, आने वाले घुसते आ रहे हैं और किले के प्रवेश-द्वार पर एक टूल पर रजनी मास्टर को बिठाए रखा गया है।—तुम सिपाहियों को गिनते जाओ।

कुछ देर उसी तरह रहने के बाद अपनी आंखों को लगातार मलता हुआ मास्टर कुर्सी पर सीधे बैठ गया और दिलीप से कहा—यह सवाल बाद में हो जाएगा। अभी तू इतिहास पढ़। आज कई दिन से तो तुझे इतिहास पढ़ते सुना ही नहीं। पढ़ तो! जरा ऊंची आवाज में पढ़ना, जिससे मैं भी सुनता रहूं।

दिलीप अपनी मेज पर ठुड्डी टिकाए, पानी से अध-भरे कांच के गिलास के आर-पार से मास्टर का चेहरा कैसा दिखाई पड़ता है, देखने की कोशिश कर रहा था। उसे पता था कि मास्टर को एक भी हिसाब करने के लिए देते ही उससे काफी देर तक छुट्टी ही मिल जाती है। अब वह दौड़कर एक बार रसोई-घर में जाकर झांक आ सकता है। या उस दूसरे कमरे में जोनाली क्या कर रही है, देख आ सकता है। वह तो इतना

ही चाहता था कि मास्टर उस सवाल को हल करने में कुछ और तल्लीन हो जाए। मास्टर का नया हुक्म सुनते ही मेज के नीचे रखा एक पैर खुजलाते हुए उसने अपने होंठ फैला दिए। फिर किताबों की ढेरी से सजिल्द इतिहास की पुस्तक निकाल ली। जब उसे ऊची आवाज में पढ़ने को कहा जाता तो वह चीखता हुआ पढ़ता। क्योंकि उसे यह अनुभव हो चुका है कि वह जितनी जोर-जोर से पढ़ता है, उतना ही कम समय उसे पढ़ना पड़ता है।

दिलीप की चीख के अंदर ही मास्टर की आंखें मुंद आई। मेज पर दोनों कुहनियों को टिकाए, दोनों हाथों से आंखें ढंके वे मौन रह गए। उन्हें बुरा लगने लगा था। भला ऐसे कितने दिन काम चल सकता है? आंखों के सामने ही पैदा हुआ यह दिलीप कुछ ही दिन बाद एक्स-वाई वाले सवालों के हिसाब करेगा। आज किले के खाद्य-पदार्थों का हिसाब निकाल रहा है तो उस समय किसी सागर की लहरों को गिनने का हिसाब निकालेगा, और उन दिनों भी अगर रजनी मास्टर को इसी कुर्सी पर बैठने का सौभाग्य हो, तो उसे गूंगा बने रहना होगा। आजकल तो कुछ इधर-उधर की बात कह देता है, लेकिन तब क्या वैसा कर पाएगा?

'एक्स-वाई' वाले सवालों का हिसाब करने के पहले ही स्कूल छोड़ने वाला रजनी मास्टर प्राथमिक विद्यालय का मास्टर बना था। साहित्य, चित्रकला, हस्तलेख-सुलेख का मास्टर! एक बार भी पोंछे-मिटाए बगैर काली पट्टी पर रजनी मास्टर तोते का चित्र बना देता। कच्चू-पत्ता, गिलास आदि बनाना तो बड़ी मामूली बात है। लड़का जब खड़ा होकर साहित्य पढ़ रहा होता, तो कुर्सी पर बैठे आंखें मूंदे रजनी मास्टर बीच में ही बोल उठता, "क्या, क्या पढ़ा। जरा फिर से पढ़ तो।" तब लड़का जैसे ही पाठ दुहराता, उसे पता चल जाता कि वह एक शब्द छोड़ गया था। हस्तलेख सुधारने के लिए रजनी मास्टर लड़कों को उंगलियों की जोड़ पर छड़ी से मारा करता था। हिज्जे याद न करने के कारण बहुत-से लड़के अपने शरीर पर बेंत की चोटों की निशानियां लिए घर वापस जाते थे। बहुत-से लड़कों के बाप कई-कई शाम को मास्टर के घर जाकर गालियां सुना गए थे—'बच्चों को खड़ा कर रखना, घुटने टेकवाना,—क्या ये सब सजाएं नहीं हैं? उस तरह बेंत से पीटते समय बच्चा कितना बड़ा है, क्या तुम्हारी नजरों में नहीं आया था। अगर बच्चे का कोई दोष हो, तो उसे सुधारने के लिए अगर कुछ चीजें समझ न पाया हो तो उसे समझा देने के लिए ही तो तुम्हें मास्टर रखा गया है न? बच्चे को लंगड़ा-लूला बनाने के लिए तो नहीं रखा है न! अगर यह तुम्हारा अपना बच्चा होता तो क्या इस तरह से उसे पीटते तुम?

जो लोग घर आकर गालियां बक जाते वे कोई जरा-सा गुस्सा होकर नहीं आते, बिलकुल उग्रमूर्ति धारण कर आते। गालियां बकते समय उनके शरीर में होश नहीं के बराबर होता। उनकी जबान पर जो भी आ जाता, वही बक जाते। रजनी मास्टर ऊपर की ओर देखता हुआ निर्विकार भाव से सुनता रहता। परंतु लोगों की बातों पर ज्यादा

तकलीफ भाग्यवती को होती, जो दीवार के दूसरी ओर होती। आदमी जब-जब गाली देकर चला जाता तो वह बार-बार मास्टर को समझाया करती, भला दूसरों के बच्चों पर हाथ क्यों उठाते हो तुम? लोगों की गालियां किसलिए सुना करते हो?

रजनी मास्टर देर रात तक मन-ही-मन गरजता रहता। हुंह! अगर तुम्हारा बच्चा होता तो! मुझे तो ऐसे गधे-बैल जैसे बच्चे की कोई जरूरत नहीं। वैसे लड़के का बाप होने की बजाय मैं तो अभी बड़े आराम से हूं।

हालांकि जो लोग मास्टर को गालियां सुना जाते हैं, उन्हें पता है कि मास्टर के बाल-बच्चे नहीं हैं।

बच्चा हुआ ही न हो, ऐसी बात नहीं, विवाह के दो ही साल बाद भाग्यवती को एक बच्ची पैदा हुई थी, पर वह दुनिया के उजाले में रो भी नहीं पाई। भाग्यवती—रजनी मास्टर को सहायता पहुंचाने, हाथ बंटाने आई हुई पड़ोसी महिलाओं आदि सबको निस्तब्ध बनाकर, दुनिया में किसी तरह की गड़बड़ी होने के पहले ही वह गुजर गई।

उसके बाद एक और बच्ची आई। लेकिन वह बच्ची तो ऐसे रोई मानो उसे रोना ही है। बीच-बीच में जरा देर झपकी लेती, जरा देर निस्तब्ध रहती, लेकिन उसके बाद रुलाई ही रुलाई। भाग्यवती अपने कमजोर हाथों से सिर्फ उसके गाल-मुंह सहलाने के सिवा और कुछ भी कर नहीं सकी! उससे कुछ ज्यादा करने की शक्ति भी उसके शरीर में नहीं थी। बच्ची को शायद किसी भूत-प्रेत-खेचर[1] ने पकड़ा होगा, किसी देव ने वास लिया होगा, उन्हें भगाने-उतारने का इंतजाम भी पास-पड़ोस के लोगो ने किया था।

मगर रजनी मास्टर के शरीर में मानो सुध नहीं थी। कम से कम उसकी बच्ची रो तो रही है न! ओह, रोने भी दो न उसे! रोए नहीं तो भला उसे और करना ही क्या है? अब तो हमारी आधी उम्र निकल गई, आज भी क्या हम अपने मन की बातें खुलकर कह सकते हैं? अब तो हम समझदार बन गए हैं, इसलिए बगैर कहे भी रह सकते हैं, मगर वह नन्हीं बच्ची भला वह सब क्या जाने? वह बोल तो सकती नहीं, बगैर बोले भी रह नहीं सकती। तुम लोग वह सब नहीं समझतीं।

मास्टर उस बच्ची के लिए फ्राक खरीदने दुकान दौड़ा। दर्जी ने बताया—'एक गज कपड़े से दो फ्राकें बन जाएंगी और कुछ कपड़ा तो बचेगा ही।' मास्टर बोला—'अभी तो झट से एक फ्राक सी दो। दूसरी बाद में सीते रहना। मैं कुछ देर यहीं बैठे रहता हूं।

और दर्जी के हाथ-पैर, कैंची बराबर तेजी से चलते रहे। मास्टर स्तब्ध-सा देखता रहा। उसकी आंखों के सामने ही एक नन्हीं-सी फ्राक बन गई।

---

1 खेचर—चुड़ैल।

—हे-हे-हे, देखो यह फराक। कहकर मास्टर ने दोनों हाथों की उंगलियों से फ्राक को फैलाकर जरा ऊपर उठा अपने आनद से खुद ही हंस पड़ा। इसके बाद तेजी से घर लौटा। जाते समय कहता गया—दूसरी 'फराक' मैं कभी आकर ले जाऊंगा। तुम सिल कर रखना।

मास्टर के घर पहुंचते-पहुंचते बच्ची की रुलाई रुक गई थी। वह जितना रो लेने के लिए आई थी, उसकी उतनी रुलाई पूरी हो गई थी।

मास्टर दूसरी फ्राक लाने नहीं गया। कई दिन बाट जोहने के बाद दर्जी खुद उसके यहां आकर फ्राक देकर पैसे ले गया। जितने दिन रहना चाहिए था, उससे कुछ दिन ज्यादा बिस्तर पर पड़े रहने के बाद भाग्यवती धीरे-धीरे उठी। कुछ दिनों में वह फिर स्वाभाविक हो उठी। घर के काम-काज में हाथ बंटाने लगी। मास्टर भी पहले जैसा हो गया। इस बीच उनके यहां बहुत कुछ हो गया, मानो किसी को पता ही न हो। मौका पाते ही मास्टर भाग्यवती को "डाक"[1] के वचन व्याख्या करते हुए सुनाया करता। सिर्फ तीन ही वचनों की व्याख्या करने में रविवार की पूरी दोपहर निकल जाती। समय मिलते ही भाग्यवती मास्टर की पसंद के मुताबिक "काहुदी-खरिचा"[2] आदि दुर्लभ चीजों का इंतजाम करती। उनके बीच दो-दो प्राणी आकर गुजर गए, इसका उल्लेख दोनों में से कोई भूलकर भी नहीं करता। ऐसा लगता था, मानो बाल-बच्चों की बात कभी किसी के मन में ही नहीं आती।

हालांकि भाग्यवती जब घर में अकेली रहती, उसे लगता कि उसकी छाती को कोई जोर से दबोचे हुए है। चावल में से धान चुनती उसकी उंगलियां अनजाने ही रुक जाती। कई दोपहरियों में उसकी आंखें छलछला आतीं। सिर्फ एक ही बात जैसे उस बेचारी को अंदर-ही-अंदर खाए जा रही थी—उसी के दोष से उस बेचारे का मन अंदर-ही-अंदर मर चुका है। किस यंत्रणा से गुजरने वाला मास्टर की उम्र का कोई आदमी अचानक 'डाक' के वचन पढ़कर मजा लेता है, भाग्यवती समझती है।

लड़कों को साहित्य-पाठ पढ़ने में लगाकर स्कूल की कुर्सी पर बैठा हथेलियों से आंखें ढंक मास्टर सोचा करता है, अपना तो कुछ था ही नहीं, और होने की कोई आशा भी नहीं—साथ ही उसने अपनी संगिनी की जिदगी की तमाम आशा-आकांक्षा को भी नष्ट कर डाला है। छाती में धधकता हुआ अंगारा लिए वह बेचारी पूरी तरह धीर, स्थिर और शांत, बनी रहती। और भाग्यवती का यही शांत-भाव मास्टर को और ज्यादा बेचैन बनाए रहता। बीच-बीच में मास्टर को डर भी लगता।

भाग्यवती से छिपाकर रजनी मास्टर किसी-किसी से सलाह भी लिया करता। हालांकि उनसे 'घर की चहारदीवारी के अंदर नारियल के पेड़ रोपना; 'राह के किनारे

---

1 डाक—प्राचीन असम का एक किंवदती पुरुष।

2 'काहुदी-खरिचा'—एक तरह की जायकेदार असमीय चटनी।

पीपल का पेड़ रोप देना'-जैसी स ाह के सिवा और कुछ भी मास्टर को मिलता न था, जो उसकी पहुंच के अंदर हो। स‌ाथ-साथ उन लोगों की बातों ने मास्टर को काम में भी लगा दिया। सड़क तक पहुंचाने वाली अपने घर की राह के दोनों ओर उसने नारियल के दो पौधे रोप दिए। सातों गांवों के लोग जिस सड़क से होकर शहर आया-जाया करते, उसके किनारे एक पत्तीदार पीपल का पेड़ लगाकर एक मजबूत घेरे से उसे घेर दिया। भाग्यवती के सामने उसने इन बातों की व्याख्या नहीं की।

कुछ दिन बाद भाग्यवती ने तीसरी सतान को जन्म दिया। इस बार भी लड़की ही हुई। और सिर्फ कुछ ही घंटे रहकर वह भी चल बसी।

मास्टर दो ही चोट मारकर दोनों नारियल के पौधों को खत्म कर देना चाहता था, पीपल के पेड़ का घेरा तोडकर चूल्हे में झोंक देना चाहता था, परंतु उसे इस बार अपार धीरज की जरूरत हुई। क्योंकि इस बार तो भाग्यवती को लेकर ही बहुत दिन तक खींचा-तानी चलती रही।

उसके कुछ ही दिन बाद रजनी मास्टर की नौकरी भी जाती रही। वह सोचता था, अगर वह लगातार भाग्यवती के साथ न रहे तो वह किसी भी क्षण पागल हो जाएगी। स्कूल के सेक्रेटरी से उसने दो महीने की छुट्टी मांगी। सेक्रेटरी ने उसे बिलकुल छुट्टी दे दी। पीठ पर पिटाई की निशानियों वाले लड़कों के बापों की लगातार बढ़ती शिकायतों के गोलमाल से सेक्रेटरी के कान पक गए थे।

सैक्रेटरी के सामने उस दिन मास्टर ने झुका सिर उठाया न था। सड़क पर आकर उसने इधर-उधर देखा। अब चारा क्या है? दो पेट की फिक्र है। संचित पैसे के नाम पर तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। अगर नकद पैसे न हों तो मुट्टी-भर चावल घर में लाने का कोई और जरिया ही नहीं है। अलबत्ता शहर के अंदर ही उसके दूरदर्शी बाप ने खरीदकर एक टुकड़ी जमीन रख छोड़ी थी। शायद बाप ने सोचा था, कभी आगे चलकर झुड भर नाती-नातिन होंगे, उस एक ही घर में धक्कम-धक्के करते हुए सांस लेने में भी उन्हें तकलीफ होने लगेगी; और तब तक वह जमीन सोने के बराबर कीमत की हो जाएगी। इसलिए खरीद रखना अच्छा होगा।

मास्टर ने एक ही सप्ताह के अंदर जमीन बेच डाली और बंडल-भर नोट पेटी के नीचे छिपाकर रख दिया। साथ ही उसने सोच लिया था, यह रकम भी खत्म हो जाने पर, जब उम्र ढलने लगेगी तब यह जमीन भी बेच देगा, इसलिए चिंता की कोई बात नहीं है।

भाग्यवती ने सोचा था, उसकी बीमारी की वजह से मास्टर ने छुट्टी ली है, परंतु एक दिन शाम को मास्टर ने सिर झुकाए जमीन की ओर देखते हुए कहा—इन सबने तय करके ही मेरी ग्यारह साल की नौकरी छीन ली। नौकरी क्यों छीनी, इसका कोई कारण भी मुझे नहीं बताया। नन्हे बच्चों के साथ दिनभर चीखता-पुकारता रहता था, "भला अब मैं यह समय कैसे गुजारूंगा?" यह कहकर मास्टर ने सिर उठाकर

भाग्यवती के चेहरे की ओर जैसे ही नजर डाली, वह अंदर-ही-अंदर चौंक पड़ा। तुरंत उसने अपने मन को एक बार हिला लिया, फिर हंसने लगा। "गुस्सा आने पर कभी-कभी उन्हें दो-एक थप्पड़ मार देता हूं, इसी कारण उन लोगों ने मुझ पर यह चोट की है। समझीं ? अच्छा ठीक है, भले ही तुम लोगों को मैंने दो-एक बेंत लगा दी है, पर बड़े होने पर क्या वह निशानी पीठ पर बनी रहेगी ? बनी रहेगी या नहीं, यह देखने के लिए तुम लोग जरा बड़े तो हो जाओ ! एक बात और है, वे छोटे बच्चे भले ही यह बात न समझ पाएं, पर उनके बापों को तो यह बात समझ में आनी चाहिए थी ! मैं उन्हें लूला-लंगड़ा बनाने के लिए थोड़े ही मारता-पीटता था, क्या यह बात समझने वाला वहां एक भी आदमी नहीं था ?"

हां, था। नौकरी छूट जाने के काफी दिन बाद चिंतामणि हाजरिका ने मास्टर को बुलवाया। हाजरिका की श्रीमती सुरमाया ने मास्टर से कहा—"बाबुल को लगभग दो साल घर पर ही पढ़ा कर हाई स्कूल में भरती करवाना चाहती हूं। आप अगर शाम को इसे जरा दिखा-सुना दें "

मास्टर हंस पड़ा। इसी दिन के लिए तो वह अब तक उन्मुख होकर बैठा हुआ था। हाजरिका बोला, "परंतु मास्टर साहब एक बात अभी ही कह देना अच्छा समझता हूं, लड़का देखने में ही नन्हा-सा है, पर है नंबरी बदमाश। लिखना है, इसीलिए अभी से स्लेट तोड़ना सीख लिया। इसे एक-दो चांटे लगाए बगैर तो यह सुधरेगा नहीं। मेरी तो जबान ही बंद है, इधर तो देह पर एक बूंद भी टपकने नहीं देतीं !" कहते हुए हाजरिका ने सुरमाया की ओर भौंहें टेढ़ी कर देखा।

उस बात के रस का अनुभव करने के लिए मास्टर की हंसी मुरझा गई। वह सोचने लगा, 'क्या बच्चे को एक-दो चांटे लगवाने के लिए ही हाजरिका ने उसे बुलवाया है ?'

पहले स्कूल के सारे बच्चों पर जो ताकत लगाता था, रजनी मास्टर ने वह पूरी ताकत सिर्फ बाबुल पर ही थोप दी ! हर शाम को चितामणि और सुरमाया के चेहरे की ओर देख, एक हंसी छेड़कर मास्टर लकड़ी की कुर्सी पर बैठ जाता, और हर रात को जब सुरमाया बाबुल को खाना खिलाने के लिए बुलाती तब वह एक अजीब संतोष में घर लौटता, भाग्यवती उसके लिए रसोई बनाकर बाट जोहती रहती।

लगभग साल बीतने पर जब बाबुल 'उल्का पात', 'रुक्मिणी' आदि जैसे शब्दों वाला श्रुतलेख लिखने लगा, तभी एक रात को मास्टर को अनुभव हुआ—भाग्यवती फिर एक बार नए आने वाले की बाट जोह रही है। पता चलते ही मास्टर सिहर उठा। उसने ऐसी गलती भला क्यों की, इसके कारण की खोज में वह बेचैन हो उठा।

दूसरे दिन, दिन के उजाले में काम-धाम करने में जुटी हुई भाग्यवती की ओर तिरछी नजर डालकर मास्टर डर-सा गया। मां बनने की सारी यंत्रणाएं हंसते हुए झेलने

हेतु जब कि भाग्यवती बाट जोह रही थी, चट्टान जैसे वजनदार कटहल की लकड़ी की दो-जनी चारपाई को एक जगह से दूसरी जगह ले जाते समय उसका एक सिरा मास्टर और दूसरा सिरा भाग्यवती पकड़कर जिन दिनों अनायास ले जाते थे, उन्हीं दिनों एक के बाद एक अभिशाप ने कुचल कर उस बेचारी के देह-मन को मिट्टी में मिला दिया। पहले जिन कड़ों को साबुन-पानी लगाकर हाथों में बड़ी कठिनाई से घुसा पाते थे, वे ही कड़े अब हाथ धोते समय उसके हाथों से निकल जाना चाहते हैं। अब यह बेचारी अपनी देह को क्या खिलाकर नवागंतुक को पाले-पोसेगी? अगर पाले-पोसेगी भी, तो आखिर तक किसी मर्मांतक आघात के सिवा क्या उसे और नया कुछ मिलने वाला है? एक के बाद एक, तीन-तीन अनुभवों की आग के ढक रखने के लिए जितना भी प्रयास मास्टर ने किया है, उतना ही वह सिर्फ अपने को ही ज्यादा-से-ज्यादा जलाता रहा है। 'सब कुछ भूल चुका है' मानकर अपने को जितना ही प्रवंचित करना चाहा है, उतना ही उसके मन में इसी बात की याद ज्यादा आती रही है कि कैसे तीन-तीन संतानें आई थीं, और कैसे चली गई। जिस जुए का खेल खेलकर वह सर्वस्वांत हो चुका है, उसमें वह कितनी बार हारा था, इसका हिसाब लगाना अब निरर्थक है। रजनी मास्टर तो शायद आजकल की भांति ही निर्वाक-निस्पंद सा रहकर एक और दुर्योग को निकल जाने देगा, पर क्या यह दुबली-पतली नारी उसे सहन कर सकेगी? हो सकता है, इस बार यह बेचारी पागल ही हो जाए। रजनी मास्टर अंदर-अंदर छटपटाता रहा। भाग्यवती की जिंदगी में तो जवानी का रंग अब वैसा लग रहा है जैसा कि किसी ऊंचे पेड़ पर शाम की धूप लगी हुई हो। पर इस संधिकाल में यह बेचारी नारी फिर अपने को बलि के कठघरे की ओर बढ़ाने की हिम्मत कहां से जुटा पाई है?

उस दिन शाम को जब मास्टर बाबुल को पढ़ाने गया, तो चिंतामणि, सुरमाया और बाबुल के हंसते चेहरे देखकर अचानक उसे कुछ उलझन महसूस हुई। आज तक तो कोई एक दिन भी ऐसा नहीं था, जिस दिन मास्टर को उनके हंसते चेहरे दिखाई न पड़े हों, और वह हमेशा यही सोचता रहा है कि उनके सान्निध्य का उपभोग कर वह आनंदित होता रहा है। पर आज तो अचानक उसे ऐसा लगा कि इन तीनों की हंसी ही उसे इतना उद्वेलित कर सकती है, जिसके फलस्वरूप कुछ दिन बाद एक नारी बावली हो जाएगी। बड़ी अचरज की बात है।

परंतु अचरज की बात यह हुई कि समय पर भाग्यवती को एक बच्ची पैदा हुई। वह रोई; फिर चुप रही; फिर रोई, सोई फिर जग उठी। एक दिन बीता, दो दिन बीते; एक प्रबल उत्तेजना और आशंका हृदय में बसाए, रजनी मास्टर क्षण गिनता रहा। डरते-डरते, चुपचाप, चोर की भांति वह भाग्यवती के कमरे के दरवाजे के पास खड़ा होकर पता लगाता, फिर चुपचाप अंदर झांककर देखता। अचरज की बात है, भाग्यवती की छाती के पास ही वह बच्ची हाथ-पैर हिला रही है।

पहले जो दो फ्राकें बनवाई गई थीं, उन्हीं में से एक को पेटी के नीचे से निकाल-

कर उस बच्ची की देह में पहनाते समय भाग्यवती के हाथ भी कंपकंपा उठे थे।

और भी अचरज की बात यह थी कि एक गज कपड़े से सिलाई गई वे दोनों फ्रांकें पुरानी होकर फट-फुट कर खत्म हो गईं। उनकी जगह एक-दो करते-करते और भी बहुत-सी फ्रांकें आईं। वे भी फटीं। और उस दिन रजनी मास्टर जब बेटी के लिए तीन गज़ कपड़ा लाया तो भाग्यवती ने बताया—'उसके लिए और फ्राक लाने की जरूरत नहीं। इसके फटने के समय ही उसके लिए दूसरे कपड़े का इंतजाम करना होगा।'

मास्टर की बेटी का नाम था निशा, यह नाम सुरमाया ने रख दिया था। भाग्यवती की लड़की पैदा होने के सिर्फ बीस दिन पहले सुरमाया के भी एक लड़की हुई थी। दोनों का जन्म रात को ही हुआ था। 'राशि-चक्र' दिखवाकर चिंतामणि ने बेटी का नाम 'जोनाली' याने चांदनी रखा। रजनी मास्टर के लिए तो गणना वगैरह करवाने की बात ही नहीं थी, सुरमाया ने सुझाव दिया, 'शायद दोनों की राशि एक ही होगी, इसलिए उसका नाम निशा रख दिया जाए। दोनों नाम मिलकर एक बात बन जाएगी—'जोनाली निशा' याने चांदनी रात।' नाम को लेकर सोच-विचार करने की फुरसत न मास्टर को थी और न भाग्यवती को ही। नाम से क्या आता-जाता है, कोई नाम रख देना ही काफी है। नए-नए नाम तो मास्टर के दिमाग में आते ही नहीं। उसे सिर्फ अच्छा लगता था एक नाम, और वह नाम पहले ही भाग्यवती को उसके मां-बाप दे गए। इसके अलावा उस लड़की के बारे में जो कोई भी सुझाव देता था, भाग्यवती और मास्टर उसे ठुकराते न थे। कोई कहता—'इसकी कमर में यह 'जंतर' बांध दे।' उसने बांध दिया। कोई कहता—'इसके गले में एक 'बघनखा' पहना दे।' उसने पहना दिया। अतः सुरमाया की जबान से जो नाम निकल आया, लड़की का वही नाम रख दिया गया,—'निशा'।

निशा के लिए रजनी मास्टर की जिदगी में उथल-पुथल-सी मच गई। जमीन बेचकर मिली रकम खत्म हो गई। चिंतामणि हाजरिका से जो पैसे मिलते उससे सिर्फ एक ही सप्ताह चल पाता था। और जमीन बेचने की याद आते ही मास्टर का शरीर झनझना उठता। न जाने किस बुरे क्षण में उसने वह जमीन बेच डाली। उसके बदले अगर और कुछ लड़कों को वह इकट्ठा कर पढ़ाता तो काम चल जाता। अरसे बाद उस प्राइमरी स्कूल के सेक्रेटरी पर उसके दिल में गुस्से की आग धधक उठी। गुस्से की यह आग, जिस दिन उसकी नौकरी छीन ली गई थी, उस दिन भी धधक उठती और तब उस सेक्रेटरी को पता चल जाता, मास्टर लड़कों को पीटता क्यों है? पीटता कैसे है।

आखिर चक्कर लगाते हुए मास्टर ने एक ट्यूशन का इतजाम किया। मारवाड़ी के चार बच्चों को एक ही जगह इकट्ठे कर 'असमीया' सिखाना था। बाद में जब और कुछ परिवार भी अपने बच्चों को भेजने लगे तो ट्यूशन के उस वर्ग ने एक छोटे से स्कूल का रूप ले लिया और मास्टर को कुछ चैन आया।

इसके अलावा चिंतामणि हाजरिका के घर का वह ट्यूशन तो था ही। ऐसा समय भी आया, जबकि बाबुल को पढ़ाना रजनी मास्टर के वश की बात न रही। अब रह गई जोनाली। परंतु लड़की को पढ़ाने में मास्टर का क्षणभर भी आग्रह न था। उसे पढ़ाए तो निशा को भी पढ़ाना है। निशा के लिए उसने किताब-बहियां खरीदी हैं, मासिक शुल्क दिया है, जोनाली के साथ वह भी स्कूल जाया करती है। इसके सिवा निशा की कोई और खबर लेने की उसे फुरसत नहीं मिलती।

मास्टर की किस्मत अच्छी थी। जोनाली से दो साल छोटे दिलीप के लिए उसे वह लकड़ी की कुर्सी छोड़नी नहीं पड़ी।

पर इसी मेज पर पहाड़ा कंठस्थ करने वाला दिलीप आज किले और सेना का हिसाब करने लगा है। मास्टर समझ गया, अब तो दिलीप भी उसके वश के बाहर चला गया है। अब तो कभी भी इस घर से उसके विद्या-दान की जरूरत खत्म हो सकती है, लेकिन निशा के लिए तो उसे और भी बहुत कुछ करना बाकी है! हालांकि मास्टर की यह निरंतर चेष्टा रहती कि चिंतामणि हाजरिका उसे जो पैसे देता है उसका बदला ज्यादा-से-ज्यादा चुका दिया जाए। दिलीप उसे जो हिसाब करने के लिए देता, उन पर पेंसिल से निशान लगाकर वह गणित की किताब घर ले आता। किसी जमाने में उसके विद्यार्थी—प्रभाकर का भाई दिवाकर लिखने-पढ़ने में बड़ा तेज है, ऐसा सब की जबान पर है। मास्टर दिवाकर को बुलवा लेता और कहता—"बेटे, जरा ये हिसाब एक कागज पर कर दो न! हां, समझ में आ सके, इस तरह से कुछ विस्तार से करना।" और दिवाकर हिसाब कर देता!

लेकिन चिंतामणि हाजरिका यह बात ज्यादा नहीं सोचता था कि शाम को आखिर मास्टर पढ़ाता क्या है? वह सोचता, स्कूल में मास्टर जो कुछ पढ़ाते हैं, घर में उसी को पढ़ना लड़के-लड़की का अपना काम है। उसे सिर्फ रजनी मास्टर की उपस्थिति भर की जरूरत थी। अरसे से वह देखता आया है कि लड़के-लड़कियॉ मास्टर को मानते हैं। रजनी मास्टर के आते ही दिलीप की तो बात ही नहीं, दसवीं कक्षा में पढ़ने वाला बाबुल भी अपनी पढ़ाई की मेज पर चला जाता। उसे यही तो चाहिए। इसके अलावा वह मास्टर बिलकुल परिवार के आदमी जैसा बन गया है। इस आदमी को जो पैसे दिए जाते हैं, उनसे चितामणि हाजरिका को कभी अभाव का सामना नहीं करना पड़ेगा।

रजनी मास्टर, भाग्यवती, यहा तक कि निशा भी जोनाली के परिवार को अपने ही परिवार-सा समझती। कभी यह नौकरी भी खत्म हो सकती है, यह सोचकर बुरा लगने पर भी मास्टर ने इसी परिवार में अपने कर्तव्य को सहज भाव से अपनाया था। दुश्मन के चंगुल से शिवाजी किस चतुराई से निकल भागे थे, यह कथा सुनाते-सुनाते मास्टर यह कहानी भी निस्संकोच सुना देता कि चांद सौदागर[1] के बनवाए 'मेरघर' याने

1 चाद सौदागर—असम में प्रचलित लोक गाथा बेउला-लखिंदर का नायक। लखिंदर का पिता।

कोहबर में वह साप किस चतुराई से घुसा था। इसके बाद वह यह कहानी भी सुना देता कि एक बार सांप के डंसे हुए किसी आदमी को चौराहे पर सुला 'बेज' याने ओझा किस तरह से तीन दिन तक झाड़-फूक करता रहा। उसकी कहानी के आखिरी हिस्से में सुरमाया भी पास आकर खड़ी हो सुनती रहती। उसके घर लौटते समय वह कभी-कभी कह देती—"कल निशा को साथ ले आना। खाना यहीं खाएगी।" और दूसरे दिन जब निशा आती तो सुरमाया उसके हाथ कागज लिपटी एक पोटली देती—जिसमें एक नई फ्राक रहती।

जोनाली भी सुई-धागा, रबर-पेंसिल, आदि लाने के लिए कभी-कभी पैसे दिया करती। शाम को वे चीजें लाकर मास्टर जोनाली के हाथ थमा देता, और उसकी मेज पर की चीजें टटोलकर, घुमा-फिराकर देखता, स्नो की डिब्बी खोलकर कहता—'अरे यह तो खाली हो गई है।'

—हां, वह तो खत्म हो गई है। कल मां ने एक नई डिब्बी मंगवा ली है। जोनाली जवाब देती।

—'ओ, ऐसी बात है?' मास्टर उस बात से उत्साहित हो उठता। कुछ संकोच भरे लहजे में पूछता—'तो क्या अब इसकी तुम्हें जरूरत नहीं है?'

—जी नहीं! जोनाली के कहने पर आधे से कम बची स्नो की डिब्बी कमीज की जेब में डालकर मास्टर उसे अपने घर ले जाता। भाग्यवती को थमा देता, और भाग्यवती उस डिब्बी को ऐसी जगह रख देती जिससे वह निशा की नजर में पड़ जाए।

निशा खुश होती। उसकी उम्र अंदर से जरा-जरा सा रंग उभारती आ रही थी। बाहर से भी अगर जरा रंग लगा सके तो उसे अच्छा ही लगता। कम से कम वर्ग की लड़कियों के बीच मन खिला रहता। सातवें वर्ग की सभी लड़कियों को यह पता था कि निशा स्नो कहां से लगाया करती है। सभी को पता था पर निशा को ही पता न था। हालांकि उसे कभी-कभी संदेह भी होता, अगर जोनाली लड़कियों से बता दे? क्या वह बता देगी? शायद नहीं। अगर वह बताना चाहे तो और कितनी ही बातें बता सकती है। 'निशा उनके यहां खाना खाती है, जोनाली की मां निशा को कितनी-कितनी चीजें दिया करती है। जोनाली जरूर ये सारी बातें नही बताएगी। वह निशा को सबसे ज्यादा प्यार करती है। रात को खाना खाने के बाद वह कितनी ही बार निशा को जबरन अपने साथ सुलाए रखती है। पड़ोस के मृणाल दादा आदि के साथ 'टॉकीज' (फिल्म) देखने जाते समय वह खुद निशा को भी घर से बुलाकर अपने साथ ले जाती है।

उसके बाद धीरे-धीरे भाग्यवती उत्कंठा से प्रतीक्षा करने लगी कि जोनाली, बाबुल, मृणाल आदि निशा को घर पहुंचाने में कितनी देर लगाते हैं। अपनी जवान बेटी के लिए चिंतित होकर बाट जोहते भाग्यवती एक अद्‌भुत उत्तेजना का अनुभव करती। उसे मानो बीच-बीच में यह विश्वास ही नहीं होता था कि उसकी बिटिया युवती हो चुकी है।

परंतु हो चुकी है, यह बात तो सही है। बचपन से ही अत्यंत कमजोर स्वास्थ्य के कारण जिस निशा के लिए भाग्यवती निरंतर आतंकित रहा करती, समय पर उसी निशा ने उसे बिलकुल अचरज में डाल दिया। भाग्यवती की उत्कंठित दृष्टि के समक्ष ही निशा को जितना कुछ देना था, सब कुछ देकर उम्र आगे निकल गई। और विह्वल मां ने बिटिया को जर्मन-सिलवर का एक नेकलेस, सीसे का एक जोड़ा कड़ा, और सोने का एक जोड़ा इयर-रिंग दे दिया। ये गहने पहनकर निशा जब उसके सामने खड़ी होती, तो भाग्यवती को कभी-कभी ऐसा लगता, मानो यह सारी घटना एक अद्‌भुत माया है। मानो निशा भगवान की एक ऊपरी देन है। और निशा जब स्कूल जाती या इधर-उधर कहीं निकल जाती तो भाग्यवती का दिल बेचैन रहता! बीच-बीच में अचानक वह आतंकित हो उठती। मानो अभी-अभी एक सागर सूख गया हो और हीरे-मोती छिप गए हों।

और उधर अपने में इतने सारे आभूषणों का संधान प्राप्त करने पर निशा को एक मीठी-सी बेचैनी का अनुभव होता! राहें, स्कूल, घर—सब कुछ उसे नया-नया लगने लगा। राह पर पैदल चलते क्यों अचानक वह सिर झुकाए चलने लगी, उसे खुद ही पता न चला। और सिर उठाते ही, जिस आदमी पर उसकी नजर पड़ जाती, वहीं उसे अद्‌भुत-अद्‌भुत-सा क्यों लगने लगा, वह खुद भी सोच नहीं पाती थी। उनके घर से दिखलाई पड़ने वाला तरु दीदी के पोर्टिको में बैठे अजय डाक्टर के साथ दीदी क्या-क्या बातें किया करती है, जानने के लिए उसका मन कसमसाता रहता। चुपचाप वहां जाकर ओट में छिपे रहकर सुन आने के लिए उसका दिल मचल उठता। दूसरे दिन समीप से तरु दीदी को देखने पर वह अचरज से उसकी ओर देखती रह जाती, दीदी कल इतने सुंदर ढंग से डाक्टर से बातें कर रही थी।

स्कूल जाने की राह पर उनसे ज्यादा तेजी से कदम बढ़ाने वाले स्कूल-कॉलेज के लड़के झुंड बांधकर जब उन्हें पीछे कर तेजी से आगे निकल जाते, तो निशा को ऐसा लगता, मानो उसकी सांस बंद हो जा रही है। पीछे की ओर से लड़कों की बातचीत की आवाजें पास आते ही निशा और उसकी सहेलियां आपसी बातचीत बंद कर देती। राह के किनारे हट जातीं। अभी-अभी लड़के बिलकुल पास आ गए, अभी-अभी उनके बराबर आ गए, अभी-अभी उन्हें पीछे छोड़कर निकल गए। इतने समय तक निशा अपने पैरों के लगभग दो हाथ सामने की जमीन पर नजर डाले कदम बढ़ाती, परंतु कदम बढ़ाते समय उन स्कूली लड़कों की जेबों के खुदरे पैसे झनझनाने की आवाजें भी उसके कानों में ऐसे आती, मानो दस नर्तकियों के पैरों में बंधे नूपुरों की झनकार हो। उन लड़कों की आपसी बातचीत का हर शब्द जैसे उसके दोनों कान जी-जान से चूस लेते। क्या-क्या कह जाते हैं ये लड़के! उनकी बातें बड़ी पेचीदी होतीं, जो कह जाते हैं, उनका मतलब जरूर कुछ और है।

ये चंद लम्हे निशा को बड़े अच्छे लगते हैं। पर कुछ ही आगे बढ़ने पर जब

उसकी नजर मारवाड़ी के यहां से ट्यूशन खत्म कर आते हुए बाप पर पड़ती, तो उसे बड़ा बुरा लग जाता! अगर उस समय वह अपनी मंडली के किसी किनारे होती तो वह कुछ कहने के बहाने बीच में घुस आती। बाप के निकल जाने तक वह दूसरी लड़कियों के बीच छिपी-सी निकल जाना चाहती। उसे डर लगता, बाप ऐसा आदमी ठहरा कि लडकियों के बीच भी पूछ सकता है—तू खाना खाकर आई है, या नहीं?

हालांकि बाप ने अब तक कभी उससे राह में बात नहीं की है, फिर भी उसे गुस्सा आ जाता! क्या बाप और थोड़ी देर बाद घर नहीं लौट सकता? उसने सोचा था, मां से कहना होगा।

पर निशा को मां से कुछ कहना नहीं पड़ा। एक दिन रजनी मास्टर खुद उसकी राह से हट गया। मारवाड़ी के यहां से निकलते ही उसकी नजर पड़ती, राह में झुंड-के-झुंड लड़के हैं, झुंड-के-झुंड लड़कियां हैं। जहाँ तक दिखाई पड़ता वह लड़कियों के झुंडों को बडी गहराई से देखता कि निशा किस झुंड मे आ रही है। जब जोनाली आदि के बीच उसे देखता, तो दूर से ही कुछ क्षण उसकी ओर देखता रहता।

अपने अनजाने में ही अकेले-अकेले जरा-सा हंस लेता। झुंड-भर लड़कियों में उसकी निशा भी बिलकुल मिल गई है, किसी से जरा भी कहीं बे-मेल नहीं। कभी-कभी उसे खुद भी भ्रम हो जाता, क्या वह उसी की बिटिया है? दूसरा कौन कह सकता है कि वह उस लड़की का बाप है और वह अभी-अभी मारवाड़ी के यहां से महीने-भर का वेतन तीस रुपए जेब में डाले घर लौट रहा है?

निशा और उसकी सहेलियां पास आ जातीं तो मास्टर कभी-कभी दिल को रोक न पाकर झट से आंखें घुमाकर उसकी ओर नजर डाल लेता, सिर उठाकर देखने में उसे शर्म आती। घर पहुंचते ही वह भाग्यवती से पूछ लेता—"वह खाना खाकर गई है न?—मगर क्यों? शायद उस समय तक ताजा भात नहीं बना था? अच्छा-अच्छा, ठीक है आधे घंटे के अवकाश के समय वह आएगी न। तब तो ठीक है!"

उसके बाद मास्टर सिर हिलाकर हंसता और कहता, 'उसे तुम अगर राह पर जाते समय देख पाती, काश! बड़े-बड़े लोगों की इतनी सारी लड़कियों के बीच अपनी उस बासी भात खाकर जाने वाली बिटिया को पहचान तक नहीं पाओगी।'

भला भाग्यवती सुबह साढ़े नौ बजे बिटिया को देखने कहां निकलती? रजनी मास्टर की हंसी में वह खुद भी सिर्फ हंस पड़ती।

स्कूल जाने की राह में निशा जितनी उजली होती गई, मास्टर अपने आपको उतना ही गंदा-गंदा-सा अनुभव करने लगा। बगैर हजामत बनाए दाढ़ी-मूंछ से ढंका चेहरा, भाग्यवती की सिलाई की हुई फटी बांह की कमीज, हमेशा नलकूप के पानी से धोते-धोते मटमैली हो आई धोती, इस वेश में शहर की मुख्य सड़क पर साढ़े नौ बजे पैदल चलना मास्टर को खुद नापसंद हो आया। एक दिन रेल-लाइन पार कर धान-मिल के सामने की पगडंडी से आकर देखा, 'हा, ठीक है। इस राह में न कोई

गाड़ी-घोड़ा है, जन-मानव भी कम आते-जाते हैं, राह कुछ लंबी होने पर भी झट से घर पहुंचा जा सकता है।

शहर की मुख्य सड़क पर अब निशा के लिए सिर्फ रह गए अनगिनत लोग। इतने सारे लोग कि निशा को सिर उठाकर देखने का भी कोई मौका नहीं मिलता। सिर उठाते ही जिस आदमी की आंखों में उसकी नजर पड़ती, वह आदमी अजीब ढंग से क्यों उसकी तरफ देख रहा था, यह सोचते-सोचते वह अपने स्कूल के पास तक पहुंच जाती। वह सोचती शायद लोग जरूर उससे कुछ कहना चाहते हैं। उफ् राम! सभी लड़कियों के सामने अगर उसे कोई कुछ कह दे तो! सर्वनाश हो जाएगा। हालांकि कोई क्या कहेगा, इसकी भी कोई निश्चित धारणा उसकी नहीं है। उसके मन में सिर्फ ऐसी भावना होती, चाहे जो कुछ भी कोई क्यो न कहे, सुनकर जरूर उसे अच्छा लगेगा। शाम को स्कूल से लौटकर घर में घुसते ही निशा को अपने आप पर गुस्सा आता, अगर वह इसी तरह से किसी बड़े दबाव के अंदर पड़ी रहे, तब तो उसे कभी कुछ भी सुनने का मौका नहीं मिलेगा। सिर्फ आना-जाना भर रहेगा।

परंतु निशा जैसे ही सारे संकोच झटककर सिर उठा, सब कुछ सीधे देखने वाली हो गई, आधे घंटे के अवकाश के समय भुजिया खरीदने जाकर दुकानदार से निःसंकोच यह पूछने योग्य बन गई कि "तुम्हारी शादी कब होने वाली है?" तब विरक्ति से उसका मन भर उठा। वह सड़क के प्रत्येक आदमी पर, स्कूल-कॉलेज के हर लड़के पर, उसकी वैसी ही विरक्ति हो गई, जैसी विरक्ति जोनाली की अपने बाहरी दरवाजे पर के लैम्प-पोस्ट पर थी। शाम होते ही दमकती हुई जल उठती है। चाहे अमावस हो या पूर्णिमा, उनके सामने के बरामदे में चाहे उजाला हो या न हो वह बिजली-बत्ती जो एक बार जल उठती है, बस जलती ही रहती है। जरा भी कम या ज्यादा होने का या इधर-उधर होने का नाम नहीं है। लैम्प-पोस्ट की भांति ही इन लोगों को भी सड़क की सजावट बनने के सिवा और कोई काम नही है। ये मानो महारानी के आने-जाने के मार्ग के प्रहरी हों। खड़े ही रहेंगे, पर जबान से कुछ कहते ही सिर उतार लिया जाएगा।

पहले-पहल निशा की वह विरक्ति अनजानी, गुप्त थी। पर धीरे-धीरे वह तीव्र अभिमान से फूल उठने लगी। लिखते समय किसी अक्षर पर स्याही अगर जरा भी फैल जाती तो वह पूरी बही का पन्ना एक ही झपाटे से खींचकर फाड़ डालती। उसे महसूस हुआ, सड़क के सारे लोग सब के लिए लैमप-पोस्ट या प्रहरी नहीं हैं। और तो और, उसकी बांह मे बांह डाले चलने वाली जोनाली के लिए भी नहीं।

उस दिन मस्जिद का चौराहा पार कर, दूसरी लड़कियों को विदा दे, निशा और जोनाली अपने घर की ओर कुछ ही दूर आगे बढ़ी थी, तभी साइकिल पर सवार मृणाल कहीं से फट्ट से आ निकला। अगला पहिया जैसे ही उन दोनों के एक कतार में आ पहुंचा, उसने ब्रेक दबा दी। इसके बाद वह पैडिल को एक बार में चार या पांच अंगुल ठेलता था या नहीं—पता नहीं, पर साइकिल बिलकुल निशा और जोनाली के कदमों के

बराबर की गति से बढ़ती रही। बचपन से ही यह मृणाल अपनी आखो के सामने ही बड़ा हुआ है, फिर भी मानो जोनाली ने अपनी सारी शर्म को इसी समय दिखाने के लिए जमा रख छोड़ा हो। वह सिर झुकाए आगे बढ़ती रही। मृणाल कुछ पूछने के लिए जैसे ही आगे बढ़ता, निशा भी जवाब देने के लिए तुरंत सिर उठा लेती। मगर नहीं, मृणाल तो जोनाली से ही पूछता। जिस हंसी को होंठों पर लिए वह मृणाल के चेहरे की तरफ देखती, नीचे देखती, उस हंसी को सहेजने में उसे तकलीफ होती।

कभी-कभी ऐसा होता कि घर पहुंचने पर भाग्यवती पूछती, 'कान के पास वह क्या लगा रखा है ?' तब वह दौड़कर टट्टी पर टंगे दर्पण के सामने जाती, दिखाई पड़ता कि स्याही लगी है। एक छोटा-सा धब्बा। वह सोचती, क्या पूरी राह यह धब्बा उसके गाल पर यों ही बना हुआ था ?

दर्पण के सामने खड़ी होकर अपना चेहरा देखते-देखते निशा को जोनाली के चेहरे की याद ही ज्यादा आती।

जोनाली दिन-ब-दिन सिंदूरी होती जा रही थी, उसके दोनों गाल और ज्यादा फूल आए हैं, पिछले साल जो तीन ब्लाउजें सिलवाई थीं वे छोटी पड़ जाने के कारण बाप के हाथ उसने उन्हें निशा के लिए भिजवा दिया है। सबकी जबान में यही बात रहती है, जोनाली बड़ी खूबसूरत है। निशा देखने में कैसी है, यह बात उसे किसी की जबान से खुद सुनने को नहीं मिली है। ये आंखें, ये भौंहें, यह नाक ! इन दो वेणियों को सामने की ओर ले आने पर ऐसा लगता है, दर्पण में देखकर अपने आप को उसे अच्छा ही लगता है। मगर वे मृणाल आदि क्या सोचते हैं ?

मृणाल और उसके साथी उसके बारे में कुछ नहीं सोचते, जिस दिन उसे इस बात का पता चला, उस दिन घर लौटकर निशा यह तय नहीं कर सकी कि वह रोए, या डंडा मार-मारकर घर की छत और टट्टियों को तोड़-ताड़ डाले। बाएं हाथ को दांतों से जोर से दबाए, वह खड़ी थी, भाग्यवती ने पास आकर कहा, 'अरे कपड़े बदल ले ! भला यों खड़ी क्यों है ? हां, बाप के हाथों जोनाली की मां ने वह डिब्बी भेजी है।' कहती हुई भाग्यवती ने निशा की पढ़ने की मेज की ओर इशारा कर दिया।

जहां की तहां, खड़ी रहकर निशा ने सिर घुमाकर मेज पर नजर डाली। स्नो की एक डिब्बी थी। बाण जैसी तेजी से निशा मेज के पास गई और डिब्बी को मुट्ठी में पकड़ कर उठा लिया और दूसरे ही क्षण पूरा बल लगाकर उसे घर के एक कोने में फेंक दिया। भाग्यवती का कुछ कहने के लिए खुला मुंह, खुला ही रह गया। रजनी मास्टर के बाप ने अपनी जवानी में हिरण का एक बड़ा-सा सींग कहीं से संग्रह किया था, जो कमरे के उस कोने में पड़ा था, उस पर गिरकर स्नो की वह डिब्बी चूर-चूर हो गई। स्नो छिटककर चारों ओर बिखर गई।

जोनाली, बाबुल, मृणाल आदि निशा को सिनेमा देखने के लिए घर से बुला ले गए थे। दूसरे दिन दीवाली के कारण स्कूल बंद था। निशा अपने अच्छे कपड़े पहनकर

बड़ी उमंग से छलांगें भरती निकल गई थी। सिनेमा हॉल के अंदर वह मृणाल को ठीक से देख भी नहीं पाई, इसके सिवा उनके बीच में बैठी थी जोनाली! फिल्म खत्म होने पर किसी बहाने निशा ने मृणाल से पूछा—"क्या मुझे घर तक पहुंचा देंगे?" मृणाल ने वह बात जोनाली से बताई। जोनाली ने कहा, "ठीक है, चलो हम उसी ओर से घूम कर जाएं। निशा को उसके घर छोड़ते जाएंगे। बात मृणाल को बड़ी पसंद आ गई। उसी के मुताबिक काम हुआ। और घर के अंदर घुसते ही निशा को ऐसा लगा, मानो उसकी सांस बंद हो जाएगी। यह अधटूटा-सा मकान, ढहती-गिरती दीवारें, मानो ये ही उसके लिए काल बन गए। इन्हें तो वह तोड़ नहीं सकती थी, इसी कारण जिसे तोड़ सकती थी, उसी को, यानि उस स्नो की डिब्बी को पटक कर तोड़ डाला।

दीवाली के उपलक्ष में मारवाड़ी, सज्जन ने हलवा-मिठाइयां बांटी थीं, उसी का एक पैकेट लेकर कुछ देर बाद रजनी मास्टर लौटा। हिरण के सींग की ओर एक बार नजर डाल, उसने भाग्यवती से धीमे स्वर में पूछा—कैसे, क्या हो गया?

भाग्यवती ने बताया,—'पता नहीं, उसे क्या हो गया? मुझे तो कुछ पता ही नहीं। मास्टर ने भी निशा से कुछ पूछा नहीं, उसे डर लगा। निशा और भाग्यवती जब खाना खाने बैठीं तो मास्टर, जमीन पर से जरा-सा स्नो उठाया जा सकता है या नहीं, इसकी कोशिश करने लगा। पर उठा नहीं सका। स्नो अगर एक ही जगह जमी रहती, तब भी कोई बात थी, पर स्नो तो चारों ओर बिखरी हुई थी।

इसके बाद एक दिन जबकि निशा का मन अच्छा था, बातों के बीच भाग्यवती ने निशा से पूछा—'अच्छा बता तो सही, उस दिन तुझे गुस्सा क्यों आया था? कि गुस्से के मारे तूने स्नो की डिब्बी पटक दी थी।

निशा बोली—इतनी सारी चीजों के बगैर ही काम चल रहा है, तो क्या इस स्नो के बगैर काम नहीं चल सकता! पिताजी से कह देना, मेरे लिए किसी के यहां से कुछ न लाएं। अपना जो कुछ है, उसी से काम चल जाएगा।

और इसी बात को प्रमाणित करने के लिए निशा अधीर हो उठी। स्नो के अलावा उसका और अपना क्या है, इसी के शोध में वह बेचैन हो उठी। उसी समय रजनी मास्टर दिलीप के यहां से एक ऐसा भार लेकर घर पहुंचा, जिसे खुद ढो पाना उसके लिए संभव न था। वह भार था, गणित के तीन सवाल! एक सवाल में यह पूछा गया था—पानी के एक चहबच्चे में दो नलियां लगी हैं, एक से पानी आता है, दूसरी से निकल जाता है। दूसरा सवाल था, एक मेंढक कुएं से ऊपर आने की कोशिश कर रहा है, कुछ ऊपर आने के बाद फिर कुछ नीचे खिसक जाता है। तीसरा सवाल था, एक ग्वाला दूध में पानी मिलाकर बेचता है। चिंतामणि हाजरिका के यहां से निकलकर मास्टर बाहर-बाहर दिवाकर को खबर देता आया, 'बेटे, कल जरा हमारे उधर एक चक्कर लगा जाना! जरा-सी मदद कर देना!'

और दूसरे दिन शाम को दिवाकर ग्वाले के लाभ का सवाल हल कर जैसे ही

उत्तर के नीचे लकीर खींच रहा था, भाग्यवती उसके लिए चाय बना रही थी, उसी समय निशा की दाहिनी आंख में कुछ पड़ गया। आंख में क्या पड़ा, यह तो निशा ही जाने। दिवाकर उठकर देखने लगा, पर उसे आंख में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। निशा को खिड़की के पास ले जाकर डूबते हुए सूरज की लाल रोशनी में फिर से देखा, भौंहों पर हाथ रख ऊपरी पलक को ऊपर खींचकर देखा, नहीं, कुछ भी तो नहीं है। गाल पर उंगली रख नीचे की पलक को नीचे खींचकर देखा, कुछ नहीं। सिर्फ निशा की आंख की काली पुतली के ऊपर नन्हीं-सी खिड़की और उसके अंदर बहुत दूर डूबता हुआ लाल सूरजभर था।

मगर बार-बार यह कहने के बावजूद कि आंख में कुछ नही है, निशा मानना नहीं चाहती थी। पहले उसकी आंख, फिर समूची देह, मानो जल रही थी। दिवाकर के जाने के बाद गाल की उसी जगह अपनी उंगली रख निशा यह याद करने की कोशिश करती रही कि दिवाकर ने कितनी देर तक वहां छुआ था! आंख देखने के बाद साथ-साथ उस जगह से अपना हाथ क्या हटा ले गया था? नहीं, नहीं, जरूर वह जरूरत से ज्यादा देर तक वहां हाथ रखे हुए था।

परंतु रजनी मास्टर तो रोज वैसे सवाल लाएगा नहीं, इसलिए दिवाकर भी रोज आएगा नहीं। परंतु निशा को अचानक याद आया, स्कूल में पढ़ाए गए बहुत-से विषय उसकी समझ में नहीं आते। उसने मां से कह दिया, लेकिन मैं तो इस बार फेल करूंगी मां। पाठ-वाठ बिलकुल समझ में नहीं आता। उधर दीदी कहती है, इस बार परीक्षा भी कठिन होगी!

नौवीं श्रेणी की परीक्षा है, कठिन तो होगी ही। रजनी मास्टर जाकर दिवाकर के बड़े भाई प्रभाकर से मिला, अगर हो सके तो दिवाकर बीच-बीच में जाकर निशा को जरा दिखा-सुना दे। प्रभाकर बोला—"ठीक है, सर, मैं उससे कह दूंगा।"

इसके बाद दिवाकर बीच-बीच में आया करता। उसके खुद के पढ़ने-लिखने का दबाव भी बहुत ज्यादा है। इसी कारण वह जल्दी-जल्दी नहीं आ सकता। परंतु उसे जो भी समय मिलता है, उसी अवधि में वह निशा को जहां तक हो सके पाठ समझाने की कोशिश करता। उस समय रजनी मास्टर चिंतामणि हाजरिका के यहां लकड़ी की कुर्सी पर बैठा होता। भाग्यवती रसोई-घर में रहती, और मेज पर कुहनी टिकाकर बैठी निशा को लगातार अंगड़ाई आती। कुछ देर कुछ कहने के बाद आखिर दिवाकर पूछता—"समझा न?"

निशा चौंक उठती। यह बात तो वह भी दिवाकर को पूछने के लिए सोच रही थी। उसने आंखें फैलाकर दिवाकर की ओर देखा, भला वह कौन-सी चीज समझने के बारे में पूछ रहा है? दिवाकर एक बार पढ़ते ही किताब की सारी बातें समझ लेता है, पर उसे और भी कुछ समझना है। निशा उसकी बाट जोहती बैठी है। काफी देर होते देख एक दिन उसने धड़कते दिल से, कांपते हाथों से लकीरों वाली बही के एक पन्ने

पर कुछ लिखकर दिवाकर की जेब में घुसेड़ दिया। बात कोई खास नही थी, दिवाकर के आने पर उसे अच्छा लगता है, बस इतनी-सी थी। और शेष तो सामान्य बातें थीं। उसकी लिखावट देखकर जैसे दिवाकर हंसे नहीं। चिट्ठी पढ़ने के बाद ही फाडकर फेंक दें। और आखिर में उसने संदेह प्रकट किया था—"शायद आप मुझसे घिन करते हो।"

दिवाकर बड़ी मुसीबत में फंस गया। वह ऐसा लड़का है जिसे अपनी पढ़ाई-लिखाई से ही सिर उठाने की फुरसत नहीं मिलती। अव्वल आने पर भी परीक्षा उसके मन लायक नहीं हुई, ऐसा सोचने वाला लड़का है। कॉलेज के चुनाव में सबसे पहले जो आकर कहता, उसी को अपना वोट देकर सीधे घर आ जाने वाला लड़का है। निशा का पर्चा पढ़कर उसने सोचा, लड़की पगली है। हालांकि उसे 'पगली' कहने के लिए जिस हिम्मत की जरूरत है, वह भी तो उसकी नहीं है। अगर यह 'प्रेम-पत्र' है, तब तो और शंका की बात है। प्रेम-प्यार के आदि-अंत के बारे में उसे कुछ भी समझ नहीं। पर यह सही है कि निशा के प्रति उसका बड़ा स्नेह है। वह जितनी छोटी लड़की है, दिवाकर को उससे कहीं ज्यादा छोटी लगती है।

एक दिन निशा से वह यही बताने आया। इन बातों के लिए उसकी जबान पर भाषा ही नहीं होती। जो कुछ कहने के लिए वह सहेज कर घर से चला था, कहते समय वह बिलकुल गड्डु-मड्डु हो गया। वह सिर्फ इतना ही कह सका, हां निशा को वह बड़ा स्नेह करता है।

और वही सुनकर निशा की आंखें, चेहरा बिलकुल चमक उठे। एक अद्‌भुत शर्म के मारे उसके गाल लाल हो उठे। दिल पर से एक विशाल बोझ उतर जाने पर वह एक तितली-जैसी हल्की हो उठी। और उसे एक अद्‌भुत-सी तृप्ति ने घेर लिया। वह गूंगी-सी रह गई।

उसी दिन से निशा के लिए दिवाकर की आंखों में नजर डालना मुश्किल हो गया। उधर नजर डालते ही उसका अंग-अंग मानो सिकुड़-सा जाता। पढ़ाई की मेज पर बैठ, कोई और बात करने में उसे डर लगने लगा। क्या जाने कुछ और कहकर दिवाकर उसे गूंगी कर दे। उस दिन दिवाकर ने जो कुछ कहा था, वही उसके कानों में लगातार गूंजता रहता। सामने यह दिवाकर है, उस दिन के उन चंद शब्दों में डूबी-सी यह निशा खुद है, बस इतना ही काफी है, इससे ज्यादा उसे और कुछ नहीं चाहिए। हां, नही चाहिए। स्कूल से आते समय दिवाकर को उसके कदमों के साथ-साथ हाफ-पैडिल मारकर साइकिल चलाने की भी जरूरत नहीं।

परंतु एक दिन रात को रजनी मास्टर बहुत उत्तेजित हो घर लौटा। आजकल तो वह चितामणि हाजरिका के यहा से निकलकर इसके-उसके यहा बैठता, उनके बाल-बच्चों की खबर लेने के बाद निशा के बारे में कह-कहकर हंसता। वैसे ही किसी के यहां से लौटकर मास्टर ने भाग्यवती से पूछा—'क्या वह सो चुकी है?'

—हां, सो गई है। क्यों ? जवाब देकर भाग्यवती उत्कंठित-सी मास्टर के चेहरे की ओर देखती रही।

मास्टर का सूखा चेहरा पसीने से तर हो गया था। उसके कपाल की नसें तन आई थी। अभी-अभी वह जो कुछ सुन आया है, अपनी पूरी जिंदगी में कण-कण कर वह जिस संपदा को जुटाए रहा है, उसके बिल्कुल खाक हो जाने जैसा ही है। भले ही उसे कुछ पता न हो, भाग्यवती भले ही कुछ न जाने, परंतु दिवाकर और निशा की बात तो स्कूल के लड़के-लड़कियों से लेकर बूढ़े-बुढ़ियों तक सबकी जबान पर है।

"यह सब हो नहीं सकता, मैं यह सब नहीं होने दूंगा।" रजनी मास्टर गरज उठा। भाग्यवती ने दबी जबान से कहा—'चीखिए मत! भला, आप इतने बेचैन क्यों हो रहे हैं ? रात हो गई है।'

—होने दो रात! मैं अभी-अभी जाकर उससे कह आऊंगा, जिससे कल से वह इस ओर मुंह न करे। तुम तो कुछ भी समझती नहीं। मेरी इकलौती संतान···।

इकलौती संतान! ये शब्द रजनी मास्टर की जबान में लगे ही रहते! घर-बाहर कहीं भी निशा की चर्चा होने पर वह यह बात मंत्र की भांति एकांत मन से मुंह में दुहराता ही रहता।

भाग्यवती ने जबरन मास्टर को सुला दिया। निशा की नींद खुल न जाए, इसकी हर संभव कोशिश करती रही। मगर उसे खुद नींद नहीं आई! जवान लड़की की मां होने पर कभी-कभी बहुत सी विडंबनाएं सहनी पड़ती हैं। वह विडंबना भाग्यवती की जिंदगी में बड़ी देर से आई। वह रोए या हंसे, कुछ तय नहीं कर सकी। अगर ऐसी समस्याएं पहले कई हुई होतीं तो उन्हें सह-सहकर वह ज्यादा अनुभवी बन सकती! और तब शायद आज की रात की वह विडंबना वह निशा की उन तीनों बड़ी बहनों के साथ बंटवारा कर ले सकती। बहुत दिन पहले की तीन-तीन यंत्रणाओं ने उसे फिर से झकझोर दिया। उसकी बिटिया आखिरकार युवती हो आई है, किसी लड़के के साथ जोड़कर लोग उसकी चर्चा कर रहे हैं। कल सुबह से ही उसे बेटी पर अनुशासन रखना होगा। एक नया काम, अद्‌भुत, अपूर्व! दुख-यंत्रणा के बीच भी भाग्यवती ने एक तरह के पुलक का अनुभव किया! और अचरज की बात तो यह थी कि उसे बार-बार दिवाकर का चेहरा याद आ रहा था।

दूसरे दिन मास्टर मारवाड़ी के यहां ट्यूशन खत्म कर शहर की मुख्य सड़क से होकर लौटा, बिलकुल साढ़े नौ बजे! निशा सही-सही स्कूल जा रही है या नहीं, वह यही देखना चाहता था। हां, जा रही है। घर पहुंचकर वह फिर बड़बड़ाने लगा—जिंदगी-भर मास्टरी की, सैकडों लड़कों को सीधा किया, कोई मुझे धोखा नहीं दे सका; पर अब घर ही में··"

भाग्यवती बोली— "बक-झक न करें। मैंने तो कहा है न, जो कुछ करना है मैं ही करूंगी! तब भी अगर कुछ होता नहीं, तब मैं आपसे बताऊंगी न!"

सबकी किस्मत अच्छी थी! उसके बाद जिस दिन दिवाकर आया, रजनी मास्टर घर में न था। निशा को रसोई-घर में आग जली है या नहीं देखने के इरादे से भेज कर भाग्यवती ने दिवाकर से कहा कि इतने दिन, निशा की पढ़ाई-लिखाई में मदद करने के कारण वह उसे अच्छा लगा है। अब तो निशा की परीक्षा भी समीप आ गई, कुछ दिन वह अब खुद ही पढ़े। फिर दिवाकर का ऐसे आना-जाना भले ही भाग्यवती को अच्छा लगे, पर चारों ओर रहने वाले लोगों को नापसंद भी हो सकता है। दिवाकर तो भला लड़का ठहरा! भला उसे झूठ-मूठ लोगों की बातें सुनने की जरूरत क्या है?

दिवाकर अवाक् होकर भाग्यवती के चेहरे की ओर देखता रह गया। ऐसी निरपराध, निरीह, कातर दृष्टि भाग्यवती ने कभी किसी की आंखों में देखी न थी। कमरे से निकल जाते वक्त भाग्यवती को लगा, मानो वह अभी-अभी एक महापाप करके आ रही है, जिसके लिए कोई माफी नहीं है।

भाग्यवती के शरीर के पास से ही कमरे में निशा आई। चाहती तो भाग्यवती उसे 'सुन तो री', कहकर रोक सकती थी। पर रोका नहीं। दिवाकर की ओर देखती हुई निशा बड़ी शांत, मुरझाई-सी हंसी हंस पड़ी। फिर दूसरी ओर देखती हुई, निर्विकार स्वर से कहा—लेकिन आप इन सब बातों का बुरा न मानें। मैंने अगर आपसे कोई ऐसी बात कही होती जिससे आपको दुख पहुंचे, तो मैं आपके पैर छूकर माफी मांग सकती थी। निशा क्षणभर रुकी, फिर बोली—क्या मुझे अगर आप देख न पाएं, तो मुझे स्नेह भी नहीं करेंगे? कहती हुई निशा फिर हंस पड़ी।

दिवाकर धीरे-धीरे निकल गया। एक दिन बार-बार देखने के लिए कहने के बावजूद उसने कहा था कि निशा की आंखों में कुछ है नहीं। पर आज दूसरी ओर देखती निशा की आंखों के बारे में सोचते-सोचते उसका मन अधीर हो उठा, उन आंखों में उसे क्या दिखाई पड़ा? उससे कोई गलती हो गई, बड़ी भारी गलती हो गई! पर अब तो बहुत देर हो गई; शायद अब तक निशा की आंखों को आंसुओं ने ढक लिया होगा!

भाग्यवती को भी लगा था, इस बार शायद इस बेहद जिद्दी लड़की को संभालना ही कठिन होगा, परंतु निशा की तो जैसे कोई प्रतिक्रिया ही नहीं है। न वह क्षणभर मन मारे रही, न एक वक्त खाना बिना खाए रही और न मां से रूठकर मुंह फुलाए, बिन बोले ही रही। स्कूल की राह में उसने एक-दो बार बड़े धीर भाव से सिर उठा-उठाकर देखा जरूर, पर दिवाकर को देखने के इरादे से नहीं, यों ही! और निशा के इस अस्वाभाविक शांत चेहरे पर की हंसी से भाग्यवती और ज्यादा अनुतप्त हो उठी! अपराध बोध की तीव्र अनुभूति उसे बड़ी अशांति देने लगी। अपने को संभाल न पाने के कारण एक दिन उसने खाने पर बैठी निशा से पूछा—"दिवाकर को आने से मना करने के कारण क्या तुझे बुरा लगा है?" हाथ का कौर मुंह की आधी राह से थाली में

लौटा ले जाकर निशा एकटक मां के चेहरे की ओर देखती रही। क्षणभर बाद मानो कोई बात उसे याद आ गई हो, इस ढंग से उसने मां से कहा—"नहीं, नहीं, मां; भला मुझे बुरा क्यों लगेगा? तुम लोगों को जरूर कोई अच्छा दिखाई पड़ा है, इसीलिए तो वैसा किया है! भला मुझे बुरा क्यों लगेगा?" कहकर एक मुरझाई-सी हंसी हंसकर निशा ने फिर से कौर उठा लिया।

भाग्यवती का हृदय हाहाकार कर उठा। इसकी अपेक्षा निशा अगर उस दिन की तरह खाने की थाली उठाकर किसी कोने में पटक देती, तो उसे कहीं बहुत ज्यादा शांति मिलती। यह हंसी, यह बात तो उस निशा की नहीं है जो बात-बात पर मां से ठिठोली किया करती है। एक नारी के मन की पूरी शक्ति से निशा की उम्र में प्रवेश कर उसने कुरेद-कुरेदकर देखा—आज तो हंस पाना निशा के लिए संभव न था। पैदा होने के दस दिन बाद निशा को हाथ-पैर हिलाते देख जैसे उसे यकीन नहीं हुआ था, आज भी उसी तरह निशा की उस हंसी को हंसी मानने में उसे यकीन नहीं हुआ। और इस लड़की के अंतर की ओर ज्यादा गहराई में जाने का भी कोई उपाय उसके लिए न था।

भाग्यवती कुछ कर नहीं सकी! निशा के स्कूल जाने के पहले उसने और यत्न से रसोई बनाई, दोपहर को निशा के साफ कपड़ों को फिर से धोया, इधर-उधर बिखरे गिरे उसके बालों के फीतों को सहेज कर रखा, और एक दिन घर-घर फेरी लगाने वाले कपड़ों के व्यापारी से अपने बहुत दिनों से जमा किए हुए पैसों से पाट-रेशम की मेखला चादर की एक अच्छी-सी जोड़ी खरीद दी। निशा ने मेखला की लंबाई की तह को खोल, छाती से नीचे की ओर फैलाकर लंबाई ठीक है या नहीं, जाच कर देखा। चादर की तह खोले बगैर उसकी किनारी को अपनी छाती पर आड़े-तिरछे लगाकर देखा! फिर उसे तहकर रख दिया। भाग्यवती ने कई दिन पूछा—'तू नए कपड़े पहनती क्यों नहीं?' अंत में निशा ने कहा—'ओ, किसी उपलक्ष के बगैर भला कैसे पहने जा सकते हैं वे कपड़े? अगर यों ही इन्हें पहनकर स्कूल जाऊं, तो साथ की लड़कियां भला क्या कहेंगी?'

भाग्यवती बड़ी उत्सुकता से किसी उपलक्ष की बाट जोह रही थी।

परंतु उसके बाद ही इस घर में जो कुछ हुआ उससे यह घर बिलकुल मरघट बन गया। जिंदगी-भर अपने भाग्य पर अविश्वास करने वाली, हर क्षण को संदेह और आतंक की दृष्टि से देखने वाली भाग्यवती आतंक का असली रूप देख पहले तो स्तब्ध सी रह गई, फिर बाद में जबान से कोई आवाज करने के पहले ही जमीन पर गिर पड़ी। जिदगी में पहली बार निशा ने कहा था, "मां, मेरी तबीयत अच्छी नहीं। मैं खाना नहीं खाऊंगी।" दो दिन बीते, चार दिन बीते, रजनी मास्टर उन्मादी-सा होकर डॉक्टर-कंपाउंडर फार्मेसी का चक्कर लगाने लगा। चिंतामणि हाजरिका निशा के पैंताने, सुरमाया सिरहाने, जोनाली, मृदुल, बाबुल, दिलीप आदि उसे घेरे बैठे रहे, और उन सब

के बीच से ही निशा मौका पाकर चल बसी।

पहले-पहल नौवीं श्रेणी की, इसके बाद पूरे बालिका विद्यालय की छुट्टी हो गई, बहुत-सी अध्यापिकाओं, लड़कियों के झुंडों से मास्टर का घर भर गया। इतने सारे लोग और कभी उसके आंगन में इकट्ठे होते या नही, इसमें संदेह है। सुरमाया बावली-सी हो गई। चितामणि हाजरिका ने छिपे-छिपे अपने आंसू पोंछे। जोनाली ऐसी हो गई कि उसकी सहेलियों को उसे पकड़े रखना पड़ा। मृणाल, बाबुल, दिलीप आदि एक कोने की जमीन पर निस्तब्ध से बैठे रह गए।

किसी की नजर पड़े बगैर लोगों के बीच से आगे बढ़ता आकर दिवाकर ने निशा की मुंदी आंखों में कुछ क्षण एकटक देखा; और चुपचाप वैसे ही लौट गया। जाते-जाते मानो वह देख गया उन आंखों की पुतलियों में एक नन्हीं-सी खिड़की है, जिसके बीच से बहुत दूर एक नन्हा-सा सूरज डूब गया है।

उसके बाद तो उस घर को मरघट के सन्नाटे ने घेर लिया। दो जिंदा जीव उस घर के अंदर परछाईं की भांति घूमा-फिरा करते। कोई किसी से बात नहीं करता, कोई किसी की नजरों में नजर नहीं डालता। दोनों ही एक-दूसरे से डरते-से रहते। अचानक अगर किसी की नजर किसी की नजरों में पड़ जाती, तो उन्हें ऐसा लगता, जैसे भूत देखा हो। उस सड़क पर से निकलने वाले लोग अरसे तक उस घर की ओर नजर डालकर आपस में बहुत दिनों तक चर्चा करते हुए निकल जाते। उस घर को जिलाने के लिए सुरमाया, चिंतामणि हाजरिका, जोनाली आदि सब लोग बार-बार लगातार आते-जाते रहे। उस परिवार से कभी घनिष्ठ संपर्क रखने वालों में सिर्फ दिवाकर ही नहीं आया। वह दूसरे शहर के कॉलेज में पढ़ने चला गया। जिस दिन भाग्यवती को यह समाचार मिला, उस दिन वह चौंक-सी पड़ी थी। पूछा, "आखिर वह कहां गया? फिर से आने वाला है या नहीं? कब आने वाला है?"

भाग्यवती मन में बेचैनी लिए चुपचाप दिवाकर के आने के दिन की बाट जोहते रही। जिस दिन उसे यह पता चला कि कॉलेज की छुट्टी में दिवाकर घर आने वाला है; उसी दिन से वह सड़क की ओर खुलने वाली खिड़की के पास बार-बार जाकर खड़ी होने लगी। दिवाकर को दूर से ही एक बार देखने की उसे बड़ी इच्छा थी। पर दिवाकर उस ओर से कभी नहीं आया। इतने सारे लोग भाग्यवती के पास आए, क्या उसे एक बार भी नहीं आना चाहिए था? भले ही उसके यहां न आवे, पर सड़क से होकर भी नहीं जा सकता?

दिवाकर उस ओर आया ही नहीं। कॉलेज खुलने के पहले ही वह चला गया।

भाग्यवती ऐसे किसी विश्वासी आदमी की खोज करने लगी, जो उसे बीच-बीच में दिवाकर के बारे में बतला सके! वह कहां रहता है? कौन रसोई बनाकर उसे खिलाता-पिलाता है? कौन उसकी देख-भाल करता है? पर रजनी मास्टर के कानों में कभी उसका नाम भी न पड़े! लेकिन भाग्यवती को लगा, वह बड़ी असहाय है। किसी

से पूछने में भी उसे डर लगने लगा। एक दिन जोनाली ने बताया दिवाकर काफी दिन तक घर आने वाला नही है। उसने बड़े भाई को लिख भेजा है कि उसकी एम. ए. की परीक्षा में अब ज्यादा दिन नहीं रहे हैं। भाग्यवती के नथुने फूल उठे। उसने धीमी आवाज में, विनती करने के लहजे में पूछा—'उसकी परीक्षा कब होने वाली है, क्या यह खबर तू मुझे दे सकती है ?

जोनाली ने पता लगाकर वह खबर ला दी। जिस दिन से दिवाकर की परीक्षा थी, उसके पहले दिन भाग्यवती देवता की वेदी के सामने एक दीपक जलाकर बैठी रही। वैसे पड़े-पड़े ही उसे नींद आ गई।

दिन बीतते गए। आखिरकार रजनी मास्टर के सिर के बाल सफेद हो गए। भाग्यवती के सूखे गालों पर काले-काले धब्बे पड़ गए। इतने दिन बीतने पर भी दिवाकर कभी उस राह से नहीं आया। भाग्यवती उसके बारे में सब कुछ पता रखा करती थी और सोचा करती, एक दिन वह जरूर आएगा।

परंतु जिसका पता उसे नहीं था, वही बताने के लिए एक दिन दिवाकर की मां खुद उसके यहां आई। एक छोटी-सी 'शराई'[1] में 'तामोल—पान' सामने कर उसने बताया—दिवाकर का विवाह होने वाला है। लड़की है पास के ही जगन्नाथ नाजिर की बिटिया।

भाग्यवती ठगी-सी बैठी रही। बहुत दूर टिकी उसकी नजरों की पलकें गिरनी भी बंद हो गईं। उसे लगा, मानो कोई अभी-अभी फिर एक बार यह समाचार दे गया हो कि निशा की मौत हो गई है।

कुछ दिन बाद जगन्नाथ नाजिर के यहां से भी भाग्यवती को विवाह का न्योता मिला।

सुरमाया ने जब पूछा कि वह विवाह में जाएगी या नहीं, भाग्यवती ने कह दिया कि वह नहीं जाएगी। उस उम्र में यह विवाह देखने की हिम्मत उसके दिल में नहीं थी। पर विवाह के दिन सुबह से ही भाग्यवती एक असहनीय यंत्रणा से तड़पने लगी। क्षणभर भी वह कहीं चैन से रह नहीं सकी! एक खंभे से टिककर बैठे हुए रजनी मास्टर से अचानक उसने एक बार कहा—"मैं विवाह-घर में जाऊंगी।"

मास्टर ने सिर उठाकर भाग्यवती की ओर देखा, इसके बाद तुरंत बोल उठा, 'हां-हां, जाना चाहिए, जरूर जाना चाहिए। न जाने पर हो सकता है कि वे लोग बुरा मान जाएं। कब जाओगी ? अभी या रात को ?'

भाग्यवती बोली—रात को!

शाम होते ही भाग्यवती कन्या वालों के यहा गई। उस समय केले के पौधों के बीच ऊंचे पीढ़े पर बैठी दुल्हन विजया मुट्ठी-मुट्ठी कच्ची हल्दी से खेल-खेलकर

1. 'शराई'—पाएदार असमीया तश्तरी।

बिलकुल सुनहली बन गई थी। सब लोगों के साथ-साथ भाग्यवती ने भी उसके कपाल, गालों, गले, हाथों आदि पर अपने कांपते हाथों से कई मुट्ठी सरसों-हल्दी लगा दी, फिर उसके चेहरे की ओर देख हंसने लगी।

लड़कियां दुल्हन सजा रही थीं, एक बड़े-से दर्पण के सामने कन्या को बैठाकर वे उन्हें घेरे बैठी रहीं। दूल्हे के आने के पहले खाना-पीना खत्म कर लेने के लिए जब लड़कियां उठ गईं। उस अकेले क्षण में भाग्यवती विजया के पास जाकर उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। ओढ़नी को कपाल के सामने खींचकर देखा। फिर बोली—'तुम्हें बड़ा सुख मिलेगा मां, बड़ी सुखी होओगी तुम। मैंने तुम्हारे दूल्हे को बहुत दिनों से देखा नहीं। शायद अब वह और अच्छा लड़का बन चुका है। जिन दिनों तुम लोग स्कूल में पढ़ रही थीं, मैंने उसे बहुत पहले उन्हीं दिनों देखा था।

विजया ने सिर झुकाए धीरे-धीरे कहा—"मैं जानती हूं। दादी।"

जानती है? भाग्यवती की आंखें चमक उठी, उसने विजया के चेहरे की ओर देखा। अगर विजया जानती है, तब तो निशा और बहुत दिनों तक जिंदा रहेगी। कल-परसों रजनी मास्टर और भाग्यवती अगर मर भी जाएं, तो और दो प्राणी उसे जिंदा रखेंगे।

दूल्हे के आने के शोर-गुल के बीच भाग्यवती एक लड़के को अपने साथ ले घर लौट आई। रजनी मास्टर सामने की ओर एक कुर्सी पर बैठा था। पेटी खोलकर भाग्यवती ने उस मेखला-चादर को निकाला, जिसे अब कोई पहनने वाली न थी! वह फिर विवाह-घर पहुंची। रजनी मास्टर अंधेरे में ही कुर्सी पर बैठा रहा। धीरे-धीरे आधी रात हो गई। सारे मुहल्ले में सन्नाटा हो गया। उस अंधेरे और सन्नाटे में बैठे हुए हथेली पर सिर रखे, मास्टर फूट-फूटकर रोने लगा।

होमाग्नि की वेदी के समीप दूल्हे-दुल्हन के अलावा विवाह-मंडप में अनेक लोग थे। उनके बीच भाग्यवती भी बैठी थी। कोई-कोई आधी रात को ही उठकर चले गए; किसी-किसी की पलकें बीच-बीच में मुंदी जा रही थीं, पर भाग्यवती को झपकी तक नहीं आई। वह कई-कई बार यह भूल गई थी कि यह दूसरों का आंगन है या उसके अपने ही घर का। दुल्हन की ओढ़नी की घूंघट के तले किसका चेहरा है, इस बारे में उसे कई बार गलतफहमी हो जा रही थी।

रात के आखिरी हिस्से में चढ़ावे के समय उसके पूरे तन-बदन को मानो किसी ने झकझोर दिया! होमाग्नि के पास रखी एक बड़ी 'शराई' देखते-देखते अनेक वस्तुओं से भर उठी। आखिर वह उठ पड़ी और मेखला-चादर को शराई पर रख दिया। बहुत दिन बाद बिलकुल पास से उसने दिवाकर के चेहरे की ओर नजर डाली। देखा, दिवाकर एकटक उसकी आंखों की ओर देख रहा है। होमाग्नि की आम की लकड़ी का धुआं उसे परेशान कर रहा था। हाथ के रुमाल से दिवाकर ने अपनी आंखें ढंक लीं।

भाग्यवती मंडप में नही ठहरी। घर लौटने के लिए चाहा था कि किसी का साथ मिल जाए। पर साथ न पाकर वह कन्या-घर के अंदर चली गई। एक कोने में जाकर वह घुटनों को मोडकर बैठ गई, और घुटनों के ऊपर अपने गाल रखे! उसका कलेजा फाड़कर रुलाई निकल आई जिससे उसका अंग-अंग कांपने लगा। रात को आखिरी घड़ी का कन्या-घर होने के बावजूद भाग्यवती के पास "तुम्हें क्या हो गया है दादी?" यह बात पूछने वाला भी कोई न था।

1960

आकाश

किसकी आवाज से नींद टूट गई, ज्योतिर्मय चौधुरी पहले-पहल अंदाजा नहीं लगा सके! जागते ही उन्होंने यह जानने की कोशिश की कि वह आवाज कैसी थी? बड़ी तेजी से कोई ट्रक गुजर गई? शाम के समय लोग मंडप के छप्पर पर जल्दबाजी में जो टीन चढ़ा गए थे, उन्हीं में से क्या दो-चार टीन अचानक गिर पड़े हैं? नहीं तो; वह आवाज आदमी की आवाज-सी थी! पास के बिस्तर पर सोई पत्नी तृप्ति या दूसरे कमरे में सोई बिटिया पापरी क्या नींद में ही चीख पड़ी हैं?

नहीं, कुछ देर बाद ही चौधुरी को लगभग आधी फर्लांग की दूरी से आती हुई एक खुले-से गल-गले कंठ की जोर की आवाज सुनाई पड़ी—होशियार! पुलिस पर अनास्था प्रकट कर इस अंचल के व्यापारियों ने रात के जिस चौकीदार को नियुक्त किया था, उसी की आवाज। उसकी चीख बड़ी-भद्दी होती है। दूसरे कमरे के पास के कदंब के पत्तों से ओस की दो-एक बूंदें उस मडप के टीन पर टपक रही थीं,—टप-टप-टप! कहां वह आवाज और कहां छह फुट के पहलवान रात के उस चौकीदार की 'होशियारी' की गला फाड़-चीख। कहां मां के आने का पता चलने पर घोंसले की चिड़ियों के बच्चों की चीं-चीं की आवाज और कहां उस बड़े बिलाव का हांव-हांव।

चौधुरी ने करवट बदलकर रजाई को कान तक खींचकर ढंक लिया और तुरंत सोने की कोशिश की। आजकल धीरे-धीरे उनकी नींद घटती जा रही है। नींद टूटने पर खिड़की के पर्दे के पास से जब बाहर दिन का प्रकाश दिखाई पड़ता है, तो उनका मन हरा हो जाता है। वाह आज तो अच्छी नींद आई! मगर उस तरह की रातों की संख्या घट आई है। कभी-कभी गहरी रात को पर्दे के पास से दिखाई पड़ने वाले उजाले को ही दिन का उजाला मानकर बाट जोहते रहे हैं, मगर आखिर तक उन्हें दिखाई देता कि 'कहां, वह उजाला तो धीरे-धीरे बढ़ता नहीं जा रहा है।' उठकर घड़ी देखने लगते—ढाई या तीन बजा है, कभी-कभी तो दो ही बजा होता। बाद में उन्होंने घड़ी देखना छोड़ ही दिया था। घड़ी में कम बजा है, देखते ही उन्हें डर-सा लगने लगता है। यों ही रहते तो शायद नींद आ ही जाती, पर घड़ी में कम बजा है, यह देखने के बाद उन्हें नींद न आना ज्यादा हो जाता है। दूसरे बिस्तर पर सोई तृप्ति के जगने तक बाट जोहते उन्हें करवटें बदलते पड़े रहना पड़ता है।

इसी कारण चौधुरी ने उस चौकीदार पर असंतुष्टि प्रकट करते हुए सोने की

कोशिश की। जबकि चौकीदार चीखता चक्कर लगा रहा है, यह जरूर चोरों का वक्त है, गृहस्थ-जनों के गहरी नींद में पड़े रहने का समय है।

पर करवटें बदलते ही चौधुरी को उस चिट्ठी की याद आ गई जो दोपहर को आई थी। रात के करीब दस बजे दूसरे कमरे में सोई पापरी को नींद आ गई होगी, ऐसा मानकर वे तृप्ति के साथ फिस-फिसाते हुए उसी चिट्ठी की चर्चा करते रहे थे। आखिर एक बार अचानक—"ऊह, बड़ी देर हो गई। सोओ अब, सो ज़ाओ।" कहते हुए वे रजाई के अंदर घुस गए थे और काफी देर जब तक कि नीद नहीं आई, उसी चिट्ठी के बारे में सोचते रहे थे।

चिट्ठी मे लिखा था, यह जो संजय नाम का लड़का है,—जिसके साथ चौधुरी-परिवार पापरी का विवाह करवाने जा रहा है, उसके खूबसूरत चेहरे की ओट में छिपे असली इंसान को क्या चौधुरी-परिवार ने देखा है? अपनी प्रतिमा जैसी सुंदर, सरस्वती-जैसी उज्ज्वल लड़की को कैसे अग्नि कुंड में झोंकने चले हैं, क्या एक बार भी सोचकर देखा है? स्निग्धा, आलेया, रुनजुन, गौरी, सकीना सरुमाव, चंद्रा—ये सभी उस अग्नि-कुंड की एक-एक अक्षय समिधा हैं, क्या यह बात उन्हें मालूम है? संजय के दिल के गंदे बैरक के कितने नंबर के कमरे में पापरी को रहने की जगह मिलेगी, इसका पता क्या उन लोगों को है? अगर लड़की को किसी तरह से निकालकर सिर्फ अपना उत्तरदायित्व भर निभाना चौधुरी परिवार का एक मात्र उद्देश्य हो, तो उसे जहर खिलाकर मार क्यों नहीं डालते?

इसके बाद एक अलग पैरे में लिखी बातें कुछ घरेलू-सी थी। 'आप लोगों के हितैषी होने के नाते ही ये बातें आप लोगों को सूचित कर रहे हैं। उसके बाद आप लोग क्या करते हैं, क्या नहीं करते, यह आप लोगों की बात है। यह चिट्ठी लिखने में हालांकि हमें कुछ देर हुई पर आप लोगों के लिए तो अब भी काफी समय है।'

चिट्ठी के आखिर में किसी का नाम नहीं; सिर्फ एक कतार में कुछ गुणे के चिह्न लगा दिए गए हैं।

पहली बार चिट्ठी पढ़कर चौधुरी अपने होंठों को गालों की ओर जरा लंबा कर उपेक्षा की एक मौन हंसी हंस पड़े। ऐसी चिट्ठियां किसी महत्त्व की नहीं होतीं। जैसे कि पापरी के साथ देने के उद्देश्य से उन लोगों के लाए हुए पलंग, दर्पण, टी-सैट, आदि के साथ-साथ पैकिंग के सामान बनकर धान की पुआल, बोरे, फटे-पुराने अखबार आदि बहुत सारे कूड़े-करकट भी आ गए हैं। और आएंगे भी। चौधुरी ने सोचा, वह चिट्ठी अगर तृप्ति के नाम न आती, और पहले-पहल लिफाफे को वे खोलते, तो उसे वे तृप्ति को दिखाते ही नहीं। पर अब तो मुसीबत आ ही पड़ी। क्योंकि चिट्ठी पहले-पहल तृप्ति को मिली थी, और पढ़ते ही बेचारी बड़ी गंभीर हो उठी थी। आज दिन ढलने पर 'इंडस्ट्रीयल स्टेट' के लोगों को निमंत्रित करने हेतु तृप्ति को जाना था, पर नहीं गई। और दिन तो गहने-कपड़े देखने आने वालों को वह खुद एक-एक चीज निकालकर दिखलाती और उसका इतिवृत्त सुनाती।—इन कपड़ों को तो आर्डर देकर बनवाया

था !—यही, सोना नया खरीदा है, शेष तो पहले का ही था। भला अब अपने लिए रखकर क्या होगा ? आदि-आदि ! परंतु आज तो उसने पापरी को दूसरे लोगों के पास बिठाकर खुद चौधुरी के पास आई। कहा—'क्या आप एक बार जाएंगे ? 'जोरण'[1] के लिए अब तो सिर्फ छह दिन हैं। हो सके तो चले ही जाइए न एक बार।'

—लेकिन जाना कहां है ? संजय के यहां ? नहीं-नहीं।

—मेरे विचार से एक बार उन्हें सूचित कर देना अच्छा रहेगा। हो सके तो वह चिट्ठी उसे भी दिखा देनी चाहिए।

—मतलब ? सजय को ? उफ्, तुम कैसी बातें कर रही हो ?—चौधुरी के विचार से संजय और उसके यहां के लोगों को चिट्ठी जैसे आई है, वैसे ही दिखाना या पापरी के हाथ से कापी करवा, उसके नीचे उसकी सही लगाकर दिखाना एक ही बात है।

तृप्ति और दिन काम-काज के बीच पापरी के साथ हंसी-मजाक, बहस, चर्चा आदि करती रहती थी और कभी-कभी अचानक अपने कमरे में आकर झट से चादर के आंचल से अपने आंसू पोंछ लेती। परंतु आज वह पापरी से अलग-अलग रहकर फिर रही है, मानो आज नजरों से नजरें मिलते ही वह और धीरज नहीं रख सकेगी।

तृप्ति के मन में उस चिट्ठी की बातों को हलका कर देना ही अब चौधुरी के लिए बड़ा काम हो गया।

सोने की कोशिश करते हुए चौधरी ने सोचा,—उसके सिवा भला और करने को क्या है ? झूठ-मूठ की कुछ अंट-संट बातें है। अब तो सो रहना ही अच्छा है। सुबह हो जाए तो लोगों को आमंत्रित करने हेतु तृप्ति को बाहर ले जाना होगा और राह में ही बात को हलका करने की कोशिंश की जाएगी। अब तो सो रहना चाहिए। आखिरकार ऐसी एक घटना हो गई—

संजय देर रात तक घर लौटा नहीं; पापरी खाना खाए बगैर उसकी बाट जोह रही है, ग्यारह बजे तृप्त संजय कमरे में आया है, पापरी को देखते ही वह विरक्त हो उठता है, पापरी बार-बार पूछती है, हमेशा इतनी रात तक वह रहता कहां है ? संजय और क्या बताए ? गौरी, सकीना, सरुमाव, चंद्रा— ! पापरी बहस करती है, उसे फटकार रही है, तकिए में सिर छिपाए फूट-फूटकर रो रही है, और रात के बारह बजे उन्मादी होकर संजय उसे थप्पड़ मार रहा है—एक थप्पड़, दो थप्पड़, तीन थप्पड़ ठांय-ठांय

नहीं, नहीं, कहकर मना करने के लहजे में तकिए पर पड़ा चौधुरी का सिर अचानक काप उठा। रजाई को अपने चेहरे के सामने यों ही एक बार हिला-डुलाकर चौधुरी ने आंखें खोलीं और उसके बाद आंखें ऐसे मूंद लीं मानो इस बार यह सब कुछ छोड़-छाड़कर जरूर नींद ले आएंगे।

—ठांय-ठांय आवाज की तो कोई बात ही नहीं, पापरी की जिंदगी के पिछले

1. जोरण—शादी से पूर्व दूल्हे के घर दुल्हन के घर जाने वाले आभूषण आदि की प्रथा।

इक्कीस सालों में उसके शरीर को गुस्से से भरकर कभी हाथ भी लगाया हो, चौधुरी को यह याद नहीं। बहुत से पुतलों, खिलौनों, लोरियों, गीतों, सियार के आने का डर दिखाने, बहलाने आदि के बावजूद जब तृप्ति पापरी को दूध पूरा पिला नहीं पाती थी, तब गुस्से में आकर वह उसे थप्-थप् से दो-एक थप्पड़ जरूर लगा देती। परंतु उन थप्पड़ों की कोई याद अब तो पापरी को नहीं है। उससे बहुत ज्यादा जोर की थप्पड़ उस समय चौधुरी तृप्ति को मारते और तृप्ति खुद हंसती रहती। पहली संतान है। कितनी उत्तेजना, कितने आयोजनों के बीच से उसे दुनिया में लाया गया है, मानो चौधुरी तृप्ति को केंद्र कर चक्कर लगा रहे थे। अचानक तृप्ति डगमगाई, उनकी कक्षा भी बदल गई और एक दिन दोनों ही पापरी को केंद्र बनाकर चक्कर लगाने लगे। वह इब्राहिम डॉक्टर, ऊनी जूते, जरा-सा ऊंचा घेरे वाला बिस्तर, मामा के हाथ से मुंह में पहले डाला गया अन्न, 'क' याने कलम, 'ख' याने खड़ाऊं; रंगों के डिब्बे, हारमोनियम, बर्तन साफ करने के लिए आने वाली को दी गई नन्हीं फ्राकों की ढेरी, से बढ़ते-बढ़ते क्रमशः प्रमीला मास्टरनी, रूमाल की हेम सिलाई, शर्म, लाकेट वाली चेन, काश्मीरी स्वेटर, दिल्ली की सैंडिल, आदि से आगे साइंस ले या आर्टस्, नई-नई डिजाइनें, मैथमेटिक्स में आनर्स ?—भला इतनी रात को किसके साथ लौटेगी ? हमें भी तो पता है कि वह अच्छा लड़का है; पर दूसरे लोगों के लिए फट् से कुछ कह देने में भला कितनी देर लगती है ? नहीं-नहीं न-न ! महीने में डेढ़ सौ रुपए में भला तू होस्टल में चल सकेगी ? बुद्धू कहीं की ! भूखी रहकर जान देने चली है ? हुंह··· ।

और ऐसी बिटिया पापरी को उसका पति ठांय-ठांय, थप्पड़ मारेगा ? एक बार घर आकर फिर वह जाने का नाम न लेकर बहुत दिनों तक यहीं रह जाएगी ? धीरे-धीरे वह मौन हो जाएगी ? उसकी आंखों की पलकें काली पड़ जाएंगी ? और उधर वह संजय·· ।

ये स्निग्धा, आलेया, सरुमाव, रुनजुन, गौरी आखिर हैं कौन ? ये कैसी हैं ?

चौधुरी ने करवट बदली। करवट बदल कर तय किया कि अब ये सब फिजूल की बातें न सोचेंगे। नींद लाने के लिए किसी बड़े कैलेंडर के एक पन्ने के बारे में सोचना चाहिए; एक से लेकर हर अंक के रूप-आकार को साफ-साफ मन में जगा लेना चाहिए, वह सत्रह है, वह एक-आठ अठारह है, वह एक-नौ, वह नौ-उन्नी—नींद ? उन्नीस, दो. पर शून्य,· ।

और वह जो थी, क्या नाम था उसका ? अब तो ठीक से याद ही नही आ रही है। अजीब बात है। आज उसका नाम भी याद नहीं हो पा रहा है ! सरुमाव ?—हां, हो भी सकता है। शायद सरुमाव ही होगी ! ज्योतिर्मय के फार्म की जमीन पर एक आदमी सरसों—गन्ने की खेती करता था। ज्योतिर्मय के पिताजी का वह बड़ा प्यारा विश्वासी आदमी था। उसी की लड़की सरुमाव ! वह 'मिडिल वर्नाकुलर' परीक्षा देने शहर आई थी; ज्योतिर्मय के यहां उसे रखकर उसका बाप गांव चला गया, क्योंकि उस समय खेत को रखवाली के बगैर छोड़ा नहीं जा सकता ! बांस की टट्टी की दीवार पर करघे के

औज़ार टंगे, रात को साइकिल रखने के छोटे से कमरे के एक कोने में एक छोटी-सी मेज पर पुराना अखबारी कागज बिछा, अपनी पुरानी किताब-बही सजाकर सरुमाव परीक्षा की तैयारी के लिए पढ़ाई में जुट गई। पर वह जितनी देर पढ़ाई करती, ज्यतिर्मय की मां के साथ घरेलू कामों में उससे कहीं ज्यादा देर तक जुटी रहती। एक बार ज्योतिर्मय ने पीने के लिए पानी मांगा तो मां के बदले सरुमाव ने ही पानी का गिलास उसे ला दिया था। गिलास लेते समय उसकी दो उगलियां ज्योतिर्मय की उंगलियों से छू गई ! पानी कितना पीया, ज्योतिर्मय को उसका खयाल नहीं रहा। गिलास लेते समय उसकी उंगलियों ने एक विज्ञापन पढ़ा और गिलास लौटाते वक्त एक दरख्वास्त सबमिट कर दिया !

परीक्षा का जब सिर्फ दो दिन रह गया, तब सरुमाव घरेलू काम करना छोड़ सिर्फ पढ़ाई में जुट गई। उन दिनों ज्योतिर्मय 'मिडिल वर्नाकूलर' वर्ग की अपेक्षा बहुत आगे बढ गया था। गणित के ऐकिक नियम, त्रैराशिक, सूद का हिसाब, दशमलव। वह सरुमाव की मेज पर बैठ गया। एक बार तो सरुमाव दंग रह गई, ज्योतिर्मय की नजरों से नजर मिलाना कठिन हो गया; कुछ देर व्याकरण की एक किताब गालों पर रख उसने अपना चेहरा ज्योतिर्मय से ओट कर रखा और अत में बडी तकलीफ से गले में आवाज लाकर अनुरोध किया—पहले परीक्षा खत्म हो जाने दें ! हालांकि ज्योतिर्मय ने परीक्षा की बहुत ज्यादा परवाह नहीं की थी।

परीक्षा के बाद सरुमाव लगभग दस दिन वहां रही। उन्हीं दस दिनों में उसने मोटे-से मारकीन के कपड़े के टुकड़े पर गुलाब फूल का एक बड़ा-सा बेल-बूटा बनाया। उसने उस गुलाब के नीचे की तीन पत्तियां ज्योतिर्मय से ही रेखाकित करवा ली थी, पर एक ही पत्ती का बेल-बूटा पूरा न होते होते उसका बाप उसे ले जाने के लिए आ गया। आखिरी रात को उनीदी रहकर सरुमाव ने किसी तरह से किनारी सीकर उस रूमाल को पूरा किया।

कितनी बड़ी रूमाल। कितना बड़ा फूल। कैसी चिकनी सिलाई ! बहुत साल बाद चौधुरी को लगा, वह रूमाल उनके सामने अचानक चमक उठी है ! उन्हे सरुमाव के शरीर की भी याद आ गई ! लगभग सोलह साल की लड़की, सरसों-गन्ने के खेतों के बीच से बाप के पीछे-पीछे पैदल चलती टाउन में एम.वी. परीक्षा देने आई लडकी; पूरा शरीर मांस से चिकना, गदराया हुआ। मांसपेशियां कड़ी, मजबूत। मोटे मारकीन कपड़े की उस रूमाल जैसी ही। मगर आज कहां गई वह लड़की ? आजकल न जाने कहां है वह। उसके लगभग दस साल बाद उसके बाप से एक बार ज्योतिर्मय की भेंट हुई थी। उसने बताया था कि उसकी किस्मत अच्छी नही रही। उसका मर्द खेती-बारी करना छोड़ चुका, गांजा पीता है, बैंड पार्टी की बीच में बजने वाली राली शहनाई बजाता हुआ शादी-ब्याह, में गांव-शहर में चक्कर लगाता रहता है।

कहां है, वह सरुमाव, और कहां है वह ; उसका असली नाम तो खैर छोड़ देते

हैं, ये जो नाम हैं, उन्हीं में से कोई नाम उसे दिया जा सकता है। आलेया? हा, चल जाएगा। इन नामों का अगर जरा इधर-उधर भी हो तो कोई नुकसान नही। हा, सिर्फ एक नाम—नीलिमा, इस नाम को लेकर चौधुरी किसी तरह की गड़बड़ी करना नही चाहते। वह नाम किसी तालिका में भी देखने की इच्छा उनकी नहीं होती। शेष नामों के क्षेत्र में उनका कोई एतराज नही है। हालांकि एक बात सही है—उनकी पत्नी का नाम तृप्ति है।

आलेया। मरुमाव की उंगलियो की बात से उन्हें उसकी याद आ गई। आलेया के साथ ज्योतिर्मय चौधुरी रेल के एक ही डब्बे मे सवार लंबी सफर पर निकले थे। हिमालय की तराई के एक पर्वतीय निवास मे इतिहासविदो का सम्मेलन आयोजित था। दो विभिन्न स्थानों से प्रतिनिधि के रूप में आते हुए ज्योतिर्मय और आलेया एक डब्बे में मिले थे। उनमें आपसी परिचय हुआ था, और दोनों एक ही अधिवेशन के प्रतिनिधि है, ऐसा जानकर खुश हुए थे। यात्रा आरंभ होने के दूसरे दिन सुबह आठ बजे उस डब्बे से दूसरे लोग उतर गए थे। और शाम को पांच बजे जाकर दो आदमी सवार हुए थे। संयोगवश दूसरे प्रतिनिधियों से अलग होकर इस डब्बे में घुस पडने के कारण ज्योतिर्मय का मन उस समय ज्यादा खुशी का अनुभव कर रहा था। भारत से चले जाने वाले डच लेखकों द्वारा रचित 'भारत-इतिहास' और भारतीय लेखकों द्वारा रचित' भारत में डचो के इतिहास' का अंतर, भारत में बिखरे बहुमूल्य मणि-मुक्ताओं की उपेक्षा और दुर्गति देखकर ईस्ट इडिया कंपनी के अंतर में कैसी महान् अनुकंपा का उद्रेक हुआ था—आदि-आदि विषयों की चर्चा करते-करते ज्योर्तिमय ऊब उठा था। घटों यहां-वहां बैठे बैठे, लगभग यो ही ढीले पड़े आलेया के हाथों की उंगलियां देखकर ही शायद ज्यातिर्मय के मन में सामुद्रिक या हस्तरेखा-विद्या की चर्चा करने की भावना जग उठी थी। लगभग दो बजे, कुछ देर अपने दाएं हाथ की कुछ रेखाओं की व्याख्या करने के बाद वह आलेया के बाएं हाथ की रेखाओं को, पहले हाथ बिना देखे, फिर कुछ देर बाद धीमे से छूकर देखने लगा। कुछ देर बाद आलेया का चेहरा गंभीर हो गया। ज्योतिर्मय के हाथों से अपने हाथ छुड़ाकर वह सामने की बर्थ पर चली गई? ज्योतिर्मय ने उससे बार-बार पूछा—क्या वह बुरा मान गई है? लगभग आधे घटे बाद उसने अपना लाल हो आया चेहरा ज्योतिर्मय की तरफ घुमाकर शीतल, शांत लहजे मे पूछा—"ज्यादा देर तक धीरज रखना आप लोगों के लिए संभव होता, है या नही?"

"आप लोगों के लिए—इसका मतलब?" निरुद्वेग, निर्विकार स्वर से ज्योतिर्मय ने पूछा—"मैं और कौन? दूसरों की बात तो खैर मै नहीं बता सकता; परंतु मेरे बारे में तो आप जान ही गई हैं, मेरा कोई धीरज-वीरज था नहीं, और धीरज धरने की बात मैंने सोची भी नहीं थी। आपको मेरा वह काम पसंद नहीं, इसलिए आगे वैसा काम नहीं करूगा। मै समझ गया, आपके मन में चोट लगी है, इस कारण उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं। बस! साफ बात है!" बात कहकर ज्योतिर्मय उठ पड़ा। दरवाजे से शरीर

टिकाए वह देर तक बाहर देखता रहा। अगले स्टेशन पर रेल के रुकते ही वह उतर गया। रेस्तरां—कार में बैठे कई स्टेशन गुजर जाने के बाद जब वह उस डब्बे में फिर लौटा, तो डब्बे में कितने ही लोग सवार हो चुके थे।

दूसरे दिन सुबह आलेया बहुत पहले ही उठकर हाथ-मुंह धो-धाकर साफ-सुथरी हो, खिड़की के सामने बैठी थी। ज्योतिर्मय के उठते ही उसने धीमी, पर तेज हंसी हंसकर कहा—"गुड मार्निंग।"

ज्योतिर्मय ने अपने मुंह में सिगरेट डालकर कहा—"गुड मार्निंग" उसने तकिए के नीचे दियासलाई टटोली!

"रात को अच्छी नींद तो आई है न?" आलेया ने एक ही लहजे में पूछा।

"जी हां।"

—'सपने में किसी के हाथ-वाथ देख रहे थे या नहीं?' लालटेन की बत्ती तेज करने जैसी अपनी हंसी को ज्यादा खिलाकर आलेया ने पूछा।

हाथ की जलती तीली सिगरेट के पास से हटाकर ज्योतिर्मय ने तेज नजरों से आलेया के चेहरे की ओर क्षणभर देखा, फिर बोला—'नहीं, हाथ देखने का सपना तो देखा नहीं। पर रातभर सपना देखता रहा कि मेरा हाथ इतना गंदा हो गया है लगातार धो ही रहा हूं। पर साफ ही नहीं हो रहा।'

एक स्टेशन पर डब्बे के दूसरे लोग जब उतर गए, तो आलेया ने ज्योतिर्मय से कहा—'मैंने जैसा सोचा था, आप उससे कहीं बहुत ज्यादा गुस्सैल, अभिमानी और अहंकारी हैं।'

ज्योतिर्मय बोला, 'अरे छोड़िए भी, कोई दूसरी बात कीजिए न। हां, कल वह क्या कह रही थीं आप? हां, तख्ते-ताऊस और कोहनूर के बारे में?'

रेल-यात्रा के शेष समय में और उस पर्वतीय निवास में जितने दिन रहे, ज्योतिर्मय को कभी-कभी लगता था कि आलेया अकेली कबूतरी-सी है। कभी-कभी वह पूछती—'आप कहां गए थे?'

—यहां से तीन मील दूर एक शिव मंदिर। वहीं देखने गया था। मतलब साइट सीइंग!

आलेया ने धीमे, आहत स्वर में कहा था—"मैं आपको ढूंढ़ती रही थी। मैं भी जाती वह जगह देखने के लिए।"

और एक बार उसने कहा—चलिए न, वापसी के लिए रेल के रिजर्वेशन का इंतजाम कर आएं। इतना लंबा सफर है, मैं तो अलग डब्बे में जा नहीं सकूंगी, हां!

उस ऐतिहासिक अधिवेशन के बाद आलेया ज्योतिर्मय के नाम बहुत दिनों तक लंबे-लंबे पत्र लिखती रही। सोमनाथ मंदिर का खोया दरवाजा, कुतुबमीनार की दर्पित ऊंचाई, बहादुरशाह जफर के आखिरी दिन, आदि जैसे दूसरों की चर्चा के बीच-बीच में आलेया अपने बारे में भी लिखती थी—एक बात आप अनुभव करने की कोशिश करें

चौधुरी, हाथी अगर कीचड़ में पड़ जाए तो बड़ी मुसीबत में फंस जाता है।

और चौधुरी ने भी गौर किया, एक हथिनी धीरे-धीरे कीचड़ में धंसती जा रही है, लगातार धंस रही है। और ऐसा समय आया जब कि वह ओझल हो गई। परंतु कीचड़ के बीच से वह दूसरी ओर पहले जैसी ही रहकर निकल गई। बिलकुल उसी तरह जैसे कि एक बड़े-से मेघखंड को पार कर चांद फिर से निकल आया हो। और निकल जाते ही उसने बाप के हाथ से पत्र लिखवा भेजा—मेरी पहली कन्या सौ॰ आलेया का ¨

नींद आने लगी थी क्या? शायद। नींद आने के पहले भावनाएं ऐसी हो जाती हैं। चौधुरी का दिल कुछ हरा हो गया। जरा भी हिले-डुले बगैर वे लेटे रहे।

—मगर वह हथिनी अगर डूब गई होती तो! तख्ते-ताऊस से उतरकर अचानक दल-दल में धंस जाने का वह दुस्साहसिक अभियान, भला वह दुस्साहस ज्योतिर्मय के मन में कहां से आ गया था? किसने दिया था वह दुस्साहस? एक झिलमिल-सी भावना के बीच-बीच में चौधुरी पीछे हटते रहे। किसने दिया था उन्हें वह दुस्साहस?

क्या वह—वही उसने? अठारह साल की अपनी उम्र में जिस लड़की से उसकी मुलाकात हुई थी, उसका नाम चंद्रा भी हो सकता है। उन दिनों अपनी श्रीमती और बच्चों को साथ लेकर निखिल भैया पुरी जाने वाले थे। घर में बूढ़ी मां और एक रसोइया भर रहेंगे, इसलिए ज्योतिर्मय को कुछ दिन निखिल भैया के यहां रहकर बुढ़िया की देखभाल करनी है। चंद्रा के आने की बात थी, परंतु जिस पत्र द्वारा उसे बुलवाया गया था, उसका जवाब ही नहीं आया था। खैर, निखिल भैया आदि चले गए, ज्योतिर्मय ने एक रात बुढ़िया की देखभाल की। दूसरे दिन चंद्रा आ पहुंची। बुढ़िया ने ज्योतिर्मय से कहा—अरे, तू भी रह जा! ज्योतिर्मय रह गया, चंद्रा बड़े प्यार से उसका भी काम-धाम कर देती। दो रातें बीतने के बाद, उसकी अपेक्षा चार साल बड़ी चंद्रा ने, उससे एक बार कहा—रात को खिड़की के पास कुछ खुरुक-खुरुक कर रहा था। उससे उसे बड़ा डर लग रहा था। उस दिन लगभग आधी रात को चंद्रा ने ज्योतिर्मय के बिस्तर के पास आकर इतनी धीमी आवाज में, जिसे किसी तरह सुना जा सके, कहा—मैं तुम्हारे साथ सोऊंगी। वहां मुझे डर लगता है।

निखिल भैया आदि को बीस दिन बाद आना था—पर आए इकत्तीस दिन बाद; कोई मौका पाकर वे लोग पुरी से काशी भी हो आए। उन इकत्तीस दिनों के अंदर की वे बीस रातें!—लगभग तीस साल बाद भी चौधुरी मानो रजाई के नीचे एक बार चौंक से पड़े। रसोइया लड़का सबेरे आठ बजे गाय दुहता, लगभग नौ बजे चंद्रा एक बड़े-से गिलास में गर्म दूध ले ज्योतिर्मय के पास आती। ज्योतिर्मय सिर उठा नहीं पाता। चंद्रा दूध का गिलास थमाकर अपने मोटे होंठों पर मुस्कान खिलाकर कहती— तुम लड़की होते तभी अच्छा होता।

उस सरुमाव के साथ ज्योतिर्मय को एक धक्का खाना पड़ा था, पर चंद्रा ने तो उसे मरोड़कर बिलकुल क्लांत, रूखा कर डाला। उस मरोड़ से मानो उसकी सूक्ष्म,

कोमल रंगीन अनुभूतियो की नोकें पिसकर बिलकुल नष्ट हो गई।

उसके बाद अगर उन्हें नीलिमा का साथ न मिला होता, तो शायद ज्योतिर्मय एक सक्षम, दुस्साहसी जानवर ही बन जाते।

चंद्रा के मांसल शरीर की परछाई के सर्वग्रासी अंधेरे में किताबों से अपनी छाती ढंककर स्कूल आने-जाने वाली लड़की स्निग्धा कहीं खो गई। चौधुरी ने बड़ी तल्लीनता से मन की सारी शक्ति जुटाकर स्निग्धा का चेहरा देखने की कोशिश की। कोमल—बहुत ही कोमल। स्पर्श की कोमलता नहीं, देखने की कोमलता। इतने गहरे रूप से कोई अनुभव कर सकना, सो जाने जैसा ही है। चौधुरी तन्मय होकर पड़े रहे।

—किताब के कवर तले रखी चिट्ठी आती—आजकर तो तुम बड़े वैसे हो गए हो'; आजकल जरूर तुम मुझसे नफरत करते हो; कल जुलूस में जाते समय तुमने एक बार भी मेरी ओर नही देखा। मैंने तो कोई गुनाह नहीं किया ।

· कैसा अद्भुत था वह प्रेम! पकड़ में न आए, इस तरह से उन चिट्ठियों को संभाल रखना ही मानो उस प्रेम को जिदा रखने की सबसे बड़ी समस्या थी। बिपुल के यहां सुबह-शाम आनेवाली रत्ना चाची को क्या उसका कुछ पता चल गया है? स्निग्धा कई दिन ज्योतिर्मय की चिंता छोड़ सुबह-शाम के कुछ घंटे रत्ना चाची के साथ लगी रहती। वह अतुल को गणित सिखाती, कटहल-बीजों के छिलके उतारती, रत्ना चाची की ब्लाउज में टिप्पी-बटन लगाती। कई तरीकों से वह पता लगाने की कोशिश करती, चाची को क्या पता चला है, कितना पता चला है। लगभग हफ्ते भर बाद स्निग्धा 'कविता-कुंज' नाम की किताब के कवर के अंदर पुर्जा रख ज्योतिर्मय को सूचित कर देती—बात झूठी है! पर मुझे बड़ा डर लग रहा है। हमें अब चिट्ठी-पत्री कुछ घटा देनी चाहिए। तुम सोमवार को, मैं शनिवार को। क्यों? होगा न?

चिट्ठी-पत्री और नजरों का मिलना! प्रेम का आधार इतना ही है। शाम को स्निग्धा लालटेनें जलाकर हर कमरे में रख जाती। खिड़कियां बंद करती। सामने की ओर की एक खिड़की बिलकुल अंत में बंद करती। पर्दे टांगने की रस्सी को पकड़ उससे होंठ लगाए वह देर तक खड़ी रहती। कुछ देर बाद दूर का वह पुल ज्योतिर्मय के साथ ही अंधेरे में छिप जाता। जब तक नींद न आती, स्निग्धा को उस दिन का वह समय खुशगवार लगा रहता। मां को पीठ की ओर से बांहों में भरकर प्यार करने का दिल होता।

चौधुरी का मन एक गहरी प्रशांति और स्निग्धता से भर उठा। वह प्यार-मुहब्बत सब कुछ सुबह के ओस-कणों जैसे हैं। होते-पड़ते ही हैं। सूरज निकलने पर खो भी जाते हैं। हां, ऐसा तो होता ही है।

इस बार करवट बदलते वक्त चौधुरी को लगा, सिर में दर्द है। उन्हें चौकीदार पर गुस्सा आ गया। विकट चीख मारकर कंबख्त ने लोगों की नींद तोड़ दी, और अब खुद शायद किसी गुदाम के बरामदे में पड़े खर्राटे भर रहा है।

चौधुरी ने "सारी चिताएं सिर से अब निकाल दी, और यह—यह सोने की कोशिश कर रहा हूं" सोचकर आंखें मूंद लीं।

अरसे बाद एक पूजा-मंडप में बच्चों और पति के साथ स्निग्धा ज्योतिर्मय से मिली थी। खुली हंसी और स्नेह भरी आवाज से स्निग्धा ने उसकी खबर पूछी थी—अच्छे हो न? बाल-बच्चे? भाभीजी को तो मैने देखा ही नही न। सुना है कि आप लोग पूरी तरह उठकर यहीं चले आए हैं? क्या नया मकान बन गया?

उस दिन ज्योतिर्मय के मन में एक बेचैनी-सी जग उठी थी। क्योंकि उसे डर था कि कहीं मुलाकात होने पर मानो चंद्रा पूछ बैठेगी—चंद्रा आदि की खबर अच्छी है न?—और जब स्निग्धा ने उसकी चर्चा ही नहीं की, तो उसे बुरा लगा।

तो फिर यह कौन गई? सकीना, रुनजुन। नहीं-नहीं, इतने दिन बाद चौधुरी की नींद में खलल डालने की ताकत उनमें है नहीं। क्या वे रेस्तरां के बाहर की पान-दुकानें हैं? बस की दो जने की सीट पर प्यार से बिठा लिया गया तीसरा यात्री है? अगर उन सबको गिनती में लिया जाय तब तो और ऐसी अनेक को लेना पड़ेगा जो संजय की सूची में नहीं हैं। जेल में जमानत पर जिसे छुड़ाया था, वह देश-कर्मी कृष्णा, बंबई के होटल मालिक की बिटिया शकुतला, रिचर्डसन अस्पताल की डाक्टरनी पामेला। वे सब तो ऐसी रही हैं मानो खराब मौसम के कारण, यांत्रिक गड़बडी होने पर, विवश होकर उतरने के लिए बने एक-एक युद्धकालीन हवाई अड्डे हों। वे हवाई अड्डे इन दिनों शायद बंद हो गए हैं। या वहां अब शायद लोगों के मकान बन गए हैं या कृषि-फार्म खुल गए हैं।

संक्षेप में उन दिनों मानो किसी अर्वाचीन धोबी ने किसी के रंग छूटने वाले कपड़े, किसी के कीमती सफेद कपड़े, किसी के होली खेले गए रंग-भरे कपड़े—सबको उठाकर एक साथ भट्ठी पर चढ़ा दिए हों। किसी को बुरा लगा, किसी को उचित फायदा हो गया, और कोई खुश हो गया। बस।

मगर हां। वह गौरी। दैट डर्टी क्रीचर (वह गंदा जीव)। उसे अलग रखना होगा। वही एक लड़की थी, जिसके रोने पर आंखों से काजल बह आते थे। मिट्टी के दीये से वह काजल बनाती, और उस काजल से आंसुओं को काला करती। घर के ऊपर से उड़ जाने वाले तोते को 'पालतू चिड़िया है' बताकर आंगन के कौओं के सामने घमंड करती। अद्‌भुत।

एक दिन उसने कहा था—"ओ दादा, मैंने एक कहानी लिखी है; आप जरा देख देंगे क्या?"

"कहानी? मगर मैं भला कहानी के बारे में जानता ही क्या हूं?" ज्योतिर्मय उसका प्रस्ताव उड़ा देना चाहता था।

—उंह, नहीं जानते, बड़े बनते हैं। आप सब कुछ जानते हैं। मतलब, आप समझे न, मैं एक लड़की के मन की वेदना की तस्वीर इसमें प्रकट करना चाहती हूं। बिलकुल

यथार्थ-सा बना दिया है। लेकिन यह पहला प्रयास है न, इसी कारण कहानी कैसी हुई है, अंदाजा नहीं लगा सकी हूं। जहां-जहां त्रुटि रह गई है, आपको सुधार देना है, हां।

बाद को एक दिन उसने कहा था—"मां तो उसी दिन से आपकी बात ही कहती रही है। आपके बारे में चर्चा तो दिन में कम से कम एक बार तो होती ही है। कहती है कि हमारे घर को आपने बिलकुल अपना बना लिया है।" और यह कहकर वह खिलखिलाती हुई हंस पड़ी।

भला कहीं इस बात पर भी किसी को हंसी आती है? बात सोचकर ज्योतिर्मय मुस्कुरा पड़ा था।

उसके बाद एक दिन गौरी कुछ कहने जाकर ज्योतिर्मय के सामने कुछ देर चुपचाप बैठी रही। वह बड़ी सोच में पड़ी थी। शर्म के मारे वह सिर उठा नहीं पा रही थी, सिर्फ उसकी आंखें ही छटपटा रही थीं।

—'क्या हुआ है, कहो न!' जब ज्योतिर्मय ने यों कहकर दिलासा दिया, गौरी ने सिर झुकाए ही कहा—'बात तो सब लोग जान गए हैं।'

—कौन-सी बात?

—यही हमारी बातें। मेरा तो बाहर निकलना ही मुश्किल हो गया है।

नंगी औरत की तस्वीर की भांति कागज के तहों में रखी गौरी की कहानी ज्योतिर्मय ने उस दिन वापस कर दी थी। अब तक शर्म के मारे वह काम वह कर नहीं सका था। उस दिन गौरी के गाल काजल से काले हो गए थे।

उन दिनों नीलिमा ज्योतिर्मय के आसपास थी। एक दिन उसने होंठों पर एक शांत हंसी खिलाकर पूछा था—"भला, मुझे यह सब बात तुमने बताई क्यों नहीं?"

—कौन-सी बात?

—वही, बाहर लोग जो कुछ कह रहे है। जिंदगी में पहली बार ज्योतिर्मय को पछतावा हुआ था। वह उत्तेजित और कातर भी हो गया था। बाद में उसे पता चला था, शहर के जो लोग ऐसी बातों की खबर रखा करते हैं, वे लोग इसी बीच जान गए थे कि गौरी के साथ उसका जिदगी-भर का संपर्क बन चुका है। इसी बीच कौवों के झुंडों का कांव-कांव शुरू हो गया था। कितनी वीभत्स थी वह चीख-पुकार।

नीलिमा ने एक दिन फिर कहा था—ओह, मेरे लिए चिंता क्यों करते हैं? चिंता छोड़िए न! मैं तो सब समझती हूं न। यह सब छोड़िए, छोड़ दीजिए। चीयर अप! समय पर सब कुछ सन्नाटा हो जाएगा।

और समय पर सब कुछ सन्नाटा हो गया। एक दिन तृप्ति आई। और सब तारे, चाद, उल्का, धूमकेतु-सी ओझल हो गई। नीला आकाश शून्यमय एक पृष्ठभूमि-सा बना रह गया।

हां, ठीक ही तो है। चौधुरी ने तृप्ति के आने के दिन से लेकर उस क्षण तक का पूरा समय क्षणभर में ही एक बार मन के ऊपर से पार करा दिया। कहां? कुछ भी तो

नहीं हुआ। सब तो ठीक ही है। शांत, निस्तरंग गति से तृप्ति को ही केंद्र बनाकर वे चक्कर लगाते रहे। कभी तो किसी तरह के ताप की कमी नहीं हुई। कभी तो किसी तरह की ठंडक का अनुभव नहीं हुआ। उसके बाद तो तृप्ति और वे, दोनों ही पापरी को केंद्र बनाकर चक्कर लगाते रहे हैं।

नहीं, नहीं, यह सब तो कोई बड़ी बात नहीं है। संजय के साथ लगी सूची कोई बड़ी बात तो है नहीं। फिर उसमें तो नीलिमा का नाम है ही नहीं। हालांकि यह बात सही है कि नीलिमा वैसी किसी सूची में आने वाली है भी नहीं।

यह सब कोई बड़ी बात नहीं है। यह सब तो होता ही है; होता ही रहता है।

पर भला तृप्ति को समझाएं भी तो कैसे? उस इब्राहिम डाक्टर के प्रेसक्रिपशन से लेकर संजय की जन्म-पत्री तक फैली हुई पापरी की जिंदगी, उसके साथ लगी वह सूची। नहीं-नहीं, तृप्ति क्या कर डालेगी, पता नहीं।

चौधुरी ने आंखें खोलकर एक बार खिड़की के पर्दे के पास के उजाले की ओर देखा, फिर करवट बदल आंखें फिर मूंद लीं।

कुछ देर बाद उन्हें दूसरे बिस्तर पर सोई तृप्ति के गले से निकली कोई आवाज सुनाई पड़ी। चौधुरी को लगा, वह तो जगे आदमी के गले की आवाज है। उन्होंने आवाज दी—'क्या तुम जगी हुई हो?'

—हूं, मेरी नींद तो कभी की खुल गई है। जगे आदमी की आवाज में तृप्ति बोली। चौधुरी संत्रस्त हो उठे।

—नींद कभी की खुल गई?

—हूं! वह रात का चौकीदार इतनी जोर से हांक लगा रहा था। उसी की चीख से मेरी नींद टूट गई।

चौधुरी ने क्षणभर सोचकर पूछा—"क्या बहुत देर हुई?"

—हूं।

—अरे सोने की कोशिश क्यों नहीं की?

—नींद आए तब न! तृप्ति ने कुछ रूखेपन से कहा।

—क्यों? क्या उस चिट्ठी के बारे में ही सोचती रही हो।

—हूं!

कुछ देर बाद चौधुरी ने डरते-डरते पूछा—'सोचकर क्या तय किया तुमने?'

तृप्ति ने सहज, स्वाभाविक स्वर में कहा—'मैंने सोच-विचार कर देख लिया। यह सब कोई बड़ी बात नहीं है। समझे न!

तृप्ति मौन हो गई। चौधुरी का दिल हलका-हलका-सा लगा। अकस्मात् ही मानो एक समस्या का समाधान हो गया।

कुछ देर चुप रहने के बाद तृप्ति बोली—"यह सब तो होता ही है। होता ही रहता है। बाद में—समय पर सब कुछ ठीक हो जाता है।"

तृप्ति ने और कुछ नही कहा। करवट बदलकर उसने रजाई से अपने कान ढंक लिए।

धीरे-धीरे चौधुरी का मन फिर भारी-भारी हो आया। उस "होशियार" पुकार के बाद से सोच-विचार कर तृप्ति को यही मिला?

तुरंत जैसे एक समस्या पैदा हो गई।

1975

कृतज्ञ

पहले जब कहीं सुनता था कि किसी को 'कैंसर' की बीमारी हुई है, तो तुरत चौंक उठता था—'क्या? क्या कहा? क्या सचमुच?' जिसकी मौत होने पर मुझे तकलीफ होगी, वैसे किसी के बारे में ऐसी खबर मिलने पर तो कुछ क्षण के लिए मैं स्तब्ध-सा रह जाता था, फिर जबान से 'ओह-ओह' कर उठता था। फिर पास के आदमी से पूछता था—अब क्या होगा? वह कहता—भला और होगा क्या? जो होना है, वह तो होगा ही। 'इट इज सिम्पली ए मैटर आफ टाइम नाव!'

लेकिन मेरे अपने क्षेत्र में तो मुझे चौंक उठने का कोई मौका ही नहीं मिला। वह खबर मेरे मन की लंबी-फिसलन भरी राह से किस बीमार, कमजोर केंकड़े के रेंगते आने की भांति आई थी। उसका आगे बढ़ आने का पहले तो मुझे पता ही नहीं चला था, पर जान गया था। कभी-कभी ऐसा लगता था, मानो वह घड़ी के घंटे के कांटे पर बैठा हुआ हो। मैं लगातार तल्लीन होकर उस घड़ी पर नजर डाले हुए था। समय भी ठीक ही बीत रहा था, लेकिन उस कांटे की गति का अंदाजा मैं नहीं लगा पा रहा था। उसके बाद मानो एक दिन उस घड़ी की ओर देखकर अस्फुट स्वर से, धीर-स्थिर, शांत भाव से मैंने स्वीकार कर लिया था—'नाव इट इज सिम्पली ए मैटर आफ टाइम।'

टाइम! समय! कितना समय। मतलब और कितने दिन? हालांकि उसके बारे में सोचना छोड़ चुका हूं, ऐसा भले ही सोचता होऊं, पर मन में तो बहुत-कुछ खबर सहेज रखी है। किसी को कैंसर हुआ है यह खबर फैलने के बाद। वह कितने दिन जिंदा रहा, काफी तकलीफ झेलकर भी मैंने इसका पता लगाने की कोशिश की है! किसी से मैं कुछ पूछता नहीं, सिर्फ मन-ही-मन उसका हिसाब लगाता रहता हूं। बीमारी की घोषणा होने के बाद भी हृषिकेश बाबू लगभग दो साल जिंदा रहे। बीमारी तो खैर बीमारी थी ही। तिस पर बाथरूम में फिसलकर गिरने के कारण दाहिनी बगल में उन्हें बड़ी चोट लगी। अगर वह दुर्घटना न हो जाती, तो क्या पता, वे शायद और भी कुछ जिंदा रहते। देश पांडे की मां भी तो लगभग तीन साल जिदा रही? या वह तीन साल से कम थी? हिसाब लगाने पर निकल आएगा। पहली बार खबर मिलने पर जब देशपांडे घर गया था, तब तक गरमी की छुट्टी हुई ही न थी। वह छुट्टी लेकर घर गया था। वह छुट्टी गरमी की छुट्टी के साथ जुड़ गई थी। दूसरे साल गरमी की छुट्टी में

उसने घर से लौटकर हमें सूचित किया था, मां अच्छी ही है। एक साल! उसके बाद की गरमी की छुट्टी में भी वह मां को ठीक-ठाक ही देख आया था। यह हुआ दो साल! उसके बाद तार मिलने पर वह घर गया। बिलकुल डिग्री क्लास के टेस्ट के बाद! याने जनवरी महीने में। इसका मतलब ढाई साल। तीन साल पूरा नहीं हुआ? नहीं-नहीं, वह कोई बड़ी बात नहीं है। क्यों न मान लिया जाए, तीन साल रही? कुछ महीने ही तो इधर-उधर होंगे।

इसी तरह से मैंने अनेक लोगों के बारे में हिसाब निकाला है। गणेश वकील, फाइनेंस का सुकुमार चौधुरी, कृष्णानंद के ससुर, प्राक्लन रेवेन्यू मिनिस्टर परमानंद मजूमदार, और हमारी श्रीमती के दूर के नाते के मामा, आदि अनेक लोगों का हिसाब लगाकर देखा है, बीमारी की शिनाख्त होने के बाद भी लोग औसत दो साल जिंदा रहे। कुछ लोगों की बात और है। उन्हें तो मैं गिनती में लाया ही नहीं। उनमें से कुछ लोगों की मौत के बाद ही डाक्टरों को बीमारी का पता चला था। शेष लोगों की बीमारी की जब शिनाख्त हुई थी, कहते हैं कि तब वह बीमारी 'लास्ट स्टेज' में थी। इसी कारण जिंदा रहे सिर्फ कुछ दिन! विभिन्न प्रकार की दवाएं देकर रखा जाए, तो ज्यादा-से-ज्यादा कुछ माह चलेंगे।

कहते हैं कि मेरी बीमारी उस स्टेज तक पहुंची न थी। इसी कारण बहुत से लोगों का औसत निकालकर मैंने तय किया—मुझे और दो साल तो जिंदा रहना ही है।

पर मेरे बंधु-बांधव तो मुझसे ऐसे बातें करते हैं मानो दुनिया के सभी लोग मर कर भले ही खत्म हो जाएं, पर मैं तो मरूंगा नहीं। और वैसा कहने के अलावा तो उनके पास कोई चारा भी न था। उनकी स्थिति मुझे मालूम थी। मुझे धीरज बंधाना लोगों के लिए कितनी परेशानी का कर्तव्य था, कितना उबाऊ काम था, मैं भली-भांति समझता था। मैं बुद्धिमान, चतुर आदमी ठहरा। ऐसी इच्छा होती कि मैं ही उन्हें उलटे धीरज बंधाऊं।

मैं होशियार आदमी हूं। पिछले दो सालों में घड़ी का कांटा जैसे-जैसे आगे बढ़ा था, मेरी बुद्धि भी बढ़ती गई थी। मेरे शरीर के अंदर की बीमारी का आचरण मेरे चारों ओर रहने वाले लोगों के आचरण में भी प्रतिफलित होता था। उस प्रतिफलन को समझने में—पहचानने में मुझसे जरा भी गलती नहीं हुई थी। "नहीं नहीं, चिंता करने की कोई बात नहीं। फिर भी संपूर्ण रूप से निश्चिंत होने के लिए एक बार 'थोरोली एक्जामिन' करा लेने में हर्ज क्या है"—कहकर हमारे मित्रों ने मुझे ऐसे एक लड़के के साथ दूर जाने वाली रेल पर चढ़ा दिया है, जो श्रीमती का भाई लगता है। भविष्य-निधी की रकम उधार पाने में यों ही पचासों झंझटें हैं। पर इस बार एक फार्म भरने के अलावा मुझे कुछ करना ही नहीं पड़ा। दो ही दिन में नकद रकम मेरे हाथ में आ गई, हमारे संघ ने जरूरी सभा बुलाकर एक स्मारिका प्रकाशित करने के उद्देश्य से जो रकम जुटाई थी उसमें से दो हजार रुपए मुझे देने का निर्णय किया। जिंदगी में कभी देख

पाने की संभावना ही न थी, ऐसे एक विशाल महानगर में मैं पहुंचा—इन सारी घटनाओं का वास्तविक मतलब मैं अच्छी तरह से समझ गया था, परंतु मैं विह्वल नहीं हुआ था। मैं 'प्रेक्टिकल' आदमी ठहरा। यह समझता था कि विचलित होने पर मेरा कोई फायदा नहीं होगा। असल में उस महानगर के अस्पताल के गेट पर लगे विशाल साइनबोर्ड के भद्दे अक्षर पढ़ते ही साधारण आदमी का मन अंर्तनाद कर उठे, यह युक्ति संगत अवश्य था, पर उन अक्षरों से आंखें हटाकर निर्विकार ढंग से साइन बोर्ड के नीचे से होकर निकल जाने की मैंने कोशिश की थी। मेरा वह निर्विकार भाव शुरू से आखिर तक बना रहा और अविचल भाव से प्रेक्टिकल आदमी की भांति बर्ताव करता रहा हूं। उस बीमारी से बचने के लिए उन्मादी-सा होकर मैंने दौड़-धूप नहीं की। घर वापस आ गया, मुफ्त की और कम कीमत की दवाएं खाता रहा हूं, तबीयत कुछ अच्छा लगने पर नौकरी करने की कोशिश की है। बे-वजह रुपए-पैसे बर्बाद नहीं किए। जमा रकम चली जाए, भविष्य-निधि की रकम खत्म हो जाए, ससुर के रुपए-पैसे खर्च कर डालूं, बड़े भाई से रकम लूं, और अंत में मेरे श्राद्ध-भोज का बकरा खरीदने के लिए मेरी श्रीमती को रकम उधार लेनी पड़े, मैं ऐसा नहीं होने दूंगा। आखिरी ओर, समय आने पर मैं पत्नी माया से कहूंगा—यह सब श्राद्ध-पिंड, भोज-वोज का कोई इंतजाम न करना। मेरे मर जाने के कारण मेरा कोई मित्र यहां दही-रसगुल्ला, मांस-भात खाने नहीं आएगा। इस परिवार में कमाने वाला आदमी अकेला मैं रहा हूं। मेरे मरने पर इस घर में एक कौड़ी भी कहां से आएगी, मुझे पता नहीं। उसका कोई उपाय भी मुझे खोजे नहीं मिला है। इसी कारण मेरी यही कोशिश रही है कि चाहे जैसे भी हो कम से कम खर्च किया जाए। सारी घटना ही चूंकि महज "सिम्पली ए मैटर आफ टाइम" भर है इसलिए मेरे अविवेचक और विह्वल होने से काम नहीं चलेगा।

विह्वल तो मैं नहीं हुआ। चौथे वर्ग में पढ़ने वाला मेरा बड़ा लड़का कहता है—'पिताजी, छठे वर्ग के बाद मैं आगे इस स्कूल में नहीं पढ़ूंगा। मेरे साथ के सभी लड़के मिशनरी-स्कूलों में पढ़ते हैं, मैं भी सातवें वर्ग में मिशनरी स्कूल में नाम लिखवाऊंगा।' सातवें वर्ग तक पहुंचने में उसे दो साल से ज्यादा समय लगेगा। मुझे यह भी मालूम है कि जब वह सातवें वर्ग में पहुंचेगा, तब तक मैं कहां रहूंगा। पर उसकी बात सुनकर मैंने आंसू की एक बूंद भी ढुलकने नहीं दी। मेरी दूसरी संतान दो साल की रूमा कहती है—'पिताजी, बड़ी होने पर मैं साड़ी नहीं पहनूंगी। मेखला चादर पहनूंगी।' उसकी बात सुनते ही मुझे विकल होकर उसे अपनी छाती से लगा लेना चाहिए था, लेकिन मैंने सिर्फ धीमे से 'अच्छा' कहकर सिर दूसरी ओर मोड़ लिया है। मुझे तो विह्वल होने से बचना ही था। इसलिए जो चंद दिन मुझे रहना है, उस अवधि में इस घर की शांति सिर्फ मुझ पर ही निर्भर है। स्वस्थ, हंसमुख आदमी जैसा मेरे खुलकर हंसने पर माया को अच्छा लगता है। यह मैं समझता हूं। मेरी आवाज कुछ परेशान जरूर करती है, फिर भी मैं बीच-बीच में खखारकर उसे कौतूहल

वाली लंबी कहानी सुनाया करता हूं। एक आराम कुर्सी पर बैठकर बहाने के रूप में अखबार या तस्वीरों वाली कोई मैगजीन हाथ में लिए रहता हूं और माया बिस्तर के पैंताने और मच्छरदानी को जरा हटाकर अपने पैर उठा बैठी रहती है;' रूबुल और रूमा कुछ हटकर गहरी नींद में पड़े रहते हैं—ऐसी ही स्थिति में मैं कहानी सुनाना शुरू करता हूं।

कहानी शुरू करते ही मुझे परेशानी होने लगती। मेरी इस चालीस साल की जिंदगी में जिस धरती से मेरा संपर्क जुड़ा, उस धरती का कण-कण मानो एक-एक जिंदा कहानी बनकर मेरे मन के सामने बिलकुल उसी तरह खड़ा हो जाता जैसे कि मास्टर की विदाई-सभा में स्कूल के छोटे-बड़े परिचित-अपरिचित सभी छात्र इकट्ठे हो जाते हैं। विदा लेने वाले उस मास्टर के लिए वे छात्र कैसे सुंदर, सहज-सरल और विचित्र-से होते हैं। मेरी इस दुनिया की विभिन्न वस्तुएं कितनी विचित्र हैं। आमतौर पर जैसा कि सोचता था, मुझे इतने दिनों की बातें याद हैं, माया के पास यों बैठने पर ही पता चला कि नहीं तो, उससे कहीं बहुत पहले की बात भी मुझे याद है। वह जो मां की गोद में रहकर एक बार रास-लीला देखने गया था, पिताजी ने मां से कहा था, उसे इतनी देर तक गोद में भला लिए रह सकती हो तुम? उसे उतार दो न, जरा पैदल चले। हालांकि मां को तकलीफ हो रही थी, पर कहीं लोगों की भीड़ में खो न जाऊं, इस डर से वह मुझे गोद से उतारती न थी। उस रासलीला में जो प्रतिमाएं बनाई गई थीं, उनमें से कई तो मुझे अब भी याद हैं। एक जगह श्रीकृष्ण एक पिचकारी लिए खड़े हैं, कई औरतें भागने की शैली में एक ही जगह हैं। मगर उनके भागने का कोई लक्षण नहीं है। उनके शरीर का रंग कितना सुंदर है। उनके कपड़ों का रंग कितना सुंदर है, वह रंग, वह भाग न जाने की भंगिमा, मेरे भीड़ में खो जाने का, मां का डर। कितना सुंदर, एक-एक कहानी जैसी ही बात है। और न जाने कितनी सारी चीजें हैं। गोपाल भैया आदि का वह एक 'कल-गान' याने ग्रामोफोन था, उस 'कल-गान' में असमिया गीत—"कार अधरर हेङुलेरे बोललि ओंठ गाल रूपही"[1] बार-बार बजता था। मैं दरवाजे के पास खड़ा अधीर आग्रह से उस गीत के खत्म होने की इसलिए बाट जोहता रहता था, ताकि साउंड-बाक्स से निकाल कर फेंका गया पिन ले सकूं। गोपाल भैया "अधरर हेङुलरे"[2] गीत जितनी बार सुना करते, मेरे हाथों में पुराने पिनों की तादाद उतनी ही बढ़ती जाती थी। पिन इतने आग्रह से क्यों जमा करता था, किसी काम में न लगने वाले उन पिनों को, पता नहीं। आज गोपाल भैया के उस प्रिय गीत की याद आने पर ऐसा लगता है कि वे ही पिन मेरी छाती में चुभ रहे हैं। परंतु उन बातों को याद कर कहने में जो संतोष मिलता है, उसकी तुलना में उस चुभन का दर्द कोई बड़ा नहीं लगता।

---

1 ओ रूपसि, तूने किसके अधरों की लाली से अपने होठ और गाल रंगे हैं?

2 अधरों की लाली से।

मैं सुनाता जाता—हमारे पड़ोस में जो मौसी रहती थी, उसकी एक ढेकी थी। 'खराही'[1] में भिगोकर रखा चावल लेकर मां उस ढेंकी में चावल को कूटकर आटा बनाने गई थी। मां जब ढेंकी चला रही थी तो मैं उसके सिरे पर बैठ गया था। मुझे याद है, मेरे बैठने के कारण मां को ढेंकी उठाने में आसानी हुई थी। परंतु मां की शिकायत थी कि ढेंकी का मूसल नीचे की ओखली में ठीक ढंग से नहीं पड़ रहा था। मुझे उसकी याद है, और भी अनगिनत बातें याद हैं। याद है का मतलब—पता नहीं क्यों—वे बाते याद आ रही हैं। वे सब बे-सिर-पैर की बातें, उल्टी-सीधी बातें ! मैं तो होशियार आदमी हूं। इसलिए इन बातों की याद आने के कारणों पर विचार करते हुए बीच-बीच में तय करता—जिदगी में तो और कुछ नया होना नहीं है न, इसी कारण पुराना जहां जो कुछ भी है, उसी को उधेड़ना-बुनना मेरा काम रह गया है। नहीं नहीं, बात यह नही है। बात यह है कि वह जो मां की गोद में रहकर रास-लीला देखने के दिन से आज तक का जीवन है, यह मेरे विचार से एक सुंदर जीवन रहा है। इस जीवन में जितनी ज्यादा बातें संभव हैं, उन तक माया को ले जाना आवश्यक है। मेरी उन्नीस साल की उम्र में माया मेरी जिंदगी में आई है। हमने अपने जीवन में ग्यारह साल नई-नई बातें कह-सुनकर बिताए हैं। इसके बाद रूबुल और रूमा की चर्चा ही ज्यादातर कहते रहे हैं। मगर मेरे मरने के समय तो मैं ग्यारह साल के आदमी के रूप में मरूंगा नही। चालीस साल के आदमी के रूप में मरूंगा। इसी कारण इन चंद दिनों में पहले के उन उनतीस सालों की बातें कहने की मुझे बड़ी इच्छा होती है। कम से कम माया मेरी पूरी जिदगी की कहानी जान ले। और भी एक बात है। माया को तो मां के बाद भी काफी दिन रहना है। कितने दिन? उनतीस साल? नहीं-नहीं, उससे भी ज्यादा दिन। उन लंबे दिनों में याद करने के लिए माया की अपनी बातें जितना हो सके, ज्यादा-से-ज्यादा कह जाना आवश्यक है।

फिर उन लंबे दिनों में भला माया क्या करेगी? यह बात याद आते ही मुझे बेचैनी हो आती है। माया के शरीर के हर अणु-परमाणु को शायद मैं पहचानता हूं। उसके मन की हर गली—हर पगडंडी मानो मुझे कंठस्थ है। उसके देह-मन की वह मधुर ऊष्मा, निर्जनता-निबिड़ता की आग ने हर अंग में जो उष्मा पैदा कर दी है, भला उस ऊष्मा की क्या हालत होगी? मेरी मौत भले हो जाएगी, पर उस ऊष्मा की मौत भला कैसे होगी? आह्। नहीं—नहीं ! यह महज बेचैनी की बात नहीं है, यह उन्माद हो जाने जैसी बात है। सच्ची बात है। इसे छिपाए रखकर कोई फायदा नहीं। इस बात की याद आते ही मैं पागल जैसा हो जाता हूं। साथ ही प्राय: मुझे एक और औरत की याद आ जाती है। जब मैं बाईस साल का था, उन्हीं दिनों उसे देखा था। वह एक युवती-बहू बनकर आई थी। सख्त बीमारी में उसका पति बहुत दिनों से बिस्तर पर पड़ा था।

---

1 खराही—बास का बना डलिया।

धीरे-धीरे वह औरत मुरझा-सी जा रही थी. एक बार उसके पति के आखिरी दिनों में उसका कहना सुना था—किस्मत में जो है, वही होगा, अब तो मैं किसी भी स्थिति के लिए तैयार हूं। उस औरत का पति उसके कुछ ही दिन बाद चल बसा था। कई साल बाद मैंने उस औरत को एक भोज में देखा था। दो-चार लोगों के साथ हंसी-मजाक करती हुई दिल खोलकर हंसती जा रही थी। बड़े अच्छे ढंग से जी रही थी।

भला उस औरत की याद मुझे बार-बार क्यों आती है? पता नहीं। हालांकि उस औरत का माया से जरा भी मेल नहीं मिलता। अगर मेल होता तो शायद मैं कुछ आश्वस्त होता। मुझे कुछ हिम्मत बंधती। माया तो उससे बिलकुल अलग किस्म की है। आदमी आदमी के साथ इतना एकात्म हो सकता है, आदमी आदमी को देह-मन उड़ेलकर इस तरह से प्यार कर सकता है, अगर माया से न मिला होता, तो शायद इस पर विश्वास नहीं हुआ होता। और इसी कारण अपने जाने के बाद माया की हालत के बारे में सोचते ही मेरा मन पागल-सा होने लगता। माया भी बड़ी चतुर है। वह बिलकुल मेरी तरह ही है। बहुत कुछ समझती है। चाहे जितने ही निर्विकार भाव से अपने होंठों पर एक झीनी-सी हंसी खिलाकर मैं अपने बचपन की बातें दुहराता होऊं—वह मानो सही-सही समझ लेती है—मैं किसलिए अचानक वे बातें कहने लगा हूं। अचानक कभी किसी दुर्बल क्षण में मैं अगर पूछ बैठता—यह संसार बड़ा सुंदर है, है न माया? तो वह तुरंत किसी बहाने उठकर दूसरे कमरे में चली जाती। कुछ देर बाद जब वह लौटती, तब उसकी आंखें देखते ही मैं समझ जाता, उस कमरे में इतनी देर वह क्या कर रही थी। वैसे समय में मैं बहुत दूर की, ऐसी बातों की चर्चा छेड़ता हूं जिनसे हमारा कोई संबंध नहीं होता। बड़ी तकलीफ उठाकर तस्वीर आदि बनाकर मैं माया को समझाने की कोशिश करता · आदमी किस पर सवार हो चांद पर जाता है। उसे समझाता—एक ऐसा बहु-मंजिला राकेट होता है, जिसके सिरे पर एक छोटे-से कमरे में तीन प्राणी रहते हैं। वह राकेट उसे एक नई कक्षा में प्रतिष्ठापित कर देता है।

कुछ उधेड़बुन में पड़कर माया ऐसे लहजे में पूछती—'और उस राकेट का क्या होता है?'

—उसका और क्या होगा? इस विशाल अंतरिक्ष की छाती पर चक्कर लगाता हुआ कुछ समय बाद वह खत्म हो जाता है। गंभीर विषयों की चर्चा छोड़कर मैं राकेट वगैरह की बातें कहकर बे-सिर-पैर की बातें बकता रहता हूं, माया यह भी समझती है। वह बड़ी चतुर है। वह दूसरी ओर नजर डाले चुपचाप बैठी रहती। मैं भी मौन रहता। चाहे जितना भी बे-सिर-पैर की बातें क्यों न करता होऊं लेकिन मैं अंदर-अंदर तुरंत अपनी बात पर लौट आता। नितांत व्यक्तिगत बातों पर। यथार्थ पर! मनुष्य ने अंतरिक्ष-विजय कर ली, चांद तक पहुंच गया, पर इस दुनिया की एक बीमारी को जीत नहीं पाया। मुझे गुस्सा आ जाता! मगर वह गुस्सा दिखाता भी तो किस पर? मैं तुरंत अपने को संयमित करने की कोशिश करता। माया के सामने किसी तरह की उत्तेजना

प्रकट करने की हिम्मत मेरी नहीं है। और तो और, मैं अगर कुछ देर व्यक्तिगत बातें सोचता रहता तब भी माया शंकित हो उठती। उसके मन में संदेह जग उठता। पूछती—'क्या सोच रहे हैं?'

शायद वह सोचती—मैं अपनी बीमारी के बारे में कोई गंभीर बात सोच रहा हूं।

एकमात्र मुझे ही लेकर जो जिंदा रहना चाहती है, उस नारी को भला किस तरह से सुख दे जाऊं? यह तो असह्य है। मेरे साथ इतने गहरे और निबिड़ ढंग से जुड़े न रहने के अगर एक-दो लक्षण भी कभी दिखाई पड़ जाते, तो शायद उससे मुझे कुछ ज्यादा खुशी होती। परंतु साथ-साथ मुझे बड़ी तकलीफ भी महसूस होती—क्या उस समय सचमुच मुझे खुशी होती? ऐसी स्थिति होने पर मुझे बड़ी तकलीफ महसूस होती। कभी-कभी अधीर होकर सोचता हूं—छोड़ो-छोड़ो, ये दो-चार अतिरिक्त दिन मुझे नहीं चाहिए। क्यों न अभी-अभी, इसी क्षण मैं खत्म हो जाऊं। मर जाऊं! मौत को कुछ आगे बढ़ा ले आऊं! अपने को मार डालूं! मगर वैसा करने की ताकत ही मुझमें नहीं है। इच्छा भी नहीं। उसका कारण नितात व्यक्तिगत है। सुनने में वह बड़े ही स्वार्थी आदमी की बात जैसी लगेगी। यह दुनिया बड़ी सुंदर है। रूबुल-रूमी उससे भी बढ़कर सुंदर हैं। जितना ज्यादा दिन हो सके, उनके साथ रहने की मेरी बड़ी इच्छा है। एक बात और है। मेरी यह आशा रही है कि जितना ज्यादा दिन हो सके जिदा रहूं, क्या जाने इसी बीच इस बीमारी की कोई दवा निकल आए। मेरी मौत के दूसरे दिन भी तो वह दवा निकल आ सकती है! तो फिर? एक भी दिन ज्यादा जीता रहूं तो भी मेरा कितना फायदा है। और क्या पता, मेरा इलाज करने वाले डाक्टरों की बातें ही झूठी प्रमाणित हो जाएं। हो भी तो सकता है! कितनी ही बीमारियों के लक्षणों की जांच में गलती हो जाती है। बीच-बीच में तो मेरी तबीयत भी अच्छी लगती है। बिलकुल भले-चंगे की भांति मैं एक चक्कर लगा आता हूं।

न—न—! आशा का बंदी बने रहने में भी कोई नुकसान तो है नहीं। मैं काफी आशा लिए हुए हूं। डाक्टरी किताबें और पत्र-पत्रिकाएं पढ़ने लगा हूं। इस बीमारी को लेकर दुनिया की किस लेबोरेटरी में क्या-क्या काम हो रहा है, उसकी सारी जानकारी पाने की मैं कोशिश करता रहा हूं। मैंने एक बार सोचा था, काफी दिन बीमार रही अपनी मां का इलाज करवाने में मुझे जितनी सारी दवाओं की जानकारी मिली थी, उतनी दवाओं की जानकारी से शायद आदमी एक फार्मेसी ही खोल सकता है। अब मुझे ऐसा लग रहा है, अपनी इस बीमारी के बारे में अनेक डाक्टरों की अपेक्षा मैंने ज्यादा तथ्य-संग्रह किया है। मुझे ज्यादा जानकारी है।

परंतु समय निकलने के साथ-साथ मैं निष्प्रभ-सा होता जा रहा हूं। देह के अंदर मेरा मन असहनीय यंत्रणा से तड़प रहा है। परंतु माया, रूबुल, और रूमी के सामने मैं अत्यंत धीर, स्थिर और शांत हो जाता हूं। दुनिया की सारी सुंदरता, ज्ञान-गरिमा ने मेरे साथ विश्वासघात किया है। मेरा शरीर मेरे साथ विश्वासघात कर रहा है। नहीं—नहीं,

असली बात तो यह है कि माया, रूबुल और रूमी से मैं विश्वासघात कर रहा हूं। इसी कारण सीधे उनसे आंखें मिलाने की हिम्मत भी मैं खो चुका हूं। मैं इतने बड़े अपराध का अपराधी हूं कि अपने बिस्तर के आसपास उन्हें देखते ही चीखकर उनसे दूर हट जाने को कहने की इच्छा हो आती है।

उनसे तो बातें करना भी मैं छोड़ चुका हूं। अपने पहले के उनतीस सालों की कहानी माया को पूरी नहीं सुना सका, फिर भी अब सुनाना छोड़ चुका हूं। निर्विकार भाव से, एक झीनी-सी हंसी चेहरे पर लाकर माया से बाते करने की अब मेरी ताकत नहीं रही। मेरी जबान की एक बात अब मेरी आंखों के सामने धुएं का काम करती है। बात खत्म होते ही आंखों के सामने धुंधलका छा जाता है। मेरी आवाज भी न जाने कैसी हो गई है। मैं तो स्वाभाविक ढंग से ही बात करना चाहता, पर माया को ऐसा सुनाई देता है कि मैं रो-रोकर ही कुछ कह रहा हूं।

इसी कारण बात करना छोड़ चुका हूं। अपने मन को हजारों कहानियों के लिए राजमार्ग बनाकर छोड़ दिया है। आ रही है, कुचल रही हैं, चली जा रही हैं। वह हमारे उन दिनों के घर को पतली पगडंडी पर पड़े सूखे पत्ते। वह कमरख के पेड़ की टहनियों पर उछलती-कूदती टिपची (फुरगुद्दी) चिड़ियां। वह—अंबिका बुआ का पीतल का घड़ा! वह—'निजरा' नाम की मेरी लिखी पहली कविता। आ रही हैं—जा रही हैं—एक के बाद एक।

मेरे चले जाने के बाद भी दुनिया क्या ऐसी ही रहेगी? हम लोग एक होस्टल में प्रचंड प्रताप से रह रहे थे। होस्टल छोडकर आते वक्त हमारा ऐसा विश्वास था, हम एकांत मन से ऐसी कामना करते थे कि वह होस्टल अब पहले जैसा कभी नहीं बना रह सकता। वह बदल जाएगा, वहां सन्नाटे का राज होगा। बिल्ली के बच्चों की खोभाड़ जैसा बन जाएगा। बहुत दिन बाद एक दिन बाजार में हमारे उस होस्टल के महाराज से मुलाकात होने पर पूछ लिया था—"महराजजी, क्यों होस्टल कैसा चल रहा है?" उस बूढ़े महराज ने कहा—'ठीक से ही तो चल रहा है, बाबूजी!' महराज का वह जवाब मुझे अच्छा नहीं लगा था। कैसे ठीक से ही चलेगा? ठीक से चलना तो उचित नहीं है।

मेरे जाने के बाद भी क्या दुनिया ठीक ढंग से चलती रहेगी? बड़ी असहनीय बात है। अगर कोई मुझसे कहीं बताता—'तुम्हारे चले आने पर दुनिया तुरंत बहुत बदल गई'—तो मुझे बड़ा अच्छा लगता।

अब शायद मन के राज-मार्ग पर कहानियों की गति भी घट आई है। आंखें मूंदकर सोचते -सोचते ऐसा लगता है मानो किसी जमाने में जो मिलिट्री की भांति परेड कर आया करती थी, उसके बदले अब दो-एक कहानी ऐसे ऊपर-नीचे हो रही है, मानो पानी के नीचे तैरती हुई मछली ऊपर-नीचे आ-जा रही है। आवाज का उद्गम-स्थल भी मानो मुझसे दूर हट गया हो। 'मछली चाहिए क्या, मछली?" मेरे सिरहाने से लगभग

तीस हाथ दूर की उस सड़क पर से होकर मेरा वह जाना-पहचाना, मेरे साथ मछली की कीमत के बारे में कभी बहस, मोल-तोल न करने वाला वह मछुआरा पुकारता चला जा रहा है, पर मुझे ऐसा महसूस हो रहा है, मानो उसकी आवाज दूर से चली आ रही है। क्या लोग उससे मछली खरीद रहे हैं? मछली। उसका जायका भी कुछ भूला-भूला-सा लगता है। खिड़की से फेंका गया अखबार वह देखो फर्श पर आ गिरा है। हालांकि उसके गिरने की आवाज मुझे साफ सुनाई नहीं पड़ी है। क्या छपा है भला उस अखबार में? अगले तीन सालों मे यह योजना पूरी होगी, अगले साल अगले दो सालों के अंदर ।

ऐसे रहते ही एक दिन, मानो बहुत दूर से आती हुई माया की आवाज सुनाई पडी। उस दूसरे कमरे मे कई औरतें आ जुटी हैं। वहा तो आजकल लोग रहते ही हैं। उनसे माया कह रही है;—'किस्मत में जो होना है, वही होगा। अब तो मैं किसी भी हालत के लिए तैयार हो चुकी हूं।'

क्षणभर के लिए मेरे समूचे शरीर में मानो गोपाल भैया के ग्रामोफोन की अनिगनत पुरानी पिनें भाग-दौड़ करने लगीं। मैं तो बड़ी ऊंची आवाज में चीख पड़ना चाहता था, पर दूसरे ही क्षण मैं शांत हो गया। बिलकुल शांत, निरुद्वेग।

ये आखिरी चंद दिन मुझे पूरी तरह शांत और स्थिर होकर रहना है। कभी-कभी सोचता हू, उस तरह से रहने में मुझे बड़ी तकलीफ होगी। वैसा भले ही हो, लाचारी है। मुझे वैसे ही रहना पड़ेगा।

माया इस दुनिया को पसद कर चुकी है। चूंकि दुनिया ने उसे पसंद करना सिखाया है, अत मैं इस दुनिया के सामने कृतज्ञता स्वीकार करता हूं। आभारी हूं। यह कृतज्ञता सूचित करने की जो सुविधा मुझे मिली है, उसके लिए भी मैं दुनिया का आभारी हू।

एक तरह की तंद्राच्छन्न स्थिति में मैं अनुभव करता हूं—तीन प्राणियों वाले एक छोटे-से मकान को, एक नई कक्षा मे स्थापित कर मैं इस विशाल अंतरिक्ष में धीरे-धीरे विलीन होता हुआ लक्ष्यहीन होता जा रहा हूं।

1971

ग्रहण

शायद ये लोग मुझे बेवकूफ समझते हैं। अगर ऐसा है तो वे गलत करते हैं। वे लोग आजकल जितने होशियार हैं, मैं जब उनकी उम्र का था, उनसे कहीं ज्यादा होशियार था। यही तो अभी उस दिन गीता ने आकर मुझसे कहा—'पिताजी, ये सुबोध दादा हैं, मैंने जो आपसे बताया था—मेरी सहेली सुरभि आदि के—आदि आदि! और मैंने हंसते हुए सुबोध का स्वागत किया, शायद गीता ने सोच लिया था, पिताजी कितने भोले-भाले हैं। बुद्धू हैं, बेवकूफ हैं। परिचय भर करवा देने की बात थी, करवा दिया, झंझट छूटी। पिताजी आगे इन बातों से दिमाग थोड़े ही खराब करनेवाले हैं। पर सही माने में मैं तो इतना बेवकूफ हूं नहीं। मैं होशियार हूं। मुझे पता चल गया, यह सुबोध जो इस घर में आया, अब नई परेशानी आई। इस बात में कुछ गोलमाल है। बेटी की सहेली का बड़ा भाई बनकर आना और बाप को शांत, निरीह, दुनिया के किसी चक्कर का कोई पता-ठिकाना न रखने वाले की भंगिमा में प्रणाम करना—यह सब तो बड़ी पुरानी बात है। हमारे जमाने में तो इन सबके आधार पर कहानियां भी लिखी जाती थीं। सिर्फ एक-दो कहानियां ही नहीं, अनगिनत कहानियां। अंत तक ऐसी स्थिति हुई थी कि कहानी पढ़ना शुरू कर किस अनुच्छेद में ऐसे किसी नौजवान का आगमन होता है, उसकी बाट जोहता रहता। और उस नौजवान के आगमन के थोड़ी ही देर बाद, कहानी का अंत कैसा होगा, अंदाजा लगा लेता था। और कहानी आखिर तक इसी लिए पढ़ जाता था कि वह अपने अंदाजे से मिलता है या नहीं, पता चल जाए। सहेली का बड़ा भाई, दोस्त की बहन, पढ़ने के लिए आने वाली छात्रा, पढ़ाने के लिए आने वाला गरीब, फटी पंजाबी कमीज पहने महागुणी नौजवान ट्यूटर—यह सब तो मेरे लिए जंगली ढेंकीया साग जैसे ही हैं। कोई भी चाह कर उस ढेकीया की खेती नहीं करता, पर वह हमेशा अपने आप पनपता है। पालक, चौलाई, खट्टी साग, धनिया के साथ मिलकर कभी-कभी रसोई घर में समा जाता है। खाने में बुरा भी नहीं लगता। और लगने पर भी 'बुरा लगता है' कहने की हिम्मत नहीं। कहते ही सभी झल्लाते हुए चढ़ आते हैं।

हालांकि मैं उनकी बात समझता हूं। इस पर वे जरा भी संदेह नहीं करते। 'पिताजी, देखिए यह गर्म-कोट है। मैंने उस दिन बताया था न, कि मैंने आर्डर दे दिया है।'—बिलकुल ऐसे ही लहजे में गीता ने यह बता दिया कि ये सुबोध दादा हैं।"

बिलकुल निस्संशय, निर्भय भाव से। गर्म कोट या सुबोध के बारे में मुझे कुछ कहना नहीं है। हालांकि यह सच है कि गीता अगर ऐसा कोई कोट भी ले आती जिसका पिछला हिस्सा जेब्रा की खाल की भांति धारीदार; सामने का हिस्सा चीते की खाल की भांति धब्बेदार, तथा उसके बटनों में एक-एक परी की तस्वीर होती, तो भी मैं उससे सिर्फ इतना ही कहता—"बड़ा अच्छा है री। मगर कपड़े की डिजाइन जैसी भी हो, असली बात है कि उससे गरमी कितनी मिलती है। उस कपड़े से शरीर को गरमी मिलती है या नहीं? मिलती है? तब तो अच्छा ही है। मगर एक बात है, इसे रखते समय सहेज कर ठीक से रखना। बीच-बीच में धूप देकर अच्छी तरह से ब्रश करना। अगर किसी तरह से कीड़े लगकर कुतर डालें तो बड़ा बुरा होगा। क्या कहते हैं उसे, हां-हां—अंदर की ओर जेब है या नहीं, देखूं जरा—है न? ठीक है। हां, उस जेब के अंदर कुछ 'नेपथालीन' डाल रखना।"—इससे ज्यादा कुछ और मैं नहीं कहता।

इनसे मैं ज्यादा बातें नहीं करता! 'ओ, पिताजी बूढ़े आदमी ठहरे! पिताजी की टेस्ट से हमारा टेस्ट कहां मिलेगा?' आदि आदि कहकर वे दूसरे कमरे में बड़बड़ाएंगे। उनकी बातें भले ही मैं न सुनूं, मेरी आत्मा तो सुनेगी न! मुझे नीचा होना, छोटा होना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में डालने का कोई मौका मैं उन्हें दूंगा ही नहीं।

सुबोध के बारे में भी मैंने कुछ कहा नहीं। गीता के पहचान कराने के बाद सुबोध ने हमारे जमाने की कहानी के नायक की भांति शांत, निरीह व्यक्ति के ऐसे लहजे में प्रणाम किया, मानो इस दुनिया के किसी चक्कर में पड़ने का कोई अनुभव ही उसे न हो! मुझे अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाकर जोड़कर नमस्कार पूरा करने की कोई जरूरत नहीं थी, मेरी उम्र ढल चुकी है, गुरुजन की कोटि में आ पहुंचा हूं। तबीयत बुरी होने के कारण समय से पहले सेवा-मुक्ति लेने वाला कॉलेज का प्रिंसिपल हूं। मैंने अपना दाहिना हाथ सिर से ऊपर उठाया, और उतारते समय चश्मे को उतार ले आया। आदत के मुताबिक छाती के ऊपर की कमीज पर चश्मे को घिसा। इसके बाद फिर चश्मा पहनकर देखा, गीता मेरी ओर उत्सुक दृष्टि से देख रही है। शायद उसे क्षणभर के लिए भी क्यों न हो, भले ही बे-वजह हो, जरा आशंका हो रही है—पिताजी पहले परिचय के क्षण में उसके सुबोध दादा को किस तरह से लेते हैं। साथ-साथ मैंने सुबोध की ओर नजर डाली। चश्मा पोंछने के इस छोटे-से क्षण के मौन के कारण क्या उसके स्वागत में कुछ ठंडक आ गई है? नहीं-नहीं, मैं उनके मन में ऐसी किसी धारणा को पनपने नहीं देना चाहता। सुरुचिपूर्ण सामाजिक आचार-व्यवहार का अभ्यस्त मैं सज्जन व्यक्ति हूं। सुबोध के चेहरे की ओर नजर डाल, बहुत दिन पहले के किसी ऐसे दोस्त को, जिसका चेहरा भूल चुका होऊं, अचानक देखकर जैसा होता है, वैसे ही, उसी लहजे में मैं ऊंची आवाज में बोल उठा—ओ! अरे बैठो, बैठो! तुम्हारा नाम तो मैं इस बिटिया की जबान से सुनता ही रहा हूं। मगर तुम्हें तो बहुत पहले ही आना था।

यह बात कहकर मैं हंस पड़ा। सुबोध या गीता की जगह अगर मैं होता, तो

अपनी उस हंसी को खुले दिल की बताकर ही वर्णन करता।

शरीर और मन दोनों को संकुचित कर सुबोध बैठ गया। मेरी बातो के जवाब में उसने एक लजीली ऊदी-सी हसी हंस दी। फिर कुछ देर तक किसी की जबान नही खुली। अचानक मुझे लगा—यह तो गलत बात है। मै गृहस्थ ठहरा, बातचीत शुरू कर नए अतिथि की जडता मिटानी चाहिए।

—हां, सुनते हो न ?—मैंने बात शुरू की—तुमने तो विक्टोरिया कॉलेज में—अरे हां, गीता, तूने तो विक्टोरिया कॉलेज ही कहा था न ? हू ! तो फिर कैसी है ? अरे, तुम्हारे उस कॉलेज की खबर-वबर कैसी है ?

—अरे हां, होगी क्यों नहीं अच्छी ? असली बात है, बुनियादी आधार की। आधार अच्छा हो तो आगे ठीक ही चलता रहता है। बीच-बीच मे दो-एक चढ़ाव-उतार की छोटी-मोटी घटनाएं तो होती ही रहती हैं। पर मेजर-क्राइसिस कुछ नहीं होती। और हां—वह जो ग्रंथागार के पास का 'एप्रिल फूल' का पौधा था—अरे गीता, तुम लोग शायद आजकल कुछ दूसरे ही नाम से पुकारते हो शायद ? क्या कहती हो तुम लोग उसे गीता ? अरे हा, कृष्णचूड़ा—वह कृष्णचूड़ा का पेड़ आजकल है या नहीं ? उसे काट डाला ? छि-छि-छि, बड़ी बुरी बात है यह तो। तुम लोगों ने उसे देखा था या नहीं ? अरे देखा ही नहीं, तो फिर क्या समझोगे ? कितना विशाल पेड़ था।

उसका वह तना—उस पीतल के गुलदस्ते से लेकर वहां तक, नहीं-नहीं और ज्यादा मोटा ! अरे वह फूल का गुच्छा उठा ले जा गीता, सूख गया था, मैंने तभी उसे फेंकने के लिए अलग कर रखा था, पर उसे निकालने के बाद किसी दूसरे काम में लगकर भूल गया। वह गुच्छा वही पड़ा रह गया। उस गुच्छे को फेंककर कुछ ताजे फूल उस गुलदस्ते में लाकर रख देना जरा। और नहीं तो एक काम कर। हमेशा फूल सजाकर रखना भी 'अन-नेसेसरी बोदरेशन' है। गुलदस्ते को ही यहां से उठा ले जा, अंदर की आलमारी में रख दे। हां ! तो तुम्हारे उस गुलदस्ते से लेकर यहां तक, इतना मोटा था उस पेड़ का तना ! और उस पेड़ की जमीन पर उभरी हुई जड़ें ही हम कुछ लोगो का 'कामन रूम' थी। समझ रहे हो न ? एक बार ऐसा हुआ कि प्रियतोष बाबू—तुम लोगों ने तो शायद उनका नाम ही नहीं सुना होगा—प्रियतोष बाबू का 'हिस्ट्री' का 'क्लास' था। क्लास में वे बहुत ज्यादा डांट-डपट करते थे। समझे न ? हम कुछ छात्रों के मन में एक दिन ऐसी भावना जग उठी और हमने तय कर लिया कि अब से क्लास नहीं करेंगे। हम निकल आए। आकर उसी पेड की जडों पर बैठ गए। सिर्फ कुछ ही मिनट निकले होंगे, तभी दिखाई पड़ा—दूसरी ओर से तुम्हारा वह डाबसन साहब अपने दोनों हाथ पीठ की तरफ बांधे गंभीर मुद्रा में कदम बढ़ाते इधर-उधर नजर डालते चले आ रहे हैं। उन्हें देखते ही पेड़ की वे जड़ें हम जिन पर बैठे हुए थे, वे अजगर जैसी लगीं। झट से उठकर हम सभी उस पेड़ के दूसरी ओर चले गए। विशाल पेड़ था—सिर्फ हमीं चंद लोगों की क्या बात, और भी दस-बारह लोगों

को वह निर्विघ्न रूप से छिपा रख सकता था। हमने सोच लिया था, पेड़ ने हमें क्या खूब छिपाए रखा है। मगर उसके बाद हम जब 'अर्थशास्त्र' के क्लास मे बैठे, अध्यापक साहब जैसे ही. रोल-काल' कर चुके, एक चपरासी अध्यापक साहब के हाथ में एक पुर्जा थमा गया। उस पुर्जे मे हम सभी लोगों के नाम थे। प्रिंसिपल ने हमें बुलवाया है। तुम लोग बात समझ रहे हो न ? मैं भी तो प्रिंसिपल रहा हूं। लड़को को पहचानना तो दूर, कॉलेज में लड़कों की संख्या कितनी है, अगर फट् से कोई पूछता तो बता सकता या हेडक्लर्क को बुला भेजता, पता नही।

इसके बाद मैंने सुबोध को प्रियतोष बाबू के बारे में बताते हुए कहा, "उनकी वह मूंछ ऐसी थी, आंखो का घुमाव ऐसा था और ज्ञान ऐसा था, कि क्या कहने।" प्रसंगवश वाइस प्रिंसिपल लेविल के लड़कों को गिरजाघर में ले जाने की चर्चा आ गई। स्वदेशी आंदोलन के दौरान 'साहब प्रिंसिपल के मातहत नौकरी नहीं करूंगा' ऐसा मानकर निवारण बाबू ने कैसे नौकरी से इस्तीफा दे दिया, यह बात भी निकल आई। और इन बातों की ओट में कॉलेज के उन दिनों में मेरे व्यक्तिगत जीवन की बातें भी उभर आने लगी थीं। मेरी दो धोतियां थीं, एक को बुधवार शाम को धोता, दूसरी को रविवार के दिन साफ करता। मेरे गांव के घर के आंगन में मेरे पैरों के तलवों को छोटे-छोटे कीड़े गोल-गोल खा जाते, जो कॉलेज खुलने पर फिर ठीक हो जाते, पर छुट्टियों में घर आने पर कुछ ही दिनों में फिर तलवों को कीड़े खाते। यह बात भी उनसे बताने की मेरी बड़ी इच्छा हो आई थी।

"समझते हो"—कहकर जैसे ही शुरुआत करनी चाही, गीता की आंखों में नजर पडते ही मैं रुक गया। सूखे फूलों का गुच्छा उठाकर गीता निकल गई थी, निवारण बाबू के बारे में जब मैं बता रहा था, वह फिर लौट आकर कमरे में कुछ इधर-उधर कर रही थी। उसके बाद फिर दूसरी बार आकर दरवाजे पर खडी हो गई थी।

सुबोध को जो सुनाना चाहता था, उसे रोककर मैंने गीता की आखों की भाषा पढ़ने की कोशिश की। क्या ? मैं क्या इतनी ज्यादा बातें कर रहा हू जिससे कि ऊब पैदा होती हो ? अचानक घडी की ओर नजर डालकर उबाऊ बातचीत खत्म करने की कोशिश क्या लोगों को खदेड़ने का एक तरीका है, यह भी मुझे पता है। मुझे बेवकूफ मानकर क्या गीता मुझ पर भी वही तरीका आजमाने की कोशिश कर रही है ? नही-नही, मैं तो ऐसा होने देना नही चाहता। कहां, मैंने तो उस तरह से कोई लंबा भाषण भी नहीं दिया है। परंतु गीता दोबारा आई। कुछ इधर-उधर किया, घडी पर नजर डाली, तो क्या बाद में कहीं वह सुबोध से तो यह बात नहीं कहेगी—"आजकल हमारे पिताजी बड़े 'बोर' हो गए है।" छि-छि-छि। मैं तो ऐसा कभी नहीं होने दूंगा।

मैंने छूटते ही कहा—अरी गीता। इनके लिए चाय-वाय कुछ बनाया है या नहीं ?

—जी, सब कुछ तैयार है। मै तो चाय देने के लिए तैयार ही हू। गीता बोली।

—'क्या कहा ? ऐसी बात है ?' मैं चीख-सा पड़ा। तो फिर तू कहती क्यों

नहीं। मैं तो सोच रहा था, तू अंदर चाय-वाय के इंतजाम में लगेगी, ये यहां अकेले-अकेले चुपचाप बैठे रहकर 'बोर' होंगे। इसीलिए बात करता रहा। हां, तुम जाओ बेटे। तुम लोग उस कमरे में जाओ, वहां चाय भी पीना और बैठकर बातें भी करना।—नहीं-नहीं, मेरे लिए नहीं चाहिए, चाय तो मैं दिनभर पीता ही रहता हूं।

मैं बहुत ज्यादा संत्रस्त हो उठा था। दूसरी बार जैसे सुबोध के साथ बातों में डूबे रहने का मौका न मिले, इसी उद्देश्य से मैंने उसे विदा ही कर दिया। कहा—हां, बेटे, समय सुविधा मिले तो इधर आते रहना।

"इसे अपना ही घर समझना" या ऐसा ही कुछ कहना चाहिए था शायद। पर पहले ही दिन वैसी बात कोई कहता है या नहीं, तय न कर पाने के कारण, नहीं कहा।

गीता के पीछे-पीछे सुबोध निकल गया। मैंने घड़ी पर नजर डाली। अभी का समय तो मिला, पर सुबोध से बात शुरू कब की थी ? कितने बजे ? छि-छि-छि ! कोई 'बोर' हो, इस बात से मैं बड़ा नफरत करता हूं। अपने नौजवानी के दिनों से—नहीं-नहीं उससे भी कहीं पहले से—इस शहर में जब से रहने लगा हूं—तभी से इस शहर के उन सभी बूढ़ों के जीवन-चरित्र, बातें करने के लहजे, चाल-चलन, मुद्रादोष आदि हम लोगों की चर्चा के सरस विषय-वस्तु भी; इस शहर के हम बूढ़े चतुर थे। सदानंद प्रताप मौजादार की आवाज का हूबहू अनुकरण कर सकता था। "ठीक है, तुम लोग काम के आदमी ठहरे। यहां तुम्हें रोक रखना नहीं चाहता।" ऐसा कहने के बावजूद गिरीन गोहाइ दो-तीन घंटे तक बातचीत खत्म नहीं करते थे। उनका वही कौशल कमलापति हम पर भी ठिठोली में प्रयोग करता। मुझे लगभग हर दिन मुसीबत का सामना ही करना पड़ता। मैं जिस घर में रहता, उसके कुछ ही घर के इधर घन बूढ़े का घर था। उसके घर के सामने के बरामदे में आरामकुर्सी और घन बूढ़ा, इन दोनों को हम एक ही चीज के दो हिस्से समझते थे। कभी-कभार जरूरी काम से जल्दी में कहीं जाना होता, तो दूर से ही मैं कुर्सी की ओर डरते-डरते नजर डालता; कभी सौभाग्यवश अगर कुर्सी पर बूढ़ा न रहता, तो उसके सिर का तेल लगकर काला पड़ गया आरामकुर्सी के कपड़े का गोल हिस्सा देखकर ही संत्रस्त हो जाते। झट से रुककर एक बार अच्छी तरह देखने की कोशिश करते, 'ओ, बूढ़ा नहीं है। वह तो गोल दाग ही है। फिर जल्दी से उसके घर की चहारदीवारी पार कर निकल जाते। उसके घर के सामने की ओर दस-बारह पत्ती-फूल के पौधों की कतार थी। पौधे झाड़ीनुमा थे, सड़क पर जाने वाले लोग घन बूढ़ा की आंखों के सामने से कभी ओझल होते, कभी उसके सामने से निकल आते। पहले के दो पौधों के बीच में जैसे ही कोई दीखता, घन बूढ़ा कुर्सी पर तन जाता। सूरज के प्रकाश के कम ज्यादा होने के अनुपात से कभी, दूसरे, कभी तीसरे और कभी चौथे फांक से बूढ़ा उस आदमी की शिनाख्त करता और उसके बात पुकारता। मैं ज्यादातर सड़क के दूसरी ओर से इस ढंग से निकल जाता, मानो उधर के लोगों के घरों की दीवारों पर तस्वीरों की कोई नुमाइश हो रही हो। और मन-ही-मन बेचैनी से हिसाब

लगाता, एक फांक पार किया, जान बची, दूसरा फांक पार किया, जान बची, तीसरा फांक—

—'अरे ओ, नीरेन हो क्या ?'

—'जी हां, ताऊजी !'

—हां, जरा इधर तो आना।

—ताऊजी मैं हाट-बाजार जा रहा हूं। घर में एक मेहमान आए हुए हैं—

—अरे भई, हाट-बाजार तो जाते ही रहोगे ! क्या बाजार उठ जाने वाला है ? जरा, आओ तो, आओ। भला तुम्हारे यहां—वह मेहमान कहां से आ गया ?'

मेहमान के रूप में जिस आदमी का नाम बताऊं, उसी को, या उसके वंश के किसी न किसी को घन बूढ़ा जरूर पहचानता है। उसी आदमी को केंद्रित कर वह मानव-जाति के इतिहास, हमारे देश के भूगोल, इस मुहल्ले के क्रम-विकास, माधव-मास्टर के घर-परिवार के उत्थान, हरिहर विषया के पतन—आदि हर विषय की चर्चा खत्म कर चुकने के बाद जब मुझे अपने घर के बाहरी दरवाजे तक पहुंचाकर, गेट अच्छी तरह से बंद हुआ है या नहीं, इसकी जांच करता, तो उसके बाद फिर बाजार जाने का आग्रह ही खत्म हो गया होता। और जब गेट के पास खड़ा होकर दूसरे दफे की चर्चा खत्म कर मुझे विदा करता, तो उस समय तक शायद बाजार सचमुच ही उठ गया होता। विरक्ति के मारे तब घर लौटकर सीधे सो रहने का दिल होता।

और अब मैं, वही इंसान, भला लोगों को बातों से परेशान क्यों करूं ? नहीं-नहीं, मैं ऐसा कभी नहीं करूंगा। मैं तो बुड्ढा हो चुका हूं। पर मेरी प्रखर बुद्धि तो अब तक बनी हुई है। सिर्फ लोगों को तंग करने वाले विषयों में नहीं, वृद्धावस्था के हर विषय में तेज बुद्धि, उदार विवेचना-शक्ति का परिचय देने की इच्छा और सुविचारित कार्यक्रम मेरी जवानी के दिनों से ही था। और तो और, मैं अपनी पत्नी से कहता, "समझती हो, हम लोग एक काम करेंगे। हम जब बूढ़े हो जाएंगे, तो इन आम बूढ़े-बूढ़ियों जैसे नहीं रहेंगे। यह जो देख रही हो, इन बुड्ढों-बुढ़ियों की अपने बेटे-बेटियों को लेकर हमेशा जैसी अशांति होती है, हम लोग वैसे नहीं होंगे। वैसी अशांति हम होने नहीं देंगे। अतुल-गीता को हमें अशांति में डालने का कोई बहाना ही नहीं मिलेगा। बल्कि हमें सदा इसी बात पर नजर रखनी होगी कि हमसे उन्हें क्या किसी तरह की अशांति तो नहीं हो रही है ? अगर कभी ऐसा पता चल जाए कि वे हमें जरा भी बोझ जैसा समझते हैं, तो हाथों में जो कुछ रुपए-पैसे रहेंगे, उन्हें लेकर दूर कही निकल जाएंगे और अगर हाथ में कुछ न रहे, तो दोनों कुछ करके मर जाएगे।"

मेरी श्रीमती लेकिन मुझसे बिलकुल उल्टी ही है। बिलकुल भोली ! चूंकि मैं कॉलेज का अध्यापक था, और साथ के किसी नटखट लड़की ने शायद उसे सिखा भेजा था, इसलिए वह विवाह के बाद भी मुझे 'सर' कहकर ही पुकारती। हंसते-हंसते मेरी आंतों में बल पड़ जाते। अब भी उसकी याद आने पर हंसी आए बगैर नहीं रहता।

मैं जब उस तरह से मरने की बात कहता, तो वह 'छिः ऐसा कहना नहीं चाहिए,' या ऐसी ही कोई बात कह देती।

मेरे कानों में जो कुछ पड़ता, उसी का सूत्र पकड़कर मैं कहता—"क्यों कहना नहीं चाहिए? भला, नहीं चाहिए क्यों? क्या तुम यह सोच रही हो कि हम उनकी पहरेदारी करते रहें, और बड़े होने पर वे कहें, 'बस, बस, अब रहने दो! हम अकेले ही काम कर लेंगे। हमें किसी पहरेदार की जरूरत नहीं?' ऐसा कहकर वे हमें विसर्जित कर दें और हम माया-मोह छोड़ पाने में असमर्थ विश्वस्त पहरेदार की भांति बरामदे में बैठे बैठे जिंदगी बिताएं? नहीं, नहीं! ऐसा तो हो नही सकता। बल्कि हमीं घर के गृहस्थ बने बैठे रहेंगे, और जरूरत हो तो वे ही हमारी मदद मांगेंगे, सुझाव चाहेंगे; वे जब अपनी जबान खोलकर कहेंगे, 'हमें एक पहरेदार चाहिए'—तब हम पहरेदारी करेंगे। "अभी फुटबाल का खेल देखने की जरूरत नहीं। गणित की किताब खोल ले, सवाल हल कर।" 'अभी उसी दिन जूतों की जोड़ी खरीदी थी, फिर खरीदने की जरूरत आ पड़ी?'—'गीता, देख तो मेरा सिर यहां बड़ा दर्द कर रहा है। यहां से दो-चार पके बाल उखाड़ देना। जरा!' आदि जैसी बातें तो मुझसे होंगी ही नहीं। मैं उन्हें खुला छोड़ दूंगा। और खुला छोड़ उनके रंग-ढंग देखता रहूंगा। हमारे गांव की उस बुआ की याद है न जिसके यहां एक तोता था। उसके पिंजड़े का दरवाजा हमेशा खुला रहता था, सुबह वह बाहर निकलता, और शाम होते ही खुद पिंजड़े में घुस जाता। याद है न तुम्हें, वह तोता कैसे बुआ के कंधे पर चढ़कर, बुआ के सिर पर चोंच मारता रहता, और धीरे-धीरे बुआ की आखें मुंद जातीं? ऐसा किस तरह से हो सका था, पता है तुम्हें? अरे जैसा बीज, वैसा ही पेड़। असल में नस्ल की बात है। अच्छी नस्ल की चिड़िया थी, यही कारण था।

अगर ये हमारी संतानें हों, तब तो वे अच्छे होने के लिए ही विवश हैं। गीता खुद आकर मुझसे कहेगी—उफ् राम, पिताजी के इतने सारे बाल पक गए। ठहरो, आज मैं एक-एक कर सब पके बालों को उखाड़ कर खत्म कर डालूंगी, घंटे भर बाद मैं कहूंगा—अरे रहने भी दे! बहुत हो गया। एक ही करवट में सिर किए रखने के कारण गर्दन में दर्द हो रहा है। वह कहेगी—जरा ठहरिए न, अभी-अभी खत्म हो ही जा रहा है। आज इसी ओर के सफेद बाल उखाड़ डालूं, कल उधर के उखाडूंगी।' विरोध करना बेकार हुआ, समझकर मैं फिर आंखें बंद कर पड़ा रहूंगा।

मुझे यह अच्छी तरह याद है, श्रीमती से जब मैं ये बातें कहता तो एक पवित्र, अनिर्वचनीय आनंद से मेरी आंखें तर हो आई थीं। कुछ देर बाद आंखों के कोने मे जरा-सा आंसू आ गया था, जिसे मैंने हथेली से पोंछ लिया था।

पर ये बातें कहने के बाद, मुझे महसूस हुआ था कि मेरा वह भाषण श्रीमती के लिए बहुत ही कड़ा हो गया है। उसी कारण, और अपने-आपको भी उस अभिभूत स्थिति से उबारने हेतु मैंने हल्की-फुल्की बातें छेड़ी थीं। मैंने बताया कि बचपन में मै

ऐसी मुसीबत में फंस गया था कि क्या कहूं ? नाम घर के पास के कदंब के पेड़ के नीचे गुल्ली-डंडा खेलने के लिए इकट्ठे हुए लड़कों के शोरगुल की आवाजें मेरे मन में डैनों की भांति आ लगतीं, मन उड़ने को हो आता। इधर पिताजी कहते, 'पके बाल निकाल, पैरों के तलवे दबा दे। उंगलियों को चटका दे। जरा सोचकर तो देखो, क्या उसमें कम तकलीफ होती है ? बाद में सुना था कि हर बाप अपने बच्चों को ऐसे कामों में लगाता है। कोई-कोई तो बच्चों को दस-पंद्रह बाल उखाड़ने की बाबत एक-एक पैसा भी देने का वचन देते हैं। नहीं-नहीं; यह सब बड़ी बुरी बातें हैं। अपने बचपन की अपनी विरक्ति की बात मुझे याद है। अपने बच्चों को इस तरह से परेशान करना नहीं चाहिए।

दरअसल मैं उन्हें परेशान करता भी नहीं। श्रीमती के साथ बैठकर बहुत दिन पहले अपने बुढ़ापे के लिए जो योजनाएं बनाई थीं, उन्हें मैं आज भी मानता आ रहा हूं। मेरी श्रीमती जी चल बसीं। अब मेरे पैरों के जोड़ों में रह-रहकर दर्द होता है। पर मैं अपने बच्चों से कभी पैर दबाने को नहीं कहता। अतुल बड़ा हो गया है, वह नौकरी में है। उससे तो अब पैर दबाने के लिए कहने का सवाल ही नहीं है। हालांकि गीता से कहा जा सकता है। पर मैं उससे भी नहीं कहता। मैं तो इंसान का मन भांप सकता हूं ! होशियार रहा हूं।

परंतु मुझे अनेक असुविधाएं भी हुई हैं। श्रीमती की मौत से मुझे बड़ी तकलीफ झेलनी पड़ी। एक भोली-भाली औरत के चल बसने पर मुझे ऐसा लगा था कि मानो दुनिया का हर सजीव प्राणी मुझसे दूर चला गया हो। और कोई रह ही नहीं गया हो। मैं बिलकुल निस्संग, अकेला पड़ गया हूं। कुछ दिनों तक मेरी स्थिति ऐसी हो गई थी कि बात करने की भी इच्छा नहीं होती थी, और कुछ कहना चाहता भी था, तो मेरी आवाज गले के पास ही कैद-सी हो जाती, निकल नहीं पाती थी।

परोक्ष रूप से ही क्यों न हो, यह बात मेरे कानों में आई कि लोग आपस में कहा करते हैं कि दफ्तर और अपनी किताबों में तल्लीन रहकर मैंने श्रीमती की बीमारी के इलाज में ढिलाई की, नहीं तो बेचारी इतनी जल्दी मरती नहीं। यह बात कहा तक सच्ची है, सोचने में मुझे अरसा बीत गया था। अंत तक मेरी तबीयत भी अच्छी न रही। एक दिन कॉलेज की 'गवर्निंग बॉडी' के पास मैंने सेवा-मुक्त होने के लिए अर्जी दी और जबरन उस अर्जी को मंजूर भी करवा लिया।

किताबें पढ़ना मैंने छोड़ ही दिया। जी ऊबने लगा था। इससे मुझे असुविधा भी बहुत ज्यादा हुई थी। एक दिन श्रीमती से कहा था—बुढ़ापे मे समय कैसे बिताएंगे, कुछ सोचें तो जरा। हा, ठहरो, एक अच्छी बात सूझी है। गीता का विवाह हो जाएगा वह तो चली ही जाएगी। अतुल से कहेंगे, पढ़ो-लिखो। मान लो कि इंटर तक पढ़ी-लिखी कोई लक्ष्मी सी लड़की घर ले आऊंगा, उसे हर दिन दोपहर को मैं घर पर ही पढ़ाऊंगा। और देखना, नौ साल के अंदर ही उसे मैं डाक्टरेट की उपाधि दिलाकर

ही रहूंगा!

मगर वह कुछ भी हो नहीं पाया। और शायद हो पाएगा भी नहीं। 'विवाह हो जाएगा, गीता चली जाएगी, लक्ष्मी-सी लड़की लाऊंगा,' ये घटनाएं हो सकेंगी, ऐसी संभावना तो है ही नहीं। गीता और अतुल के बारे में सोचकर ही मैंने इस बात का अनुभव किया है। मैं समझता हूं, सब कुछ समझता हूं। मगर मैं भले ही समझता होऊं, ये लोग तो नहीं समझते। शायद ये मुझे मूर्ख ही समझते हैं। हालांकि इनकी मूर्खता पर मुझे तरस आता है। यह गीता के पास सुबोध आता है, गीता के साथ आती है उसकी बांधवी अनू! कहते हैं कि अनू गीता की दिली सहेली है। दुनिया में सबसे बढ़कर सहेली। ये चारों जब दूसरे कमरे में हर दिन घंटों बातें करते बैठे रहते हैं, तो क्या मैं इतना भी नहीं समझता कि अनू और अतुल, गीता और सुबोध की दो जोड़ी बन गई हैं? अचानक कुछ दिनों से मुझे किनारे कर अतुल और गीता दोनों आपस में अपूर्व स्नेह-प्रीति, भाई-बहन के आदर्श प्यार का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं, इसका अदरूनी मतलब क्या है, क्या मैं नहीं समझता? मुझे तो भली-भांति पता है, अगर आज गीता अनू को कोई बुरी बात कह दे, तो कल अतुल गीता को तड़ाक् से थप्पड़ लगा देगा। आज अगर अतुल सुबोध से जरा भी बुरा बर्ताव करे तो कल ही अनू और गीता के बीच दुनिया की सबसे बड़ी सहेलीपन का असली रूप खुल जाएगा, मुखौटा उतर जाएगा।

मैं कुछ भी बोलता नहीं। कहा जाता है कि युगों से मूर्ख मां-बाप अपने लड़के-लड़कियों के प्यार-मुहब्बत की राह में रोड़े बनकर खड़े रहे हैं। उनके अशांति, विरह और वेदना के कारण बने रहे हैं। उनके अभिशाप के पात्र बने हैं। मैं वैसा नहीं बनूंगा। अगर उनसे कुछ कहूंगा तो वे मुझे पुराने जमाने का, संकीर्ण बताकर मेरे पीठ पीछे तर्जन-गर्जन करेंगे। मैं वैसा होने देना नहीं चाहूंगा। उनके प्यार-मुहब्बत के खेल जो कुछ दिखाई पड़ेंगे, उन्हें उदार मन से देखूंगा, जो बातें कानों में पड़ेंगी, उन पर उदार दृष्टि से विचार करूंगा। उन्हें जन्म दिया है, इसी कारण से जिदगी-भर उनकी लगाम पकड़े रहना मैं संकीर्ण मन का काम समझता हूं। वैसा करना मेरा कर्त्तव्य नहीं है।

कर्त्तव्य! हां, कर्तव्य की बात याद आने पर मेरी छाती के किसी हिस्से में ऐसा लगता है कि कोई कांटा चुभ रहा हो। कुछ चुभन का दर्द अनुभव होता है। अगर श्रीमती जिदा रहतीं तो वह मेरे पास एक कुर्सी पर बैठी—ओ, नहीं-नहीं, वह तो एक तरह की पतिभक्ति रखने वाली औरत थी न! वह मेरे पास कुर्सी पर भला कहां बैठती?—वह किसी छोटे-से मोढ़े पर बैठ जाती और बीच-बीच में शायद अपनी लड़की किसी सुपात्र के हाथ सौंपने के दायित्व की बात या लडके के लिए किसी लक्ष्मी-लड़की को लाने के दायित्व की बात याद दिलाती रहती क्या? या मुझे भी क्या वैसा ही कुछ करना चाहिए? क्या जाने करना उचित भी हो! मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ पा रहा है। बातें सोच-सोचकर मुझे सिर्फ एक तरह की यंत्रणा का ही अनुभव

हो रहा है।

दिन निकले जा रहे हैं। दूसरे कमरे में उन दोनों जोड़ों की गुनगुनाहट और ज्यादा निबिड़ और घनिष्ठ-सा हो आया। मैं और ज्यादा निस्संग और दुर्बल हो आया हूं। प्रायः मेरी इच्छा हो आती, यह कहूं—"अतुल, जरा सुन जा—अरी बिटिया गीता, जरा इधर तो आना। कुछ बातें करें।" लेकिन मैं कुछ कहता नहीं। उनके पास भी समय कम है। मैं चुपचाप बैठा रहता हूं।

परंतु जब मुझे पता चला कि मेरा इस तरह से चुपचाप बैठे रहना भी उन्हें सहन नहीं होता, तब उस दिऩ मुझे बड़ा बुरा लगा था। एक दिन अतुल ने मुझसे कहा—"पिताजी, आपके लिए शाम को घूमने निकल जाना ही अच्छा है। जरा हाथ-पैर चले तो तबीयत भी ठीक रहेगी। लगातार बैठे-बैठे ' आदि आदि।

पहले-पहल मैंने उसका सुझाव बड़ी सरल भावना से ही ग्रहण किया था। पर बाद में जब शाम होते ही वह वैसा कहने लगा, और एक दिन गीता भी उसका समर्थन करने लगी, तब अचानक सारी बातें मेरे सामने साफ हो गईं। ये मुझे बिलकुल बुद्धू ही समझने लगे हैं। ये सोच रहे हैं कि असली बात मेरी समझ में ही नहीं आ रही है। उन सबके दिन ढले का प्रेम इतना ज्यादा निबिड़ हो आया है कि इस कमरे में मेरी निर्जीव उपस्थिति भी उनके लिए असुविधाजनक हो उठी है। मुझे घर में रहना नहीं चाहिए।

तो फिर ठीक है। मैं तो निकल जाऊंगा ही। और उठ पड़ा। उठते ही मेरा पूरा शरीर, पूरा मन मानो झन्नाहट से कांप-सा पड़ा। मुझे पता चला, मेरी आंखें तर हो आई हैं। चश्मा उतारकर, धोती के सिरे से आंखों के कोनों को पोंछ लिया। कॉलेज की विदाई-सभा में मिली जिस लाठी के बारे में मैंने सोचा था कि उसे कभी काम में नहीं लगाऊंगा, उसे ही हाथ में ले लिया। उस लाठी को किस तरह से पकड़ने पर सुविधा होगी, इस बारे में कई तरह से विभिन्न भंगिमा से जांच कर देखा! उसके बाद एक सुविधाजनक भंगिमा से उस लाठी को मुट्ठी से मजबूती से पकड़ लिया। सड़क पर निकलकर जाते समय मेरा शरीर फिर एक बार कांप गया।

बहुत दूर निकल गया। पर मेरे पैरों के जोड़ों में दर्द होता है और उसके कारण, चलने में मुझे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अब क्या किया जाए? कहीं तो जरा ठहरना होगा। कहीं जरा बैठने की सुविधा भी तो नहीं है। सड़क के किनारे लोगों के घर हैं। सभी लोगों को मैं पहचानता हूं। मुझे भी सभी पहचानते हैं। मैं किसी के भी घर में जा सकता हूं। परंतु मैं तो पहले यही सोचा करता था, बूढ़ा हो जाने पर किसी के यहां जाऊंगा नहीं। शाम को लोगों के घर-घर घूमना बड़ी बुरी आदत है। वे बाते मुझे याद हैं। मुझमें वह तेज बुद्धि भी है। पर मेरे पैरों के जोड़ों मे तो दर्द होने लगा है। किसी एक के यहां तो जाना ही पड़ेगा। मगर किसके यहां जाऊं? अच्युत, प्रदीप, रमा, नहीं नहीं रामप्रसाद का घर ही अच्छा रहेगा। सामान्य आदमी ठहरा। कभी अपने यहां न आने वाले, और किसी के यहां न जाने वाले किसी व्यक्ति को अपने यहां

आए देख बड़ा आदर करेगा। मेरा अंदाजा सच निकला। रामप्रसाद खुद, उसकी पत्नी, बिटिया, बेटा सभी मुझे देखते ही व्यस्त से हो उठे। चाय? नहीं-नहीं। शरबत? नहीं कोई जरूरत नहीं। इस शाम के समय! बस एक गिलास पानी ही काफी होगा।

एक गिलास पानी पीकर मुझे बड़ी शांति मिली। उनसे दो-एक बात करने की इच्छा हुई। लोग मौका पाते ही मेरी श्रीमती का गुणगान करना शुरू कर देते हैं। उसी डर से मैंने खुद एक दूसरा ही प्रसंग छेड़ दिया। शहर में पानी सप्लाई की चर्चा के साथ यहां के एक कुएं में एक घोड़ा कैसे गिर पड़ा था, घोड़े की पूंछ के बाल किस-किस काम आते हैं, इनकी चर्चा शुरू की—और भी बहुत-सी बातें कीं। बहुत देर बाद जब मैं रामप्रसाद के यहां से निकल आया, उस समय पता नहीं मेरा मन न जाने क्यों खुला-खुला-सा लग रहा था, दिल हलका-हलका हो रहा था।

दूसरे दिन भी टहलते-टहलते रामप्रसाद के यहां रुका। उसके दूसरे दिन भी, उसके बाद भी! बाद के दिनों में कभी-कभी रामप्रसाद घर नहीं रहता, कभी उसकी पत्नी रसोई घर में रहती, लड़का प्रायः खेलने, घूमने या बाजार जाता। एक दिन पता चला—रामप्रसाद शाम को देर से घर आता है, उनके दोनों लड़के-लड़कियों की परीक्षा हैं, वे दोनों शाम को ही पढ़ने-लिखने बैठ जाते हैं। और रामप्रसाद की पत्नी के बहुत सारे घरेलू काम रहते हैं।

उनके यहां से लौटकर मैंने इधर-उधर देखा, अब किसके यहां थोड़ी देर बैठूं? अच्युत मुझे बड़ा मानता है, क्या उसी के यहां जाऊं? ठीक है, वहीं चलूं!

प्रदीप भी अच्छा ही आदमी है, रमा भी तो कोई बुरा नहीं है। बाद में उनके यहां भी गया! और भी बहुत-से लोगों के यहां गया।

इसी बीच एक और मजे की बात हुई। जाऊं, न जाऊं, सोच-विचार कर एक दिन एक सभा में चला गया। सभा में 'उपस्थित सज्जनों में से क्या कोई कुछ कहेंगे'—सभापति के ऐसा पूछने पर मैं खड़ा हो गया। बहुत दिन बाद लोगों के सामने भाषण देने के लिए खड़ा हुआ। अपने में मानो मुझे एक अद्भुत शक्ति का संधान मिला। मैं बोला। बहुत कुछ बोल गया! और देखा!—बाद में मेरी कही हुई बातों पर लोग आपस में चर्चा कर रहे हैं। बार-बार श्रोताओं की मंडली के पीछे से गुनगुनाहट उठ रही है। एक-दो आदमी सभा से उठकर चले भी जा रहे हैं, जरूर वे अलग जाकर मेरी बातों पर चर्चा करने के लिए ही उठकर जा रहे होंगे। सभा के अंत में कुछ लोगों ने यह प्रशंसा भी की कि मेरा भाषण कुछ लंबा हुआ, पर अच्छा रहा। मैंने तब तय कर लिया, अब से मैं सभाओं में जरूर जाऊंगा। और जाने भी लगा। लगभग सभी सभाओं में!

मगर इसी बीच एक बड़ी दुर्घटना भी हो गई। सुना, सुबोध और अनू का विवाह हो गया। मुझे कुछ खास पता नहीं। परी-कथा। हां, हमारे उन पुराने जमाने की परी-कथा जैसी ही हुई। सुनकर मुझे हंसी आ गई।

अचानक 'होम-साइंस' पढ़ने में गीता का आग्रह बढ़ गया। मुझे पता है। वह विरह-यंत्रणा में तड़प रही है। वह भी निकल भागना चाहती है। हमारे उस जमाने की परी-कथा जैसी!

गीता जिस दिन चली गई, उस दिन एक तरह की अद्‌भुत यंत्रणा से मैं परेशान हो उठा था। मेरे आंसू बहने लगे थे।

सुबोध भी उदास होने के साथ-साथ मुरझा गया। वह अब मेरी नजर से नजर नहीं मिला सकता था। मैं अपनी सारी चेतना संजोकर उसकी ओर देखता रहता। उसे देखते रहने से मेरा मन नहीं भरता था।

एक दिन मेरी बहन की एक बिटिया ने खुद आकर मुझसे बताया, हमारे घर के इस क्लब के, यानि हमारे घर के बारे में सबकी जबान से बुरी-बुरी बातें सुनकर उसे बड़ा बुरा लगा है।

यानि बदनामी? नहीं, नहीं, भला इसमें बदनामी का क्या है? कम्बख्त लोगों का कोई काम-धाम तो होता नहीं। मगर एक बात है, ये लोग मेरे पास नहीं आते, राह में भी मुझसे आगे बढ़कर बातचीत नहीं करते, क्या इस घर की झूठी बदनामी की वजह से वे ऐसा करते हैं? क्या वे नफरत के कारण ऐसा करते हैं? नहीं, नहीं, मैं ऐसा नहीं होने दे सकता। मेरा यह घर एक सज्जन का घर है, एक तेज दिमाग वाले का घर है, एक स्वतंत्रचेता का घर है। ठीक है, मैं एक काम करूंगा, सारे लोगों को बुलाकर उनसे मिलकर, बातें कर देखूंगा, हमारे घर के बारे में उनका मनोभाव कैसा है? और अगर देखूंगा कि उनका मनोभाव बुरा है तो मैं परोक्ष रूप से समझा दूंगा—मेरे जीवन का दर्शन क्या है।

परंतु यह क्या हो गया है? देखता हूं कि लोग घर पर रहते ही नहीं। हर आदमी के यहां सुबह जाकर कोशिश की है, दोपहर को कोशिश की है, शाम को कोशिश की है। नहीं, कोई नहीं! जिससे मिलना चाहता हूं—कोई घर में मिलता ही नहीं। "सभी न जाने कहां निकल जाते हैं", यह जवाब घर के छोटे-छोटे बच्चे दिया करते हैं।

पैरों के जोड़ का दर्द भी इन दिनों धीरे-धीरे ज्यादा ही बढ़ता जा रहा है। इसी कारण जहां तक हो सके, एक आरामकुर्सी पर बैठा ही रहता हूं।

किंतु बातें तो मेरे गले के पास ही लपलपाती रहतीं। बहुत-सी बातें, हां, मुझे भी बहुत-सी बातें कहनी हैं? मुझे लोगों की जरूरत है। मेरे पास हमेशा रहें ऐसे लोग मुझे चाहिएं। नहीं तो मुझे बड़ी तकलीफ होती है। जब कभी कोई नहीं रहता, गले में शब्द नहीं होते, सन्नाटे का मौका मिलते ही एक संपूर्ण जीवन की वेदना मुझे दबोच लेती, यंत्रणा के मारे मैं हाहाकार कर उठता हूं।

"मुझे आदमी चाहिए।" वह कौन...

"ओ, वह कौन हो, धीरेन हो क्या?"

"जी हां, सर!"

"अरे जरा इधर आ जाओ न।"

"सर, मैं तो बाजार जा रहा हूं! एक मेहमान आया है।"

"अरे, जाना है तो चले जाना बाजार। क्या बाजार अभी-अभी उठा जा रहा है? जरा आओ न, आ आ इधर। भला, तुम्हारा भी वह मेहमान कहां से आ गया? आं?"

1966

दहेज

वह जो पाट-रेशम का पंजाबी कमीज पहनकर आदमी दूल्हा बनता है, बाद को उसकी कमीज का क्या होता है? विवाह के दिन तो शाम से ही वह वही पाट-रेशम की कमीज पहने रहा, उसके बाद के दिन यों ही खबर की पूछताछ करने जाएं, तो यही दिखाई पड़ता है कि विवाह के पहले दो दिन नहलाने के बाद पहनने के लिए सूती कपड़े की जो कमीजें सिलवाई गई थीं, उन्हीं में से एक कमीज वह पहने हुए है। तह खोली न गई हो, ऐसे कपड़े जैसी नई-नवेली दुल्हन, और हाथ की मुट्ठी में एक टार्च लिए हर शाम को इस घर से उस घर घूमने जाते समय तो वह उसी पाट-रेशम की कमीज को पहनकर जाता है। मगर कुछ ही दिन बाद 'बैंड पार्टी' वालों की बकाया रकम लेने के लिए जो आदमी आता है, वह चाहे दिन के किसी भी समय में आए, उस दूल्हे को वही सूती कमीज पहने देखता है। घर में एक नई युवती है, उसके सामने सिर्फ बनियान पहने रहने में, जैसे-तैसे रहने में, शरीर का ज्यादा हिस्सा खुला रखने में उस आदमी को बुरा लगता है।

पर वही आदमी कब, कैसे एक ऐसा आदमी बन जाता है, जो जगह-जगह फटी-चिटी धोती को तह कर कमर में लपेटे, दो बड़े-बड़े, गैर होशियारी के कच्छे मारकर, नंगे बदन बे-तरतीब घूमता-फिरता हो? या अपनी पीठ पर के लंबे-लंबे रोएं और जगह-जगह पड़े दाद के धब्बे, छाती पर उभर आए लंबे-लंबे कुछ रोंओं वाले बेर के फल जैसे दाने आदि को खुला रखकर नंगे बदन, सड़क से होकर जाती हुई उन्नीस-बीस साल की लड़कियों के सामने, या पत्नी के साथ की पड़ोसी औरतों के सामने निस्संकोच घूमने-फिरने वाला कैसे, कब बन जाता है?

दीननाथ ने इन्हीं शब्दों से एक कहानी लिखना शुरू किया था। कुछ दिन पहले कहानी पूरी हो जाने पर उसने बिटिया सुरभि को कापी करने के लिए दिया था। देते समय उसने कह दिया था;—"होशियारी से, मन लगाकर करना। समझीं।" उसके बाद इन चंद दिन वह बिटिया सुरभि के आमने-सामने हुआ न था। कहानी को कापी करने का काम शायद पूरा हो गया होगा। मगर काम हो गया है या नहीं, उसने यह खबर नहीं ली थी।

दीननाथ के साहित्य-कर्म का इतिहास भी वैसा ही रहा है, जैसा कि बेटी सुरभि के बचपन में उसके लिए बनाकर दी गई वह बही। पन्ने के एक ओर बड़ी-बड़ी जटिल

बातें छपे, दफ्तर से लाए गए भूरे रंग के कागजों से बनाई गई बड़ी मोटी बही, जिसके खाली हिस्से वाले पन्नों पर लिखकर बेटी ने पूरी बही भर दी थी। मगर शब्द ज्यादा थे नहीं। किसी पन्ने पर लिखा था, "ईश्वर बड़ा दयालु है।" किसी पन्ने पर बना था एक कच्चू का पत्ता, और किसी पन्ने पर गोटी खेलने के आड़े-तिरछे खाने। किसी पन्ने पर अगर रंगीन पेंसिल की रेखाएं हैं, तो किसी पर काठ-पेंसिल की। उसके बाद का पन्ना स्याही से पुता हुआ है। वह बही इस प्रकार विचित्र रंगों वाली, विचित्र संभार की बन गई है। उच्छृंखल, अविवेचक शिशु-हाथ के उपद्रवों से उसके पन्ने फटे-फुटे थे, पर दीननाथ ने बड़ी मजबूती से मोटे गत्ते से जो बंधाई कर दी थी, वही बची रही। सचमुच बड़ी मजबूत थी वह बंधाई! और उसी की वजह से आखिर तक उस बही का कुछ हिस्सा वैसे ही बचा रह गया जैसा कि बैंक की पूरी हो चुकी चैक बही के काउंटर-फायल वाला हिस्सा हो। दीननाथ के साहित्य-कर्म का इतिहास बिलकुल उसी बही के जैसा रहा है।

दीननाथ ने किसी समय अनेक ऐसी कहानियां लिखी थीं, जिनकी विषय-वस्तु होती—रायबहादुर गगनेंद्र मजुमदार के प्रासादोपम निवास-भवन के सामने की फुलवारी में पड़ा कोई राह-भूला, विकलांग भिखारी; तो कभी अपनी बांसुरी की धुन से सबको विमुग्ध, तन्मय करता हुआ सड़क पर फेरी लगा बांसुरी बेचने वाला किसी उदास, यायावर युवक पर अमीर की प्यारी बिटिया की अनुकंपा; तो कभी राक्षसी-सी सौतेली मां और उसके हाथ की कठपुतली जैसे बाप के उत्पीड़न से जर्जर युवा चित्र-शिल्पी का विषमय जीवन, ऐसी ही विषय-वस्तुओं को लेकर दीननाथ ने कभी अनेक कहानियां लिखी थीं। ऐसा लगता मानो किसी तेज नशे की खुमारी में वह दिनभर जैसे दफ्तर में कलम-चलाया करता, वैसे ही घर में कभी-कभी आधी रात तक वैसी कहानियां लिखने में कलम चलाता रहता था। मगर कुछ बातों से दीननाथ को बड़ी अड़चन हुआ करती थी। जिस मैगजीन में परवर्ती अंक में छपने हेतु वह बड़े जतन से किसी कहानी की प्रतिलिपि निकाला करता, उस मैगजीन का वह परवर्ती अंक छपता ही न था, मैगजीन बंद हो जाती थी। जिस गोष्ठी में पढ़ने के लिए वह उसे कमीज की जेब में जैसे-तैसे भर कर ले जाता था, उसकी बारी आने के पहले ही वह गोष्ठी खत्म हो जाती। और जिन मैगजीनों के हाल में बंद हो जाने की कोई संभावना नहीं, उन मैगजीनों के संपादकगण दीननाथ की कहानियां यह कहकर वापस कर देते थे कि उन कहानियों की विषय-वस्तु और भावना कमजोर है, पुरानी है, लगातार प्रयुक्त होते रहे हैं, उनमें कोई नयापन नहीं है।

कमजोर? पुरानी? दफ्तर की कुर्सी पर बैठा बांई हथेली पर सिर टिकाए दीननाथ उन बातों पर सोच-विचार करता था। कभी पास के क्लर्क हृदयानंद से गुप्त रूप से पूछता—"हृदयानंद, इस शहर में तो फुलवारियों की संख्या बहुत बढ़ गई है। और साथ ही विकलांग-भिखारियों की तादाद उससे कहीं ज्यादा गति से बढ़ रही है। इस

कारण फुलवारी में भिखारियों के आंसू बहाने की घटना भी जरूर बढ़ी हैं। परंतु उन सबने बता दिया—"कहानी के लिए ये घटनाएं कमजोर हो गईं, पुरानी हो गई हैं।"

हृदयानंद बड़ा मनमौजी और बातूनी आदमी है। दीननाथ के उस गोपनीय सवाल का जवाब वह आम सभा के भाषण के स्तर पर ले जाकर देता था। उसने कहा था, सुनो भैया, सामने जबकि लिखने के लिए दस रीम कागज रहे, वैसी स्थिति में यह कलम बड़ी कमजोर है। जब दस ट्रक लकड़ी फाड़ने की बात हो तो तुम्हारा कुठार उस स्थिति में बड़ा कमजोर है। जब तुम्हें दस संतानों को मारपीट कर ठंडा करना है, वैसी स्थिति में तुम बड़े कमजोर बाप हो। अब इस झूठ बोलने वाले आदमी को ही लो! झूठ बोलने वाले लोगों की तादाद कितनी बढ़ गई है। है या नहीं? उस अनुपात से तो आज सड़क के खंभे-खंभे में यह बात लिखी रहनी चाहिए थी कि 'हमेशा सच बोलो।' मगर सही माने में होता क्या है? आज तो 'हमेशा सच बोलो' यही बात पुरानी, बड़ी पुरानी हो गई है। हाः हाः हाः··· "

अपने भाषण का सारमर्म खुद ही सबसे अच्छी तरह से समझकर हृदयानंद ठठाकर हंसने लगा था।

कहानी लिखकर संपादक के यहां जाना दीननाथ ने छोड़ दिया था। सुबह-शाम कोई दूसरा काम न रहता तो कभी-कभी खुट-खुट कर कुछ लिखता, किसी गोष्ठी में जाने पर लोगों की आखिरी कतार में चुपचाप बैठा रहता। जेब में कोई कहानी वगैरह ले नहीं जाता था। आगे चलकर उसने लिखना ही छोड़ दिया था। उसके लिखने की आदत भी खत्म हो गई थी।

कई साल बाद उसने यह जो कहानी लिखी है, इसे लिखने में उसे तीन महीना लगा था। लिखने में उसे बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी है।

बाप से कहानी कापी करने का हुक्म पाकर सुरभि को भी दंग रह जाना पड़ा था, पिताजी को फिर से यह क्या हो गया? अचानक कहानी लिखना! पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अच्छे लेखकों की बहुत-सी अच्छी-अच्छी कहानियां सुरभि में पढ़ी हैं। पिताजी ने यह क्या लिखा है? किसी पत्र-पत्रिका में भेजने के बाद पिताजी को अपमानित न होना पड़े, सुरभि को मन में ऐसी आशंका हुई। किसी तरह से किसी नीची कोटि की पत्रिका में अगर वह कहानी छप जाए, तो अपनी सहेलियों में उसे कितना शर्मिंदा होना पड़ेगा, यह सोचकर सुरभि के मन में बड़ी शर्म आने लगी।

कापी करना ऐसे भी मुश्किल काम है, बड़े ही धीरज का काम है। तिस पर ऐसी-ऐसी बातों को सही ढंग से कापी करना! फिर भी सुरभि ने अपने मन की विरक्ति की भावना प्रकट नहीं की। आजकल वैसे बाप की किसी बात पर वह एतराज नहीं करती। जो कुछ करने से बाप को खुशी होती है, तकलीफ झेलकर भी वह वही काम करती है। आजकल वह भी एक लड़के के प्रेम में पड़ी है। एक दूसरे शहर का रहने वाला प्रमोद नाम का क्लर्क का काम करने वाला लड़का दफ्तर के काम से इस शहर में

आया था। सुरभि के बाप के ही दफ्तर में लगभग महीने भर से वह कोई काम कर रहा था। उस महीने भर में सुरभि के घर से भी उसका एक तरह का आत्मीय-संबंध जुड़ गया था। प्रमोद काम पूरा कर जब अपने शहर लौटने लगा, तो उसके पहले ही सुरभि को ऐसा अनुभव हुआ कि इसी बीच उनमें प्यार-वार हो गया है। उसके बाद तो शहर में उसका कोई-न-कोई काम पड़ता रहा—आना-जाना भी होता रहा। और इस परिवार में पहले कभी न होने वाली घटना भी होने लगी। डाकिया सुरभि की मां के नाम आई चिट्ठी दे जाने लगा। उस लिफाफे के अंदर पूजनीया चाची के नाम लिखा एक छोटा-सा पत्र होता और सुरभि के नाम होती एक लंबी चिट्ठी। सुरभि के नाम लिखी चिट्ठी घर के सब लोगों के पढ़ने लायक ही होती पर उसका मतलब दूसरे लोग जो समझते, सुरभि कुछ और समझती। शब्दों, वाक्यों और भाषा का विचित्र छद्मवेश! दो शब्दों के बीच एक-एक इंच लंबी एक-एक सरल-रेखा होती, वह सहज-सरल रेखा सुरभि से बड़ी लंबी एक वाक्य की अपेक्षा ज्यादा बातें कहती।

आज से लगभग छह महीने पहले सुरभि और प्रमोद ने तय किया था—उनका प्रेम कालजयी, अविनश्वर और अक्षय है। इसलिए दोनों को विवाह-बंधन में बंध जाने का प्रयास करते जाना अब अनिवार्य कर्त्तव्य है।

दीननाथ को बात का पता चल गया। जिस दिन पता चला, उसी दिन से वह बड़ा गंभीर हो उठा है। उसने उस बारे में सुरभि की मां से भी कोई चर्चा नही की, सुरभि से तो कुछ कहा ही नहीं। पर बाप का यह मौन सुरभि के लिए ज्यादा रहस्य भरा था। प्रमोद के पत्र की उन्हीं इंच-इंच भर लंबी-लंबी सरल रेखाओं की तरह। न जाने किस दिन पिताजी की इस गंभीरता का विस्फोट हो जाए, किस दिन फूला-फूला-सा मौसम बिजली की गड़गड़ाहट के साथ उतर आवे, यह बात सोचकर सुरभि शंकित, संत्रस्त हो उठी थी। बाप मनमौजी आदमी ठहरे! अगर अचानक किसी दिन वे हुंकार भर कह उठें कि 'खबरदार, उसके साथ इस घर के तिनके भर का भी लेन-देन न हो' तब तो सुरभि की जिंदगी में दुर्योग ही उतर आएगा।

इसी कारण सुरभि पिछले छह महीने से बाप की एकांत अनुगत बनी रही है। पैर धोने का पानी, पैर पोंछने का अंगोछा, चेहरा पोंछने का अंगोछा, दांत मांजने का कोयला, पैर मलने के लिए तोरई का सूखा गुच्छड़, साबुन, टूटे प्याले में पानी, पुराने आइने के साथ-साथ हजामत बनाने का औजार आदि सही जगह, समय पर रखना आदि किसी तरह का अभाव सुरभि ने बाप को जैसे महसूस ही नही होने दिया है। अब चाहे जितना भी कठिन काम क्यों न हो, वह कहानी जरूर कापी कर देगी।

रात को खाना खाने के बाद, लालटेन को धीमे से हिला, कितना तेल है अंदाजा लगाकर एक दिस्ता मूंगे के रंग का कागज सामने ले, सुरभि कहानी को कापी करने बैठी।

वैसे बाप का हस्तलेख अच्छा है। पन्नों पर काफी काट-छांट होने पर भी पढ़ने

में कोई तकलीफ नही। सुरभि ने कापी करना शुरू किया। परंतु शुरू के कुछ वाक्य पढ़ते ही वह कुछ क्षण ठिठककर रुक गई। और फिर उसके बाद कापी करने के पहले वह मानो अनजाने ही कहानी को एक बार आखिर तक पढ़ लेने में जुट गई।

बाप ने कहानी उत्तम पुरुष में लिखी है। "··अपने विवाह के अवसर पर मैंने तीन पंजाबी कमीजें सिलवाई थीं। एक कमीज पाट-रेशम की, दो कमीजें सूती कपड़े की। पाट-रेशम की कमीज पर तीन सूती कमीजों के बराबर कीमत पड़ी थी। यानि सिर्फ सूती कपड़े की कमीजें होती तो मैं कुल पांच कमीजें ले सकता था। मगर विवाह की बात न होती तो मैं कभी एक साथ पांच कमीजें सिलवाने की बात भी नहीं सोचता। एक साथ दो कमीजें भी इसके पहले मैंने कभी नहीं ली थीं। मेरे अपने हिसाब के मुताबिक वे पांच कमीजें तीन सालों में ली होतीं। और वह भी इतने अच्छे कपड़े की कमीज मैंने नहीं ली होती। पहले कभी ली भी नहीं थी।

बिलकुल अपनी बात कह रहे हों, ऐसे लहजे में, घर में बोल-चाल की भाषा में ही पिताजी ने कहानी शुरू की है। आगे क्या लिखा होगा भला? विख्यात लेखक जिन शब्दों का प्रयोग ज्यादातर किया करते हैं वैसे—अश्रुधारा, मौन विनय, मृदुल सिहरन, निबिड़-और निबिड़, सघन आदि का प्रयोग भला पिताजी ने कहां किया होगा? ये बातें सोचकर सुरभि फिर पढ़ने में तल्लीन हो गई।

"हालांकि पाट-रेशम की वह कमीज पहनकर मुझे अच्छा ही लग रहा था। शरीर हल्का-हल्का सा लग रहा था। उसके साथ ही मन भी हल्का-हल्का लग रहा था। विवाह कर जिस औरत को ले आया, वह जब सज-धजकर निकलती, तो मुझे लगता कि पाट-रेशम की वह कमीज पहनकर उससे सुंदरता में मेरी जोड़ी बड़ी फब रही है। पहले-पहल तो रात को खाना खाने के पहले तक मैं उस कमीज को खोलता न था। उस बेचारी औरत के सामने सुंदर बने रहना, मुझे बड़ा अच्छा लगता था। बिस्तर पर जाते समय भी एक सूती कमीज पहनकर ही जाता था। उसके सामने नंगे बदन रहना मुझे अच्छा नहीं लगता था। मुझे नंगे बदन उसके सामने जाना शर्म की बात लगती थी।

हाथों में एक टार्च लिए पत्नी के साथ हर शाम को लोगों के यहां घूमने जाना भी धीरे-धीरे खत्म हो आया। लगभग सभी के यहां एक-एक बार जाना पूरा हो गया। उसके बाद मैं शाम को सिर्फ कुछ ही समय के लिए किसी काम से निकल पाता। वही पाट की कमीज पहने। दिन में तो वह कमीज पहनने का मौका ही नहीं मिलता था, इसलिए शाम को ही शौक पूरा कर लेता। एक दिन दफ्तर में भी वह कमीज पहनकर गया था। पर मेरे साथ के हृदयानंद नाम के कर्मचारी ने बड़ा मजाक उड़ाया, "समझे न बप्पा! यह तो एक थियेटर का ही ड्रेस लगता है! यह हमेशा पहनने को कमीज नहीं है। और इसे पहनकर तो तुम कलम घिसाई भी नहीं कर सकते। इसे रख दो, अच्छी तरह से तह लगाकर रख दो। हम जैसे अभागे भी कभी अगर वैसे थियेटर का

आयोजन करेंगे, तो इसे किराए पर ले आएंगे।" उसके बाद से वह कमीज पहनकर दफ्तर में कभी नहीं गया। शाम को कहीं निकलता तो पहन लेता। एक दिन पंसारी की दुकान में गया। उस दुकान से विवाह के लिए मैं मैदा, चीनी, घी आदि कई सामान उधार ले आया था। दुकानदार कई दिनों से मुझसे पैसे चुकाने के बारे में कह रहा था। उस दिन शायद किसी दूसरे पर उसको गुस्सा ही चढ़ा था या और कोई बात थी, पता नहीं, पैसे के बारे में उसने मुझे बड़े-बड़े शब्दों में कहा। यहां तक कि मुझे गाली ही दे दी। अपने शरीर की उस झीनी कमीज और उसकी जबान से निकली गाली, इन दोनों में मैं किसी तरह मेल न बैठा सका। उस दिन घर लौटकर मैंने कमीज उतारी और तह कर श्रीमती की पेटी के निचले हिस्से में रख दिया।

लोगों की टेढ़ी बातें, कुछ-कुछ कड़ी बातें तो मुझे विवाह के सात दिन बाद से ही सुनाई पड़ने लगी थीं। बैंड पार्टी का आदमी आया था, विवाह में किराए पर ली गई बस का मालिक आया था, दो मन दही देने वाला गांव का वह आदमी आया था। सबको मैं दस की जगह छह रुपए दे-देकर विदा करता गया था। उस समय भी विवाह के मंडप के उखड़े बांस के खूंटों की ढेरी एक ओर पड़ी थी। खूंटों के गड्ढे भी मिट्टी डालकर बराबर करना बाकी था। मेरे शरीर पर चकमक साफ सूती कमीज थी, 'अंदर दुल्हन बैठी है,' यह बात घर के सामने खड़े होकर बात करने वाले भी समझते थे, शायद इसी कारण वे मुझसे ऊंची आवाज में कोई कड़ी बात नहीं कहते थे। "बिलकुल चुका देते तो अच्छा था, इधर हमारी भी कई तरह की झंझटें हैं?"—कहकर सिर्फ कुछ एतराज करते थे। पर सबसे पहले पंसारी दुकानदार ने मेरे शरीर पर से कमीज उतरवा दी थी।

इसलिए फिर उन्हीं सूती कपड़ों को ही सहारा बनाया। विवाह के पहले जो कमीजें थीं उन्हें पहनकर होली खेल ली। जो भी हो, आखिर विवाह के बाद की होली ठहरी। दूसरे सालों की भांति फटे कपड़ों की गठरी से चिंदी हुई कमीज खोजने की नौबत नहीं आई। जिस कमीज पर होली खेली, उसकी जिदगी भी उसी दिन खत्म हुई। लौकी के टुकड़े पर आखर बनाकर किसी ने मेरी पीठ पर कोलतार से ठप्पा मार दिया—'मूर्ख, मूर्ख, मूर्ख, मूर्ख ! आखिर उस कमीज के बटन निकालकर श्रीमती को वह कमीज किसी और काम में लगाने के लिए दे दी।

धोबी को देने पर कमीजें जल्द फटती हैं। और भला क्यों न फटें ? धोबी-पटक देने का काम शायद ये धोबी ही किया करते हैं। इसी कारण मैं अपनी कमीजें धोबी को नहीं देता था। नई दुल्हन जब पहले दिन कमीज धो रही थी, तो मुझे बुरा लग रहा था। मगर उसे कमीज धोने में बुरा न लगा। कमीजें काफी साफ भी हुई थीं। धोबी के धोने की अपेक्षा ज्यादा ही साफ हुई थीं। धोबी की धुलाई भी क्या है ? सिर्फ वही इस्तरी भर ही तो। मगर वह काम वह कभी की कर चुकी थी। बाप-दादे के जमाने के बड़े-से, चपटी पेंदी के कांसे के एक कटोरे में अंगारे रखकर उसी से उसने मेरी उस कमीज की

इस्तरी कर दी थी, जिसे मैं छोड़ गया था।

दोनों कमीजों पर मैं बड़ा ध्यान रखता। मुझे इस बात का पता था कि दोनों कमीजें अगर एक साथ फट जाएं, तब और दो कमीजें जल्द बनवा पाना मेरे लिए कठिन होगा। कुल मिलाकर मेरा एक हजार एक सौ पचीस रुपया उधार है। विवाह के अवसर पर लिया गया उधार। आठ आदमियों का उधार। आठों में से कोई दो अगर कुछ माह उधार की बात भूले भी रहते, तो शेष छहों हर सप्ताह में कम से कम एक बार तो जरूर खबर लेने, तकाजा करने आ ही धमकते। खबर का मतलब मेरी कुशल-क्षेम नहीं, पैसे की खबर! उन छहों में से कोई दो अगर कुछ दिन भूले रहते तो पहले भूले हुए दोनों सक्रिय हो उठते।

जिन लोगों से मैंने उधार लिया था, उनके सिवा मेरे होंठों पर की हंसी का कोई और बड़ा दुश्मन नहीं होता? उन आठ दुश्मनों के बीच से निकालकर मेरी नई श्रीमती को अपनी हंसी की झलक दिखलाने में कितनी तक्लीफ होती, भला यह कैसे समझाऊं?

मैं कदम-कदम पर होशियार होने की कोशिश करता। घर रहते समय कमीज पहनना एक दिन मैंने छोड़ दिया। कम से कम कमीजों की उम्र कुछ और लंबी हो जाए। फिर अपनी श्रीमती के सामने नंगे बदन रहना कौन बड़ी बात है? यह तो अपना ही शरीर ठहरा। मेरी पीठ और छाती पर जगह-जगह धब्बों की निशानी है, पीठ पर जगह-जगह लंबे बाल हैं, छाती पर बेर जैसा उभरा एक गुट्टा है, उस गुट्टे पर भी कुछ लंबे बाल जमे हैं।—

पिताजी बिलकुल अपने ही शरीर का वर्णन कर रहे हैं। सुरभि कुछ देर सोचती रही। क्या पिताजी यह सब अपनी ही बातें कहे जा रहे हैं? सुरभि का मन कुछ भारी-भारी-सा हो आया।

हां, यही तो है शरीर! कहीं डाका डालने के लिए जाते समय तो पुलिस की गोली की निशानी इस पर नहीं है न? फिर जिस नारी की सारी जिंदगी ही उघड़ गई हो, भला उसके सामने शरीर को उघड़े रखने में कौन-सी बड़ी बात है? हालांकि एक परदा रखा जा सकता तो अच्छा था। परदा रहने पर एक तरह का मोह भी रहता है। पर जब कमीज नहीं हैं, तो फिर क्या किया जाए? एक दिन सुबह बिस्तर से उठते ही याद आई, एक कमीज तो श्रीमती ने धो दिया है। दूसरी कमीज पहनकर कल ही दफ्तर गया था। उसे और दो दिन पहना जा सकता है। इस विचार से सुबह कमीज पहने बगैर ही बिता दी। और वैसा करने में तो कोई खास बुरा भी नहीं लगा।

फटी-पुरानी होने पर भी एक बनियान, कुछ दिन शरीर पर थी। पर जब रसोई-घर के सिरे पर थोड़ी-सी जगह निकाल, मिर्च और बारहमासे बैंगन के कुछ पौधे लगाने का आयोजन किया, तो बनियान पहनना छोड़ दिया। शरीर पर धूल-धक्कड़ लगे, तभी शरीर को धोते ही साफ हो जाएगा मगर बनियान से छेड़-छाड़ करने की क्या जरूरत

है ? झूठ-मूठ, साबुन का खर्च ही तो बढ़ेगा।

इसके बाद अनेक वर्ष निकल गए। आजकल घर में घुसते ही मैं खुले बदन हो जाता हूं। तन-मन हल्का लगता है। श्रीमती की सहेलियां पास-पड़ोस की बहुएं आती हैं, वे अपनी बातचीत करती रहती हैं, मैं अपने कामों में जुटा रहता हूं। सामने की ओर घर के चबूतरे के पास कुछ कतारो में राई, चूका, धनियां के पौधे लगाए थे, शाम को उनकी देखभाल करता हूं, सड़क पर से उन्नीस-बीस साल की लड़कियां झुंडों में आती-जाती रहती हैं, पर मुझे जरा भी परेशानी नहीं लगती। परेशानी-बेचैनी के लिए तो अब मेरी जिंदगी में कोई जगह ही नहीं रह गई है। जैसे अरबी के पत्ते पर पानी लगा नहीं रहता, वैसे ही।

और फिर परेशानी होने पर उसे ढके रहने का कोई इंतजाम मैं कर नहीं सका। दिन-ब-दिन मैं बड़ा ही दरिद्र होता गया। अपने विवाह का उधार सात सौ अस्सी रुपया चुकाना अभी बाकी ही था, तभी मेरी पहली बेटी का जन्म हुआ। और तब मेरा उधार ग्यारह सौ तक बढ़ गया। उस ग्यारह सौ का सात सौ चुकाते न चुकाते मेरे पिता का स्वर्गवास हो गया, अगर वे मेरे मरने के बाद तक जिंदा रहते, तो वे कुल मिलाकर मेरा जितना कुछ खा-पीकर मरते, उसकी अपेक्षा पिता के श्राद्ध में बहुत ज्यादा खर्च मुझे करना पड़ा था। अपनी नन्हीं बच्ची को जरा-सा पानीदार दूध पिलाने में भी मुझे हाहाकार करना पड़ता था। पर पिताजी के श्राद्ध में अस्सी रुपए की एक गाय दान करना पड़ा था। मेरा उधार फिर बढ़कर बारह सौ हो गया था। उसके बाद मेरी सास चल बसी, ससुर चल बसे, मेरे और दो बेटे हुए और इस जन्म-मृत्यु के साथ-साथ मैं उतना ही ज्यादा स्वत्वहीन होता गया था। जिस औरत के सामने खुला शरीर लेकर निकलते हुए मुझे शर्म आती थी, उसी के शरीर को ढंक नहीं पाता, ऐसी शर्म को मैंने शर्म मानना ही छोड़ दिया था। मेरे साथ कभी-कभी साग-सब्जी बाग में काम करते समय वह वही मेखला पहन लेती, जिसे उसने विवाह मंडप में होम के सामने पहना था। बगैर पहने चारा भी क्या था ? इसके अलावा मैं अपने बच्चों को बचपन से ही नंगे बदन रहने की बात सिखाता रहा।

अब तो मेरी पहली लड़की किशोरी हो आई है। इतनी बड़ी हो गई है कि अब उसे घर में रखा ही नहीं जा सकता।

सुरभि ने लालटेन को तेज कर दिया। इस बीच एक मच्छर उसके पैर में काट गया था; वह मच्छर के काटने की जगह खुजलाने के लिए हाथ मेज के नीचे ले गई थी। मगर अब हाथ को वापस लाकर वह सीधी होकर बैठ गई।

पहली संतान होने के कारण ही शायद इस लड़की को मैंने बडे ही प्यार से पाला-पोसा है। मगर उसे सिर्फ प्यार के सिवा और कुछ भी तो मैं नहीं दे सका हूं। उसे क्या-क्या देकर बड़ा करना चाहिए था, यह बात सोचते ही मेरे मन में यह भावना जगती है कि उसे किसी बड़े आदमी के यहां पैदा होना था। कभी मैंने अनधिकार चर्चा

भी कर डाली थी; बीच-बीच में शाम को साहित्य-विषयक चर्चा-गोष्ठी में जा बैठता था; परंतु वहा से लौटने पर प्रायः देखता था, श्रीमती एक हाथ से उसे गोद में ले, दूसरे हाथ से चूल्हे पर भाजी-तरकारी चला रही हैं। पता नहीं, भूख के मारे या आंखों में धुआं घुसने के कारण बच्ची जोर-जोर से रोतीं रहती थी। उस दृश्य के साथ साहित्य की चर्चा गोष्ठी का कोई संबध नहीं था, न कोई तुलना ही थी। तब मैंने चर्चा-गोष्ठी में जाना भी छोड़ दिया था। अब अगर कोई कहता है कि मैंने सिर्फ उसी के कारण अपनी साहित्य-चर्चा छोड़ दी, तो मुझे कोई एतराज नही। सुबह-शाम मैं गोद में ले, उसे बहलाता, उससे खेल-तमाशे करता और इसी तरह बहुत दिन बिता दिए। अब भी मुझे उसे गोद में लेने की इच्छा होती है, उससे खेल-तमाशा करने का जी चाहता है। पर अब तो वह काफी बड़ी हो आई है, उसके लिए वे खेल-तमाशे पुराने हो गए, उसके देह-मन के सामने मैं दिन-ब-दिन ज्यादा अक्षम, ज्यादा बेकार हो गया हूं।

ऐसी स्थिति में मेरे लिए एकमात्र आनंद की बात यही है कि इस बीच एक लड़के के साथ उसका दिल जुड़ गया है।

सुरभि सांस छोड़ना भी भूल-सी गई थी। बड़ी तेजी से मानो वह अक्षरों को निगलती जा रही थी।

मुझे बड़ी खुशी हुई है। इस कमजोर शरीर से इधर-उधर चक्कर लगाकर एक लड़के की खोज करने की दुश्चिंता से उसने मुझे छुटकारा दे दिया है। और छुटकारा भला नहीं देगी तो क्यों? वह तो मेरा दुख समझने वाली लड़की ठहरी!

मगर मेरी दुश्चिंताएं खत्म नहीं हुई हैं। भला मैं उसे उस लड़के को हाथ कैसे थमा दूं? मेरी पहली लड़की का विवाह ठहरा! उसके कपाल पर बीचों बीच एक लाल बेंदी रहेगी, उस बेंदी से उसके दोनों गालों पर छोटी-छोटी बेंदियों की दो कतारें निकली रहेंगी। उसके गला, कान, हाथ, कपाल हर जगह सोने के बीच से अनगिनत मणियां जगमताती रहेंगी! कभी वह मुझे प्रणाम करने आएगी, खम-खमे कपड़े के अंदर से हाथ निकालने में उसे दूसरों की मदद की जरूरत होगी। चरण छूने आकर वह मेरे पैरों पर लोट जाएगी। उसके विवाह के नाम पर मुझे भी एक नई कमीज पहननी होगी। उसी कमीज की आस्तीन से मैं अपनी आंखें पोंछूंगा। उस समय दूर बैंड-पार्टी की बजाई धुन बड़ी वेदना भरी सुनाई पड़ेगी।

यह सब तो मैं सोचता हूं जरूर; मगर मुझे मालूम है कि यह सब सोचकर कोई फायदा नहीं है। अपने विवाह में भी बैंड-पार्टी वालों को बुलवाया था। परंतु बाद के दिनों में वे बातें सोचने पर मुझे लगता था जैसे मेरी जिदगी की खाल उतारकर किसी ने उससे एक ढोल बना ली हो, और बड़े ही निर्मम हाथों से दिन-रात वही ढोल बजाता रहा हो। आज से तीन साल पहले ढाई सौ रुपए की आखिरी किस्त देकर मैं उस उधार से छुटकारा पा सका हूं। उस उधार में चाहे एक रुपया ही क्यों न हो, मेरे विवाह का उधार ही समाया हुआ था। भला अपने छिले कधों पर जिंदगी-भर के उधार का जुआ

चढ़ा लेने की हम दंपत्ति को ज़रूरत ही क्या थी? अपनी जवान बेटी को सामने रख, अपने विवाह की बात सोचने में सचमुच मुझे बड़ी विरक्ति हो रही है। दफ्तर का सहकर्मी अगर एक कप चाय पिलाना चाहता है तो दसों जोड़े-बटोरे युक्ति-तर्क दिखाकर मुंह मोड़ लेता हूं। और तुर्रा यह कि अपने विवाह के अवसर पर उधार ली गई रकम से पांच सौ लोगों को रसगुल्ले और पूड़ी-तरकारी खिलाई! उस रकम से तो मुझे गट्ठे भर जमीन मिल जाती। वहां एक झोपड़ी बनाकर हम दोनों 'अपना घर है' मानकर सिर छिपा सकते थे।

और उस विवाह में मेरे आत्मीय-स्वजन, कागज में मोड़कर पंद्रह 'शराई', और सात 'बटा' उपहार दे गए। उन शराइयों से सिर्फ दुर्भाग्य के सिवा और किसी का स्वागत मैं कर नहीं सका। एक भी 'बटा' को नियमानुसार 'तामोल-पान' से सजाए नहीं रख सका।

झूठ! यह सब झूठ है। आजकल अपनी यहां-वहां दरकी हुई धोती को तहकर कमर में लगा लेते समय मुझे सदैव महसूस होता है—हां, मेरे सहकर्मी हृदयानंद की कही हुई बात ही सही है। धोखे की पोशाक पहनकर जिदगी के एक सच्चे नाटक का अभिनय आरंभ करने की कोई जरूरत नहीं है। जिदगी में मुझे बड़ी तकलीफ झेलनी पड़ी है। अपनी संतान को मैं ऐसी तकलीफ होने देना नहीं चाहता। मैं अब कोई नाटक करने वाला नहीं हूं।

इसी कारण आज मैंने अपनी बिटिया को अपने पास बिठा लिया है। मुझे शर्म नहीं आ रही है। एक बाप के रूप में जिदगी-भर उनके सामने इतना ज्यादा शर्मिदा होता रहा कि आज अब मुझे कोई शर्म ही नहीं आ रही। उसके हाथ में कागज-कलम दे, एक चिट्ठी लिखने को कह दिया है—उस लड़के के नाम, जिससे उसके दिल का आदान-प्रदान हो चुका है। मैंने आंखें मूंदकर कहा—मैं कहता जाता हूं, तू लिखती जा—

"मेरे प्यारे जी।

हमारे विवाह के बारे में आप क्या सोच रहे हैं, मुझे पता नही। शायद आपने बड़ी तकलीफ उठाकर पैसे जुटाए है। विवाह के खर्च के बारे में सोच-विचार करने में शायद आप अभी से अपना कुछ शौक छोड़ चुके हैं। अपने मन की शौक के मुताबिक विवाह का आयोजन करने हेतु बहुत चिता कर रहे हैं। परतु जी, विवाह का शौक पूरा होने के बाद जिन शौकों को छोड़कर आपने रकम जुटाई है, क्या फिर आगे उन शौकों को पूरा करने का मौका आपको मिलेगा? हमारे पिताजी का तो कहना है—आज तक तो उनके दिन शौक छोड़ते ही बीते हैं। उनके विचार से अब उनका सिर्फ एक ही शौक रह गया है वह है, हमारा विवाह न देखने का शौक।

सुरभि की छाती के अंदर मरोड़ उठी। उसका पूरा शरीर मानो चीख पड़ा।

आप समझ गए न, एक बात कहने में मुझे जरा भी शर्म नहीं है। बात यह है कि

हमारे पिताजी जैसे संबलविहीन, दुर्भाग्यग्रसित जीव दुनिया में बहुत कम हैं। आपको यह बात समझनी चाहिएं। हमारी मां जब पहले-पहल बूटेदार कपड़े पहन पिताजी के पास आई थी, कहते हैं, पिताजी मन-ही-मन बडे शंकित हो उठे थे। सोचने लगे थे, भला इस खूबसूरत, कीमती कपड़े पहनने वाली को मैं किस तरह से रख सकूंगा ? परंतु धीरे-धीरे मां का अकिचन रूप भी खुलने लगा था। पिताजी ने खुद ही वह रूप खोल दिया था। अब भी मां वह बूटेदार मेखला पहनती हैं जरूर, पर दूसरे कपड़े ठीक समय पर जब सूखते नहीं, तभी पहनती हैं। इसका मतलब आप समझ गए न। पिताजी मुझे भी अधिक कपड़े लत्ते दे नहीं पाए, नहीं तो मां मेरे उन्हीं कपड़ों को पहनती। मां को समझने में पिताजी को जितना वक्त लगा था, मैं आपके लिए वह वक्त और घटा दे रही हूं। अपना एक परिचय आज ही दे रही हूं! थियेटर के पहनावे की भांति कपड़े पहनकर एक दिन सामने खडे होने का एक कीमती मजाक अगर न करें तो क्या काम नहीं चलेगा ?

हा, आप सुनिए, आज पिताजी ने मेरे सामने आखों से आंसू पोंछे थे। दरअसल कोई भी लड़की अपने बाप के आंसू देख नहीं पाती। पिताजी कह रहे थे—बेटी, तेरे हाथ पीले करने के इरादे से मैंने कुछ रकम जुटाई है जरूर, पर भला बता तो वह रकम कुछ लोगों को रसगुल्ले खिलाकर किसलिए खर्च कर डालूं? इसकी अपेक्षा कभी अगर हम दोनों बूढ़े-बुढ़िया तुम लोगों के यहां पहुंच जाएं और तुम लोग किसी से उधार लिए बगैर हमें खरीद कर दो रसगुल्ले खिला सको, तो हमें कितनी खुशी होगी ?

प्रिय , पिताजी तो रसगुल्ले खिलाए जाने वाला विवाह करवाना ही नहीं चाहते, और तो और, किसी हाकिम को बुलवाकर एक कागज पर सही करवाने की बात भी वे नहीं सोचते। क्योंकि उनके विचार से तो हमारे मन की अपेक्षा कोई हाकिम, कोई कागज बड़ा नहीं है। और तो और, अगर हम सोचें कि हम सुखी होंगे तो मैं आपके पास भागकर भी चली जाऊ तो पिताजी बुरा नही मानेंगे। क्योंकि मैं सुखी रहूंगी, ऐसी कोई गारंटी देकर तो पिताजी कोई लडका चुनकर नही ला सकते। और दूसरी बात यह है कि रसगुल्ले का स्वाद और मेरे निकल भागने की कहानी, इन दोनों विषयों को लोग एक ही बराबर समय में भूल जाएगे।

तब फिर मेरे हाथ पीले करने के लिए पिताजी ने जो रकम जुटाई है और मुझे अपनाने के लिए आपने जो रकम जुटाई होगी, उन सबको मिलाकर हम अपने लिए एक नई दुनिया क्यो न बसाएं ? विवाह तो हमीं दोनों का है न। तो फिर बेकार हम एक नाटक का आयोजन कर निःसंबल और पंगु क्यों हो जाएं ?

यही बात बताने के लिए मैं यह चिट्ठी लिख रही हूं। एक दिन मैं बिलकुल उसी तरह निकलने के लिए तैयार रहूंगी जैसे कि हम कहीं घूमने जा रहे हों। मां और पिताजी मुझे जी-भरकर आशीर्वाद देंगे। हां, आपको भी देंगे। उसके बाद आपके साथ मैं बड़ी लंबी-सी सुंदर राह पर घूमने निकल जाऊंगी। उससे ज्यादा शोर-गुल मचाकर

हम अपनी राह की शांति को विनष्ट न करें।

"अगर आप मुझसे प्यार करते हैं, तो आप मेरी बात रखें। हमारे भावी जीवन को, जर्जर देह-मन के मेरे पिताजी को परेशानी से बचाने के लिए यही काम आप करें, यह मेरी विनती है। मुझे लेने के लिए आप एक दिन आ जाएं!"

मैंने बड़े धीरे-धीरे बोलकर यह लिखवाया। बिटिया सिर झुकाए लिखती जा रही थी। बीच में उसकी आंखों से टप्-टप् कर आंसू की बूंदें कागज पर गिरने लगीं। आखिर मैंने उससे कहा—"हां, अब हो गया बेटी, अब अपनी सही कर दे। जल्द! सुन रही है न बेटी? सही कर दे, कर दे न!"

कहानी खत्म हो गई। सुरभि देर तक पत्थर-जैसी बैठी रही। फिर मूंगे के रंग के कागजों का दस्ता अपनी ओर खींच लिया। धीरे-धीरे, साफ अक्षरों में पूरी कहानी नहीं—सिर्फ आखिरी चिट्ठी की कापी करने लगी। लिखते-लिखते बीच में कागज पर टप्-टप् करते हुए उसके आंसू टपक पड़े। कापी बन जाने के बाद पिता की उस कहानी की आखिरी पंक्तियों पर उसने नजर डाली। "हां, अब हो गया बेटी, अब अपनी सही कर दे! सुन रही है न बेटी, सही कर दे। कर दे न!"

सुरभि ने चिट्ठी के आखिर में अपनी सही कर दी। दूसरे दिन प्रमोद का नाम-पता लिखकर चिट्ठी को वह डाक-पेटी में डाल आई।

1969

कब्रगाह

पूरब में मांस की दुकान वाला चौराहा और पश्चिम में शराब-भट्ठी नाम की जगह, इनके बीच के अंचल की सड़क पर दीनो की ड्यूटी पड़ी थी। राह के किनारे-किनारे इधर-उधर देखता हुआ वह कभी मांस की दुकान तक जाता, फिर वहां से मुड़कर शराब भट्ठी तक पहुंचता। पर ज्यादातर समय वह पूजा-मंडप के पास ही ठहरता-घूमता था। पूजा-मंडप के पास ही बस-स्टैंड है। विभिन्न चेहरों वाली, विभिन्न रंगों, नामों वाली बसों की यात्रा उसी स्टैंड के आसपास, समय-समय पर शुरू होती और समय पर खत्म होती। आधे घंटे पहले अगर कदम तल से 'मां-शीतला' नाम की बस आकर वहां रुकी, आधे घंटे बाद 'भाग्य लक्ष्मी' नाम की बस पलाशनि की ओर चल पड़ी। इस बीच हो सकता है कि 'दीपक' नाम की बस का हैंडीमैन कुरुवाधरा तक की सड़क के आस-पास के गांवों के नाम चीख-चीखकर पुकारना शुरू कर चुका हो। इस बस स्टैंड से आमतौर पर दिन में चार बसों की यात्रा शुरू होती और उतनी ही बसों की खत्म भी होती। इसके अलावा शहर में जितनी बसें रहतीं, उनके ड्राइवर हैंडीमैन उन्हें पास की—'यखिनीमरा' नाम की नदी के किनारे ले जाते और वहां बसों को ऊपर-नीचे अच्छी तरह से धोया करते। इन छह दिनो में पूजा के कारण इस बस स्टैंड की चहल-पहल बहुत ज्यादा बढ़ गई है। यखिनी मरा के किनारे कोई बस नहीं गई है; हर बस ने अपनी अस्वस्थता, जड़ता, बुढ़ापा—सब कुछ की उपेक्षा कर चारों ओर के गांवों से इस शहर का उत्सव-सूचक संबंध बनाए रखा है।

हर बस जैसे ही स्टैंड के पास पहुंचती दीनो तुरंत पूजा-मंडप से कुछ आगे बढ़ आता और बस के हर यात्री को गौर से देखने की कोशिश करता। इस शहर के चारों ओर लगभग पंद्रह-बीस मील तक के अंचल में ज्यादा आबादी और चाय बागान के मजदूरों की बहुत ज्यादा आबादी है। और पूजा देखने का उत्साह भी उन्हीं को सबसे ज्यादा रहता है। इसलिए बसों से वे ही झुंडों में उतरते रहे हैं। रंगीन रेशमी साड़ी पहने, चेहरे पर तेल मलकर चमकीली बनी, गठीले बदन वाली काली-काली युवतियां, बच्चों को गोद में लिए या पीठ पर बांधे प्रौढ़ महिलाएं, अच्छी तरह से बाल संवारे, गले में रूमाल बांधे, बड़प्पन के भाव भरे नौजवान, "पहले जैसी वह पूजा अब कहां देख पाओगे रे?" कहकर अफसोस और घमंड साथ-साथ दिखाने वाले बूढ़े, आदि विचित्र ढंग के यात्री बसों से उतर रहे थे। इनके बीच कहीं लखिमी और सरुमाइ भी हैं या

नहीं, यही देखने के लिए दीनो हर बस के आ पहुंचने के साथ ही गौर से देखता और उन्हें न देखकर कभी हताश होता और कभी आश्वस्त भी होता। जब तक दूसरी बस नहीं आ जाती, तब तक वह मांस की दुकान वाले चौराहे पर या शराब-भट्ठी की ओर चहलकदमी करता रहा। फिर कुछ देर बाद उसी पूजा-मंडप के आस-पास ठहरता-घूमता रहा। कभी-कभी ऐसा सदेह होने पर कि शायद उसके न रहने के समय ही कोई बस आई हो, और हो सकता है उसी में लखिमी आदि भी हों, वह हर बार मुड़कर बस स्टैड के आस-पास भलीभांति नजर दौड़ाता। नही, वे नहीं आई हैं।

दीनो को बड़ी विरक्ति होने लगी थी। वैसे तो आमतौर पर वह सामान्य-सी गरमी की परवाह ही नहीं करता, तिस पर आज ज्यादा गरमी भी नहीं है, फिर भी बार-बार सड़क के किनारे पैदल चक्कर लगाना छोड़ उसकी इच्छा हुई कि पूजा-मंडप की छाया में पड़ी एक बेंच पर बैठा रहे। बांह पर लटकती सीटी की डोरी के चारों ओर की उसकी खाकी कमीज पसीने से तर हो गई थी। सिर की टोपी को दो-एक बार उतारकर उसने देखा है कि टोपी की तेल-चिकट्टी वाला भीतरी हिस्सा भी कुछ भीग-सा गया है। बार-बार उसकी यही इच्छा हो रही थी कि अपने पैरों की पट्टियां, जूते, कमरबंद की पेटी—यह सब कुछ खोलकर, खुले में बैठ, टोपी से हवा करता रहे।

दूसरे दिनों की भंति आज वह सड़क के पास वाले दुकानदार के साथ बातचीत कर, दो-एक पान के बीड़े खाकर, मजे से ड्यूटी भी नहीं कर पा रहा था। जरा-सी बात पर उसका दिमाग गर्म हो जाता था। उसका मिजाज भी चिड़चिड़ा हो गया था। अचानक एक रिक्शा वाला 'है-है' करता, चीख-पुकार कर झगड़ा करने लगा। दीनो उसके पास चला गया! क्या हुआ? क्या हुआ?—मतलब यह कि शक्ति-धारिणी श्री दुर्गापूजा के उपलक्ष में जरा-सा ठर्रा चढ़ाकर शक्ति-संचय किए, शहर में पूजा देखने आए चाय-बागान के दो लोगों ने रिक्शे पर सवार हो समूचे शहर का चक्कर लगाया, अब उनके उतरते वक्त रिक्शावाला किराया मांग रहा है डेढ़ रुपया और दोनों उसे दे रहे हैं चार आने! रिक्शेवाले का कहना था कि दोनों डेढ़ घंटे से उसके रिक्शे पर से उतरे ही नहीं। उन दोनों का कहना था कि जिंदगी-भर में वे कुल मिलाकर बीस या पचीस मिनट से ज्यादा देर रिक्शे पर सवार ही नहीं हुए। दीनो ने उन दोनों को ऐसा डांटा जिससे उनका नशा हिरन हो जाए, और उन्हें रिक्शेवाले को एक रुपया देने को विवश किया। एक रुपया देकर उन दोनों ने "सारी दुनिया ही बेईमान है" जैसी कुछ बातें बड़बड़ाते हुए अपनी राह ली। घटना वही खत्म हो जानी चाहिए थी, पर खत्म नहीं हुई। दीनो उस रिक्शेवाले के साथ लगा ही रहा। "पहले से किराया तय न कर लोगों को रिक्शे पर चढ़ाता है"—कहकर उसने अपने डंडे को कई बार उसकी नाक के बिलकुल पास लेजा-लेजाकर, एक बार उसके हाथ में खोंस भी दिया। उसके बाद भी उसने चलते रिक्शे के पीछे धम्म से डंडा मारकर कहा—'जाओ भागो।'

असल में उस दिन दीनों की ड्यूटी थी ही नहीं। पंद्रह दिन पहले ही उसने थाने के ऊपर वाले अधिकारी से अनुरोध कर रखा था कि इस बार पूजा के समय में कम से कम एक दिन उसे छुट्टी दी जाए। और अगर छुट्टी देना संभव न भी हो, तो उसकी ड्यूटी रात को लगाई जाए। पिछले दिनों मां की बीमारी, खेती की जमीन का झगड़ा, छोटी बहन सरुमाइ के लिए लड़का देखने जाना, और बीच-बीच में, लखिमी को ही देखने के लिए कहना सही नहीं होगा, वैसे ही घर जाने-आने में उसकी मिलने वाली सारी छुट्टिया खत्म हो गई थीं, नहीं तो वह यों ड्यूटी से छुटकारा देने का अनुरोध नहीं करता। उसका ऊपर वाला अधिकारी बहुत नीचे के पद से प्रोमोशन पाकर अधिकारी-पद पर पहुंचा था; वह बहुत कड़े मिजाज का था। उसके विचार से सिपाहियों की ड्यूटी में हेर-फेर होना और इस पैर के जूते को उस पैर में पहनना, बराबर था। भले ही वैसा करना संभव हो फिर भी वह अनियम है, कष्टदायक है और अशोभनीय भी है। फिर भी उन्होंने दीनो को वचन दिया था, ठीक है, एक दिन दीनो को दिन के समय की ड्यूटी से छुटकारा दिया जाएगा। परंतु किसी भी दिन होने से ही तो काम नही चलेगा, निश्चित रूप से किस दिन उसे छुटकारा मिलता है, जान लेने पर ही तो वह पहले से सारा इंतजाम उसके अनुसार कर सकेगा। आखिरकार तय हुआ था, नवमी पूजा के दिन रात को दस बजे तक उसकी ड्यूटी नहीं रहेगी। यह तय हो जाते ही दूसरे दिन वह गांव जाकर निश्चित कर आया कि नवमी के दिन लखिमी और सरुमाइ दोपहर को शहर आएं, शाम होने तक वह उन्हें शहर की पूजा दिखाएगा, शाम को वह खुद आकर उन्हें घर पहुंचा जाएगा, उसके बाद लौटने पर अगर जरूरत हो तो ड्यूटी करेगा। यहाँ तक जाने-आने में उन्हें कोई असुविधा नहीं होगी। क्योंकि पूजा के अवसर पर उनके गांव की सड़क से होकर आधी रात तक बसों का आना-जाना जारी रहेगा।

मगर सरुमाइ ने एक असुविधा के बारे में उल्लेख किया था। वे तो सिर्फ दो लड़कियां है, साथ जाने वाला कोई है नहीं, अकेले उनका शहर जाना क्या··

—नहीं, नहीं, उससे क्या होता है? दिन के उजाले में, सिर्फ बीस मील ही तो है? वहां जाकर बस पर बैठ जाना, सीधे शहर पहुंच जाओगी। और वहां के मोटर-स्टैंड पर तो मैं खुद रहूंगा ही। दीनो ने जैसे शहर और उनके गांव को एक खिड़की वाली दीवार के इस पार-उस पार मानकर बात को हल्का कर दिया था।

मगर गांव से लौटते समय दीनो के मन में कुछ शका-सी हुई थी। कहीं लखिमी शहर जाने में किसी अड़चन की बात छेड़ बैठे तब? क्या एक बार उसके बारे में सरुमाइ से पूछना अच्छा रहेगा?—लेकिन उसने कुछ पूछा नहीं। सरुमाइ के सामने बार-बार लखिमी का नाम उच्चारण करने में उसे शर्म आई। इसके अलावा उसे यह भी पता है कि सरुमाइ के कहने पर; खासकर सारी व्यवस्था दीनो ने ही कर रखी है, सुनकर लखिमी कोई एतराज नहीं करेगी।

आजकल लखिमी के सामने दीनो को सचमुच शर्म-सी लगी रहती है। वैसे

आमना-सामना होने पर कोई बात छेड़ने में उसे कोई खास अड़चन नहीं होती। प्रचंड हिम्मत रखने वाला पुलिस-सिपाही ठहरा। कितनी ही औरतों, नवयुवतियों को अफीम बेचने, गहने चुराने, अंदर से दरवाजा खोलकर चोर को घर में छिपा लेने आदि के जुर्म मनवा लेने के लिए डांट-डपटकर रुला डालता रहा है; फिर भी उसके कोई बात पूछने पर लखिमी जैसा करती है, उससे दीनो को शर्म-सी लग जाती है। दूसरी बार उससे कुछ पूछने में उसे खुद झिझक-सी होने लगती है। ऐसा भी एक समय था जबकि शहर के स्कूल के साथी से सीखी रसीली बातें कहते हुए वह लखिमी की फ्राक का फटा हिस्सा इशारे से दिखलाकर चिढ़ाया करता था—क्यों री ? हवा लगने के लिए शायद मां ने कमीज पर खिड़की बना दी है—क्यों? तब लखिमी झट से मुड़कर फ्राक का फटा हिस्सा दीनो से छिपा लेती।

आजकल दीनो से आमना-सामना होने पर भी लखिमी समूचे शरीर को उससे मानो छिपाए रखने के लिए चादर को खींच-खींचकर फाड़ ही डालने की तैयारी करती। उसे ऐसा लगता, मानो सबके लिए बराबर माप की बनाई हुई चादरें उसके लिए छोटी हो जाती हैं। किसी जमाने में दीनो जिस खिड़की को लेकर मजाक करता, वह खिड़की लखिमी ने जैसे अब अपने मन में ही बना ली है, और चूंकि वह खिड़की हमेशा खुली रहती है, इसलिए दीनो का आमना-सामना होते ही लाल हो जाती है, उसकी जबान खो जाती है।

लखिमी के मां-बाप चल बसे। वह अपनी दादी के साथ रहती है, दूर रहने वाला एक मामा उनकी जमीन की देखभाल करता है। देखभाल का मतलब है, वह लखिमी और उसकी दादी के खाने लायक धान और दाल देता है। उपज का बचा सब-कुछ खुद ले जाता है। मामा सोचा करता है, लखिमी अगर किसी ओर लग जाए, बुढ़िया भी दुनिया से विदा ले ले तो फिर उन्हें धान-दाल देने की झंझट से भी छुटकारा मिल जाएगा। दीनो के साथ लखिमी की बात होने जैसी कुछ हुई है, ऐसी खबर मिलते ही वह एक दिन व्यस्त अभिभावक का बाना लिए शहर के थाने में आ पहुंचा था; दीनो से उसने पूछा था, तो फिर शुभकार्य में विलंब करने की जरूरत क्या है ?

दीनो बड़े संकोच से कुछ-कुछ शर्माता हुआ बोला था—और तो कोई असुविधा है नहीं। सिर्फ छोटी बहन की, याने सरुमाइ की कोई व्यवस्था पहले कर ली जा सके तो अच्छा होगा। उसने यह भी आशा प्रकट की थी कि लखिमी के मामा भी उधर कहीं कोई अच्छा लड़का मिले तो बताएं! मामा भी बड़े जोर से 'ठीक है, ठीक है' कहकर सहमति प्रकट कर गया, पर उसके बाद मौन साध लिया।

इनके सिवा लखिमी का और कोई अभिभावक तो है नहीं। सरुमाइ भी ज्यादातर उसी के साथ रहती, सरुमाइ की मां भी हमेशा बुढ़िया के बारे में खबर लेती रहती। कभी-कभी बुढ़िया लखिमी को पास बुलाकर उपदेश देती, तू अभी से उसके साथ ज्यादा हेल-मेल न रखना। गांव के लोग बुरा कहेंगे।

हालांकि गांव के लोग दीनो को बहुत मानते है। उसे कोई हेल-मेल करते देखकर भी कोई बुरा नहीं मानता। आज वे दोनों शहर जाने वाली हैं, जाते समय बुढ़िया ने 'दिन रहते लौट आना', और बस पर सवार होते समय दो-एक प्रौढ़ लोगों ने 'ठीक है, जाओ! मगर वहीं रह मत जाना। और आते समय हमारे लिए मिठाई-विठाई जो कुछ मिले, लेते आना',—ऐसी ही दो-चार बातों के सिवा और कुछ नहीं कहा।

ऐसी सुविधा रहने के कारण ही बहुत दिनों से दीनो के मन में एक शौक बस गया था—किसी पर्व-त्यौहार के अवसर पर अगर हो सके तो लखिमी को एक बार अच्छी तरह शहर घुमाकर दिखा लाए। शहर में कभी कोई देखने लायक चीज उसकी नजर में पड़ते ही उसे तुरंत लखिमी की याद आ जाती। उफ़, अगर किसी तरह से उसे भी यह दिखला सकता! शहर में सभा-समिति, तिथि उत्सव, पर्व-त्योहार आदि का कोई आयोजन होते ही डंडा हाथ में लिए सिर्फ गड़बड़ी होने की बू लेते फिरना, बड़ा नीरस काम है। उसके बीच अकेले लोगों के रंग-तमाशे देखकर घूमते रहना भी उसे बुरा लगता। ड्यूटी न रहने पर तो घर में घुसे रहना और ज्यादा विरक्ति कारक होता है। घर का मतलब है, एक लंबा-चौड़ा कमरा, जिसमें एक-दूसरे से सटी दस-बारह खटिया या चारपाई। रात को उनमें से पांच-छह पर लोग सोते हैं, शेष खाली पड़े रहते हैं। कमरे के चारों ओर कूड़ा-करकट बिखरा रहता है—मच्छरदानी लगाने की डोरियां, कपड़े रखने की रस्सी, पेटी रखने की रस्सी, टोपियां टांगने की कांटियां—आदि-आदि। इन सबके अलावा समय-असमय ताश की पत्तियों के उनतीस के खेल, बीड़ी की बू, मारपीट, चोरी-डकैती की ताजी सनसनीखेज खबरें, नए शिक्षार्थियों की बांसुरी की पिनपिनाहट, हर काठ की दरार में अनगिनत खटमलों का उपद्रव आदि तो हैं ही। बाहर दुर्गापूजा के समय उस घर में रहकर इन सबको सहन करना दीनो के लिए बड़ी तकलीफ का काम हो जाता है। वह प्रायः सोचा करता, वैसे ही किसी पूजा के समय में किसी दिन लखिमी आए और उसकी ड्यूटी उस दिन न पडे।

इस बार उसने उसी बात का मिलान कर लिया था। उस दिन उसकी ड्यूटी नहीं रहेगी, दोपहर को लखिमी और सरुमाइ आएंगी, वे चक्कर लगाकर पूजा देखेंगे, होटलों में चाय पीएंगे, मैटिनी-शो सिनेमा देखेंगे, शौक की दो-एक चीजें खरीदेंगे, और आगे अगर उसे और लखिमी को शर्माने का भाव न रहने जैसा महसूस हो, तो वे एक फोटो भी खिंचवा लेंगे। इसके लिए दीनो ने कुछ रकम भी जुटा रखी थी। खाकी लाग-पैंट में तो ड्यूटी की बू रह जाती है, इसी कारण उसने सफेद लागपैंट और एक सफेद कमीज लांड्री से धुलवाकर रख दी थी। यहां तक कि लांग-पैंट की कमर मे हुक लगाने की जगह का लाल दाग न मिटा पाने के कारण उसने लांड्रीवाले को डांटा भी था और लांड्रीवाला उलटे उससे बहस करने लगा था कि जंग का दाग भला कैसे मिट सकता है?

"परंतु जैसा सोचा था, वैसा हो नहीं पाया। एक कंपनी, जो सिनेमा दिखाने की मशीनें मोटर पर लिए जगह-जगह सिनेमा दिखाया करती थी, यहां से थोड़ी ही दूरी पर गांव के खुले मैदान में पूजा के दिनों सिनेमा दिखाने लगी थी। कल अष्टमी-पूजा के दिन रात को वहां मारपीट हो गई, मारपीट की आग तो कल ही बुझ चुकी थी, पर पता चला कि कुछ बदमाश अंगारो पर सूखी पत्तियां डालकर फूंक मार जलाने की कोशिश में हैं, इसलिए इन चंद दिनों के लिए उस अंचल में भी कुछ पुलिस-सिपाहियों को तैनात कर देना पड़ा; जिसकी वजह से शहर में सिपाही घट गए और दीनो की भी ड्यूटी पड़ गई।

यह खबर पाते ही दीनो ऊपर वाले अधिकारी के पास दौड़ गया था, बड़ी विनती की; उसके जवाब में उस अधिकारी ने कहा था कि दूसरे ऊपर वाले ने तो उसे उसी गांव में ड्यूटी लगा देने की बात कही थी, पर उन्होंने ही किसी तरह से दीनो की ड्यूटी शहर में ही लगा दी है। इसके अलावा पूजा के दिनों में आजकल 'इमरजेंसी' चल रही है।

इसका नतीजा यह हुआ की पूरब में मांस की दुकान वाले चौराहे और पश्चिम में शराब-भट्ठी के इस अंचल में दीनो की ड्यूटी पड़ी थी और वह बार-बार बड़ी बेचैनी से पूजा-मंडप में लौट आता और यात्रियों के झुंड में लखिमी और सरुमाइ को खोजता फिर रहा था। पूजा-मंडप के पास ही गड़बड़ी ज्यादा होती है, अपने मन से गढ़े इस विचार के कारण वह ज्यादातर वहीं चक्कर लगा रहा था। हर बस के यात्रियों में लखिमी आदि को न देख, वह कुछ निराश-सा हो जाता, और कभी-कभी ऐसा सोचकर आश्वस्त भी होता कि उनका आज न आना ही अच्छा है। किसी भी कारण से हो, वे अगर न आ सके तो वही अच्छा रहेगा। आज अगर वे आएंगी तो वह क्या करेगा? उसकी ड्यूटी कब खत्म होगी? जब उसे छुटकारा मिलेगा, उसके बाद भी क्या लखिमी आदि को दिखलाने को उसके लिए पूजा बची रहेगी? और फिर उन्हें तो गांव पहुंचा आना भी पड़ेगा न! नहीं-नहीं, आज उनके आने की कोई जरूरत नहीं।

पर दूसरे ही क्षण दीनो का मन दुख से भर उठा। वह अपने को बड़ा ही असहाय महसूस करने लगा। आज के इस दिन के लिए वह इतनी आशा लगाए हुए था। उसके वे सफेद कपड़े तह बिना खोले जस की तस उसकी टीन के सूटकेस में पड़े हुए हैं। उसकी ऊपरी जेब के बैग में तीस रुपए है। फोटो वाले की दुकान में फोटो खिचवाने में दस रुपए लगेंगे, उसने पहले ही पूछ कर पता कर लिया था। बनवारी लाल की दुकान भी आज खुली रहेगी, इसका भी पता है, और सबसे बड़ी बात है कि आज देर तक उसे लखिमी का चेहरा देखते रहने का मौका मिलेगा, ऐसी अजीब-सी आशा उसे है। इस शहर को भी नए रूपों में देखने की उसकी बड़ी चाह है।

दीनो धीरे-धीरे शराब-भट्ठी की ओर बढ़ गया। वहां से वह मुडकर वापस आ ही रहा था, तभी उसने देखा कि पीछे से एक बस चली आ रही है। बस उसे पारकर निकल ही जा रही थी, तभी उसने अचानक सिर उठाया। देखा, लखिमी बस की खिड़की के पास ही बैठी है। बस तेजी से आगे बढ़ गई थी। दोनों का समूचा शरीर मानो झनझना उठा। क्षणभर के लिए उसका हिताहित ज्ञान नहीं रहा। उसने तुरंत जेब से सीटी निकाल ली और जितनी जोर से हो सके, पूरा बल लगाकर सीटी फूंकी। बस थोड़ी दूर जाकर रुक गई। ऐसे पर्व-त्यौहारों के अवसरों पर बसें आपराधिक काम ज्यादा किया करती हैं, यह बात बस के ड्राइवर हैंडीमैन खुद ही ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं। इसी कारण दोनों अचानक चौंक पड़े, न जाने इस बार कौन-सी मुसीबत खड़ी हो गई। यात्रियों से ठसाठस भरी बस के पिछले दरवाजे पर किसी तरह से खड़े होकर दीनो भी सोचने लगा—अब वह क्या बताए कि बस को किसलिए रोका है? पहले तो वह कुछ गंभीर हो गया, हैंडीमैन को बस चलाने को कहा, उसके बाद चारों ओर इस तरह से नजर दौड़ाने लगा, मानो किसी भगोड़े बदमाश को, सिर्फ इसी बस में ही नहीं, हर बस के यात्रियों के बीच ढूंढ़ रहा हो। बस के अंदर खड़े लोगों के बीच आगे बढ़कर सरुमाइ और लखिमी के पास जाने की उसकी बड़ी ही इच्छा हो रही थी, पर अपनी इच्छा को उसने मन-ही-मन जबरन दबाए रखा।

बस-स्टैंड पर उतरते ही लखिमी एक बार शर्मीली नजरों से दीनो की ओर देख धीमे से मुस्कुराई। दीनो ने उसके पूरे शरीर पर एक बार नजर डाल ली। दो माह पहले उसने जो सिल्क की चादर उसे दी थी, उसे ही लेकर वह आई है। शहरी-जमीन पर पैर रखते ही मानो उसका चेहरा ज्यादा ही खुल गया है। उसके गाल, बांह, हाथ—संक्षेप में पूरा शरीर ही बड़े सुंदर ढंग से सुपुष्ट हो उठा है। उसके चेहरे का रंग इस बीच कब जरा-सा ललछौंहा हो उठा है, इन बातों पर तो अब तक उसका ध्यान ही नहीं गया था।

दीनो पहले सोच रहा था कि सरुमाइ और लखिमी के आते ही वह अपनी बदकिस्मती और दुख की बात उनसे बता देगा; परंतु लखिमी पर से नजर हटाते ही उसकी नजर सरुमाइ की आंखों में पड़ गई, लड़खड़ाती जबान से उसने पूछा—'अरे तुम लोगों को भला इतनी देर क्यों हो गई? मैं यहां कब से रुका हूं, बाट जोह रहा हूं। बाद मुझे लगा था कि तुम लोग अब आने वाली नहीं हो।'

सरुमाइ ने समझाते हुए कहा—'बसो में सीट नहीं थी, हम भी इंतजार में रुकी हुई थीं। लगातार आखिरकार हमने भी सोच लिया था कि आज जाना नहीं हो पाएगा।'

'आओ'—कहकर दीनो उन्हें राह के किनारे से आगे ले चला। परंतु उन्हें भला ले कहां जाए? दीनों का मन फिर खट्टा हो गया। तभी सरुमाइ ने पूछा—क्या अभी तुम्हारी ड्यूटी है?

—अरे अब पूछो मत। दीनो के चेहरे पर विरक्ति प्रकट हो उठी। उसे लगने लगा, उसके शरीर के खाकी कपड़े मांनो शेर की कुत्सित, बदबूदार कच्ची खाल हो।

कमर की पेटी, सीटी की डोरी ये मानो लोहे की जंजीरें हों। सिर पर टोपी उसे असहनीय भारी बोझ जैसी लगी। वह बोला—"इन गुंडों-बदमाशों की वजह से अब कहीं चैन नहीं रह गया है। कहीं किसी ने मार-पीट की, और उसके लिए इधर मेरी आज छुट्टी रद्द हो गई।"

गुंडों-बदमाशों का नाम सुनते ही लखिमी-सरुमाइ दोनों ने दीनो के चेहरे की ओर देखा। गुंडों-बदमाशों की तो बात ही क्या, सामान्य झगड़े से भी उन्हें बड़ा डर लगा करता है।

लखिमी तो खून का नाम भी सुनती है, तो उसका सिर चकरा जाता है। सरुमाइ ने झट दीनो से पूछ लिया—क्या कहीं झगड़ा-वगडा हुआ है ?

दीनो ने बात को हलका कर दिया। सरुमाइ ने पूछा—ड्यूटी कब खत्म होगी तुम्हारी ?

—क्या पता ? बताना तो मुश्किल है अभी ! नियम के मुताबिक तो छह बजे खत्म होती है। उसकी विरक्ति वैसे ही ऊपर-नीचे हो रही थी, जैसे कि बोतल में जिलाकर रखी मछली ऊपर-नीचे होती रहती है।

लखिमी ने सरुमाइ से धीमी आवाज में कुछ कहा, सरुमाइ ने 'हां' कहकर हामी भरी। लखिमी तो तब तक कुछ बोली ही नहीं थी। इसी कारण दीनो ने बड़े आग्रह से बहन से पूछा—'क्या है बता ?'

—कुछ नहीं, यह कह रही है कि आज अगर हम न आतीं तो अच्छा होता।

दीनो संत्रस्त हो उठा—नहीं, नहीं, कोई चिंता नही। मेरी ड्यूटी तो यहीं है। ड्यूटी का मतलब, बस सड़कों पर पूजा देखते हुए चक्कर लगाना ही तो है। इसमें कोई असुविधा नहीं होगी। आओ तुम लोग।

"तुम रुको न ! हम क्या उतनी तेजी से कदम बढ़ा सकती हैं ?" —सरुमाइ बोली।

दीनो ठिठककर रुक गया। हालांकि उसने तेजी से कदम नहीं बढाया था, फिर भी कुछ आगे बढ़ गया था। कदम से कदम मिलाकर चलने का अभ्यास तो उसने बहुत किया है, परंतु लखिमी आदि जैसे के साथ कदम से कदम मिलाने की आदत उसकी बिलकुल नहीं रही है। उसकी नजर एक बार लखिमी के पैरों की ओर गई। शहर की लड़कियों के पैर जैसे वह देखता है, वैसे ही उसके भी पैर थे—धीर, छोटे, कोमल से। उसका मन अचानक प्रसन्नता और संतोष की भावना से भरने लगा, पर उसके अपने पैरो के भारी बूटो के तले से निकली कठोर आवाज से वह परेशान-सा हो उठा।

चलते-चलते वे पूजा-मंडप के पास पहुंचे। सड़क के किनारे बाहरी आमों के व्यापारी मनोहर प्रसाद की नजर उन पर पड़ी। दीनो के साथ वह हेल-मेल रखता था। उसने सड़क से उस ओर से कुछ आवाज कर, इशारे से दीनो को बुलाया। दीनो रुक गया, दोनों लडकिया आगे बढ़ गई। सड़क पार कर मनोहर प्रसाद उसके पास आ गया। कुछ गोपनीय बात पूछना चाहता है, ऐसी भंगिमा से पूछा—"क्या हुआ ?"

दीनो ने पूछा—"क्या—क्या हुआ ? क्या बात है ?"

मनोहर प्रसाद ने आंख के इशारे से लखिमी-सरुमाइ को दिखाया। क्षणभर में ही मानो खून की एक तेज धार उमड़कर सिर की ओर बह गई। मनोहर प्रसाद के इशारे को उसने पूरा नहीं होने दिया और तुरंत उलटकर कहा—'वह मेरी बहन है, छोटी बहन ! और वह, वह हमारे गांव की ही लड़की है, उसकी सहेली।'

मनोहर प्रसाद ने तुरंत ऐसी सौम्य-मूर्ति धारण कर ली, मानो आश्रम में कन्याओं की देखभाल करने वाला कोई ऋषि हो। पान के बीड़े, किमाम, जर्दा आदि के मारे खून जैसे लाल दांतों को निपोर कर, वह एक बार तो 'हा-हा' कर ठहाके मारे, फिर कहा—'पूजा देखने आई हैं ? हां-हां दिखाइए-दिखाइए। हमारे उधर बड़े बाजार के पास भी एक बड़ी पूजा हो रही है न, एक बार उधर भी ले जाएं।

दीनो का चेहरा गंभीर था। वह आगे बढ़ गया।

दीनो जैसे लोगों को आमतौर पर गड़बड़ियों से जुड़े लोगों के साथ-साथ कदम मिलाना पड़ता है और प्रायः वे थाने की तरफ बढ जाते हैं। ऐसे पूजा आदि पर्व-त्योहारों के अवसर पर कभी-कभी ऐसी औरतें, जिनके साथ अभिभावक नहीं होते, मुसीबत में पड़ जाती हैं, और उनको मुसीबत से उबारने वालों के रूप में कुछ लोग शहर में लगातार चक्कर लगाते रहते हैं।

—'पूजा निकल जाए, उसके बाद उससे एक बार मिलना होगा।' —मन में सोचते हुए दीनो ने मनोहर प्रसाद पर दांत पीसे।

कहीं एक मोटर साइकिल की धड़धड़ाहट की आवाज सुन दीनो ने कान खड़े कर पता लगाया। नहीं, यह तो दूसरे किसी की है, थाने के ओ. सी. की भी एक मोटर-साइकिल है। उसकी आवाज जानी-पहचानी है।

लखिमी और सरुमाइ के पास वह पहुंचा ही था, तभी अचानक उसके पैरों की रफ्तार धीमी हो गई। यों लखिमी और सरुमाइ के साथ-साथ चलने में उसके लिए एक अड़चन और भी है। अगर उसका ऊपर वाला कहीं इधर आ निकले तो। खासकर वह जो तिवारी है, उसका तो कहना ही क्या है। अपने बाल-बच्चों-पत्नी को सात सौ मील दूर रखकर सिर्फ पोस्ट-कार्ड, मनीआर्डर पर भरोसा रखे, वह बड़े आराम से, मजे में साल-दर-साल नौकरी करता रहा है। अगर वह देख ले कि दीनो इन दोनों किशोरियों को साथ लिए ड्यूटी कर रहा है, तब क्या वह दीनो को यों ही छोड़ देगा ?

अपने आगे-आगे जा रही लखिमी की ओर दीनो ने करुणा-भरी नजरों से देखा। कदम बढ़ाते समय मानो उसका समूचा शरीर धीर-गति से नाच-सा रहा हो। दीनो की दी हुई सिल्क की वह चादर उस नाच में रुकावट डाल रही है, उलझाव पैदा कर रही है। दीनो की इच्छा हुई, वह एक बार लखिमी की पीठ को, उसकी चादर को अपने हाथ से धीमे से सहलाए।

लखिमी और सरुमाइ के बराबर पहुंचने के लिए उसने जरा तेजी से कदम बढ़ा

दिए। अब चाहे जो हो। वह चक्कर भी लगाएगा, ड्यूटी भी करेगा। फिर ड्यूटी खत्म होने पर शाम को उन दोनों को घर पहुंचा आएगा। परंतु मांस की दुकान और शराब-भट्ठी, इसी के बीच चक्कर लगाना है।

एक बार धीमी आवाज में कुछ सकुचाता हुआ दीनो सरुमाइ की ओर देखता, लखिमी के उद्देश्य से बोला—'असल में यहां टाउन-शहर कहने को सिर्फ यही सड़क भर ही है। समझीं? अच्छी-अच्छी सारी दुकानें यहीं हैं। उस ओर एक सड़क और भी है। वहीं कचहरी-घर, सिनेमा-हाल, हमारा थाना, आदि हैं। उधर बेकार बहुत ज्यादा भीड़भाड़, शोरगुल आदि होता रहता है। तिस पर पूजा के इस दौरान तो अच्छे, सज्जन लोग उस ओर चलना-फिरना एक तरह से छोड़ ही चुके हैं।

शहर तो छोटा-सा जरूर है, पर दीनो के कहे मुताबिक उतना छोटा भी नहीं। इसीलिए वह बात कहकर दीनो को खुद भी अफसोस हुआ। किसी तरह से अगर इसी क्षण इमरजेंसी खत्म हो जाए, इसी क्षण अगर सिपाही उस गांव से लौट आएं, और उनमें से कोई एक सिपाही यहां आकर उसे घंटे-भर के लिए ड्यूटी से छुटकारा दिला दे तो उसे बड़ी तसल्ली मिल सकती है।

उन सबकी संभावना तो है नहीं, इधर उसके हाथ में जो कुछ घंटे रह गए हैं, वे भी निकलते जा रहे हैं। इसलिए वह जो कुछ करना चाहता है, वह शुरू कर देना ही अच्छा है।

—क्या तुम्हें भूख नहीं लगी है?—और कुछ दूर पैदल जाकर दीनो ने पूछा। पूछकर लखिमी पर जैसे ही नजर डाली, उसने सिर झुका लिया। सरुमाइ ने भी कोई जवाब नही दिया।

—तो चलो आगे कहकर उसने जैसे ही होटल का नाम उल्लेख करना चाहा—अचानक रुक गया। दूर लोगों का एक झुंड इकट्ठा हो गया था। उस झुंड से शोर-गुल की आवाज भी आ रही थी।

—जरा देर तुम लोग एक काम करो। दीनो व्यस्त-सा हो उठा।—चलो, तुम लोग उस पूजा-घर मे दुर्गा-प्रतिमा के दर्शन कर लो, और वहीं थोड़ी देर बैठो भी। मैं झट से वहां क्या हो रहा है। देख आऊं।

पूजा-घर के छप्पर के नीचे सरुमाइ और लखिमी को छोडकर दीनो सिपाही तेज कदमों से लोगों के उस झुंड की ओर बढ़ गया।

गड़बड़ी कोई खास न थी! एक आदमी वहां छुरी-कटारी-बेच रहा था। अपने दो रुपए वाली छुरियों की कीमत अचानक घटाकर उसने आठ-आठ आने में बेचने का निर्णय किया। जिससे खरीदने वालों में होड़ लग गई और उसी बीच कोई एक आना भी दिए बगैर उसकी चार छुरियां उठा ले गया। कौन ले गया है, कौन जाने? पर वहां इकट्ठे लोगों ने यह घोषणा कर दी है कि उनमें से अगर वह व्यापारी किसी पर संदेह करेगा तो वे छुरी से उसका पेट फाड़ डालेंगे। तभी दीनो वहां पहुंचा। बहुत ज्यादा सोच-विचार करने का धीरज दीनो को नहीं रहा था। सरकारी सड़क के बीच फटा

कपड़ा बिछाकर दुकान लगाने के अपराध के कारण उसने उस व्यापारी के सिर पर दो-तीन बार अपना डंडा घुमाया और अपने हाथों से उसकी छुरी-कटारियों को उस फटे कपड़े में लपेट एक पोटली बनाई और राह के किनारे के एक बरामदे में धप्प से उस पोटली को पटक दिया। इसके बाद वह पूजा-मंडप में चला आया।

पूजा-मंडप में लखिमी और सरुमाइ एक-दूसरे से सटी-सी खड़ी थी। उनके पास ही एक बेंच भी पड़ी थी, पर वे बैठी न थीं। न जाने किसकी बेंच है वह, किसने किसके बैठने के लिए वहां रखी है क्या पता?

दूर से उन पर नजर डाल दीनो के मन में बड़ा बुरा लगा। उन दोनों के चेहरों पर कालिमा आ गई थी। दीनो को लगा, मानो वे दोनों डरी हुई हैं, या काफी थकी हुई हैं। चारों ओर के लोगों में से कुछ तो सीधे-सीधे, कुछ तिरछी निगाह डाले, और कुछ आंखें घुमाए उनकी ओर देख रहे है। दीनो को लगा मानो उसने कोई अपराध कर डाला हो। उसने सोच लिया—नहीं, अब वह इन दोनों का साथ नहीं छोड़ेगा।

लेकिन वह साथ रह नहीं सका। सूरज ढलते ही मानो समूचे शहर के लोगों का अपना-अपना काम पूरा हो गया। नवमी-पूजा की शाम को सजीव बनाने के सिवा और किसी का जैसे कोई काम ही नहीं रहा। दुकान-बाजार, सड़कें-गलियां धीरे-धीरे लोगों से भर गए। साथ ही लोग भी मानो धीरे-धीरे प्राण-प्राचुर्य से भर उठे।

दीनो सड़क के पास उन लोगों को जरा ठहरने के लिए कहकर पहले अपने मन में जैसा कि तय कर रखा था, एक चाय की दुकान में जाकर औरतों के बैठने के पर्देवाले कमरे में झाक आया। कोई कमरा खाली न था। हर कमरे में मर्द ही बैठे हुए थे। उसने सोचा, थोड़ी देर बाद फिर एक बार देख जाएगा। वह लखिमी-सरुमाइ को मांस की दुकान वाले चौराहे तक ले जाकर एक बार घुमा लाया। उन दोनों के कदम धीरे-धीरे और धीमे होते जा रहे थे। इसलिए उस चाय की दुकान में आकर इस बार भी कमरों को लोगों से भरा हुआ देखा, तब दीनो ने हिम्मत बांधकर खुले में रखी एक मेज के सामने उन दोनों को बिठा दिया, और उनके आमने-सामने खुद भी बैठ गया। बैठते ही उसने संकोच भरी नजरो से चारों ओर के लोगों को एक बार देखा। और लगभग हर आदमी की आंखों में उसकी नजर पड़ी। उस घिरे-से कमरे में हवा भी मानो नहीं आ रही थी। तिस पर अपने खाकी कपड़ों की वर्दी की यंत्रणा से वह अंदर-ही-अंदर पसीना-पसीना हो गया।

—क्या तुम लोगों के पैरों में दर्द हो रहा है? अपने अपराधी मन को ढके रखकर दीनो लखिमी और सरुमाइ की खुशामद करने की कोशिश करने लगा। उसके पूछने पर सरुमाइ धीमी आवाज में बोली—नहीं, नही, दर्द नहीं है। लखिमी का चेहरा लाल हो उठा था। उसकी आंखों में नजर पड़ते ही दीनो का मन अजीब उत्तेजना से कांप उठा। इतने समीप से, इस तरह से लखिमी को उसने पहले कभी नहीं देखा था। ड्यूटी की वेदना और लखिमी के सान्निध्य के दबाव में पड़कर उसकी जबान लड़खड़ा

गई। बातें गड्डु-मड्डु हो गई। चाय की मेज पर आने के पहले उसने शहर की पूजा, सिपाही का उत्तरदायित्व, कुछ दिनों में उन्हें रहने के लिए छोटे-छोटे मकान मिलेंगे, अभी तो किसी तरह से रह लेते हैं, —ऐसे विभिन्न विषयों पर बहुत-कुछ इधर-उधर की बातें कह गया। उसकी बातों के आखिरी हिस्से में लखिमी की आंखें भी झपकने-सी लगीं।

मिठाई खाकर जैसे ही दीनो ने समोसे को मुंह में डाला, तभी बाहर थोड़ी ही दूर पर किसी मोटर के अचानक ब्रेक मारने की आर्तनाद-सी आवाज सुनाई पड़ी। समोसे का बचा हिस्सा हाथ में लिए दीनो ने कान खड़े किए। उसने एक बार सोचा, जो कुछ हो रहा है, होता रहे। पर दूसरे ही क्षण वह बेचैन-सा हो उठा। कुछ ही क्षणों में उसकी वह बेचैनी एक दृढ़-कर्तव्य बोध में बदल गई। वह —"तुम लोग खाती रहो, मैं अभी-अभी आ रहा हूं।" कहकर निकल गया।

दीनो के वहां पहुचने के पहले ही पास के चौराहे पर एक ट्रक-ड्राइवर और एक जीप ड्राइवर 'मेन सड़क कौन है ?' इस विषय पर जोरदार बहस कर रहे थे, चूंकि ट्रक और जीप आपस में टकराते-टकराते बच गए थे। चौराहे पर ट्रक के सामने का बायां हिस्सा जीप के सामने के दाएं हिस्से को छूते-छूते रह गया था। जीप के ड्राइवर की आंखें लाल थीं। ट्रक के ड्राइवर की आंखों का रंग कैसा है, दिखाने के लिए तो उसने अच्छी तरह आंखें खोली ही न थीं। दूसरे दिन तो इन दोनों को हुर-हुराते खींचकर थाने में ले जाने के लिए किसी और वजह की जरूरत ही नहीं होती। पर आज तो दीनो ने काम नहीं बढ़ाया। दोनों गाड़ियों के नंबर लिख रहा हो, ऐसा भाव दिखाकर उसने उन दोनों गाड़ियों को दो ओर भेज दिया।

लखिमी-सरुमाइ चाय पीकर सिर झुकाए बैठी थीं। दीनो भी फिर आकर पहले की कुर्सी पर ही बैठ गया। शेष चाय-मिठाई खाने की उसकी अब इच्छा ही नहीं रह गई थी। सरुमाइ ने पूछा—तुम वह खाओगे नहीं ?

—अब खाने की इच्छा नहीं। नहीं खाऊंगा। दीनो ने अपनी नाराजी दबाते हुए दबी आवाज में कहा।

—तो चलो, अब हम यहां से चलें। सरुमाइ उठने को तैयार हो गई।

—लेकिन क्यों? थोड़ी देर यहीं बैठें, पैदल चलते-चलते क्या तुम्हें बुरा नही लग रहा है ?

—बुरा लगने पर भी यहां बैठना अच्छा नहीं लग रहा है। चलो! दीनो को कुछ अचरज हुआ। वह धीरे-धीरे दुकान से निकल आया। राह के किनारे खड़े होकर उसने फिर सरुमाइ से पूछा—'क्यों ? क्या हो गया, बता न।'

सरुमाइ को कुछ शर्म आई। फिर भी उसने विक्षोभ भरे स्वर मे कहा—'लोग बड़े बुरे हैं, गुंडों जैसे।'—कहते-कहते उसने लखिमी की ओर देखा। शर्म और डर के कारण लाल हो आए चेहरे को लखिमी ने झुका लिया।

दीनो के दिमाग में अचानक मानो आग धधक उठी। उसे ऐसा लगा कि वह अभी

होटल में जा घुसे और सारे लोगों को डंडे से पीट-पीटकर सड़क पर निकाल लाए। परंतु उसने कुछ भी नहीं किया, बल्कि तुरंत लोगों की नजरों से ओझल हो जाने के इरादे से लखिमी-सरुमाइ के साथ वह वहां से हट आया पर उसके मन में लगातार यंत्रणा होती रही।

यंत्रणा के मारे वह गूंगा-सा हो गया था। शाम होने के पहले उसे पास लेकर लखिमी-सरुमाइ ने एक दुकान से हाथ की चूड़ियां और बालों में लगने वाली क्लिपें खरीदीं। तभी दीनो ने देखा, साइकिल चलाता, इधर-उधर देखता हुआ तिवारी चला आ रहा है। सरुमाइ के हाथ एक पांच रुपए का नोट थमा कर वह तेजी से तिवारी की तरफ बढ़ गया। तिवारी ने पहले उससे यह पता किया कि कहीं कोई गड़बड़ी हुई थी या नहीं। फिर उसने दीनो से खुद ही बताया कि और कई गांवों में और टाउन के अंदर भी कई जगह मार-पीट की घटनाएं हुई हैं। कल जिस गांव में मार-पीट हो गई थी। वहां से आज शाम को कुछ लोगों को पकड़ लाया गया है और उन्हें हवालात में बंद कर रखा गया है। दो मोटर-एक्सिडेंट की घटनाएं हुई हैं। उस गांव में और छह सिपाही भेजे गए हैं। इसलिए यहां पहरा देने की ड्यूटी खत्म होते ही दीनो को थाने के सामने की एक ट्रक पर बैठे 'रेडी पार्टी' बने रहना है। इमर्जेंसी ड्यूटी!

दीनो स्तब्ध-सा होकर तिवारी के चेहरे की ओर देखता रहा। उसके हृदय से एक रुलाई निकलकर कंठ तक पहुंची। उसे लगा कि वह लखिमी और सरुमाइ के साथ तिवारी के पैरों पर पड़कर विनती करे, पर उसके गले से कोई आवाज ही नहीं निकली। उससे बातें करते समय तिवारी दूर बरामदे में खड़ी लखिमी और सरुमाइ की ओर बार-बार देख ही रहा था परंतु उससे उन दोनों के बारे में कुछ कहने की भी उसकी इच्छा नहीं हुई। लखिमी और सरुमाइ की ओर देखता हुआ तिवारी साइकिल चलाता निकल गया। दीनो गूंगा-सा खड़ा रहा।

दुकान के बरामदे में आकर दीनो ने अभिमान—आहत स्वर से सरुमाइ से कहा—मैं तुम लोगों को बस पर चढ़ा देता हूं, तुम लोग जा सकोगी न?

सरुमाइ की आंखें फैल गई, उसने अचरज से पूछा—क्यों, क्या तुम नहीं जाओगे?

दूसरी ओर देखता हुआ दीनो बोला—शायद मेरी ड्यूटी खत्म होने वाली नहीं है।

सरुमाइ बेचैन हो उठी। अंधेरा उतरा आ रहा था। आंखें फाड़े हर आदमी उन्हें देख रहा था। चाय-दुकान के वे बदमाश शायद अब भी आस-पास चक्कर लगा रहे होंगे! उनके गांव की ओर जाने वाली सड़क के दोनों ओर के चाय बागानों की पूजा के दिनों, नवमी की रात को नशे में धुत्त, उन्मत्त लोगों की कहानी, करतूतें हर साल सुन-सुनकर वे घर में ही डर के मारे सिकुड़ी-सी रहती हैं। अब तो वे दोनों अकेले किसी तरह से भी घर नही लौट सकतीं।

—तो अब क्या करोगी? मेरी ड्यूटी हो सकता है कि खत्म ही न हो!—दीनो बड़ी लाचारी के लहजे में बोला।

सरुमाइ अबोध बच्ची-जैसी बोल उठी—'हम दोनों तुम्हारे ही साथ-साथ रहेंगी। तुम्हारी ड्यूटी जब खत्म हो जाए, तब हम दोनों को पहुचा आना।'

—अगर सारी रात—

दोनो की बात खत्म नही हो पाई कि सरुमाइ ने पूछ लिया—'तुम रात को कहां रहोगे ?'

—थाने मे।

—तो हमें भी थाने में बैठाए रखना। रातभर हम थाने मे बैठी रहेगी ! सिर्फ तुम हमारे साथ रहना—एक अनजान डर के मारे सरुमाइ सिकुड़-सी गई थी। लखिमी की आखों में आंसू छलछला आए थे।

दो मोटे-ताजे नौजवान उसके बिलकुल पास से निकल गए। वह लखिमी के पास आ गई।

दीनो को भी डर लगा। नवमी पूजा की शाम मानो आनंद और उत्तेजना के मारे मतवाली-सी बन गई थी। शराब-भट्ठी के पास उन्मत्त लोगों में धक्कम-धक्के लगे हुए थे। मांस की दुकान में खाल के सिवा और कुछ नही बचा था। शराब-भट्ठी के पास मांस तरकारी की नई दुकान लगी थी। देवी दुर्गा के सामने बलि दिए गए बकरो का मांस भी यहां आया है या नही—पता नहीं। लोगो की भीड़ के बीच से लखिमी और सरुमाइ को आगे बढ़ा ले जाने में दीनो को बडी तकलीफ हो रही थी। लोग मानो सीधी सड़क पर पैदल चलना भूल गए हो। दोनों हाथों को नाव के चप्पुओं की भांति न चलाने पर वे जैसे आगे बढ़ ही नहीं पा रहे थे। लखिमी बार-बार चौंककर चीख उठती, सरुमाइ भी बार-बार दीनो के और पास आ जाती। और एक तीव्र विक्षोभ की चेतना और यंत्रणा दीनो को मानो अंदर-ही-अदर कुरेदती रही।

छह बजते ही दीनो और दोनों लड़कियां उस सड़क से हट आए। बस-स्टैंड पर जरा इधर-उधर देखकर दीनो अपने गांव के किसी विश्वासी आदमी को खोजने लगा। पर वैसा कोई नहीं मिला। बस पर सवार होने वाले हर आदमी को देख ऐसा लग रहा था मानो शहर के आखिरी कर्तव्य के रूप में वे शराब-भट्ठी में एक बार जरूर घुस आए हैं। आखिरकार एक बस के ड्राइवर से दीनो ने अनुरोध किया कि वह उसके घर यह खबर भिजवा दे कि सरुमाइ लखिमी आज लौट सकेगी या नही, पता नहीं। अगर ये लौट न सकें, तो वे यहां बड़े दारोगा की श्रीमती के साथ रहेगी।

बात झूठी थी। बड़े दारोगा की श्रीमती को तो दीनो ने कभी देखा ही न था।

कुछ-कुछ अंधेरी-सी राह से होकर दीनो उन्हे लिए आगे बढ़ा। आत्म-ग्लानि की यंत्रणा से कातर चेहरे को अंधेरे में छिपा सका, इससे दीनो को अच्छा लगा। बीच में सरुमाइ ने एक बार कहा—'तुम जिस घर में रहते हो चलो न, एक बार वही जाएं। क्या हम लोग वहां आज की रात बिता नहीं सकतीं ?

हां, रह तो सकती हैं। अगर रात को बंशीराम बूढ़े की ड्यूटी न हो, उसके सिवा

और सबकी ड्यूटी हो रात को, तब तो वे दोनों उसी घर में रात को पड़ी रह सकती हैं। बंशीराम बूढ़ा है। आदमी भी अच्छा है। सभी उसे बूढा कहकर पुकारते हैं और वह हर नौजवान सिपाही से यह कहकर बीड़ी मांगा करता कि वह अपनी बेटी की शादी उसी से कर देगा।

दीनो अपने उस घर की ओर उन दोनों को ले चला। पर घर के पास पहुचकर वह अचानक रुक गया। अदर से कई लोगो की आवाजे आ रही थीं। उन्हें बाहर ही रखकर वह अंदर गया। उनकी मंडली के सबसे ज्यादा बदमाश चार पुलिस वाले दो चारपाइयों को सटाकर उसपर बैठे हुए थे। उन चारों के बीच एक पुराने अखबार पर भुने चने की ढेरी थी। कमरे की हवा में शराब की तीखी बू फैली थी।

दीनो ने कुछ कड़ी आवाज में पूछा—"क्या तुम लोगों की ड्यूटी नहीं पड़ी ?'

—'धूर-धूर, भला आज पूजा के आखिरी बाजार में भी कोई ड्यूटी करता है ?'

दीनो को तो यह बात पहले से ही पता है कि जिसकी शैतानी—बुद्धि जितनी अधिक है, उसे ड्यूटी से उतनी ही ज्यादा रिहाई मिलती है। पर आज वह उन चारों को सहन नही कर सका। और जरा कड़ी आवाज में उसने पूछा—'और उसी कारण तुम लोग यहां बैंठे यह सब कर रहे हो ?

प्यारेलाल नाम के पुलिसवाले ने कहा—'अरे, हम तो यह कुछ भी नहीं कर रहे हैं। जाकर अपने बडे दारोगा के घर मे देख आ न। मैं तो खुद दुकान से इतनी बड़ी-बडी दो बिलायती लेकर पहुंचा आया हूं।—उसने इस हाथ की उंगली को उस हाथ की कुहनी से लगाकर लंबाई की माप दिखाई।

दीनो वहां से बाहर निकल आया। उसकी इच्छा हुई कि सरुमाइ और लखिमी को बांहों में भर ले। उसके सिर के अंदर मानो आग धधक उठी। अपने डंडे को मजबूती से मुट्ठी में पकड़े वह कदम बढ़ाने लगा। उसने लखिमी-सरुमाइ को एक होटल में ले जाकर खाना खिलाया और उन्हें थाने के बरामदे मे ले आया।

थाने के अंदर के बरामदे में शराब पीकर गड़बड़ी मचाने वाले पांच मर्दो को गाव मे पकड़ लाकर रखा गया था। तीन औरतें भी थीं। वे सभी चायबागान के मजदूर थे। दीनो उनके पास से निकल रहा था। उन सबने बड़ी कातर दृष्टि से उसकी ओर देखा।

दीनो सीधे थाने के सबसे ऊपर वाले के पास पहुचा। निर्भीक स्वर में उसने कहा, सर मेरी छोटी बहने गांव से पूजा देखने के लिए यहां आई थीं। मुझे बताया गया है कि रात को भी मुझे ड्यूटी करनी है। इसी कारण आज उन दोनों को मै यहीं रखूगा।

ऊपर वाला अधिकारी कुछ कहता, उसके पहले दीनो एक सलाम ठोंककर बाहर निकल आया। पिछवाड़े के बरामदे में रखी एक बेंच पर उसने लखिमी और सरुमाइ को बिठलाया। वह खुद पास ही टहलता रहा।

थाने की बिजली-बत्तियों के उजाले में लखिमी और सरुमाइ के चेहरे दमक उठे।

थाने का हर आदमी एक बार, दो बार, तीन बार और कोई-कोई तो बहुत बार लखिमी और सरुमाइ को आ-आकर देख गए। दीनो का दिमाग मानो खराब हो गया। हर आदमी की नजरें कुत्सित, गंदी, वीभत्स थीं। दीनो के अंदर से एक असली पुलिस का सिपाही उसके दिमाग में आ गया। हर आदमी बदमाश है, हर आदमी गुंडा है। किसी पर भरोसा नहीं, किसी पर विश्वास नहीं। सारी दुनिया नशे में है।

और वह, वह पुलिस का सिपाही है।

मगर-मगर! दीनो अपने बाएं हाथ से अपने सिर को मलने लगा। ओह, वह कितना असहाय है! वह कितना बेबस पुलिस का सिपाही है!

एक बार वह भी आकर कुछ देर लखिमी के पास बैठा। उसकी इच्छा हो रही थी, वह लखिमी से माफी मांग ले! मगर उसने एक भी शब्द जबान ने नहीं निकाला।

उनसे थोड़ी ही दूर बैठे चायबगान के मजदूरों में से कोई-कोई ऊंघने लगा था। उनका शराब का नशा कभी का उतर गया था। साथ ही पूजा का रंग भी उनके मन पर से उड गया था। उनमें जो औरतें थीं, वे बड़े आग्रह से, अचरज भरी निगाहों से एकटक लखिमी और सरुमाइ की ओर देख रही थीं। उनके बीच के एक आदमी ने एक बार दोनों से कातर स्वर से कहा—'पुलिस बाबू, हमें क्या चले जाने नहीं देंगे?'

—नहीं। दीनो ने निर्विकार भाव से कहा!

—लेकिन हमें रात को कहां रखेंगे?

—'लकअप' में।—दीनों ने बरामदे के सिरे पर विशेष तरीके से बने, दो कमरों की ओर इशारा किया।

पछताते हुए वे मुरझाए लोग और ज्यादा मुरझा गए।

थोड़ी ही देर बाद बरामदे के दूसरे सिरे पर थाने का सबसे बड़ा अधिकारी आया! उसने एक नजर से लखिमी और सरुमाइ की ओर देखा।

डंडे पर दीनो की मुट्ठी की पकड़ और ज्यादा मजबूत हो गई। हर आदमी बदमाश है, हर आदमी गुंडा है। किसी पर विश्वास नहीं।

अधिकारी आगे बढ़ आया। पास आकर उसने दीनो से पूछा—लड़कियां ठहरीं! कितनी सुविधा-असुविधा की बातें होती हैं। इन्हें तो तुम यों बरामदे में बिठाए नहीं रख सकते। इन्हें कहां रखना है, क्या तुमने कुछ सोचा है?

—जी हां, सर, सोचा है।—दीनो ने धीमी आवाज में कहा।

—क्या सोचा? कहां रखोगे?—ऊपर वाले अधिकारी ने बड़े आग्रह से पूछा।

—जी, 'लक अप' में, सर!

और यह कहकर दीनो ने अंधेरे की ओर मुंह मोड़ लिया।

1966

वानप्रस्थ

दूर के तटबंध पर से चंचल गति से आगे बढ़ती जा रही दो लड़कियां ऐसी दिखाई पड़ रही थीं मानो वसंत, यौवन, वैशाखी हवा को अपने साथ लाने वाली दो उच्छृंखल, अलौकिक कुमारियां हों! कुछ सहज-सरल तस्वीरों की वसंत कुमारी "बरदैचिला" जैसी, जो बिजली का रूप धारण कर आकाश के इस छोर से उस छोर तक निकल जाती है। तटबंध के दूसरी ओर फैले हुए खेत थे, खेतों और क्षितिज के बीच बिना किसी फांक के पेड़ों के घेरे; और उस घेरे को पार कर सूरज उस तटबंध की ओर देख रहा था। दुर्दंड प्रतापी युवराज की नजर पड़ते ही किसी सामान्य प्रजा की बिटिया जैसे रहस्यमयी बन जाती है, सूरज के दूसरी ओर से वे लड़कियां उसी तरह अपार रहस्य की प्रतिमूर्ति लग रही थीं। इस ओर से उन्हें काला दिखाई पड़ रहा था। वे जिधर जा रही थीं, उसके दूसरी ओर से हवा चल रही थी। उनके शरीर के झीने कपड़े मानो उनके साथ न जाकर पीछे पड़े रहना चाहते थे, जिससे उनके शरीर के सामने की रेखा वैसे ही बिलकुल साफ दिखाई दे रही थी, जैसे कि तटबंध के ऊपर यहां-वहां खड़ी गायों के शरीर की रेखाएं साफ झलक रही थीं।

ये दोनों चारु और तरु बहनें हैं। चारु एक सिल्क की साड़ी पहने हुए थी जो जगह-जगह फटी थी, कहीं-कहीं दरक भी गई थी। पहनने में बहुत ज्यादा समय लगाकर चारु ने फटी जगहों को तो किसी तरह छिपा लिया था, लेकिन दरकी हुई जगहें तो ऐसी थीं, मानो साड़ी के बूटों के फूलों की मुरझाई पंखड़ियां हों जिन्हें परेशान करने पर तुरंत झड़ जाएंगी और वहां फूल के बदले एक-एक तीली भर रह जाएगी। उन दरकनों को तो छिपाने का कोई उपाय ही नहीं है। अगर समीप से देखा जाय तो हवा में उड़ते आंचल के बीच-बीच से सूरज के साथ पूरब का चमकीला आकाश झिल-मिलाते दिखाई पड़ जाएगा। ऐसा भी दिखाई पड़ेगा कि दुर्दंड प्रतापी युवराज कुंवरी के आंचल में सिर छुपाए मानो मजाक कर रहा है।

हालांकि शुरू में यह साड़ी जिसकी थी, उसके शरीर पर ये फटी और दरकी जगहें असली बूटों से भी ज्यादा आकर्षक, मोहक लगती। यह साड़ी माधवी नाम की सुन्दर स्वास्थ्यवाली, खूबसूरत-सी लड़की की थी। उसके शरीर का रंग इतना चटकदार था कि शरीर का जो हिस्सा कपड़े से ढंका होता वह खुले हिस्से से देखने में भद्दा लगता था। हालांकि जगह-जगह दरके-से लगने वाले नए कपड़े भी उसके पास

बहुत-से थे।

चारु माधवी के घर में काम करने वाली लड़की थी। माधवी जब दस साल की थी, उसके बाप चंदनदास ने अरसे से जान-पहचान वाले डाकघर के एक डाकिए से घरेलू काम-काज कर सकने वाली ऐसी एक लड़की का पता लगाकर खबर देने को कह दिया था। उस डाकिए ने गॉव के किसी जाने-पहचाने आदमी से कह दिया था। उस आदमी से चारु-तरु की पुतली द्वारा भेंट हुई। पुतली का पति दैनिक मजूरी का काम कर घर चला रहा था। काम की खोज में कभी-कभी बिचारे को सात-आठ मील दूर तक चले जाना पड़ता था। एक बार उसी तरह दूर जाने पर किसी ठेकेदार की ओर से जंगल में जाकर लकड़ी काटते समय पेड़ से लगभग बीस हाथ ऊपर से गिरकर वह आदमी मर गया। उन दिनों चारु चार साल की, और तरु दो साल की थी। उसके बाद पुतली किस तरह से उन दोनों लड़कियों को लेकर दिन बिताती थी। उसका कोई संक्षिप्त वर्णन नहीं है। लोगों का धान काट देना, अपने घर की छत पर के कुम्हड़े हाट में ले जाकर बेचना, मरघट की ओर जाने वाली पगडंडी के किनारे-किनारे झाड़ियों में जंगली करेले ढूंढ़ना, नन्हीं-नन्हीं बच्चियों के कान छेदना, दूसरों के सूत से ताना-भरनी बनाकर आधी रात तक करघा चलाना; आदि जैसे विचित्र काम करने पड़ते थे, पुतली को उन तीन प्राणियों के मुंह मे खाना देने के लिए। फिर भी—फिर भी मुट्ठी भर भात का इंतजाम नहीं हो पाता था।

पांच ही साल के अंदर उस बेचारी की उम्र मानो पंद्रह साल पार हो गई। उसके शरीर का मांस सूख गया। उसके बदले शरीर की हड्डियां मोटी-ताजी बनकर उभर आने लगीं। काले-काले धब्बे उसके गालों पर उभर आए। तभी एक दिन वह आदमी पुतली के यहां पहुंचा। बताया, शहर के एक बड़े आदमी को उनके घरेलू काम-काज करने के लिए एक लड़की की जरूरत है। घरेलू काम भी क्या है—यही कि घर में झाड़ू लगाना, छोटे-मोटे कपड़े-लत्ते धोकर पसारना, बस ऐसा ही कुछ।

पुतली ने रातभर सोचा, और दूसरे दिन सुबह उस आदमी से पूछा—और कुछ भले ही उसे न मिले, दो जून भरपेट खाना तो मिलेगा न? मिलेगा या नही?

नौ साल की चारु चंदनदास के यहा आई। चंदनदास का घर बड़ा था, फर्श पक्की थी, बिजली-बत्तियां जलती थीं, लोग तीन-चार सब्जी-तरकारी से खाना खाते थे, माधवी को मोटर गाड़ी से स्कूल पहुंचाया जाता था, फिर गाडी से ही ले आते थे। चारु के चले जाने पर कुछ दिन पुतली को बड़ी असुविधा हुई। उधर चारु भी मुसीबत में पड़ी। यह फर्श भला कैसे झाड़ी-बुहारी जाती है? ये बर्तन कैसे धोए जाते हैं? चीनी-मिट्टी की प्याली-तश्तरी धोते समय जिस दिन माधवी की मां कह देती—देखना, कहीं टूटे-फूटे नही!' उस दिन चारु के हाथ और ज्यादा कांपते। प्याली-तश्तरियां उछल- कर उसके नन्हे-नन्हे हाथों से निकल जाना चाहतीं।

एक महीने बाद उसी डाकिए के हाथ चारु की मां के लिए दस रुपए देते समय

चंदनदास ने पत्नी से पूछा, लगता है कि लडकी बुरी नहीं होगी, शायद सिखा-समझा लेने पर काम कर सकेगी। क्यों, है न ?

और चारु सीख गई। उसके बाद के दिनो में चारु घर के लगभग सारे काम-काज करना सीख गई। शुरू में एक दिन वह अदरख लहसुन के छिलके उतारने के लिए रसोई-घर में घुसी थी, बाद में ऐसा भी दिन आया जब वह माधवी की मा के बराबर ही काम कर विशिष्ट अतिथियों के लिए तरह-तरह की चीजे भी बनाना जान गई। बर्तन के किनारे शोरबे की एक बूंद भी लगी न रहे, इस तके से डाइनिंग टेबल पर भोजन-सामग्री भी सजाने में पक्की हो गई। चंदनदास सगीत प्रेमी थे। उनके यहा बीच-बीच में सगीत की बैठकें होतीं। घर के दूसरे लोग सो जाते, तो चारु को अकेले ही बैठक के लोगों के लिए चाय-कॉफी बनाकर देना पड़ जाता। माधवी के दोनों भाइयों को ऐसी डांट भी लगाने लगी 'तुम लोग भला बार-बार बिछाए-सहेजे गए बिस्तर पर क्यों चढ़ जाते हो ? कहती ! जाओ, उस सामने की कुर्सियों पर बैठे रहो और तस्वीर देखो। दसों बार बिस्तर बिछाती रहूं क्या मुझे कोई और काम नहीं हैं ?—यों कहकर डांट-डपट भी करने वाली हो गई। पढ़ते समय अगर कोई रेडियो बजा देता, तो उसे बद करने की ताकत भी चारु की हो गई।

चंदन दास के यहां के किसी को चारु से कोई भी शिकायत नहीं रही। रसोई-घर की कुजी, स्टोर-रूम की कुंजी, रेफ्रीजरेटर की कुंजी, सब चारु के हाथ में रहतीं। कभी चम्मच भर चीनी इधर से उधर नहीं हुई। जब तक घर का आखिरी आदमी खा-पी नहीं लेता, वह खुद खाने नही बैठती। अरसे तक मछली के नाम पर वह मछली के गलफड़े की चांद जैसी हड्डी भर को चूस कर रह जाती। कभी-कभी माधवी की मां पूछ लेती, 'क्या री ? तेरे लिए क्या मछली बची ही नहीं ?'

—जी, रहने दीजिए मां जी, इसी से काम चल जाएगा। शोरबा तो बचा रह गया है इतना-सा। कहती हुई चारु हंस पड़ती।

कोई शिकायत नहीं। फिर भी एक समस्या बडी हो आई थी। इसी घर में चारु के नौ साल निकल गए। चारु अठारह साल की हो गई। बड़े सुंदर ढंग से, सिलसिले-वार ढंग से घर का काम-काज चलता था, इसी कारण चंदनदास आदि को ध्यान देने की जरूरत ही नही पड़ी थी कि चारु कितनी बड़ी हो गई। और भला आंखों में पड़ती भी कैसे ? वह तो बड़ी हुई माधवी के पुराने कपडों की ओट में। परंतु धीरे-धीरे किसी ओर ओट में छिपी कुछ छोटी-छोटी बातें समस्याओं के रूप मे बाहर निकलने लगीं। एक दिन एक सहेली ने माधवी से पूछा—"आजकल तो तुम्हे घर के बहुत से काम करने पड़ते हैं न ?'

—ऊंह ! करना तो पड़ता ही है। काम न करने के कारण मां की इतनी गालियां सुननी पडती हैं ! माधवी ने अलसाई आवाज में कहा।

—हां-हां, मैने तो उस दिन खुद देखा था, तुम खुद बाहर के आंगन का मकड़ी

का जाला साफ कर रही थी।

माधवी ने किसी तरीके से बात मोड़ी। उसकी एक समय की पसंद की और जन-प्रिय साड़ी अब चारु पहनती है। सहेली ने चारु को ही पीछे की ओर से देखकर समझा था कि माधवी है।

ऐसा भी होता था कि किसी दिन पूरे परिवार को किसी के विवाह में जाना है तो चारु को क्या किया जाए? अगर साथ ले जाएं तो उसे क्या पहनाकर ले जाएं? वह माधवी के साथ रहेगी, ऐसी स्थिति में चेहरे पर जरा कुछ लगाए बगैर जाएगी? खाते समय भला वह कहां बैठकर खाएगी? इन बातों में सबसे ज्यादा बेचैनी-परेशानी माधवी को ही होती। और चारु को घर में अकेले रखकर भी तो नहीं जा सकते।

उसे अकेले रखकर क्यों जा नहीं सकते, इस बात को सोचने में चारु के कान-सिर गर्म हो जाते। उसे भला अकेले रखकर क्यों नहीं जा सकते? इस अंचल में तो कही चोर-डाकू नहीं हैं। एक मात्र ड्राइवर के बारे में माधवी चारु से बहुत-सी बातें कहा करती जिन्हें सुनने के बाद चारु ने उससे बोल-चाल भी बंद कर दी थी। ड्राइवर अगर पूरब में रहता तो उत्तर की ओर चाय का प्याला रखकर पश्चिम की ओर जाती हुई चारु कहती जाती—"ओ मोती, चाय वहीं रख आई हूं। पी लेना।" परंतु वही मोती ड्राइवर ही तो सबके साथ गाड़ियां चलाता विवाह में जाया करता। तो फिर लोग डरते किससे हैं? चारु से? सोचकर चारु के कान-सिर गर्म हो उठते।

हालांकि लोग बातों की चर्चा गुन-गुनाहट की आवाज में इस ढंग से करते जिससे कि बात चारु के कानों में न पड़े और वह समझ भी जाए।

चंदन दास पत्नी से कहता—यह तो एक समस्या ही हो गई। है न!

हूं। पत्नी कहती!

उसे तो हमेशा इसी तरह रख नहीं सकते! फिर विवाह-शादी की भी बात है न!—वह सब झंझट भी हमारे गले पड़ेगी! फिर हम भला उसके लिए एक दूल्हे का इंतजाम कहां से कर सकते है? क्यों, है न।

'हूं'

—और भी एक बात है न। अब तो माधवी के शादी-विवाह की बात चल रही है। दो-एक परिवार के लोग आए थे, आगे भी आएंगे। यह सब देख-सुनकर उसका मन भी तो खराब हो जाएगा। वह भी तो माधवी की हमउम्र लड़की है।

बात तो सच है। इसी बीच सिर्फ एक-दो परिवार के ही नहीं, कई परिवारों के लोग या तो सीधे-सीधे या किसी और बहाने माधवी को देखने, बातचीत चलाने आए थे। चारु बड़ी उमंग से सब के लिए चाय-जलपान का इंतजाम करती, और समय-सुविधा व मौका पाते ही माधवी की ओर नजर डाल हंस देती, दो-एक कौतुक-पूर्ण बात कहकर चिढ़ाती। माधवी गुस्से से कहती—"चारु, मैं कहे देती हूं, अच्छा नहीं होगा, हां।"

चारु की यह देखने की बड़ी इच्छा थी, इतने दिन एक साथ रही इस लड़की का विवाह किस लड़के के साथ होगा! पर वह अंदर-ही-अंदर किसी दिन उस घर से निकल जाने के लिए भी तैयार हो रही थी।

एक दिन शाम को जब माधवी अपनी मेज पर पढ़ने बैठी थी, चारु उसे एक गिलास दूध देने गई। माधवी ने उसे रोककर कुछ दूसरी बातें छेड़ीं। बाद में वैसा करना माधवी की आदत बन गई थी। रसोई-घर में ढेरों काम पड़े रहते, फिर भी चारु को माधवी से बातें करते रहना पड़ता।

बात-बात में चारु ने कह दिया—"मुझे तो चले जाना है।"

माधवी ने कहा—"ठीक है, जाना चाहती है तो चले जाना। लेकिन मेरे विवाह के पहले नहीं जा सकती, मैं कहे देती हूं।"

माधवी के विवाह तक चारु को किसलिए रहना है, यह बात न माधवी को पता था और न चारु की ही समझ में आई थी। यह माधवी स्नान-घर की फर्श पर अपने सारे कपड़े डाल, उन्हें पैरों से एक कोने में ठेल कर बाहर निकल आती; चारु के रहते पिछले नौ सालों से उसे यहां तक कि एक तिनका हटाने तक की बात भी सोचनी नहीं पड़ी थी, पर ऐसे तुच्छ कारणों से माधवी चारु को इस घर में आखिरी दिन तक रखना चाहती हो, बात तो जरूर वह नहीं थी। तो फिर रखने का क्या कारण था? चारु से वह बात कहने के बाद माधवी भी अनमनी-सी हो गई। चारु भी चुपचाप कमरे से निकल आई।

फिर एक दिन एक सुंदर-से नौजवान के साथ माधवी का विवाह हो गया। विवाह में चारु की मां भी आ गई थी। मां की उम्र कितनी है, चारु को पता न था, पर उसने देखा, उसकी मां एक बूढ़ी औरत है। विवाह के शोर-गुल में अचरज से भरी चारु की मां एक कोने में बैठी थी। चारु कामों के बीच कभी-कभी तिरछी आंखों से मां की ओर नजर डाल लेती। वह बेचारी किसी से बात तक नहीं कर सकी थी। वैसे अरसे बाद मां को देखकर चारु को पहले खुशी ही हुई थी परंतु धीरे-धीरे उसे गुस्सा भी आने लगा। भला मां को यहां आने की जरूरत क्या थी। क्या खबर पाते ही इतनी दूर से इतनी तकलीफ झेलकर चले आना उचित था मां के लिए?

अचानक एक बार चारु को याद आई, मां ने कुछ खाना-वाना खाया है या नहीं? झुंडों में लोग खाना खा रहे हैं, चारु भी बहुत-सी चीजें यहां-वहां कर रही है; पर क्या इनमें से किसी ने उसकी मां को बुलाकर कुछ खाना-वाना दिया है या नहीं? कहां, चारु की नजर में तो नहीं आई है। और क्या वह खुद अपनी मां को बुलाकर खाने की जगह बैठाए? छि-छि- अगर कोई नजर दिए हो, तब वह भला क्या सोचेगा?

कामों के बीच भी यही चिंता चारु को बड़ी परेशान करती रही। धीरे-धीरे मानो मां का चेहरा सूख-सा गया था। भोजन-सामग्री की खुशबू और ज्यादा तेज हो गई थी। बच्चे जैसे एक जून भरपेट खाने की खुशी में झूम रहे थे। शोर मचा रहे थे। आखिर

किसी काम से मोती ड्राइवर को अंदर आते देख चारु की परेशानी मिटी। यही एक आदमी ऐसा था, जो चारु की हर बात को सिर-माथे लेने को तैयार रहने की बाट जोहता रहता। चारु की जबान से संकेत मिलते ही वह "ओ अम्मा जी, इधर आइए, आप भला चुपचाप बैठी क्या कर रही हैं।" कहता हुआ चीख-पुकार मचाने लगा। चारु ने ऐसा भाव बनाया, मानो वह कुछ भी सुन नहीं रही हो।

विवाह-सम्पन्न हो जाने के बाद चारु का मन उदास-उदास, सूना-सूना लगने लगा। और उदास मन लिए वह एक दिन गांव के घर चली आई। विवाह की रात को रो-रोकर माधवी ने उसका हाथ पकड़ लिया था। गांव के घर आते समय माधवी की मां ने बहते आंसुओ को पोंछा, चंदनदास ने दूसरी ओर देखते हुए धीमी आवाज में कहा—"जा, हम लोग तेरी खोज-खबर लेते रहेंगे।"

खोज-खबर का मतलब है, उन लोगों ने तय कर लिया था, कही कभी अगर उसका शादी-विवाह तय हो जाय, तो जहां तक हो सकेगा, रुपए-पैसे से मदद कर देंगे।

नौ साल की उम्र में गांव छोड़ आई चारु बीस साल की उम्र में गांव लौटी।

परंतु उस तरह से भली-भांति आराम से तरु लौट नहीं पाई। माधवी की मां की जबान से चारु की खुलकर प्रशंसा सुन परीक्षित बर्मण नाम के सज्जन की पत्नी ने कहा था—"अगर ऐसी ही लड़की मुझे भी मिल पाती।'

माधवी की मां ने बताया, 'इसी की एक बहन है; सुना है इससे दो साल छोटी है।'

"इसकी बहन भी शायद इसी जैसी होगी"—कहकर बर्मण-पत्नी ने एक सप्ताह के अंदर ही पुतली के पास खबर भेज दी। पहले अपनी छाती सूनी कर तरु को भेजते हुए पुतली को बुरा लग रहा था, पर एक दिन तरु के सूखे गालों को सहलाकर उसने उसे शहर में भेज दिया। बर्मन के यहां तरु के सूखे गाल भर आए और एक दिन उस उभरे गाल पर एक बर्मन-बेटे की कोमल-सी चुटकी पड़ी।

माधवी के यहां से चारु के चेले आने के थोड़े ही दिन बाद बर्मन-पत्नी ने माधवी की मां से कहा—'हां हम भी बिलकुल इसी बात की चिता चर्चा करते रहे हैं, समझीं न! यह भी नौ साल रह गई। अब भला एक जवान लड़की का उत्तरदायित्व भला हम कैसे लें?'

और एक दिन तरु को भी घर वापस आना पड़ा।

दो-दो नौकरानियां जवान होकर, नौकरानी के अयोग्य होकर गांव में लौट आई। दो जवान बिटियों से पुतली बूढ़ी का खाली घर भर गया। और वह भी ऐसे दिनों में भर गया जबकि बूढी पुतली रात को करघा नहीं चला सकती थी, कुम्हड़ा बेचने के लिए घर में जाते समय कमर के दर्द के मारे राह पर बैठ जाती; दूसरों के धान कूटने जाकर खांची भर धान की एक कुटाई हो जाते ही थकावट के मारे सिर पर हाथ रखे उस अध-कूटे धान की ओर एकटक देखती रह जाती।

चारु और तरु अपने साथ जो पैसे लाई थी, उसी से घर चलाने लगी। उन दोनों ने कुछ दिन मां का काम-काज करना बंद कर दिया। मगर बूढ़ी तो चैन से बैठी नहीं रह सकती थी। कुछ और न होने पर भी बिटियो के लिए कम से कम दो-चार मछलियां पकड लाने के लिए बांस का 'ज़ाकै' लेकर निकल जाती और दोपहर के पहले अध-भीगे कपड़ों में वापस आती। खोलई से दो-एक रंगीन मछलियां चलनी पर गिरते ही थोडी-सी उछल-कूद करतीं। फिर गलफड़ हिलाने लगतीं। तरु कहती—अरी दैया, यह मछली देखो तो भला। यह तो जिंदा है, क्या इसे जिला रखें? लेकिन रखें भी तो किससे?

तरु कहती—'अगर हरलिक्स की एक बोतल होती!'

'उंह, हरलिक्स की बोतल इतनी खुरदरी है कि वह मछली बाहर से दिखाई ही नही देती। जैली की एक बोतल होती तो अच्छा था। जैली की बोतल का ऊपरी हिस्सा बिलकुल प्लेन होता है न, इसलिए वही अच्छा रहेगा।"

मछलियां काटती चारु। नन्ही मछलियां काटने-बनाने की उसकी आदत थी। माधवी के बाप को तली छोटी मछलियां खाना बड़ा पसंद था, पर यहां तो तलते-बनाते चारु को बड़ी असुविधा होती। एक पुरानी कड़ाही थी, जिसका हत्था टूटा था, एक ओर दरार पड़ी थी, इसलिए कडाही को चूल्हे पर तिरछी रखकर बिठाना पड़ता। इस घर मे तो सरसो का तेल एक रस्सी बधी बोतल की तली में रहता। उसी तेल से इस जून की तरकारी बनाकर फिर शाम के लिए भी बचाकर रखना पडता। ऐसे तो रसोई बनाने की उसकी आदत न थी। फिर भी वह किसी तरह बना देती। पर खाना परोसने जाकर वह ठिठक जाती। वह रसोई तो बनाती थी पर कभी परोसने की आदत तो थी नहीं। वह तरु को पुकारती। वह भी परोसना नहीं जानती। उसे भी परोसने की आदत न थी। इसके बावजूद चारु अपने मन को जबरन समझाती, यह तो उसका अपना घर है न।

बूढ़ी पुतली की तो पुरानी आदत थी, अगर खाना-वाना होता, तो शाम को ही खा-पीकर छुट्टी पा लेती। बेकार मिट्टी के तेल का खर्च नहीं बढ़ाती थी। अब चारु तरु भी जल्दी ही खाना-पीना खत्म कर लेतीं, लेकिन उन्हें उतनी जल्दी नीद नही आती। इसलिए वे दोनों सामने की ओर चबूतरे पर बैठ जातीं और बैठे-बैठे पुराने दिनो की चर्चा करतीं। मन उमड़ आता तो तरु कभी-कभी बर्मन के उस लड़के की बात की चर्चा जरा भी छिपाए बगैर दीदी से कहती। उसमें तरु का तो कोई दोष था नहीं। उस लड़के पर ही कोई भूत सवार हो गया था। पढ़ने के लिए बैठते ही उसे बार-बार प्यास लगती—पुचकारता—तरु, एक गिलास पानी। उस घर में सबसे पहले बिस्तर से उठना चाहिए था तरु को पर उठ जाता वह। नतीजा यह होता कि तरु की नींद खुलने पर भी जब तक दूसरे लोग उठ नहीं जाते, उसे भी बिस्तर पर ही पडे रहना पडता।

चारु बताती—उसके साथ तो ऐसा कुछ हुआ नहीं था। पर सिर्फ वह मोनी ड्राइवर ही उसके साथ बात छेड़ने के लिए बहाना ढूंढ़ता रहता। अगर माधवी पहले से

होशियार न कर देती तो शायद वह मुसीबत में ही पड़ जाती। उस ड्राइवर की पहले शादी हुई थी। पर बहुत दिन बाद भी उनका कोई बच्चा-वच्चा न होने के कारण उसकी पत्नी उसे छोड़कर कहीं चली गई। जाकर उसने एक और आदमी से शादी कर ली। उस शादी के सालभर बाद ही उस औरत का एक लड़का हुआ। भला औरत का कसूर क्या था? असल में मोती ड्राइवर का ही दोष था।

इसी तरह बहुत दूर के दो परिवारों की चर्चा करते-करते एक दिन इस घर का पेंदा खाली हो गया। चारु ने अपने बक्से के नीचे खोज-खोजकर देखा—नहीं, अब तो एक भी पैसा नहीं है। दोनों ने मां के चेहरे की ओर देखा। मां ने अपनी धंसी आंखें फैलाकर उन दोनों की ओर देखा। शहर से मोटी-ताजी बनकर लौटीं दो जवान लड़कियां!

बड़ी यंत्रणा! इस यंत्रणा की क्या कोई तुलना है? चारु और तरु यंत्रणा से विकल हो उठीं। भूख के मारे लोगों को इतनी तकलीफ होती है? बीच-बीच में पुतली बूढ़ी-खाली हाथ घर लौटती। लोग कहा करते—दो-दो जवान लड़कियां घर में बैठी रहती हैं और यह बुढ़िया…

एक दिन चारु और तरु राह पर निकलीं। दो-दो जवान लड़कियों के घर में बैठे रहने की बदनामी सह पाना बड़ा कठिन होता है, चारु और तरु को बैठे रहने की बदनामी तो कभी सहनी नहीं पड़ी थी।

पर शाम को वे दोनों थकी, हताश, मुरझाई-सी लौट आईं। यह तो जगह कुछ और ही लोगों की है। यहां तो कोई नौकरानी नहीं रखता। नौकरानी से लोग नफरत करते हैं। यहां तो धान की दंवरी करनी होती है, धान की रोपनी करनी होती है, ढेंकी से धान की कुटाई करनी होती है।

नालायक! नालायक! जिंदगी-भर सिर्फ काम-ही-काम करते रहकर अब हम इतनी नालायक हो गईं? एक दिन चारु बिस्तर पर पड़ी रोने लगी थी।

किसी तरीके से उस यंत्रणा से छुटकारा पाने के लिए चारु-तरु हाहाकार कर रही थीं। ऐसी ही स्थिति में यह आज का दिन आया है। आज चंदनदास इस गांव में आने वाले हैं। इस गांव के लोगों ने एक मेले का आयोजन किया है। वहां गाना-बजाना भी होने वाला है। आगे-पीछे यहां ऐसा मेला पहले कभी नहीं हुआ है। कुछ नौजवान लड़कों ने उस मेले का आयोजन किया है। उसी मेले में चंदनदास को भाषण देने आना है। पिछले साल में बूढ़ी पुतली घर-घर चंदनदास के गुण गाती फिरती थी। जब शहर से किसी सभापति को बुलाने की बात आई तो लोगों के मन में चंदनदास का नाम क्या उसी वजह से आया था? हो भी सकता है।

कुछ दिन पहले कुछ लड़कों ने चारु से पूछा था, 'अरी, आदमी कैसे हैं वे? हमारे बुलाने पर आएंगे क्या?'

चारु चहक उठी थी। कहा था, 'हां, हां, आदमी तो बड़े भले हैं। भला बुलाने पर

क्यों नहीं आएंगे ? उनके तो महीने में आधे दिन सभा-समिति-मीटिंग करते ही बीतते हैं।

कुछ दिन बाद वे लड़के फिर चारु के यहां आए। बताया—चंदनदास आएंगे। उनके साथ श्रीमती भी आने वाली हैं। उनके पहुंचने के साथ ही उन लोगों को कुछ चाय-जलपान खिलाना-पिलाना है। उसके बाद ही मीटिग होगी। शाम को एक भोज का भी आयोजन किया गया है। वे लोग भी खाना खाएंगे। परंतु उन लोगों के बारे में तो गांव के लोगों को कुछ भी अता-पता नहीं है। इसी कारण रसोई-पानी बनाने, खिलाने-पिलाने का इतंजाम करने में अगर चारु-तरु मदद करें तो बड़ा अच्छा हो। क्योंकि चारु को तो वह सब अच्छी तरह मालूम है।

चारु को बड़ी खुशी हुई। यहीं पहली बार गांव के लोगों को उनकी कीमत का पता चला है। बहुत दिन बाद फिर वह दीदीजी से मिल सकेगी। इस बार वह चंदनदास से कहेगी, किसी तरीके से वे हमें इस यंत्रणा से छुटकारा दिलाएं। उन्हें वह समझाएगी—उनके यहां ग्यारह साल रहने के कारण ही वह आज नालायक हो गई है। नौकरानी बनी है। अपनी जिंदगी के शेष दिनों के लिए कुछ भी कर नहीं सकी है।

सुबह से ही चारु-तरु अफरा-तफरी में थीं। तरु ने नकली रेशम का पुराना कपड़ा निकाल लिया। चारु ने माधवी की दी हुई सिल्क की एक साड़ी निकाल ली और पहनने की कोशिश करने लगी, कभी इस सिरे से, कभी उस सिरे से, कई तरह से पहन देखकर फटे हिस्सों को छिपाया, और आखिर एक किताब के आकार के पुराने आइने को सामने लेकर खाली हथेली से दो बार चेहरे को पोंछा, इसके बाद धीमी प्रफुल्लित आवाज से तरु को पुकारा—'क्यों, तेरा हो गया है या नहीं ? चल, जल्दी चल !'

उसके बाद दिखाई पड़ा—चारु और तरु चंचल गति से आधे पैदल चलकर, आधे उछल-कूद कर उस तटबंध पर से होकर मैदान के मेले की ओर चली जा रही हैं। सूरज मानो उनकी ओर आंखें फाड़कर देख रहा है, हवा उन्हें परेशान कर रही है, शरीर पर के पुराने कपड़े उनके पीछे पड़े रह जाना चाहते हैं।

दिनभर चारु-तरु दोनों मेले के मैदान में खाना बनाने के लिए डाली गई छप्पर के नीचे बड़ी व्यस्त रहीं। जीरा-गोल मिर्च बघार के पांच फोरन, इलायची, दालचीनी की तालिका चारु मुंह से कहती गई, एक छोटी लड़की लिखती गई। कोई लड़का वह तालिका लेकर दूसरे गांव की बड़ी दुकान में दौड़ गया। दो लड़कों को प्याली-थाली लाने भेजा गया। लड़कों की लाई प्याली-थाली देखकर चारु और तरु को हंसी आ रही थी। वे सोच रही थीं अगर कुछ क्वार्टर-डिशें होतीं तो कितना अच्छा रहता ! ठीक है, अगर न मिलें तो इन्ही प्याली-थाली से काम चलाया जाएगा। परंतु तेल मे तली पूड़ी ? नही, ऐसी बात तो होने नहीं दी जा सकती। वनस्पति का इंतजाम तो करना ही पड़ेगा।

उस पूरे समय के बीच-बीच में चारु और तरु गुनगुनाहट की आवाज में कुछ-न-कुछ कहती हुई मुंह ढंक कर हंसती रहीं। और उनके साथ काम करने वाली लड़कियां भी बीच-बीच में अलग-अलग मंडलियों में अपने ही अंदर हंसती

रही—उनके अपने ही कारणों से।

अंत में मच के पास घेर कर रखी जगह पर रखी मेज पर चंदनदास और उनकी श्रीमती चाय पीने बैठे। मेज पर स्थानीय सेक्रेटरी, सभापति के साथ कुल छह लोगों के लिए चाय-जलपान सजाकर चारु एक कोने में खड़ी थी। माधवी की मां के पास जाने के लिए उसका दिल मचल रहा था पर उसे हिम्मत नही हो रही थी। एक बार अचानक माधवी की मां की नजर उस पर पड़ी। चारु की ओर देख उसने हंसने का प्रयास किया। चारु आगे बढ़ आई। अब चंदनदास की नजर भी उस पर पड़ी। उन्होंने गंभीर-सभापति के लहजे में उससे कहा—"ओ, तू भी यहीं है? हम आपस मे चर्चा ही कर रहे थे, तेरी खोज-खबर लेने के बारे में। अच्छी है न?"

—'जी, हूं'—गले के विभिन्न जगहों से टकराती हुई यही बात चारु की जबान से आ निकली।

—अरे तू तो दुबली हो गई है। माधवी की मां ने चारु की ओर देखते हुए कहा। क्या वह आज तक माधवी की वही साड़ी पहने हुए है? लेकिन वह ज्यादा देर तक चारु के शरीर की ओर देखती नहीं रह सकीं।

चारु अप्रस्तुत, अस्थिर-सी होकर खड़ी रही। भला दीदीजी और क्या-क्या पूछेंगी। मर क्या-क्या पूछेंगे? और वह खुद भी क्या कहेगी?

चंदनदास और उनकी श्रीमती भी बड़ी बेचैनी से मन-ही-मन सोचते रहे कि चारु से भला और पूछा क्या जाए? उससे पूछने को तो और कुछ है ही नहीं।

नहीं। हां, पूछने को तो और कुछ है ही नहीं। अत. दूसरे ही क्षण चाय-पान का पर्व आरंभ हुआ। गांव के युवक-युवतियो ने आकर मेज को घेर लिया। चंदनदास ने गांव में संगीत-चर्चा आयोजन के विभिन्न पहलुओ पर उनसे प्रश्न किए। एक समय चारु धीरे-धीरे रसोई के छप्पर तले चली गई।

शाम के कुछ देर बाद ही जबकि चंदनदास और उनकी पत्नी को जल्द खिला-पिलाकर विदा करने की व्यवस्था हो रही थी—तब तक चारु का शरीर हल्दी के दागों, कालिख के दागों से बिलकुल मटमैला हो गया था। उठते-बैठते साडी के दरके हुए हिस्से मानों यंत्रणा के मारे मुह फैला देना चाहते थे, परंतु साथ ही दिन का उजाला घट जाने के कारण उन्हें छिपने का मौका मिल रहा था। खाना खाते समय चंदनदास ने एक बार कहा '..; –चारु, तेरे रहने की वजह से ही शायद ऐसा लगा है कि घर में ही राज-भोग खाने को मिल रहा है। और ऐसा कहते हुए मानो अपनी रसिकता पर खुद ही हंस पड़े थे। उनके साथ-साथ स्थानीय सेक्रेटरी—सभापति की मंडली भी हो-हो कर हंस पडे।

खा-पीकर चदनदास और उनकी पत्नी को वहा से दो मील दूर के फारेस्ट डाक-बंगले मे रात को रहने जाना था। वहा से कल सुबह किसी दूसरी ओर घूमने जाएंगे, घर दो-तीन दिन बाद ही लौटना है।

चारु की ज्यादा बात करने की इच्छा नहीं थी। फिर भी किसी बहाने वह माधवी की मा के पास गई। धीमे गले से उसने पूछा—बाइदेउ, (दीदीजी) माधवी सकुशल है न ?

—हां, वह तो सकुशल ही है। उसका एक लड़का भी हुआ है न !

मुखिया लोगों के चले जाने के बाद गाव के लड़के-लड़कियां भी खाने बैठे। झुंड भर लड़के-लड़कियां। लड़के-लड़कियो की तादाद भी घटती न थी और एक झुंड के बैठ जाने पर आसानी से उनका खाना भी खत्म नहीं होता था। चारु और तरु बड़ी थक गई थी। उन्हें भूख भी लग आई थी। एक समय में बूढ़ी पुतली भी आकर मंडप के एक कोने में बैठ गई थी। चारु ने एक बार सोचा था कि मां को बुलाकर कतार में बिठा देना क्या ठीक नही रहेगा ? परंतु उसे शर्म आ रही थी। कोई अगर देख रहा हो तो क्या सोचेगा वह ?

मां न ही आती तो अच्छा होता। पर न आने में भी तो असुविधा होती। घर में खाने-पीने का आज कोई इंतजाम नहीं है। घर में कुछ है भी नहीं।

परंतु भोज के आखिरी हिस्से में रसोई-घर के नीचे एक बड़ी समस्या आ गई। मछली खत्म हो गई, सब्जी-तरकारी थोड़ी ही बची, भात भी थोड़ा-सा ही रहा। परंतु और कितने लोगों को खाना है ?

पहले वालों को ज्यादा परोसने के कारण ही आखिर में ऐसी स्थिति हुई—एक नौजवान सहकारी सेक्रेटरी ने एतराज करते हुए कहा। और इसके लिए चारु-तरु और उसके साथ वाली लड़कियां भी गुनहगार हैं। हो भी सकता है। चारु ने सोचा। उसको तो सिर्फ बनाने की आदत रही है, परोसने की आदत तो बिलकुल नहीं रही है। सबके खा-पी लेने के बाद ही, जो बचे वही खाना चाहिए—इसी व्यवस्था की वह कायल रही है।

रसोई-घर जब लगभग सूना हो आया, चारु-तरु और बूढ़ी पुतली बर्तनों के पास बैठ गई। केले के दोनों से बनाए भात रखने के भडार को पोंछने पर दो अंजुरी भात निकला था। पुतली बूढ़ी चांद-जैसी टेढ़ी मछली के गलफड़ की एक हड्डी लेकर चुपचाप चूसे जा रही थी।

सहायक सेक्रेटरी ने एक बार झांककर देखा; पूछा—'तुम लोगो के लिए कुछ बचा या नहीं ? मुट्ठी-भर चावल फट् से चढ़ा दो न। क्यों ?

हाथ-पैर के दर्द ने चारु की छाती को भी ढक लिया था। अवसाद और थकावट ने तेज यंत्रणा का रूप लेकर उसके मन को भी ढंक लिया था। फिर से भात बनाने का कोई उत्साह उसके मन में नहीं रह गया था।

इसके बाद दिखाई पड़ा—उस तटबंध के ऊपर से तीन प्राणी चुपचाप घर लौट रहे हैं। कृष्ण पक्ष के तीज या चौथ का चांद दिग्वलय के पेड़ों की टट्टी पार कर उस तटबंध पर नजर डाले हुए है। दूसरी ओर से देखने पर वे तीनों प्राणी प्रेतात्मा जैसे

दिखाई पड़ रहे थे।

घर आकर न चारु-तरु ने ही, और न उनकी मां ने ही किसी से कोई बात की। चारु ने सोचा कि मां और तरु के सो जाने पर वह सामने के चबूतरे पर बैठकर जी-भर रो लेगी! मगर भूख के मारे उसके पेट में चूहे दौड़ रहे थे। चबूतरे पर बैठकर रोने के लिए जिस ताकत की जरूरत है, उसे लगा कि वह ताकत भी उसकी नहीं रह गई है।

घंटे-भर बाद अचानक चारु के कानों में आवाज आई। बाहर कोई पुकार रहा था—"घर में कौन हो ?"

तीन बार उस आदमी की आवाज आई। आवाज ? चारु को लगा, सुनी-सुनी-सी है। पहचानी-पहचानी-सी है। हां-हां, चारु ने आवाज पहचानी—मोती ड्राइवर है।

ढिबरी जलाकर चारु ने दरवाजा खोल दिया।

—अच्छी हो न चारु ? हां, सुनती हो न, चारु, बात यह है कि—मैं तो साहब को लेकर आया था, अब उन्हें फारेस्ट बंगले में रखकर यहां आ रहा हूं। वहां एक चौकीदार के सिवा और कोई है नहीं ! मगर बात यह है कि मेरा खाना-पीना तो कुछ हुआ नहीं। उसी सुबह को घर से खाना खाकर निकला हूं। यहां के लोगों ने तो मेरी खबर ही नहीं ली। मीटिंगों में जाने पर मेरी प्रायः ऐसी ही हालत होती है। इसी कारण सोचा, तुझे भी देखता जाऊं, और कुछ खा-पी भी आऊं। हां, तो कुछ है तो मुझे दे खाने को ! और हां, बता, तू अच्छी है न ?

मोती की बातों का न सिर होता है, न पैर। जो आता है, बके जाता है, कोई दुराव-छिपाव भी नहीं। अगर मौका मिल जाए तो उसके बोल के घोड़े रुकते ही नहीं।

चारु कुछ देर स्तब्ध-सी खड़ी रही। फिर ढिबरी को फर्श पर रख वह बाहर निकल आई। मोती से कुछ कहे बगैर वह चबूतरे पर बैठ गई। फिर वह रोने लगी। अब मानो उसे रोने की ताकत आ गई। थोड़ी दूर चबूतरे पर बैठा मोती दंग रह गया, रो-रोकर कितनी ही बातें कहने के बाद चारु एक बार चुप हो गई। फिर अपने कंठ में एक अजीब-सा स्वर लाकर उसने कहा—"तुम क्या मुझे यहां से ले जा सकोगे ?"

मोती ने कुछ क्षण बाद कहा—"अरे, तुम लोगों को लेकर इसी कारण तो मुसीबत है। समझीं। सही समय पर सही बातें सोचती ही नहीं। अगर तू मुझे कभी कहने का मौका निकाल देती, तो मैं तो कभी ही कह देता—तू मेरे साथ चल। लेकिन तुझे तो यह पता ही है कि मुझे एक औरत छोड़ गई है। और वह क्यों छोड़ गई है; यह भी तुझे पता है ही !

चारु मानो अपने शरीर की सारी ताकत इ५ ठ. कर कठ मे ले आई और कहा—"मुझे वह सब बिलकुल नहीं चाहिए। तुम मुझे ले चलो। यहा तो मैं मर ही जाऊंगी।"

आधी रात के कुछ पहले मोती उसी तटबंध पर से तेजी से कदम बढ़ाता 'फारेस्ट डाक बंगले' की ओर चल पड़ा—रात तो उसे गाड़ी के अंदर ही बितानी है। मानो उसने अचानक तय कर लिया,—इस गाड़ी के अंदर उसे और ज्यादा दिन सोना नहीं

होगा।

खाली पेट की हवा मानो क्षण-क्षण में उसके होंठों के बीच से सीटी की आवाज बनकर निकल आने लगी।

तरु टट्टी के उस ओर से सब-कुछ सुन रही थी। मोती के जाने के बाद चारु जब बिस्तर पर जा रही थी, तरु ने कहा—अगर मोती तुझसे विवाह करे, तुम दोनों अगर एक ही घर में रहने लगो, तो क्या तू मुझे भी अपने साथ ले जाएगी ? तू तो जानती ही है, मैं घर के सारे काम-काज कर सकती हूं।

मतलब, अपने लंबे अनुभवों के जरिए तरु एक अच्छी-सी नौकरानी बन सकेगी।

बूढ़ी पुतली को वैसे रात के पहले हिस्से में अच्छी नींद आती, पर आधी रात को जब उसकी नींद खुलती तो फिर सुबह तक आती ही नहीं।

आधी रात बीतने पर बूढ़ी को लगा कि तरु जग रही है। उसने पूछा—"अरी, तुम दोनों किससे बातें कर रही थीं ?"

तरु गुनगुनाहट की आवाज में मां से बहुत-सी बातें कहती रही। उसने बताया—'मोती के साथ चारु की शादी होगी।'

पौ फटने के पहले बूढ़ी ने देखा कि चारु जगी हुई है, तब उसने पुकारा—'तू जग गई है क्या ? आ न, मेरे पास आ जरा !'

चारु उठकर मां के बिस्तर पर चली गई।

जिंदगी में पहली बार बूढ़ी अपने पिछले चालीस सालों के अनुभवों से चारु के साथ बातें करने लगी।

शादी-विवाह के बाद औरत के लिए कई तरह की झंझटें होती हैं। बच्चे की मां बनना कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है। पेट रह जाने के दिन से ही यह-वह कितनी सारी बातों की सार-संभाल करनी पड़ती है। वह बताती गई। "लेकिन अगर मैं रहूंगी तो उन सब पर मैं ही नजर रख सकूंगी ! हालांकि बहुत-सी बातें भूल चुकी हूं, पर बहुत कुछ अब भी याद है। मगर हां—अब बात यह है कि तुम दोनों मुझे ले जाओगी या नहीं ?

यह पूछकर बूढ़ी-बड़ी आशा से अपने कानों को सजग कर जवाब की बाट जोहती रही।

1969

वर्णना

आमतौर पर नगरपालिका वाले फागुन-चैत के महीनों में उस कुएं की कीचड़ निकाला करते। माघ के आखिरी हिस्से में ही कुएं का पानी बिलकुल पेंदी को छूने लगता, लेकिन होली के बाद के दिन तो पानी के साथ कीचड़ भी निकल आता। होली के दिन शाम को उन बूढ़ों से लेकर बच्चों तक जिनके चेहरे अबीर, नील, स्याही, कालिख, मिट्टी का तेल आदि की पुताई से पहचाने नहीं जाते, ऐसे तीस-चालीस लोग नहाने के पानी के लिए उस कुएं के किनारे धक्कम-धक्के शोर-गुल करते रहते; सिरे पर बाल्टी बंधी दस-बारह रस्सियां एक साथ कुएं में उतर जातीं; उनके उतरते समय राह के बीच और पानी की सतह पर बाल्टी-बाल्टी से टकराव होता; ऊपर के लोगों में बहसबाजी, बात कटौवल होती। किसी-किसी की बारह गांठें पड़ीं, चिंदी उड़ी, सड़ी रस्सी पानी भरी बाल्टी के उलझाव-टकराव से टूट जाती और बाल्टी कुएं में गिर जाती, बाल्टी वाला अपने पास वाले को गालियां देता; वह दूसरा भी चीखकर कहता—"गला पकड़कर तुझे उतार देता हूं, जाकर उठा ला बाल्टी। ऐसी बक-बक क्या कर रहा है?" तिलका बूढ़ी कुछ दूर से ही चीखती—"अरे, तुम सब जो लंगोट मारे नौजवान हट्ठे-कट्ठे लोग हो; इस कुएं को निगलने आ पहुंचे हो! क्यों, जरा कदम बढ़ाकर उस नदी में जाकर नहा-धो नहीं सकते? तुम सब अगर कुएं को इस तरह से गंदला करोगे तो भला रात के लिए पीने का पानी कहां से निकलेगा?"

तभी योगेश्वर बोल उठा—अरी काकी, तेरे चेहरे पर तो रंग-वंग कुछ लगा ही नहीं है! क्या तूने होली नहीं खेली? देखूं तो जरा इधर आ जा।—और अपने कालिख लगे हाथों को मलता हुआ बुढ़िया की ओर बढ़ गया। और तब बुढ़िया बोल उठी—तुझे ठिठोली करने को क्या कोई और नहीं मिला है रे; जो मुझ जैसी बुढ़िया से ठिठोली करता है? ठीक है, आ जा, मैं झाड़ू से तेरी पीठ छलनी कर दूंगी। खबरदार!—और यह घोषणा कर पीतल का खाली घड़ा हाथ में उठाकर बुढ़िया घर लौट पड़ती!

उसके बाद तो मुहल्ले वालों को पीने के पानी के लिए भारी मुसीबत होती। पानी गंदला हो जाता, कीचड़-कीचड़। तिस पर तरह-तरह की बू आने लगती। लगभग दो घंटे ठिठककर रखने के बाद फटे अंगोछे या फटी चादर से छानने पर ही वह पानी मुंह में डालने लायक बनता है। लोग आपस में कहने लगते हैं—नगर-पालिका वाले न

मालूम कब आकर कुएं से कीचड़ निकालेंगे। लोग आपस में कहने लगते—"इस अंचल के नगर पालिका के सदस्य 'गोबिद मिष्ठान्न भंडार' के मालिक काली चक्रवर्ती से मिलकर बात बतानी होगी। पर चक्रवर्ती बाबू से आसानी से मिल पाना भी तो मुश्किल है। चौराहे की बत्ती जलाने के लिए शाम होते ही कंधे पर सीढी, चिमनी पोंछने का चिथड़ा, हाथ में मिट्टी के तेल का टीन और जेब में दियासलाई लिए एक बिहारी आदमी आता; पद्म बूढ़ा हाथ में ढिबरी लिए उसके पास जाकर झटपट पूछता—'तू इस बार होली में देश क्यों नहीं गया? इस बार होली में तूने ढोलकी बजाया था या नहीं?' फिर उससे आधा ढिबरी मिट्टी का तेल मांगता; तेल मिल जाने पर ढिबरी का मुंह अच्छी तरह से बंद करते हुए बुड्ढे की आवाज बड़ी गंभीर हो आती, वह नामघर में किसी चर्चा में दूसरे किसी का दोष पकड़ने की आवाज-सी हो जाती।—तुम लोगों की यह म्यूनिसिपैलिटी भी क्या है? अंह, यह कुआं कीचड़ से भर गया, आज तीन-चार दिनों से लोगों को साफ पानी की एक बूंद पीने के लिए नहीं मिली, और उसकी ओर से कीचड़ निकालने की कोई खबर ही नहीं। भला यह भी कोई विचार की बात है? तू ऑफिस में बता देना, तीन दिन के अंदर ही कीचड़ उठाने के लिए लोगों को भेजें। तू कहेगा या नही?

बिहारी कहता—कहूंगा!

"कल ही कहना।"

"ठीक है, कह दूंगा।"

"देखना भैया, परसों के अंदर ही अगर कीचड़ निकालने वाले लोग न आए, तो तेरी यह सीढ़ी-वीढ़ी सब कुछ यहीं रख लूंगा।"

कुछ दिन बाद कुएं में उतरने की पतली सीढी, रस्सी, बाल्टी लिए म्यूनिसिपैलिटी के कुछ लोग कीचड़ निकालने आते। उनका मुहर्रिर आते ही उस मुहल्ले में सूचना देता, जिन लोगों को पानी की जरूरत हो, लोगों के कुएं में उतरने के पहले ही वे जल्दी आकर पानी भर ले जाएं। और तब रस्सी, बाल्टी, घड़े लिए औरतें, खास नवयुवतियां कुएं के पास दौड़ आतीं, जहां तक हो सके जल्दी-जल्दी पानी भरकर वे अपने-अपने घरों की बड़ी कड़ाही, चरिया (कठौती जैसा बर्तन) आदि जो कुछ मिलता, सारे बर्तन भरने की कोशिश करतीं। कीचड़ निकालने के बाद तो कुएं के पानी में पोटाश डाली जाएगी, दो-तीन दिन पानी लाल रहेगा; उस रंग के घटने पर ही वह पानी पिया जा सकेगा। इसलिए कम से कम दो दिनो के लिए पानी तो चाहिए ही। चबूतरे के पास घुटने मोड़े बैठी रंभा बूढ़ी भी कूंथती हुई कहती—ओ मानिकी, मुझे भी दो घडा पानी देना बिटिया। कमर तो आज उसके बाद कुएं की कीचड़ निकालना देखने के लिए आ जुटे बूढ़े-जवान-बच्चे आदि से कुएं का किनारा भर जाता। नगर पालिका के दो मोटे-ताजे आदमी सीढ़ी से कुएं के नीचे उतर जाते, दो बड़ी-बड़ी बाल्टियों में वे कीचड़ भर देते, और बाल्टियों को हाथों से पकड़ ऊपर कर देते, ऊपर के दो हट्टे-कट्टे आदमी

बाल्टियों को ऊपर उठा, कुएं की जगत के किनारे कीचड़ उंड़ेल देते। मुहर्रिर बीच-बीच में उन्हें 'जल्दी करो, जल्दी करो' कहकर यों ही हांक लगाता, क्योंकि मुहर्रिर होने के नाते उसे वैसा कहना ही होता!

कुएं की कीचड़ के साथ और क्या-क्या निकल रहा है, देखने के लिए किशोर लड़के कीचड़ पैरों से रौंदते। इस बार से पहले कीचड़ निकालते समय विष्णु, हलीराम और नेपाल की बाल्टियां रस्सी टूट जाने के क़ारण कुएं में गिरी थीं। कांटे से बड़ी कोशिश करने के बावजूद वे बाल्टियां निकाल नहीं सके थे, अब वे बाल्टियां कीचड़ के साथ निकल आई हैं। मधु साइकिल के पहिए की एक रीम को एक लकड़ी के सहारे चलाता हुआ मुंह से 'पित् पित्' आवाजें करता दौड़ता फिरता था; एक दिन कुएं के किनारे खेल-तमाशा कर रहा था, अचानक वह रीम कुएं में जा गिरी। अब वह रीम भी ऊपर आ गई। पास के बड़े आम के पेड़ पर फेंके गए दो-एक बल्ले ठीक जगह पर न लगकर कभी-कभी कुएं में आ गिरते, अब वे भी बाहर आ रहे थे। रजनी का पीतल का लोटा निकला। बाप ने गोविंद के जिस बांस के स्केल पर इंच की निशानी काट दी थी, वह भी कुएं से निकला, विनोद के लकड़ी का वह छोटा-सा हिरण भी ऊपर आ गया, विनोद आदि ने तो सोचा था कि उनके काका का वह नटखट लड़का ही उसे उठा ले गया है, और उसके फिर मिलने की आशा वे छोड़ चुके थे। सरुमाइ अपनी बड़ी बहन का पीतल का कड़ा पहने हुए थी, वह कड़ा हाथ से निकल, कुएं में गिर पड़ा था। कीचड़ के साथ वह भी निकल आ सकता है, ऐसा मानकर सरुमाइ कीचड़ की ओर ध्यान से देख रही थी; पर कड़ा नहीं निकला।

बहुत साल, हां, बहुत साल के बाद वर्णना के लिए आज इस कुएं की कीचड़ निकाली जा रही थी।

जिन दिनों वर्णना का जन्म हुआ था, इस मुहल्ले में जिंदगी की गति स्वच्छंद थी। हीरा मारवाड़ी व्यापारी के बरामदे में बैठा किराए पर ली गई सिलाई मशीन पर मैमनसिंही मियां की लुंगी सिलता एक आने में। बलोराम बुधवार की हाट में बेचने के उद्देश्य से सोम-मंगलवार को तंबाकू के पत्तों के चूरे और सीरा मिला कूटकर पीने का तंबाकू बनाता। निबारण साइकिल की कैरियर पर रंदा-बटाली-हथौड़ी लेकर गांव में रहने वाले सिपाही के काठ का घर बनाने सुबह-सुबह निकल जाता। गजेन ड्राइवर महाजन के यहां बस को रख आने के लिए जाते समय राह में खरीद-बटोर कर लाई हुई मछली-सब्जी का थैला पत्नी को देने के लिए आम के पेड़ के नीचे बस को रोकता, मुहल्ले भर के बच्चों को बस पर चढ़ाकर कुछ दूर आगे ले जाकर चौराहे पर उतार देता। जो बच्चे उतरना न चाहते, उन्हें डांटता। मानिकी आदि गोल बनाए बैठी एक-दूसरे के सिर से जूंएं निकाला करतीं। नेपाल आदि गुल्ली-डंडा खेला करते। अगर कहीं हैजा फैलता, तो लोग लौकी और 'औ-टेङा' याने कैथ की खोज में निकलते। देश से उस बीमारी को भगाने के लिए बाट-बाट में कीर्तन-संकीर्तन करते, हरिपद बिश्वास

अंगोछे से हारमोनियम बांध, अपने गले से लटकाकर मुक्त कंठ से 'हरे कृष्ण राम' गाता हुआ संकीर्तन-मंडली के आगे-आगे जाता। लावण्य और योगेश्वर की बदनामी फैलती। दो-चार दिन बारिश न होने का बहाना मिलते ही किरण आदि 'मेंढक की शादी' का आयोजन करते। रजनी और उसके साथी हरिपद की हारमोनियम को किराए पर ले, जुलूस के गाने का रियाज करते—"सौ ये उरिछे स्वराज निशान"— "फहराता वह स्वराज का झंडा"।—

शहर के केंद्र-स्थल में संगीत-शिक्षक गोपाल बाबू अपने छात्र-छात्राओं को लेकर 'वैरायटी शो' का आयोजन करते। झीने, रगीन कागज पर वे 'हैंडबिल' छपवाते— "पहले 'समवेत वादन' होगा, उसके बाद हर कांत सिरस्तादार की बिटिया मिनती सितार बजाएगी; डी.एस.पी. निरंजन की बिटिया वर्णना भजन गाएगी, रबी वकील का बड़ा लड़का बासुरी और छोटा लड़का तबला बजाएगा।

नेपाल आदि 'वैरायटी-शो' देखकर जेबों में दो-तीन रंगीन हैंडबिल ले घर लौटते। उन्हीं दिनों नेपाल की एक महीने की बहन का नामकरण करने के बारे में उसके मां-बाप सोच-विचार करते रहते। नेपाल हैंडबिल पढ़कर बताता, उसका नाम वर्णना होगा। बाप होंठ बिदोर कर पूछता—अरे, वह भला कैसा नाम है? भोला कहता— 'होगा, होगा।' तुम्हें भला क्या मालूम है? ये ही तो अच्छा नाम है।

वर्णना को याद है, आखिरी बार जबकि उस कुएं की कीचड़ निकालीं गई थी, वर्णना की उम्र लगभग सात साल होगी। कब, किसने कीचड़ निकालने के काम की जरूरत से इंकार किया था, कोई भी ठीक-ठीक बता नहीं सकता, परंतु तभी से कीचड़ निकालने का काम बंद हो गया था। कुएं का पानी पीने वालों की तादाद धीरे-धीरे घट गई थी और जिन दिनों वर्णना की उम्र पचीस साल की हो गई, उन दिनों सिर्फ उसके घरवालों के सिवा नियमित रूप से कुएं का पानी पीने वाला और कोई था ही नहीं। बाद में उनके परिवार के लोगों की संख्या घटकर दो हो गई थी।

पद्म बुड्ढे को नूरुद्दिन पेशकार ने बहुत दिन पहले ही दो सौ रुपए देकर एक बीघा जमीन खरीद ली थी। अब पेशकार उस जमीन को जगमोहन नाम के आदमी के हाथ बेचने वाला था, जो उस जमीन पर एक तिमंजिला मकान बनवाएगा। इसलिए पद्म बूढ़ा और उसकी जमीन पर बसे विष्णु, बलोराम, निबारण और माणिकी—ये चारों परिवार वहां से तीन मील दूर नदी के दूसरे किनारे की खुली जमीन पर चले गए। जगमोहन ने शुरू में ही सही अंदाजा लगा लिया था;—इस ओर कुछ ही दूरी पर लोहे-लक्कड़ का एक बड़ा-सा कारखाना खुलने वाला है। इसी जगह कही से बड़ी-सी पक्की सड़क बनेगी। कुछ ही दिन में जगमोहन के अलावा सोहन सिंह, राधाकिसन, काली चक्रवर्ती आदि भी उस मुहल्ले का चक्कर लगाने लगे। हलीराम, गजेन आदि ने भी यहां की जमीन बेचकर उसी रकम के आधे से कदम गुरी की ओर जाकर कुछ जमीन खरीद ली और कुछ दिन बाद वहीं चले गए। योगेश्वर आदि की अपनी जमीन थी नहीं।

"रौमारी बिल" के उधर सरकार ने 'रिजर्व-जमीन' खोल दी है, ऐसी सूचना मिलने पर वे वहीं चले गए। उनके साथ रजनी आदि भी चले गए। रंभा बुढ़िया तो यहीं मरी। बीड़ी—कैनवासर हरिपद के लिए भी उस मुहल्ले में अब जी नहीं लगता था, एक दिन वह भी हारमोनियम, तबला, देगची, बाल्टी आदि रामबिरिछ की घोड़े गाड़ी पर चढ़ा, बीड़ी कंपनी के गोदाम के पिछवाड़े बने एक छप्पर के नीचे चला गया। वहां से जाने के पहले दिन की रात को सरुमाइ के घर के बरामदे में बैठकर "तुमि ये बलियाछिले, एपथे फिरिबे, गधूलि लगने, सेकि आज भुले गेले।" यानि—"तुमने तो कहा था इसी राह से लौटोगे; गोधूलि लग्न में। वह बात क्या तुम भूल गए?" यह गाना, जी खोलकर तीन बार दुहराया था।

उसके बाद मुहल्ले में ढेरी की ढेरी ईंटें, कंकड़, रेत आती रहीं। हाथों में फावड़े-टोकरी-खंती लिए साठ-सत्तर लोग आए, जिनकी भाषा उन लोगों की समझ में नहीं आती थी। घरघराहट की रूखी आवाज करने वाली कंकड़-रेत-सीमेंट मिलाने वाली मशीनें आईं, 'ऐसा करो, वैसा करो', चीख-पुकारकर हुक्म देने वाले कई मुहर्रिर आए। मन-ही-मन विस्मय से भरी वर्णना को लगने लगा कि अंदर-बाहर चारों ओर कुछ अजीब-अजीब-से कांड हो रहे हैं। शर्म, डर और उत्कंठा के मारे वह संकुचित-सी हो गई।

उसके बाद वर्णना की उम्र जिन दिनों बीस साल की थी, वह मुहल्ला दुमंजिले-तिमंजिले मकानों से भर गया। जैसा कि कभी जगमोहन ने अंदाजा लगाया था, उन मकानों के बीच से पक्की सड़क बनी। उस सड़क से आधे मील दूर 'इंडस्ट्रियल स्टेट' तक दिन-रात डीजल ट्रकें दौड़ने लगीं। सुबह-शाम कांवेंट में पढ़ने वाले बच्चों को लाने-ले जाने वाली बसें चलीं; हीरा सिलाई का काम छोड़ एक तिमंजिले मकान के कोने में बीड़ी-सिगरेट की एक छोटी-सी दुकान लगाने लगा, वर्णना का बाप चल बसा और उसके बाद वर्णना के बड़े भाई नेपाल और भोला में झगड़ा शुरू हो गया।

बड़े-बड़े पक्के मकानों के दबाव के मारे जैसे वर्णना के उस फूस के घर का दम ही घुट रहा था। वह घर ऐसा लगने लगा था मानो नौजवान के सिर पर काले बालों के बीच दमकता हुआ, ऐसा सफेद बाल हो, जिसे किसी भी तरह से उखाड़-फेंकड़ने की इच्छा हो आती है, भोला आदि के बाहर आने-जाने का रास्ता भी टेढ़ा-मेढ़ा और संकरा हो गया। पश्चिम की ओर जो मकान था उसके ऊपरी मंजिले से फेंके गए—अनानास और आलू के छिलके सीधे वर्णना के घर की छप्पर पर ही गिरते थे। मां कभी वर्णना आदि को डांटती तो पूरब के मकान की बॉलकनी में ऐसे-ऐसे मोटे-ताजे लड़के-लड़कियों के झुंड जम जाते, जिन्हें छोटी उम्र में ही चश्मे लगाने पड़ते थे। नेपाल कहता, चलो यह जमीन बेचकर कहीं खुले में निकल जाएं। भोला कहता, पुश्तैनी जमीन भला क्यों बेचें? यहीं कभी-न-कभी पक्का मकान बनाएंगे।

कहते-कहते भोला की नजर में चमक आ जाती। उसकी जबान से पिंजड़े में बंदी बाघ की गरज उभर आती। लेकिन नेपाल जब कहता—"क्या कहा? फिर से एक बार कह तो जरा।" तो उसकी आवाज में सर्कस के रिंग-मास्टर के चाबुक का-सा रूखापन उभर आता। उनकी मां दोनों के बीच में आकर हा-हा कर उठती। वर्णना तिरछी निगाह से पश्चिमी ओर के मकान की बालकनी को देखती। उसकी बहन रानी पास की लड़की के घर जाने के लिए जल्दी से दो बेनियां गूंथतीं। नेपाल की पत्नी ऐसा भाव दिखाती, 'रात को जिसे रसोई बनानी हो, बनाए, हां।'

आखिर नेपाल ने तय किया—वह अपने हिस्से की सवा कट्ठा जमीन बेच देगा और पत्नी को लेकर कहीं चला जाएगा। दूसरे लोग अपना गुजारा जैसे करना हो, करते रहें। सिर्फ तय ही नहीं किया उसने कुछ ही दिनों में वही कर भी डाला।

जगमोहन ने एक और तिमंजिले मकान का प्लान बनवाकर अमोनिया प्रिंट का वह कागज भोला के सामने फैला दिया। उस पर खुले सिगरेट का पैकेट और दियासलाई रखकर वह उस मकान के प्लान की समालोचना करने लगा।—अरे, प्लान बनाने वाला वह इंजीनीयर बेवकूफ है। उससे तो मैंने बार-बार कहा—मेरी जमीन तो सिर्फ सवा कट्ठा है। भोला बाबू तो अपने हिस्से का सवा कट्ठा कभी बेचेगा नहीं, पर उसने ढाई कट्ठे जमीन पर मकान का प्लान बना दिया है। कहता है कि इतनी कम जमीन पर एक तिमंजिला मकान 'अन इकोनमिक' होगा। उस मकान को खड़ा रखना भी मुश्किल होगा। हुंह, इंजीनियर बना है वह!

फिर अचानक लहजा बदलकर जगमोहन ने पूछा—अब क्या करूं, तुम्हीं बताओ न भोला बाबू। बड़ी मुसीबत में पड़ा हूं।

सिगरेट के पैकेट में कितने सिगरेट हैं, मानो देखने के बहाने, लेकिन निर्विकार लहजे में भोला कह उठा—"आप क्या करेंगे, भला मैं क्या कहूं? आपके जी में जो आए कीजिए, लेकिन मैं तो जमीन बेचूंगा नहीं। मेरा वचन एक है।

जगमोहन के जी में जो आया, उसने वही किया और खुशी की बात हुई, उसका काम भोला को भी पसंद आया। भोला के साथ उसका लिखित समझौता हुआ—वह ढाई कट्ठे जमीन पर मकान बनाएगा, नेपाल ने जितने रुपए में जमीन बेची थी, उतने रुपए नकद देने के अलावा तिमंजिले मकान के निचले हिस्से के सामने के तीन कमरे भोला को दे देगा।

जब तक मकान पूरा न हो गया, भोला को रहने के लिए जगमोहन ने दूसरे एक मकान के दो कमरे दिलवा दिए। उन दो कमरों में रहते समय वर्णना ाादि को सबसे ज्यादा मजा झाड़ू लगाते हुए आता। पक्की फर्श पर झाड़ू फिसल-फिसल जाती। उन्हें सबसे ज्यादा असुविधा रात को मच्छरदानी लगाने में हुई। दीवारों पर रस्सी बांधने के लिए कोई भी चीज नहीं है।

एक दिन जगमोहन का मकान बन गया। उसकी थुलथुल शरीर वाली पत्नी ने

दरवाजे के ऊपर सिंदूर से स्वास्तिक बनाया, उसकी घुले-मिले चेहरों वाली तीन पतोहुओं ने गाल फुलाकर शंख बजाए, भोला आदि को भी मिठाइयां मिलीं।

उस घर में एक कमरा तो ज्यादा हुआ, पर एक प्राणी घटा। वर्णना की बहन रानी का तो उस दो कमरों की दुनिया में दम घुटने जैसी हालत हो गई थी। जगमोहन का कांट्रेक्टर रवि कुमार आसमान-मुक्त हवाओं के साथ दम की लेन-देन किया करता है, ऐसा जानकर रानी अभिभूत हो गई थी। उसे हवा में रविकुमार की सांसों की गरमी का अहसास होने लगा था। रात को नींद में वर्णना अपना एक पैर उसके शरीर पर चढ़ा दे, और उसके उस पैर को शरीर पर लिए वह रात-रात को लगातार जगी रहे, यह व्यवस्था उसके लिए असहनीय हो उठी। जगमोहन के मकान बनाने का काम खत्म हुआ था, तभी एक दिन वह अपने पहने कपड़ों में ही रवि कुमार के साथ निकल गई। साथ ले जाने की कोई और चीज तो उसकी थी नहीं, साथ कुछ ले जाने की जरूरत भी नहीं थी। वह सब तो रविकुमार के पास बहुत है। इस पर रविकुमार उससे प्रायः कहा करता—तुम तो जो कुछ पहनती हो, उसी में बड़ी खूबसूरत लगती हो।

बात तो सच भी थी। वर्णना ने भी उससे वही बात कई दिन कही थी। पर बात इतनी सच होगी, वह सोच नहीं सकी थी। दो-तीन दिन यहां-वहां बदहवास-सी खड़ी होकर, किसी की नजरों में आए बगैर कुछ सोचती-विचारती रही। फिर चिड़िया अपने शरीर का पानी झाड़ देने के लिए जैसे शरीर को फड़फड़ा लेती हैं, उसी तरह मन को फड़फड़ा कर उसने तय कर लिया—वह अब आगे कुछ भी नहीं सोचेगी। उसके बाद से, निश्चित बनने की कोशिश करती हुई इस पक्के मकान की दुनिया में आ गई। उन दिनों उसकी उम्र बाईस साल की थी।

वह पूरा अंचल मकानों से बिल्कुल भर गया था। सेंट्रल स्कूल के प्रिंसिपल श्री निवासन का ज्योतिर्विद्या पर बड़ा अनुराग था। रात को उस तिमंजिले की छत पर चढ़कर, हाथ में एक दूरबीन लिए वे आकाश में शनि ग्रह की खोज करते और बीच-बीच में 'हां, मिल गया, मिल गया' चीख-पुकारकर अपनी साली को पास बुलाते। उनकी साली उससे परेशानी का अनुभव करती। उसके हाथ में दूरबीन को वे जबरन थमा देते। उसे लेकर वह शनि ग्रह को बगैर देखे ही, 'देख लिया' कह देती। बायलर इंजीनियर परितोष·खुद बूथ पर दूध लेने आता और जब तक दूध की गाड़ी नहीं पहुंचती, वह फ्राक पहने किशोरियों को दूध कैसे 'पाश्चुराइज' किया जाता है, समझाता रहता। टैक्स-इंस्पेक्टर मुकुंदलाल सुबह-सुबह अपनी गाड़ी को स्टार्ट करने के लिए अपने रसोइए लड़के और पास के और दो लड़कों की मदद से आगे-पीछे धकेलता रहता। जबलपुर से रिटायर होकर अब अपने बेटे के साथ रहने आया बूढ़ा शिवचरण छह फुट—बारह फुट की जमीन पर गाजर, बीट, सलाद, फ्रेंच बीन आदि की खेती में जुटा रहता। टेलीफोन आपरेटर मनोरमा को उसका पति पौ फटते ही स्कूटर के पीछे बैठाकर दफ्तर में रख आता और चांदनी रात को कुएं के पास की खुली जगह पर

स्कूटर चलाना सिखाता। पार्थ प्रतिम 'यंग बायज क्लब' खोलने की मीटिंग बुलाता है और चंदा वसूल करता है। उसके साथी बहुत-से लड़के क्रिकेट-प्लेयर का चेहरा-मुहरा बनाने के उद्देश्य से सफेद पैंट, सफेद कमीज और सामने की ओर बरामदा वाली टोपी खरीदते। वे क्रिकेट तो खेलते नहीं, पर हाथ में कोई कंकड पड़ जाए तो उसे उठाकर गेंदबाज की भंगिमा में दूर फेंक मारते। चांस मिले तो दुनिया के सारे स्टप उड़ा देंगे, वे ऐसे ही मूड में रहते। इसी कालोनी की बेहद खूबसूरत लड़की इवा को हमेशा रास्ते पर परेशान करने वाले सड़क के उस ओर की कालोनी के किशोर नाम के मस्तान की एक दिन उन लडकों ने जमकर पिटाई की !

बीच-बीच में तीन मील दूर नदी के उस पार के गांव से मधु और कनतिल इधर घूमने-फिरने आ जाते हैं। अब तो वे नौजवान हो उठे हैं। जगमोहन से जो नकद रकम मिली थी, भोला ने भी उसी रकम से हीरा की दुकान के साथ ही छप्पर डालकर परचून की एक दुकान खोल ली। मधु आदि आकर उसकी दुकान के बारे में पूछताछ करते— भोला भैया, दुकान कैसी चल रही है ?

ठीक से नहीं चल रही। किसी तरह टुक-टाक चल रही है। उसकी दुकान में जो सामान है, ये लोग वह सब सामान बड़ी दुकान से एक ही बार मे खरीद लेते हैं पूरे माह भर के लिए। इसलिए भोला की दुकान तो ठीक से नहीं चल रही। पटसन कारखाने का एक अधिकारी यहीं के एक फ्लैट में रहता है, उसने भोला को आश्वासन दिया है कि कारखाने की एक नौकरी वह दिलवा देगा, परंतु नौकरी करने के लिए तो भोला को यहां से चला जाना पड़ेगा।

मधु और कनतिल वर्णना के यहां भी जाकर बैठते। पक्का मकान, पक्की फर्श, पर कमरों का रूप बड़ा ही भद्दा था। जगमोहन ने उन तीनों कमरों के लिए बिजली की व्यवस्था नहीं की थी। धुए के मारे उनकी दीवारें काली हो गई थी। कोने की एक रस्सी पर एक कमीज, एक मटमैला पाजामा और एक अंगोछा बिजली के तारों से लगकर मरे चमगादड़ों जैसे लटक रहे थे। वर्णना की मां जहां बैठती वहा की दीवार पर उसके सिर का एक काला-सा दाग लगा था। बुढ़िया के दांत झड़ गए थे, गालों पर काले-काले धब्बे पड़े थे, उसे आंखों से भी अच्छी तरह दिखाई नहीं पड़ता था। वह पूछती—कौन हो ? रजनी हो क्या ?

—नहीं काकी, हम हैं, मधु और कनतिल।

बुढ़िया नदी के उस पार रहने वाले लोगों की खबर पूछती। बलोराम अच्छा है न ? बिष्णु का इलाज उसके बेटे ठीक से करवा रहे हैं या नहीं ? सुना है कि मानिकी के बच्चे देखने में बड़े सुंदर हुए है ?

कनतिल वर्णना से पूछता—बाइटि, अच्छी तो हो न ? वर्णना जवाब देती— "चाय बना रही हूं। पीकर जाना। फट् से निकल न जाना।"

ये ही कुछ लोग वर्णना को 'बाइटि' (बड़ी बहनजी) कहते हैं। यहां के

लड़के-बच्चे जो उसे बुलाते या बात करते हैं, वे तो उसे 'दीदी' ही कहते हैं। कुएं के पास के पक्के चबूतरे पर बैठकर गप्पें मारने वाले लड़के उससे हंस-हंसकर पूछते, 'दीदी, तुम्हारे कछुवे ने अडे दिए हैं क्या ?'

जगमोहन ने भोला को जो तीन कमरे दिए थे, उनमें उसने पानी की व्यवस्था नही की थी। आस-पास कहीं पानी का सार्वजनिक नल भी न था। वर्णना के घरवाले कुएं का पानी पीते, और कुएं का पानी सिर्फ वे ही लोग पीते। परितोष बाबू की विधवा दादी वर्धमान शहर से सात मील दूर गांव की रहने वाली थी। कुएं का पानी काम में लाने में अभ्यस्त थी। वह पूजाघर लीपने और पूजा के लिए रखी लुटिया में जरा-सा पानी भरने के लिए हर बृहस्पतिवार को कुएं से जरा-सा पानी मंगवाती। उसके सिवा उस कुएं से और किसी का कोई संबंध नहीं रह गया था। एक दिन भोला नदी के उस पार के गांव से कछुवे का एक बच्चा ले आया था, वर्णना ने उसे कुए में छोड़ दिया था। पानी भरने जाती तो वह हमेशा उस कछुवे को देखा करती, कभी-कभी बड़ी कोशिश कर बाल्टी से उसे ऊपर उठाती, देखती कि कितना बड़ा हुआ है। फिर उसे बाल्टी में ही रखकर उतार देती। गप्पें मारने वाले लडके कभी-कभी तिरते कछुवे की ओर निशाना लगाकर छोटे-छोटे कंकड़ फेंका करते, पर ऊपर कंकड़ पड़ते ही कछुवा पानी में डुबकी लगा लेता।

कुएं के किनारे बैठ मधु, कनतिल और भोला आपस में चर्चा करते कि पहले किसका घर कहा था। पर उसमें सफल न हो पाते। यों कुएं के किनारे बैठने पर भोला प्रायः चुपचाप रहता। बीच में कभी-कभी ऐसे कह उठता, मानो अपने आपसे ही कह रहा हो—"मैं भी सोचता हूं कि चला ही जाऊं। समझे न। यहां अच्छा नहीं लगता।"

कनतिल आदि उसकी मर्मवेदना समझते। वे पूछते—क्या नेपाल भैया कुछ खबर नहीं लेते ?

भोला चुप रहता।

—रानी आदि तो बीच-बीच में आया करती हैं न ?

—हां, आती है। रानी और रविकुमार शहर के बीचों-बीच रहते हैं। वे बीच-बीच में आया करते हैं। दो-एक घंटे रहते हैं। रानी लड़के के लिए एक फ्लास्क में गर्म पानी, बदलने के लिए कपड़े, पोंछने के लिए छोटा-सा तौलिया, चम्मच, बिस्कुट आदि लेती आती। उन्हीं में से दो-एक बिस्कुट वह मां को देती। मां पानी में भिगोकर खाती। बिस्कुट का जरा-सा टुकड़ा वह नाती के मुंह में जैसे ही डालना चाहती रानी 'है-है' करती उसके पास आ जाती और कहती—'उसे मत देना, मत देना। वह अभी कुछ नही खाता। कहते-कहते वह अपनी हाथ-घड़ी की ओर नजर डालती और बेल्ट को खींचकर घड़ी को सही जगह ले आती।

रानी कभी अगर इधर के हॉल में सिनेमा देखने आती तो बड़ी बास्केट के साथ बच्चे को वर्णना के हाथ दे जाती। बास्केट में रखी चीजों के बारे में वह वर्णना के

सामने एक भाषण ही दे डालती। चम्मच गर्म पानी से धोई गई है। उसे जहां-तहां न रखना। चीनी दो चम्मच, दूध पिलाने के पहले बिंब को बांध लेना, जांघिया बदलना हो तो इसमें से जरा-सा पावडर छिड़क देना, अगर रोए तो इस तरह से पीठ पर धीरे-धीरे थपकी दे जरा बड़ी सड़क की ओर निकाल ले जाना, तब वह सोएगा। जाते समय वह रविकुमार की घड़ी भी वर्णना को सौंप जाती। जिससे कि घड़ी देखकर समय पर दूध पिला सके। कभी सिनेमा देख आने पर अगर वह बच्चे को रोते देखती, तो 'ओ हो, मेरे हीरे, मैं तुम्हें छोड़ गई थी ? मत रोओ, मत रोओ, मैं तो आ गई हूं न !' कहकर उसे प्यार करती। साथ ही वर्णना यह सामान्य काम भी ठीक ढंग से नहीं कर सकती, उसके लिए मुंह फुला लेती।

वर्णना की उम्र जिन दिनों तीस साल की थी, उन्हीं दिनों भोला को पटसन कारखाने की वह नौकरी मिल गई। नौकरी में योगदान करने हेतु जाते समय उसने वर्णना की ओर ठीक से नजर नहीं डाली थी। उसने मां से कहा था—यहां से कोई ज्यादा दूर तो है नही। वह हर सप्ताह आता रहेगा। हीरा भैया है ही, कनतिल-मधु आदि से भी कह जा रहा है, वे भी खबर लेते रहेंगे।

हां, अंचल के लोग तो खबर लेते ही रहे हैं। खबर लेने वाले लोगों की तादाद जरूरत से कुछ ज्यादा ही रही है। कनतिल, मधु आदि भी बीच-बीच में आते रहे हैं।

पर धीरे-धीरे मानो लोगों को खबर ठीक से मिलनी रुक-सी गई। लालटेन के छेद बंद हो जाने पर जैसे उसके अंदर धुआं कभी उठता है, कभी नीचे आता है, और नतीजा यह होता है कि पूरी चिमनी काली हो जाती है, वैसे ही खबरें भी उसी धुएं की भांति होती गई।

उसके बाद, भोला के जाने के लगभग साल भर बाद एक दिन आधी रात को, उस कुएं के पानी से एक बड़ी-सी आवाज उसकी पक्की किनारी से धक्का खाते-खाते, जोर की गुमगुमाहट बनकर उभर आई। भक्-भक् से आसपास के घरों के कमरों की कुछ बिजली-बत्तियां जल उठीं, खट्ट-खट्ट कर कुछ घरों के दरवाजे-खिड़कियां खुले, बालकनियों में लोग निकल आए। लोग एक दूसरे से पूछताछ करने लगे थे।—क्या बात है ? घटना क्या है ? कहां क्या हुआ है ?

वर्णना की बुढ़िया मां ने बिस्तर पर से ही आवाज दी—'अरी, कहां-क्या हुआ है ? क्या सच है यह ? तूने सुना है या नहीं ? भला तू है कहां ?

वर्णना कहां है, तय कर पाने में लोगों को घंटे-भर से ज्यादा समय लगा था। मुकुंदलाल शिकार पर जाते समय जो पाच बैटरियों वाली टार्च साथ ले जाता था, जैसे ही उससे कुएं के अंदर उजाला किया, तुरंत उसकी जबान से एक जोरदार चीख निकल आई। पाले हुए, अंडे न देने वाले कछुवे के सिर की निशानी लगाकर कंकड़ फेंकने वाले लड़के आतंक के मारे मौन वहां से दूर-दूर खड़े हो गए थे। हीरा नदी के उस पार के गांव की ओर दौड़ पड़ा था। मनोरमा का पति अपनी स्कूटर ले रविकुमार के घर की

तलाश में सनसनाता दौड़ पड़ा था। मनोरमा पटसन कारखाने को ट्रंककाल करने के इरादे से उत्तेजित स्वर में पूछ रही थी—"कौन है ? बिजन बाबू हैं क्या ? अच्छा, सुनिए, बिजन बाबू, मैं मिसेज गुहा बोल रही हूं।" उसके बाद अचानक डांटती हुई कह रही थी—'आह, छोड़िए भी अपनी रसिकता, मजाक ! सुनिए—'

उसके बाद मिसेज गुहा को पुलिस, फायर ब्रिगेड की याद आई।

पुलिस आ गई। मगर फायर ब्रिगेड आने में देर हुई। नदी के उस पार के गांव से मधु, कनतिल निवारण, बलोराम बूढ़ा आदि झुंड भर लोग दौड़े आ गए। बीमार होने के बावजूद विष्णु बूढ़ा भी आया। कहीं से एक लंबी सीढ़ी ले आए जिस पर चढ़कर लोग पान तोड़ा करते हैं। बांस भी ले आए, सनई की मोटी रस्सी भी कहीं से ले आए। मधु आखिर में उस सीढ़ी से कुएं के अंदर उतर गया।

कुएं के किनारे खड़े लोगों में से कुछ लोग दूसरी बातचीत के बीच में यह भी सोच रहे थे, वर्णना कहीं कुछ लिखकर रख तो नहीं गई है ? अगर लिखकर रख गई है, तो क्या लिखा है उसने ? क्या उसमें मेरे बारे में भी कुछ लिखा है ? वर्णना को 'दीदी' कहकर बुलाने वाले नौजवानों से लेकर आकाश के तारों का पता लगाने वाले श्रीनिवास तक बहुत से लोग इस चिंता में पड़कर परेशान हो रहे थे। कुछ दिन पहले परितोष बाबू ने अपनी मिसेज की बीमारी के दिनों वर्णना को बर्तन धोने, घर-आंगन बुहारने, और पहले बच्चे की देखभाल करने के काम में लगाया था। उसे सबसे ज्यादा डर हो रहा था।

सनई की रस्सी के सिरे पर बांस का एक टुकड़ा बांध, मधु ने उस पर दोनों पैर टिका दिए और वर्णना के शरीर को उस रस्सी के साथ ही दोनों हाथों से मजबूती से पकड़ लिया। कुएं के ऊपर बीच में बंधे एक बांस के ऊपर से घसीटकर कनतिल आदि उस रस्सी को खींचने लगे। अपनी पूरी ताकत से पकड़ने के कारण मधु को चिता हो रही थी—वर्णना के शरीर के अंदर की हड्डियों को कहीं ज्यादा तकलीफ न पहुंचे। वर्णना के झुके सिर के पास अपना मुंह ले जाकर वह बार-बार 'बाइटि, बाइटि', कहकर पुकार रहा था।

किनारे के बहुत से लोग कान लगाकर यह सुनने की कोशिश कर रहे थे कि वह कोई जवाब दे रही है या नहीं।

नहीं, वर्णना कुछ भी नहीं बोल रही थी।

वर्णना किसी से एक शब्द भी नहीं कह गई है। कहीं एक अक्षर भी नहीं लिख गई है।

कई साल पहले जबकि बलोराम बूढ़ा बच्चा था, उस कुएं में एक बिल्ली गिर पड़ी थी। उन दिनों कुएं की कीचड़ निकालकर उसमें पोटाश डाली गई थी। सात दिन तक लोगों ने उसका पानी नहीं पीया था।

और अब ? बलोराम ने किसी एक से कहा—"कम से कम उस बुढ़िया के लिए

पीने के पानी का तो कोई इंतजाम करना है न !"

कनतिल ने पूछा—'क्या काकी उस कुएं का पानी पीएगी ?'

बड़े आग्रह की किसी चीज का नाम सुना हो, ऐसे लहजे में बुढिया बोली—"पीऊंगी बापू, पीऊंगी।"

लोगों ने तया किया—कम से कम वे इस कुएं की कीचड़ निकाल जाएंगे। पुलिसवालों ने भी फायर ब्रिगेड वालो से मिलकर तय किया, कुएं से कीचड़ निकालना जरूरी है। कहीं कोई प्रमाण-समान निकल भी सकता है।

अतः, बहुत साल बाद आज कुएं की कीचड़ निकाली जा रही है। कीचड़ निकालना देखने वालों से कुएं के किनारे भीड़ लग गई है। कीचड़ के साथ कौन-कौन-सी चीजें निकल रही हैं, पता लगाने के लिए पुलिसवाले कीचड़ को पैरों से रौंद रहे हैं।

कीचड़ के साथ मोटर की पुरानी बुसिंग निकली है, मिट्टी के तेल के स्टोव की तल्ली निकली है, हैरिंग मछली की खाली डिब्बी निकली है, कानडेंस मिल्क की खाली डिब्बी निकली है, फटी साड़ी की क्रिकेट गेंद, फटी-फुटी हवाई सैंडिल निकली है, बचने की कोशिश करता, अंडे न देनेवाला कछुवा निकला है, बीयर की अनगिनत बोतलें निकली हैं, विभिन्न आकृतियों की शराब की बोतलें निकली हैं।

1975

संध्यातारा

विमला और रमला दोनों ही खराब कपड़ों की दो जोड़ी खोजने में जल्दीबाजी करने लगीं। उन्हें होली खेलना जो था। होली खेलने का तो मतलब ही है कपड़ों की एक जोड़ी घट जाना। किनके हाथों के कितने रंग आकर उनके कपड़ों पर स्थायी आसन जमा लें, पता नहीं, उसके बाद भी क्या वे कपड़े, कपड़े बने रह सकेंगे? बिलकुल नहीं। हालांकि एक बार धुलाई कर लेने पर वे कपड़े नहाने-वहाने के काम आ सकते हैं, परंतु सिर्फ नहाने के लिए ही कपड़ों की एक जोड़ी को अलग कर रखने में वे विवश हैं। यों भी तो उनके कपड़े कम ही हैं। जिस कपड़े को खराब हो गया मानकर विमला दीवार और फर्श आदि लीपते समय पहनती है, कभी-कभी और कपड़े न मिल पाने के कारण रमला को किसी अनजान मेहमान को पानी का गिलास देने के लिए उसे ही पहनकर आ जाना पड़ता है।

दूर से बीच-बीच में किशोर लड़कों की एक-एक मंडली की चीख-पुकार, हल्ला-गुल्ला आदि की आवाजें कमरे में आ रही थीं। एक बार बिलकुल पास वैसी ही चीख-पुकार सुनाई पड़ी। रमला बोल उठी—'अरे वे लोग तो आ ही गए।' और तुरंत अलगनी से एक चादर उतार ली। दोनों हाथों से चादर के सिरे पकड़कर फैलाते हुए देखकर उसने कहा—"यह चादर तो फट ही गई है। मैं इसी को ले लूं। क्या कहती है तू?"

बड़ी बहन कमरे के कोने में एक दीवार से दूसरी दीवार तक बंधी रस्सी पर टंगे कपड़ों को उलट-पुलट रही थी। रमला के हाथ का कपड़ा देखने के लिए वह 'देखूं, देखूं तो कौन-सा है।' कहती हुई पास आ गई और चादर को पहचान कर चीख पड़ी— 'आइयो, मेरी बहना, तुम्हें और कोई कपड़ा नहीं मिला क्या? दे-दे—इधर दे! वह मेरा इतना प्यारा कपड़ा है। उंह, उसमें जरा दरकन पड़ गई है, इस कारण कहीं फट न जाए, इसी डर से उसे बगैर पहने मैंने रख छोड़ा है, और यह होली खेलने के लिए उसे ही निकाल रही है। अरे, यहां से हट जा! यहां मैंने चुन-चुनकर अच्छे कपड़े रख दिए हैं।

रमला आदि के कपड़े रखने की अलगनी दो ताखों वाली थी। जिन दो लकड़ियों पर वह अलगनी खड़ी थी, उसमें एक को दीमक ने खा डाला था। अब अलगनी को बांस के एक खूंटे के साथ नारियल की रस्सी से बांधकर खड़ा रखा गया

था। कपड़ों की झंझट के बारे में कभी उनमें बहस छिड़ जाती तो वे प्रायः तय करतीं कि ऊपर की डंडी पर विमला के, और निचली डडी पर रमला के कपड़े रखेंगी। दो-एक दिन उस तरह से रहती भी, पर कुछ ही दिनों में उन दोनों के कपड़े आपस में वैसे ही मिल जाते जैसे दो आपसी झगड़ों वाले पड़ोसियों के बच्चे एक-दूसरे से मिल-जुल जाते रहते हैं। रमला शाम को बड़ी दीदी की कोई अच्छी-सी चादर लेकर घर के सामने निकलती।

दीदी की बात से बनावटी गुस्से से निचले होंठ को फैलाकर रमला ने उस चादर को फिर अलगनी पर रख दिया। कोने की उस रस्सी पर से विमला ने ही आखिर दो जोड़े कपड़े चुनकर निकाले। बूटेदार सूती मेखला, जिनके बूटे फट-चिट गए थे, और बहुत देर के तोड़े फूलों की भांति सिकुड़ गए थे, ब्लाउज भी ऐसी जो अंगों को जरूरत भर ही छिपाए रह सकती थी, और पुरानी चादरें ऐसी थीं जिन्हें अगर जरा होशियारी से लिया जाय तो चुन्नटों के बीच उनकी दरकनें छिपाई जा सकती थी।

बिमला ने एक बार सोचा कि जल्दी से सूई-सूत से चादर के फटे हिस्सों को जरा-जरा सी ले। पर समय नहीं रह गया था। कुछ दूर पर चीख-पुकार हो-हल्ला मचाने वाले लड़के किस क्षण यहां आ पहुंचे, क्या पता ? और उनके आते ही इन दोनों किशोरियों के कपड़ों की हालत खस्ता हो जाएगी, उनके शरीर की भी गत बन जाएगी यह तो मानी हुई बात है। सिर्फ अंदर के कपड़े-लत्ते, बिस्तर आदि किसी तरह बच जाएं, तो वही काफी है। इसलिए जल्दी से उन दोनों को खुद ही घर से बाहर निकल जाना है।

कल शाम को जीजा अबीर और नील ले आए थे। रमला उन्हें रसोई-घर से ले आई और यह कहकर हंसती हुई बाहर निकली—'आ जाओ, आ जाओ' कौन-कौन आते हो ? आज एक एक कर सब को लथेडूंगी।' बाहरी टट्टी का एक सिरा बंधे सुपारी के पेड़ से हाथ टिकाए उसने एक बार चारों ओर नजर डाली। मीठी-सी धूप निकल आई थी, रह-रहकर हवा का एक-एक झोंका भी आ जाता था। अचानक सिर पर कुछ चूरा-सा झड़ रहा है, ऐसा लगने पर उसने अधमुंदी आंखों से ऊपर नजर डाली। सुपारी के पत्ते हवा से हिल रहे थे। होली की वजह से हो, या किसी और अनजान कारण से, रमला का मन झीने आनंद से चहक उठा।

थोड़ी ही देर में विमला भी निकल आई। लोगों के बाहर आने-जाने की राह के इस सिरे पर की टट्टी पर हाथ रखे वह खड़ी हो गई, और उसके बाद जितनी दूर नजर जाती, वे दोनों राह की ओर देखती रहीं।

दूर लड़के-लड़कियो के कई झुंड इधर-उधर दौड़-धूप, भागमभाग कर रहे थे, किस क्षण वे यहां आ पहुंचे, पता नहीं। हालांकि दूर के लड़के-लड़कियों को आने की जरूरत ही नहीं, इस मुहल्ले के ही लड़के-लड़कियों के राह में निकलते ही चारों ओर हो-हल्ला मच जाएगा।

इस मुहल्ले में ज्यादातर संपन्न लोग रहते हैं, तीन मकानों के सामने दो-दो गेट हैं, उनमें एक के पास मोटर-गाड़ी है। प्रायः लोगों के छोटे-छोटे लड़के-लड़कियां एक ही रंग की यूनिफार्म पहने स्कूल जाते हैं। एक आदमी की खूबसूरत लड़की बड़ा अच्छा गाना गा सकती है और कोई बाजा भी बजाती है। एक के यहां तो एक बड़ा-सा कुत्ता है, जिसके भौंकने से चारों ओर दहशत फैली रहती है। रमला आदि के यहा से थोड़ी ही दूर के उस मकान की फुलवारी के किसी फूल पर अगर कोई हाथ देता है, तो मकान-मालिक खुद बक-बक करता निकल आता है। उस मुहल्ले के बीच रहने वाला एक आदमी का पूरा परिवार मर-खप कर खत्म हो गया था, परिवार का एकमात्र बचा हुआ व्यक्ति बंबई या और कहीं रहता है, वह वहीं रहेगा। घर-बार भी ढहकर खत्म हो गया। वहां भी किसी आदमी का निवास था, उसकी निशानी के रूप में उस विशाल परिसर में कई पुस्त पहले वहां खोदी हुई एक पोखरी थी, उसमें थोड़ा पानी अब भी है। रमला का बहनोई पद्म लगभग आठ महीने पहले उस छोड़े हुए परिसर में पोखरी को पीछे कर फूस-बांस का एक घर बनाकर रहने लगा था। पद्म के साथ विमला का विवाह हो जाने पर रमला का भी अपना कोई न रहा, इसी कारण वह भी बहन के साथ ही रहने लगी थी।

उस मुहल्ले के लोगों के साथ रमला आदि का आना-जाना, बातचीत का संबंध बहुत कम था। कभी-कभी किसी लड़के की उड़ाई पतंग टूट कर उस परिसर में आ गिरती तो लड़कों का झुंड उस घर के चारों ओर शोर मचाते चक्कर लगाता। उस समय विमला-रमला यह पता लगाने की कोशिश करती कि कौन किसका लड़का है। सड़क पर खेलती-कूदती छोटी लड़कियां कभी-कभी दौड़ी आकर रमला आदि के घर के सामने रुककर हांफने लगतीं। रमला विमला झटपट उनके नाम पूछती। उनके चले जाने पर दोनों बहुत देर तक उनके चेहरों, बालों और गालों के रंगों की प्रशंसा करती रहतीं; उनकी कही हुई चंद बातों को वैसे ही रस ले-लेकर बखान करती जैसे कि कोई दरिद्र लड़का किसी मिठाई का रस हाथ में लगने पर बार बार चाटता रहता है।

वे सोच रही थीं क्या ये लड़के-लड़कियां आज होली के दिन भी उन्हें यों ही बिना रंग-कीचड़ डाले छोड़ेंगे? रमला ने सिर उठाकर जितने मकानों के बाहरी दरवाजे दिखाई पड़ते थे, सबकी ओर नजर डाली। यहां-वहां दो-एक लड़के-लड़की दौड़-धूप कर रहे थे, परंतु उस तरह से झुंडों में नहीं थे। शायद वे सभी किसी दूसरे मुहल्ले में चले गए हैं। और जब गए हैं तो लौटेंगे भी जरूर।

अचानक एक बार कुछ दूर के चौराहे पर लोगों का एक झुंड दिखाई पड़ा। उनके बाल सफेद-से थे, चेहरे काले-काले और पहनावे ऐसे जिनका बयान नहीं किया जा सकता।

विमला ने उनमें से किसी एक को पहचानने की कोशिश की, पर पहचान न सकी। उसने पूछा—वे कौन हैं री, क्या तेरे जीजाजी की मंडली है?

जहां तक नजर में आता था, उन लोगों में से हर-एक को रमला ने बड़े ध्यान से देखा, फिर बोली—नहीं, नहीं, जीजाजी तो लांग पैंट पहनकर ही गए हैं। भला वे अभी इधर कहा आएंगे ?

पद्म के साथी तो वे जहां काम करते हैं, उस कारखाने के आस-पास ही रहते हैं। उसी अंचल में, उनके साथ ही पद्म का घूमना-फिरना, रंग-तमाशा, हंसी-खेल सब कुछ होता रहता है। 'होली है', इसी कारण पद्म भी आज सुबह ही उनसे मिलने निकल गया है।

वैसे भी पद्म प्रायः घर में रहता ही नहीं। सुबह-सुबह निकल जाता है, शाम को लगभग आठ बजे बाजार का एक थैला लिए घर पहुंचता है। और तब से सोने के पहले तक जो समय होता, उसमें भी उसका मन वहां लगता नहीं। शायद इसी कारण, जब वह आता, तो अपने साथ दो-एक हमउम्र साथियों को भी लेता आता। उनके लिए विमला-रमला को चाय बना देनी पड़ती, कभी-कभी एनामेल की थाली में, थाली भर मूढ़ी को नमक, तेल, प्याज, हरी मिर्च आदि मिलाकर जायकेदार बना देना पड़ता। उन साथियों में एक तो हमेशा आता ही रहता। नाम है कंसो। पद्म और विमला ने तय किया है, कंसों के साथ ही रमला का विवाह कर देंगे। लेकिन विमला हमेशा संदेह प्रकट करती, 'क्या कंसो, सचमुच रमला से विवाह करेगा ? या आखिर में चुपचाप डुबकी लगा जाएगा ?' पद्म जोर डालकर कहता—"करेगा, करेगा, विवाह न करने का क्या है ?"

और उस संदेह, जोर और आश्वासन के बीच रमला इस बीच बहुत दूर आगे बढ़ गई; जैसे कि तीन बांस डालकर बनाई गई लंबी-सी पुलिया पर से होकर कोई बकरी उस पार के घास के मैदान में जाती है। अब तो उसकी स्थिति ऐसी है कि आगे बढ़ने में जितनी दूर है, मुड़कर लौटने में भी उतनी ही दूर है।

चौराहे पर के वे लोग अचानक इस ओर मुड़े। उनके चेहरे देखने पर कहा जा सकता है कि उन सबने बड़े गंदे रंगों से होली खेली है। कोलतार या सूटकेस में लगाए जाने वाले वैसे ही रंगों से। विमला-रमला ने एक बार एक-दूसरे की नजर में नजरें डालीं। लोग बढ़े आ रहे थे। रमला ने दीदी से पूछा—'क्या हमें भी रंग डालेंगे ये ?'

—ऊंह, तो क्या यों ही छोड़ेंगे ?—विमला बोली।

—इस् राम, वह सब रंग नहीं ले सकती। भागें भई !—कहती हुई रमला टट्टी की आड़ में चली गई। लोगों के और कुछ आगे बढ़ आने पर विमला भी पीछे हट आई। उन लोगों ने तो उन दोनों को जरूर देखा था यह तो निश्चित ही है, फिर वे अगर झपाटे से अंदर घुस आएं तो क्या होगा ? हालांकि तब विमला-रमला दौड़कर घर के अदर घुस दरवाजा बंद कर सकती हैं। पर वे अगर दरवाजे, दीवारों को धकियाते हुए पिछवाड़े के कमजोर दरवाजे को तोड़-ताड़ कर दोनों को ही लिथड़ा डालें, तब ? हालत कैसी हो जाएगी, सोचकर रमला को हंसी ही आ गई !

वे लोग आगे बढ़े आ रहे थे। उनकी बातचीत साफ-साफ समझ में आ रही थी। किसी बुड्ढे को खिझाने का नाम 'चीना बादाम' कैसे पड़ गया, इस पर वे चर्चा करते आ रहे थे। वे विमला-रमला के बाहरी दरवाजे तक पहुंचे और वहीं उनके 'चीनी-बादाम' का वृत्तांत खत्म हुआ। एक दूसरे के शरीर पर ढल-ढल कर वे मुक्त-कंठ से हंसते रहे, और ज्यादा हंसते गए और फिर हंसते हुए वे सभी दरवाजे से आगे निकल गए।

विमला-रमला फिर बाहर निकल आईं। रमला ने धीरे-धीरे कहा—'ओह, बड़ा बच गई !' फिर थोड़ी देर रुक कर बोली—फिर ये लोग हम पर ये रंग क्यों डालेंगे, है न ! छोटी बच्ची होती तो भी कोई बात थी ! क्यों ?'

दोपहर हो गई। मुहल्ले के लड़के-लड़कियां लौटकर आए ही न थे। रमला ने एक बार सोचा, शायद वे बहुत दूर चले गए होंगे। वह कुछ नाराज भी हो गई। भला, अपना मुहल्ला रहने के बावजूद दूसरों के मुहल्लों में होली खेलने क्यों जाना चाहिए ? दूसरे मुहल्लों के लडके-लड़कियां भला यहां कितने आए हैं ?

दरअसल लड़के-लड़कियां एक ट्रक पर सवार हो, होली खेलने निकल गए थे। लगभग एक बजे चौराहे पर रुककर उस ट्रक ने उन सबको उतार दिया। विमला-रमला ने सोचा कि होली खेलने में गदा होने पर नहा-धोकर रसोई बनाने, खाना खाने में शाम हो सकती है, इसी कारण वे झट से खाना-पीना कर आने-जाने की राह पर फिर आकर खड़ी हो गई थीं। चौराहे पर लड़के-लडकियों के उतर जाने पर मुहल्ले के दूसरे सिरे से कुछ लड़के-लड़किया दौड़कर आगे बढ़ गए। रमला के बाहरी दरवाजे के पास ही उनका आमना-सामना हुआ। जिन्हें उस ट्रक पर जाने का मौका नही मिला था, वे भाग-दौडकर बोतलों से दूसरी मंडली वालों पर रंग डालने लगे, बिलकुल विमला-रमला के सामने ही। वे दोनो ही उन लड़के-लड़कियों की ओर देख-देखकर हंसने लगीं। एक बार रमला ने जोर से कहा—'ऊंह, रंग-वंग तो है नहीं, यों ही सिर्फ पानी मार रहा है।'

बिलकुल उसी क्षण एक लड़का दूसरे एक लड़के को रमला-विमला की ओर खदेड़ता आया। जिसे खदेडा जा रहा था, वह लड़का उन दोनों के बीच से निकलकर उनके घर की तरफ भागा। उस पोखरी के किनारे से बाहर जाने की एक राह है शायद वह उसी ओर से निकल जाना चाहता था। खदेड़ने वाला लड़का बिलकुल रमला के सामने पहुंच गया और साथ ही रमला हसती हुई—'भाई, हम पर न डालना' कहकर ऐसी मुद्रा बनाई कि भागना चाहती हो। वह लड़का पोखरी के उधर से निकल जाने वाले लड़के को सुनाकर चीखता हुआ बोला—'अच्छा, तू बचकर कहां जाता है, देख लेंगे !' और वहां से हट आया।

लगभग दो बजे सरकारी नल पर पानी आ गया। विमला बोली—'जब तक लोग-बाग नहीं आ जाते, पानी भरकर रख देना ही ठीक रहेगा।

रमला ने हामी भरी। बाद में नल पर लोगों की भीड़ हो जाए, या पानी बंद हो

जाए, तो बडी मुसीबत हो जाएगी। रंग लगे शरीर से ही रात को सोना पड़ेगा। वैसे अब तक तो शरीर पर रंग पड़ा नही है, पर किस क्षण क्या हो जाए पता नहीं। कुछ लोग तो ऐसे है कि दिन बीतने के पहले ही शाम को होली खेलने की धूम मचा देते हैं।

नल पर और कोई पानी लेने वाला न था। रमला ने घड़े से लगातार पानी भर-भरकर घर के सारे बर्तन भर दिए। पिछवाड़े की दो बड़ी बाल्टियों को बिलकुल भर दिया, अच्छी तरह से मल-मलकर नहाना होगा। एक बार घर में पानी रखने के बाद फिर नल के पास आकर रमला ने देखा, एक छोटा-सा लड़का नल के मुह पर एक बोतल लगाए उसमे पानी भर रहा है। उसके चेहरे पर कई रंगो का लेप चढ़ा था, फिर भी यह छिप नही रहा था कि वह देखने मे सुंदर है।

रमला ने हंसते हुए लडके से पूछा—रंग-वंग तो है नहीं, सिर्फ पानी ही भर रहे हो न शायद ?

लड़के ने सिर उठाकर रमला की ओर देखा। फिर धीमे से बोला—इस्, है रग।

—'अच्छा देखूं तो जरा।'—घड़े को जमीन पर रखकर अपने शरीर को ऐसे मोड़कर रमला खड़ी हो गई, जिससे उस लड़के को लगा कि वह उससे रंग डालने को कह रही है। वह लड़का उसी घर का था, जहा के बड़े-से कुत्ते के भौंकने की आवाज से उस मुहल्ले-भर की नींद हराम हो जाती है। उस लड़के ने रमला को इस तरह से देखा, मानो उसने कुछ भी समझा न हो। बड़ी ठहरी, तिस पर औरत ठहरी। कभी उससे बात तक नही हुई। शर्म के मारे वह लडका अपने घर की ओर भाग गया।

धीरे-धीरे धूप की गरमी घट आई। रमला विमला के बाहरी दरवाजे से लेकर पानी के नल तक सुपारी के बड़े लंबे पेड़ो के साए फैल गए। एक बार पिछवाड़े की पोखरी के चारो ओर लड़के-लड़कियो के झुंड भाग-दौड़ करते हुए चीख-पुकार मचाए रहे। उनके साथ-साथ रमला-विमला भी हंसती रही। कुछ देर बाद जमीन पर पड़े पेड़ो के सायों ने फैलकर पूरे शहर को ढंक लिया। लोगों का शोर-गुल भी मानो उसी साए मे छिप गया।

उसके बाद करताल, ढोल, मृदग बजाते, संकीर्तन गाते अधेड़ लोगों की एक मडली उस मुहल्ले में आई। फुलवारी वाले गुस्सैल आदमी के यहां उस मंडली को जाते देख रमला ने दीदी से कहा--'ये लोग अगर आ जाए तो ?' लेकिन वे इधर घुसे नही। रमला के बाहरी दरवाजे के पास से निकलकर वे एक दूसरे आदमी के गेट की ओर आगे बढ़ गए। विमला बोली— जाने दे, अच्छा ही हुआ। खुदरा पैसे बिलकुल न थे। इन लोगों को वैसे खाली हाथ तो विदा करना भी अनुचित है न।'.

होली खत्म होने को थी। रमला ने एक बार दीदी के कपड़ों की ओर नजर डाल झट से सिर दूसरी ओर मोड लिया। कुछ देर इधर-उधर करने के बाद उसने घर के अंदर जाना ही तय किया। हालांकि अंदर कोई काम भी न था। दो बाल्टी पानी भरा

हुआ है पर नहाने की भी जरूरत नहीं।

सुपारी के पेड़ की जड़ में अबीर की पोटली और नील का पैकेट पड़ा हुआ था। रमला ने दोनों को हाथों से उठा लिया। अबीर वाला कागज का थैला जरा-सा फट गया था, उसी ओर से निकलकर जरा-सा गुलाबी अबीर रमला के हाथ पर पड़ा। क्षण-भर हाथ की ओर देखते रहकर उसने झट से विमला के गले में वह रंग मल दिया। 'अरे, देखो तो क्या कर डाला इसने' कहती हुई अबीर की पोटली विमला ने रमला के हाथ से छीन ली।

उसके बाद लगभग आधे घंटे तक, उस पोखरी के किनारे-किनारे पूरे परिसर में दौड़-धूप कर रंग खेलते-खेलते वे दोनों ही थक गई। हंसते-हंसते उनके पेट में दर्द होने लगा। अबीर और नील तो कब के खत्म हो गए थे, आखिर को उनके हाथों में पोखरी के किनारे की कीचड़ आ गई थी।

शाम होने के पहले दोनों ने अच्छी तरह से नहा-धो लिया। साफ कपड़े पहनने पर रमला को अपना शरीर बड़ा हलका-हलका लगा। परंतु किसी अज्ञात कारण से उसका मन अचानक सूना-सूना लगने लगा। विमला रसोई बनाने के लिए जब अंदर जा रही थी, वह अकेले दरवाजे के सामने बैठी रही।

लगभग आठ बजे पद्म आया। उसके साथ कंसो भी आया। उन दोनों ने दिन का होली खेलने का चेहरा बदला ही न था। रमला को वे प्रेत जैसे लगे।

थोड़ी देर बाद पद्म चने की दाल की खोज में पास की दुकान में गया। विमला रसोई-घर में थी। उसी समय कंसो ने रमला के पास जाकर पूछा—'होली खेली ?'

रमला ने कोई जवाब नहीं दिया। उस जगह अंधेरा था। कंसो रमला के और पास चला आया। पैंट की जेब से उसने जरा-सा अबीर निकाला, और रमला के नहाए शरीर के गाल-मुंह-गले आदि जहां तक हाथ पहुंचता था, वहां तक बिलकुल मल दिया। इतने धीमे-धीमे, इतनी तल्लीनता से मानो इस शहर में आज किसी ने किसी पर रंग नहीं डाला है।

रमला ने उसके शरीर में जीवन है या नहीं, उसका जरा भी आभास नहीं दिया। थोड़ी देर बाद उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। उसने अपने चेहरे को दोनों घुटनों के बीच घुसा लिया। उसे चीख-चीखकर पूछने की इच्छा हो गई—"क्या तुम लोग दिन में होली का रंग खेलने नहीं आ सकते थे ?"

1964

चूहा

अचानक ही कहीं कोई शोरगुल मच जाए तो अपने पास ही लाठी को रखकर आराम करता कोई अंधा जैसे पहले-पहल अपनी उस लाठी को हाथ की मुट्ठी में मजबूती से पकड़ लेता है और उसके बाद ही कहां क्या हो रहा है, इसका पता लगाने की कोशिश करता है, मुहल्ले के इन घरों की औरतों ने भी वैसा ही किया। उनके लड़के-लड़कियां कहां हैं, वे कहां क्या कर रहे हैं, इसका अता-पता आमतौर पर ये औरतें नहीं रखतीं। भूख लगने पर वे खुद ही घर आ जाएंगे—ऐसी भावना मन में लिए वे निश्चिंत रहती हैं। परंतु आज शोर-गुल मचते ही सारी औरतें अपनी झोंपड़ियों से सुध-बुध खोई-सी होकर तेजी से निकल आईं। वे सभी एक ही साथ अपने-अपने लड़के-लड़कियों के नाम लेकर चीखने पुकारने लगीं और इधर-उधर दौड़-धूप भी करने लगीं। ऐसी भी स्थिति हुई कि किसी औरत को यह साफ-साफ दिखाई पड़ा कि उसका लड़का वहीं—वहां ही तो खड़ा है; पर उस औरत को उतने से ही संतोष नहीं हुआ; दौड़कर उसने लड़के का हाथ पकड़ लिया और लोगों की भीड़ से खींचकर एक ओर ले आई। लड़के का सिर अपने पेट से लगाकर उसे बांहों में भर लिया, उसके बाद ही, 'क्या हुआ है' घटना के बारे में पता लगाने की कोशिश की। सिर्फ दो ही मिनट के अंदर औरतों ने अपने-अपने बाल-बच्चों को संभाल लिया; उनके नाम ले-लेकर चीख-पुकार बंद हो गई। सिर्फ मोती की मां की आवाज धीरे-धीरे ऊंची और ज्यादा ऊंची हो जाने लगी। अनेक लोगों की चीख-पुकार के बीच भी उसके गले की तेज आवाज साफ-साफ सुनाई देने लगी। पहले वह साथ की दूसरी औरतों जैसी ही 'मोती-मोती' चीखती-पुकारती दौड़धूप कर रही थी। बाद में उन्मादित-सी चीखने लगी!

साथ के दूसरे लड़कों ने कहा—'मोती तो उन्हीं के साथ था। यहीं था।

—यहीं था? पर है कहां? क्या तुम लोग सही-सही बता सकते हो कि वह यहीं था? किस जगह था, किस जगह था, वह?—विकल-सी मोती की मां हर लड़के, हर लड़की से पूछने लगी। क्या जाने वह किसी और जगह चला गया हो, शायद तुम लोगों ने ध्यान नहीं दिया!—मोती की मां विकलता के मारे लड़के-लडकियों से यह सुनने की आशा में थी कि हो सकता है मोती कहीं और चला गया हो। पर हर लड़के हर लड़की ने उसे निश्चित रूप से बता दिया कि मोती इसी जगह था—जहां कि ढाई मन के बोरों की ढेरी है।

कुछ बड़े-बड़े गोदामों को जाने वाली संकरी सडक के किनारे की खुली जगह है यह। कुछ विचित्र प्रकार का व्यापार का जिस पर पहरा था, ऐसे एक गंदी-सी चौड़ी सड़क के किनारे से दो मकानों के बीच से होकर किसी तरह से यह संकरी सड़क इस ओर चली आई है। उस सड़क के एक ओर एक साबुन कंपनी का परिसर घेर रखने वाले टीन का लंबा-सा घेरा था, उसके दूसरी-ओर भी यह खुली जगह। थोड़ी दूर आगे जाकर वह सड़क अलग-अलग हिस्सों में बंटकर उन गोदामों के बीच-बीच में फैल गई है। इस नगर के हजारों लोगों की खाद्य-वस्तुओं के भंडार हैं ये ही गोदाम। किसी सुंदर-से युवक के चेहरे के साथ उसके पेट की भद्दी आंतों का जैसा संबंध होता है, इस नगर का इन गलियारों से भी वैसा ही संबंध है। अविच्छेद्य, अनिवार्य, कुत्सित भद्दा। अनगिनत ट्रकें जोर की गरज के साथ गलियारे में घुस आती हैं, सैकड़ों मन खाद्य वस्तुएं गोदामों में उतरती हैं, फिर अनगिनत ट्रकें उन सैकड़ों मन के सामान लेकर कहीं चले जाते हैं। किसी रिक्शे को मोड़ने के लिए जहां किसी अनाड़ी रिक्शेवाले को दो-तीन बार आगा-पीछा करना पड़ता है, उस जगह किस चतुराई से एक-एक विशाल ट्रक को मोड़ा जाता है, यह तो सिर्फ ट्रक-ड्राइवरों को ही पता है। कभी अगर कोई ट्रक तिरछी हो जाए तो गलियारा गाड़ियो से भर जाता है, और आस-पास की बदबूदार हवाएं ड्राइवरों-हैंडीमैनों की उच्छृंखल चीख-पुकार की आवाजों से भर जाती हैं। ड्राइवरों के चेहरे ट्रकों से बिलकुल फबे रहते हैं। देखने पर ऐसा महसूस होता है कि पहले कंपनियों ने ड्राइवरों की माप-जोख लेने के बाद ही गाड़ियों को बनाया है। सारी रात गाड़ी चलाते रहने के कारण हो, या कुछ खाने-पीने की वजह से हो, उनकी आंखें लाल रहती हैं। जहां तक हो सके, वे चीख-पुकार कम कर अपनी सीट पर गभीर बने बैठे रहने की कोशिश करते हैं। परंतु जोर का शोर-गुल करते हैं, सारे हैंडीमैन! किसके दोष से सड़क 'जाम' हो गई, माल के ऊपर बैठे-बैठे ही वे यह तय करना चाहते। कभी-कभी तो कई घंटे सड़क 'जाम' रहती। संकरी सडक तो गाड़ियो से भर ही जाती, मेन-सड़क पर भी एक दूसरे के पीछे गाड़ियां कतारों में खड़ी हो जातीं। काफी दूर तक। उस 'जाम' को खोल देने के लिए कोई भी अपनी गाड़ी को जरा पीछे करने के लिए तैयार नहीं होता। 'मुझे क्या पड़ी है? जो होना है, होता रहे।' कहकर ड्राइवर गाड़ी छोड़कर पास की चाय-दुकान में जा बैठता। कभी-कभी आधी रात को गाड़ियां सामान के साथ संकरी सड़क से गलियारे में आ घुसती। परंतु गोदाम तो सुबह खुलती है। ऐसी स्थिति में दिन को कभी-कभी वह जगह और ज्यादा घिनौनी और बदबूदार हो जाती। कभी-कभी वे ड्राइवर, हैंडीमैन नन्हे बच्चों की तरह अपनी गाड़ियों में ही सो रहते।

इस खुली जगह का लगभग आधा हिस्सा एक तरह के काले-हरे रग की अजीब-सी पनीली में डूबा रहता। वह पनीली पहले तो शायद बारिश का पानी ही थी, मगर उसके बाद, सेवार, मोबिल आदि मिलकर उसका रग ऐसा हो गया है। पास की

सूखी जगह को टट्टी-पेशाब से गंदा कर नन्हे बच्चे उस पनीली से अपने को साफ करते हैं। उस खुली जगह की दूसरी ओर बांस-फूस थैले, पैकिंग-बाक्स की लकड़ी आदि से बनी झुग्गियों की कतारें। उन झुग्गियों में पहले दिन-मजदूरी करने वाले गोदाम के सामान उतारने-रखने वाले मजदूर रहते थे। पर आजकल गोदाम के मालिकों ने स्थायी व्यवस्था के अनुसार कुछ मजदूरों की नियुक्ति कर दी है, इसलिए वे मजदूर वहां से चले गए क्योंकि यहा के किसी मजदूर को नियुक्ति नहीं मिली। अब उन झुग्गी-झोंपड़ियों में बाल-बच्चों को लिए कुछ औरतें रहती हैं। बाशिंदे के तौर पर यहां मर्द रहते नही। जो भी दो-एक मर्द बीच-बीच में दिखाई पड़ जाते हैं, वे उन लड़के-लड़कियों के बाप नहीं। मोती की मां जैसी दो-एक के सिवा शेष औरतें बूढ़ी हैं। उनमें दो-तीन तो सुबह ही भीख मांगने के लिए निकल जातीं, दो औरतें पास के होटलों में चावल फटकतीं-झाड़तीं, मसाले पीस देती; एक औरत ड्राइवर-हैंडमैनों के लिए नमक-तेल-प्याज-हरी मिर्च मिली-मूढ़ी लाकर बेचा करती। आदि-आदि।

पर इनमें से हर औरत को खाने का भात जुटाने में सबसे ज्यादा मदद ये लड़के-लड़कियां किया करते हैं। वे टोकरी-डाला, खाली टीन, आदि चीजें हाथ में लिए दिनभर उस सड़क के किनारे बिताया करते हैं। कोई काम न रहता तो वे चीख-पुकार, रोना-धोना करते हुए खेलते-कूदते रहते हैं, पर जब गोदामों में माल उतारकर खाली ट्रकें लौटती हैं, तभी वे टपाटप ट्रकों पर सवार हो जाते हैं, क्षणभर में ट्रक के अंदर माल रखने की जगह को वे झाड़ू से बुहार लेते हैं। और सारा कूड़ा टोकरी में भरकर वे घर दौड़ पड़ते हैं, घर में मां आदि जब उन्हें फटक-झाड़ लेती तो उसमें से चावल, दाल आदि निकल आते। लड़के-लड़कियों का यह काम ड्राइवर हैंडीमैंनों को भी पसद है क्योंकि उनकी गाड़ियां भी तुरंत साफ हो जाती हैं। गाड़िया जितनी देर तक 'जाम' रहती हैं, लडके-लड़कियों को उतना ही अच्छा लगता है। क्योंकि तब उन्हें गाड़ी साफ करने का ज्यादा समय मिल जाता है और उनमे से सबको मौका भी मिल जाता है।

उन लड़के-लड़कियों ने लोहे के नुकीले छड़ भी जुटा लिए हैं। माल भरी ट्रकें 'जाम' लग जाने पर वे लदे बोरों में उन छड़ों को घुसेड़कर एक-एक छोटा सूराख करने की फिराक में रहते, और उन्हीं सूराखों में उंगलियां डालकर जरा-जरा-सा चावल, दाल, चीनी, नमक आदि निकाला करते। हैंडीमैनों के खदेड़ने पर वे खुशी से किलकारियां भरते, कुछ दूदौड़ जाते हैं, पर थोड़ी देर बाद ही फिर से निर्भय हो पास चले आते हैं। ड्राइवर-हैंडीमैन जब ट्रकों को छोडकर चाय की दुकानों में चले जाते, तब उनका निर्बाध राज शुरू हो जाता। वे हमेशा यही आशीर्वाद देते कि गाड़िया यों ही 'जाम' लगती रहें। दो ओर से दो गाड़ियों को आते देखते ही वे तालियां बजाकर एक साथ चीख पड़ते—'लग जा, लग जा, लग जा।' मतलब कि 'जाम' लग जा!

मगर आज वैसा बड़ा कोई 'जाम' नहीं लगा था। भरे-भरे चावल के बोरों से काफी ऊंचाई तक लदी एक ट्रक गोदामों की ओर आ रही थी, दूसरी ओर गोदाम से

किसी सहकारिता भंडार के चावल, दाल, नमक, चीनी, आटा, मैदा आदि सामानों से बिलकुल उसी तरह से लदी दूसरी ट्रक निकली आ रही थी। दोनों ड्राइवरों ने सोचा था, दूसरा ड्राइवर अपनी गाड़ी रोक लेगा, और थोड़ी दूर पीछे हटा ले जाएगा। मगर दोनों में से किसी ने गाड़ी रोकी नहीं, नतीजा यह हुआ कि दोनों गाड़ियां एक जगह आकर आमने-सामने हो गईं। दोनों ड्राइवरों में कुछ देर तक बहसबाजी चली, जोर की चीख-पुकार हुई। लड़के-लड़कियां चीखने-चिल्लाने लगे—"लग जा, जा-लग जा !

सिर्फ दो ही गाड़ियां आमने-सामने आ जाएं, तो इस खुली जगह की सुविधा का यही फायदा है कि जरा चतुराई और होशियारी से दोनों गाड़ियां आमतौर पर दोनों ओर से निकल जाती हैं। बहसबाजी के आखिर में दोनों ड्राइवर वही करने को तैयार हो गए। परंतु गुस्से के मारे उन दोनों के चेहरे बिलकुल फूले रहे। दोनों में से किसी ने ज्यादा किनारे हटकर दूसरी गाड़ी के लिए जगह छोड़ने की कोई जरूरत महसूस नहीं की। जरा पीछे हटकर दोनों गाड़ियां जोर की आवाज कर, धुंआ छोड़ती हुई आगे बढ़ आईं। लड़के-लड़कियां चीखने लगे—लग-लग-जा-लग जा। और सचमुच लग भी गया। सहकारिता-भंडार का सामान ले जाने वाली गाड़ी को जितना किनारे जाना चाहिए था, वह उतना किनारे नहीं गई, चावल के बोरों वाली गाड़ी जब किनारे हुई तो उसके बाई ओर के पहिए ढीली कोमल मिट्टी पर पड़ गए, और क्षणभर में वह दुर्घटना घट गई। वह गाड़ी कुछ ज्यादा ढल गई और पलक झपकते एक-एक कर कई बोरे गाड़ी पर से जमीन पर घहरा कर आ गिरे। लड़के-लड़कियां कीचड़-पानी में छलांग लगाते दौड़ पड़े। सिर्फ मोती की विकट-चीख को एक बोरे ने दबोच लिया। उस बोरे पर एक-एक कर और भी कई बोरे आ गिरे।

मुख्य सड़क से बहुत से लोग पास आ पहुंचे। मोती के बारे में पूछताछ करना उन लोगों ने उस समय शुरू किया, जब उसकी मां बावली-सी होकर चीखने-पुकारने लगी थी। उन लोगों ने एक-एक कर बोरे हटाए। पहले मोती के एक पैर का तलवा दिखाई पड़ा, उस तलवे में कोई अस्वाभाविकता नहीं थी। पर आखिरी बोरा हटाने के बाद लोगों ने नजर दूसरी ओर मोड़ ली। सिर्फ खून के रंग के सिवा मोती के शिशु-शरीर के किसी अंग की याद करने की कोशिश किसी ने नहीं की।

पुलिस आई। उस दिन गोदाम से माल ले जाना रुक गया। यों भी शाम हो आई थी। गोदाम में समान ले जाना भी बंद हो गया। ट्रकें मुख्य सड़क पर कतारों में खड़ी रहीं। मोती की मां को दूसरी औरतों ने पकड़े रखा। मोती क शरीर की हाड़-मांस की पोटली बन गई।

धीरे धीरे अंधेरा हो गया। दोनों ट्रकों को थाने में ले जाया गया। चावल के बोरे वहीं पड़े रहे। दूसरी ट्रक से भी कुछ बोरे ढहकर सड़क के दूसरी ओर के टीन के घेरे पर आ गिरे थे। उन बोरों में दाल और नमक थे।

लड़के-लड़कियों में से प्रायः सभी बिलकुल सहमे, ठिठके, चुप होकर अपनी-

अपनी झोपड़ियों के बीच के आंगन में बैठे थे। उनमें जो कुछ बड़े थे, वे बीच-बीच में आपस में बातें कर लेते थे। देर रात तक भी उन्हें नींद नहीं आ रही थी। पर बहुत देर से सोने पर पौ फटने के पहले ही उनकी नींद खुल गई। क्योंकि शायद उनमें से कई तो रात बीतने के पहले ही जग गए थे। उनमें जो बड़े थे, वे अपने-अपने हाथों में टोकरी और लोहे के नुकीले छड़ लिए पौ फटने के पहले ही बोरों के पास पहुंच गए। चावल, दाल, नमक, चीनी ! जिस बोरे में मोती का खून लगा था—सिर्फ उसी बोरे से वे सावधानी से दूर-दूर रहे।

सुबह का उजाला फैलते ही कुछ अच्छे कपड़े पहने लोगों की देख-रेख में कुछ मजदूर उन बोरों को वहां से हटाने में जुट गए। उन लोगों में से यह निर्णय किसका था, पता नही, सिर्फ यही दिखाई पड़ा कि खून लगा ढाई मन चावल का वह बोरा पकड़कर वे उसे झोंपड़ी में ले गए, जिसमें मोती की मां रहती थी। रातभर खटिया पर बैठी मोती की मां—नहीं चाहिए-नहीं चाहिए, कहती हुई उछलकर नीचे उतर आई और बोरे को दोनों हाथों से पकड़कर चीखने लगी। ढाई मन चावल के उस बोरे के खून लगे हिस्से को मजदूरों ने दीवारों की ओर कर डाल दिया था। चावल के बोझ से वह पुरानी टट्टी मर-मर-मर-मर कर रही थी।

मोती की मां कई दिनों तक चीखती रही—ले जाओ, ले जाओ, मुझे चावल नहीं चाहिए। पड़ोसी औरतें उस बेचारी के लिए बड़ा अफसोस करती रहीं।

इस औरत के मां-बाप बचपन में ही गुजर गए थे। देश में अपने चाचा के यहां रहकर वह चने और मसूर दाल की खेती में जुटी रहती थी। एक आदमी उसे विवाह करने का आश्वासन देकर यहा ले आया था। वह आदमी बदमाश था। मोती के जन्म के पहले ही वह अफीम का व्यापार कहां चलता है, इसका पता लगाकर कहीं चला गया था। मोती की मां बहुत दिनों तक उसकी बाट जोहती रही। पास की झोंपड़ी में तेल-प्याज, सनी, मूढ़ी खाने के लिए जो ड्राइवर-हैंडीमैन आते, वे उससे बताते—"धत्, धत्, वह भला अब कहा लौटने वाला है? और तू भी भला कैसी औरत है? हम जैसे इतने सारे लोगों के रहते भला उसी एक के बारे में सोचते रहना क्या उचित है?" उनकी बाते सुनकर पास के लोग हंसते, मोती की मां को गुस्सा आ जाता।

अकेले रहने में उसे डर लगता है, यह सच है; लोगों से भी डर लगता है, अपने से भी डर लगता है। उसकी उम्र उसे कभी-कभी लाठी-तलवार-लोहा लक्कड़ ले मानों घेर लेना चाहती परंतु मोती का सिर अपनी छाती में लेकर वह उस उम्र को दबाकर म्लान कर सकती है। और कुछ ही साल निकल जाने पर उसकी उम्र भिखारी की उम्र हो जाएगी। कम से कम फटे-चिथड़े कपड़े-लत्ते से वह अपने को भिखारिन बना सकेगी, एक न एक दिन मोती बड़ा होकर कुछ तो करेगा। और अगर वह कुछ न भी करे, तो कोई बात नहीं, सिर्फ वह बना रहे, वही काफी है। किसी पति की अपेक्षा कोई संतान बड़ी संपदा है। मोती की मां-मां पुकारने की आवाज ही अगर उसके कानों में

पड़ती रहे तो काफी है। उससे ज्यादा शोर-गुल की उसे कोई जरूरत नहीं।

परंतु अचानक उसके घर में यह जो सन्नाटा उतर आया, उसका रूप देखकर मोती की मां बावली-सी हो गई। ढाई मन के उस चावल के बोरे की ओर देख-देख कर वह चुपचाप सिसकियां भरने लगीं और बाद स्तब्ध-सी बैठी रहने लगी। पास का कोई-कोई कूड़े फटककर या भीख मांगकर मिला मुट्ठी-भर चावल-दाल उसे दे जाते, कभी-कभी वह उन्हें पकाती पर बगैर खाए रख देती। कभी-कभी तो पकाती भी न थी। जिस ट्रक से यह बोरा गिरा था, उसका हैंडीमैन प्रायः उसकी खबर लेता। वह पास की दुकान से जलेबी और 'गाजा' मिठाई की एक-एक पोटली उसके लिए ले आता। मोती की मां उससे बात नहीं करती थी।

दिन बीत रहे थे। मोती की मां को भूख तो रोज लगती, पर पड़ोसी चावल-दाल तो उसे रोज नहीं देते थे। धीरे-धीरे मोती की मां को लगने लगा कि भूख की यंत्रणा बड़ी तेज होती है। नारियल-रस्सी की खाट पर पड़ी-पड़ी उसने देखा था, कि दीवार से टिके बोरे को एक जगह चूहे ने काट डाला है। रोज सुबह चावल के कुछ दाने वहां बिखरे रहते। झाडू से चावल बुहारते समय बीच-बीच में उसकी आंखों में पानी भर आता। एक दिन बिना खाए-पीए चारपाई पर देर तक पड़ी रहने के बाद वह धीरे से उठी। डाला को लाकर उसने बोरे के पास लगाया और चूहे ने जहां छेद किया था, उसमें उगली डालकर थोड़ा-थोड़ा कर चावल निकाला। छेद छोटा-सा होने के कारण एक वक्त के खाने के बराबर चावल निकालने में काफी समय लगा।

बोरे का छेद उंगली लगने के कारण ही बडा हो आया, या उंगली से जरा सुविधा कर देने के कारण चूहों ने भी उसे बड़ा कर दिया, पता नहीं। पर कुछ दिन बाद देखा गया सुबह बहुत-सा चावल जमीन पर गिरा हुआ है। चूहे इस तरह से चावल बरबाद करें, यह मोती की मां को अच्छा न लगा। उसने एक फटे कपड़े को तह कर बोरे पर डाल दिया और बिलकुल छेद पर ही दबाव पड़े, उस तरह से डाला को उससे टिका दिया। रात को कहीं कुछ कड़-मड़ करता तो वह उठ-उठकर देखने लगती कि कहीं चूहे ने किसी दूसरी ओर तो बोरे में छेद नहीं किया है?

बीच बीच में वह हैडीमैन आकर मोती की मां से कहता, "क्या सिर्फ चावल से ही खाना खाया जा सकता है? दाल-वाल कुछ लाए देता हूं, ठहर जरा।"

मोती की मां कहती—नहीं चाहिए।

बोरा धीरे-धीरे दबता, सिकुड़ता गया। हालांकि छेद कुछ बड़ा हो गया था, फिर भी अब उंगली से चावल निकालने में अड़चन आने लगी थी। आगे चलकर वह छेद इतना बडा हो गया कि उसमें मोती की मां का पूरा हाथ घुस जाता था। उसके बाद ऐसा भी एक दिन आया जबकि पूरा हाथ डाल टटोलने के बावजूद उसे ज्यादा चावल नही मिला। चावल अब सिर्फ बोरे की सीअन के बीच-बीच में रह गए थे।

उस दिन सुबह मोती की मां ने बोरे के मुह की सीअन खोली। बोरे को उलटकर उसे फर्श पर अच्छी तरह से झकझोरा। रात के खाने-भर चावल निकल आया। झाड़ू से झाड़, डाला पर उठा, उसने चावल को अच्छी तरह से फटक लिया।

उसके बाद उसने बोरे को धूप में डाल दिया। धूप मे पसारते वक्त इतने दिन बोरे का जो हिस्सा दीवार की ओर था, वह जमीन की ओर पड़ा। शाम को उसने बोरे को एक बार और झकोरकर खटिया पर बिछा लिया।

रात को खाना खाकर मोती की मां बिस्तर पर पड़ गई। इसी बीच जाड़े का मौसम आ गया था, पिछले कुछ दिनो से मोती की मां को काफी ठंड लगने लगी थी। इससे पहले सालों में मोती उसे बाहो में पकड़े रहता शायद इसी कारण उसे उतनी ठंड नहीं लगती थी। आज बोरा बिछा लेने के कारण नीचे की ओर से ठंड कम लग रही है; इसी कारण शायद मोती की मां को कुछ गरमी-सी लगने लगी।

और ऐसी गरमी लगते ही उसे लगने लगता है कि उसके शरीर में कोई अजीब-सा चूहा खुट-खुट करता चल फिर रहा है। आज तो उस चूहे को खदेड़ने के लिए उसकी छाती के पास मोती भी नहीं है। थोड़ी देर बाद उसे ऐसा लगा, अगर इस क्षण वह हेंडीमैन आकर उससे पूछे—"कुछ चावल-दाल ला दूं, क्यों?"—तब शायद वह कह देगी—'ठीक है, ला दे।'

कम से कम एक मोती के लिए।

1969

गह्वर

लगभग साठ संवाददाता और फोटोग्राफर उस अस्पताल के मुख्य प्रवेश-द्वार के सामने की फुलवारी के पास अधीर आग्रह से प्रतीक्षारत थे। उनमें कोई-कोई फुलवारी की रेलिंग पर बैठे थे, कोई-कोई ईसा मसीह की विशाल प्रतिमा के चारों ओर बनी सीढ़ियों पर बैठे थे; दो-तीन लोग अस्पताल के गाड़ी रखने वाले बरामदे के दो मोटे खंभों से टिके हुए बैठे थे, कोई-कोई नितांत थके-से उदासीन मुद्रा में सिगरेट पीते हुए इधर-उधर चक्कर लगा रहे थे और उनमें से लगभग सभी तीन-चार व्यक्तियों की एक-एक मंडली बनाकर चिकित्सा-विज्ञान की उज्ज्वल संभावना से लेकर जंगली फूलों के बंधन-मुक्त सौंदर्य तक के विभिन्न विषयों पर विशेषज्ञ की गंभीरता से, बहस में जीतने की उत्तेजना से, मंडली के मुख्य व्यक्ति बनने के उत्साह से चर्चाओं में जुटे हुए थे। बातचीत के बीच कुछ समय के लिए फोटोग्राफर निष्क्रिय-से हो गए थे; वे अब अपने अपने कैमरों के लैंसों के पास कुछ हिला-डुला रहे थे और 'न्यू-फाइंडर' के बीच से नजर डाले अस्पताल के मुख्य प्रवेश-द्वार की सीढ़ियों और बरामदों को गौर से देख रहे थे। सुबह के सूरज की कोमल धूप ने सीढ़ियों और बरामदे को अच्छी फोटोग्राफी के लिए उपयोगी चमक से उजाला कर रखा था, इससे उन्हें बड़ा अच्छा लग रहा था। एक इतिहास-प्रसिद्ध घटना की तस्वीर उनके कैमरों में बड़ी खूबसूरती से आ जाएगी, इस कारण वे बीच-बीच में आकाश और सूरज की प्रशंसा भी कर रहे थे।

बीच-बीच में अस्पताल की तरफ से लोगों के कदमों, बातचीत, दरवाजे खोलने आदि की आवाजें आ रही थीं और हर बार समाचार-पत्रों के ये लोग वैसे ही व्यस्त हो जाते थे, जैसे कि रेलगाड़ी के आने का संकेत पाकर स्टेशन पर प्लेटफार्म के यात्री व्यस्त हो उठते हैं। कोई-कोई फोटाग्राफर एक अच्छी-सी जगह लेने के उद्देश्य से सीढ़ियों की ओर दौड़ पड़ता था और उसके साथ ही दूर सड़क के फुटपाथों पर इकट्ठे हुए कई सौ लोगों के बीच शोरगुल मच जाता था। अपने दोनों पैरों के बीच अपने नन्हे बच्चों को लिए खड़े अभिभावक झट् से उन्हें उठाकर गोद में ले लेते और अपनी उंगलियों से इशारे कर अस्पताल के बरामदे की ओर उनकी नजरें खींचने की कोशिश करते थे, और खुद भी गरदन ऊंची करके उधर ही देख रहे थे। सड़क से होकर आने-जाने वाली गाड़ियों की रफ्तार भी उस समय धीमी हो जाती थी और गाड़ियों पर सवार यात्रियों की आंखें भी अस्पताल की ओर मुड़ जाती थीं पर थोड़ी ही देर में यह पता चल जाता

था कि उत्तेजना की वजह निराधार है। दो-एक व्यक्तियों के मजाकिया ढंग से दिए गए मंतव्य से जाने-अनजाने सभी हंस पड़ते थे और निश्चित घटना होने के क्षण की प्रतीक्षा फिर शांत भाव से करने लगते थे। वैसी हवाई उत्तेजना घट जाने पर बहुत-से लोग नई सिगरेट जला लेते थे।

हालांकि लगभग साठ संवाददाताओं और फोटोग्राफरों की होशियारी को निरस्त कर असली घटना संगठित होने का निर्मूल संकेत आखिरकार फुटपाथ पर खड़े लोगों ने ही दिया। अचानक एक बार उन लोगों की ओर से शोर-गुल की आवाज़ें तिरती आईं—अखबार वाले लोगों ने चकित होकर पहले सड़क के लोगों की ओर देखा और उसके दूसरे ही क्षण उनकी नजरों का अनुसरण करते हुए अस्पताल के बरामदे की ओर देखने लगे। और तुरंत सीढ़ियों की ओर दौड़ पड़े। लोग जैसे ज्यादा आगे न बढ़ सकें—इसके लिए अस्पताल के अधिकारियों ने कुछ कर्मचारियों को नियुक्त किया था, उन कर्मचारियों ने सीढ़ी के नीचे एक घेरा बना लिया था। अखबार वालों ने उस घेरे को तोड़ने की कोशिश करते हुए`सामने की अच्छी जगह लेने हेतु आपस में भी जबर्दस्त धक्कमधक्का शुरू कर दिया। एक मूवी कैमरामैन किसी तरह से छलांग मार-कर सीढ़ियों के एक सिरे से लगभग चार-पांच कदम ऊपर जाकर फोटग्राफरों के उस धक्कमधक्के की तस्वीरें भी लेने लगा।

अस्पताल के अंदर से कुछ लोग धीरे-धीरे बरामदे से होकर सीढ़ियों की ओर बढ़ते आ रहे थे। उनके सामने चार आदमी थे। एक ओर थे विख्यात चिकित्सा-विज्ञानी डॉ. कैंपबेल, दूसरी ओर था उनका सहकारी डॉ. मिलिन, उनके जरा पीछे थी अस्पताल की एक मैट्रन, और उन लोगों के बीच में थे मि. पियेनार और मिसेज पियेनार! उनके सीढ़ियों के पास पहुंचने के पहले से ही कैमरों से लगातार क्लिक-क्लिक की आवाजें होने लगीं, क्षणभर बाद ही फुटपाथ पर के सैकड़ों लोगों के हाथ ऊपर उठ गए और 'मि. पियेनार दीर्घजीवी हों', डॉ. कैंपवेल दीर्घजीवी हों'—नारों से समूचा अंचल मुखरित हो उठा। मि. पियेनार के शांत, पीले-चेहरे पर सुबह की किरणें पड़ रही थीं, जिससे चेहरा चमक रहा था। अब इस समवेत जनता का आंतरिक अभिनंदन और आशीर्वाद पाकर उनके चेहरे पर एक तरह की उत्तेजना-सी फैल गई। उनके होंठ फैल गए, होंठों के किनारे दो निशानियां पड़ीं। दोनों ओर नथुने जरा हिले, परंतु यह पता न चला कि ये खुशी सूचित कर रहे हैं या रुलाई। अखबार वालों और सड़क की जनता के अभिनंदन के जवाब में मि. पियेनार ने अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाने की इच्छा से डॉ. कैंपवेल की ओर देखा। डा. कैंपबेल ने सम्मति सूचक संकेत से सिर हिलाया। मि. पियेनार ने लोगों की ओर देखते हुए ऊपर उठा हाथ धीरे-धीरे हिलाया। साथ ही लोगों के कंठों से निकले अत्यंत उल्लास के स्वरों ने उन्हें बधाई दी। मि. पियेनार अपने हाथ को अभी पूरी तरह से नीचे उतार भी नहीं पाए थे, तभी एक संवाददाता एक पेंसिल और अपनी नोट वाली बही मि. पियेनार के हाथ के पास ले

आया, उसका इरादा था—अगर यह विख्यात रोगी अस्पताल से निकलते ही पहले-पहल उसी की बही में एक साधारण लकीर भी खींच दे, तो वही उसके समाचार-पत्र के लिए काफी होगा। लेकिन डॉ. कैंपवेल ने शांत हास के अनुरोध-सहित उस संवाददाता की पेंसिल और बही को धीमे से हटा दिया।

कुछ ही क्षण बाद एक खूबसूरत, सफेद गाड़ी लगभग बिना आवाज के आकर उस बरामदे में ठहर गई। सीढियां उतरने में मि. पियेनार को डॉ. कैंपवेल और मिसेज पियेनार ने मदद की। गाड़ी पर सवार होते समय एक संवाददाता ने किसी चतुराई से घेरे को पार कर लिया और झट से पास पहुंचकर पूछा—मि. पियेनार, आपको कैसा लग रहा है ?

मि. पियेनार के होंठ पहले तो कांप उंठे, तुतलाते हुए बोले—'एक नई जिंदगी, एक नई दुनिया, सब कुछ नया।'

सैकड़ों लोगों की तालियों की गड़गड़ाहट और खुशी के नारो के बीच गाड़ी अस्पताल से बाहर निकल गई। कुछ ही देर में वहां सन्नाटा छा गया। प्रेस के लोगों और सड़क के लोगों के अपनी-अपनी राह चले जाने के बावजूद बहुत-देर तक अस्पताल के बरामदे में कुछ कर्मचारी निष्क्रिय, आलस्य से भरे हुए खड़े रहे। उनका मन वैसे ही सूना-सूना हो गया था, जैसे किसी अंतरंग, पारिवारिक मित्र को विदा दे आए हों। पिछले एक सौ अठारह दिन से इसी बीमार व्यक्ति को लेकर पूरे अस्पताल में एक अद्‌भुत व्यस्तता छाई हुई थी, लोगों के कामों में अत्यधिक व्यग्रता देखी जा रही थी। कभी-कभी समूचे संसार का आग्रह मानो इस अस्पताल में ही केंद्रित जान पडता था। उन एक सौ अठारह दिनों में से हर दिन इस अस्पताल के लिए अतुलनीय सम्मान, गौरव और सफलता ले आता लग रहा था। मि. पियेनार पूरी तरह स्वस्थ होकर अभी-अभी इस अस्पताल से निकल गए। एक तरह की बेमतलब उदासी ने मानो कर्मचारियो को कुछ क्षण के लिए आलस्य भरा और निष्क्रिय बना दिया।

लगभग चार महीने पहले दिल की बीमारी के कारण मरणासन्न स्थिति में और दसियों बीमार लोगों की भांति ही मि. पियेनार इस अस्पताल में आए थे। उनकी हालत दिन-पर-दिन गिरती जा रही थी। आखिरकार डॉक्टर उनकी आखिरी सांस के क्षण गिनने लगे थे। परंतु ऐसे समय में डॉ. कैंपवेल को अपनी अरसे की साधना से एक अद्‌भुत प्रेरणा मिली। साथ ही अपने असाधारण ज्ञान-प्रबुद्ध अतिमानवीय, कर्मशक्ति तो उन्हें मिली ही। उसी दौरान उन्हें अचानक एक आकस्मिक दुर्घटना में लगभग मरे-से एक तीस साल के नौजवान का ऐसा कलेजा मिल गया जिसकी धड़कन बंद नही हुई थी। तुरंत मि. पियेनार के रोग-ग्रस्त और बेकार-से हो चुके कलेजे को निकालकर उसकी जगह उस तीस साल के युवक का प्राणशक्ति से भरपूर कलेजा जोड दिया गया। यह घटना एक सौ अठारह दिन पहले हुई थी। इन एक सौ अठारह दिनों में उस नए कलेजे को शरीर के हर शिरा-उपशिराओं, धमनियों द्वारा उसे एकात रूप से

अपनाकर मि. पियेनार एक खूबसूरत, सफेद गाड़ी पर मिसेज पियेनार के पास बैठे सैकड़ों लोगों की हर्ष-ध्वनियों एवं अभिनदन के नारों के बीच आज अपने घर लौट गए हैं।

मिसेज पियेनार ने इस शुभ दिन के उपलक्ष में अपने मकान को नए ढंग से सजाया था। चमकते नए सफेद कपड़ों से नए परदे बनवाए थे। कुर्सी-मेज आदि में जहां भी कपड़े की जरूरत थी, वहीं कीमती सफेद कपड़े लगाए थे, अपने दो-जनों वाले बिस्तर को भी सफेद कपड़ों मे बड़ा खूबसूरत बनाकर बिछाया था। हालांकि ये कपड़े अस्पताल के कपड़ों जैसे कोरे नही थे। सफेद सूत से बुने तरह-तरह के बेल-बूटों ने उन कपडों को सासारिक बना दिया था। एक सौ अठारह विचित्र दिन एक विशेष परिवेश में बीतने के बाद अचानक एक अति-संसारी परिवेश में आने पर जैसे मि. पियेनार आवश्यकता से अधिक उत्तेजित न हो जाए, इस उद्देश्य से डॉ. कैंपवेल के सुझाव से मिसेज पियेनार ने यह आयोजन किया था।

मि. पियेनार के मकान में आने के कुछ देर बाद पुलिस अधिकारी एवं डॉ. कैंपवेल के अनुरोध से मकान के सामने इकट्ठे शुभैच्छुओं की भीड़ धीरे-धीरे छंट गई। पुलिस के साथ बेकार बहस करने के जुर्म में काली चमड़ीवाले दो व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

डॉ. कैपवेल के विदा लेकर चले जाने के बाद घर में सन्नाटा छा गया। मि. पियेनार ने एक सोफे पर बैठ एक लंबी सांस ली और पत्नी के चेहरे की ओर देखते हुए धीमे से मुस्कराए। अपने लंबे विवाहित जीवन में मिसेज पियेनार ने मानो पति के चेहरे पर ऐसी मुस्कान और कभी नहीं देखी थी। एक नई जिंदगी की परम प्रशांति की मुस्कान। गलीचे पर घुटने टेक मिसेज पियेनार उस सोफे के बिलकुल पास ही बैठ गई। उसने धीमे से मि. पियेनार की छाती पर सिर रख दिया और दाहिने हाथ से उनकी बांह को सहलाने लगी। देर तक मिसेज पियेनार उसी तरह पड़ी रही! धीरे-धीरे उसकी आंखों में पानी भर आया और कुछ क्षण बाद गालों पर आंसुओं की धारा बह चली। उस सन्नाटे भरे मकान में मि. पियेनार के कलेजे की धड़कन की आवाज उसे ऐसी लगी मानो एक थका देने वाली आशंका भरी लड़ाई के अत मे विषय-सूचक नगाड़े की आवाज हो।

स्थानीय सांयकालीन समाचार-पत्रों का पहला संस्करण उस दिन दोपहर को ही छपकर आ गया। मिसेज पियेनार ने सभी समाचार-पत्रो के सारे संस्करणो का सग्रह कर पति को दिया। पति ने समाचार पढकर, तस्वीरों में अपना चेहरा देख-देखकर मुस्कुरा दिया। उसके बाद कई दिनों तक अखबारों मे मि. पियेनार के समाचार के साथ घर के अंदर, बाहर की फुलवारी में विभिन्न भगिमाओं में अनेक तस्वीरे भी छपती रही। पिछले एक सौ अठारह दिनों में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में मि. पियेनार के बारे मे जो समाचार छपते थे, मिसेज पियेनार ने बड़े जतन से उनकी कतरनें भी रखी थीं। उन्होंने

वे भी निकालकर उन्हें दे दीं। उन्हें पढ़कर, बीच-बीच में अपने घनिष्ठ संबंधी, शुभैषी और संवाददाताओं से कुछ बातचीत करते हुए मि. पियेनार ने कुछ दिन निरुद्विग्न रूप से गुजारे।

धीरे-धीरे मि. पियेनार को लेकर जो उत्तेजना हुई थी, वह शांत हो गई। एक दिन मिसेज पियेनार ने तय किया कि अब वह फिर अपने काम पर जाएगी। "काम पर?" मि. पियेनार ने प्रश्नात्मक दृष्टि से पत्नी की ओर देखा। काम पर जाने के नाम पर पियेनार-दंपति की दो जगहें थीं। पहली—कागज का व्यापार करने वाली एक संस्था। अरसे पहले, विवाह के पहले, मिसेज पियेनार ने अकेले एक छोटी-सी कागज की दुकान खोली थी, विवाह के बाद मि. पियेनार ने पत्नी के उस व्यापार में काफी रकम लगा दी। धीरे-धीरे उनका वह व्यापार बहुत बड़ा और फायदे का हो उठा। ऐसा समय आया जब मि. पियेनार ऊंची सरकारी नौकरी छोड़कर पूरी तरह व्यापार में ही जुट गए। उनके दो लड़के हैं जिन्हें छोटी उम्र में ही उन लोगों ने लंदन भेज दिया था। वे वहीं पढ़ रहे हैं। उसके बाद पियेनार-दंपति के उस व्यापारिक-संस्थान में और कई सुदक्ष, विश्वासी कर्मचारी आए, तिस पर मिसेज पियेनार भी व्यापार संचालन में अत्यंत निपुण थी, इसलिए मि. पियेनार के लिए काफी समय निकल आया। उस समय मौका पाकर वे राजनीति और समाज-नीति की चर्चा में काफी दिलचस्पी लेने लगे। यहां तक वे उन्हीं में तल्लीन-से हो गए। सरकारी प्रशासन अधिकारी के रूप में उन्होंने पहले जो अनुभव, कर्म-निपुणता और विचारधारा अर्जित की थी, उसे कार्यान्वित करने हेतु आंतरिक प्रेरणा उन्हें मिली। सरकारी नीतियों को कार्य रूप देकर उन्हें आम जनता के बीच ले जाने वाले एक गैर-सरकारी राजनीतिक संघ में वे सम्मिलित हो गए। अपनी प्रतिभा और दक्षता के बल पर कुछ ही दिनों में पियेनार उस संघ के सचिव बन गए। किसी समय पत्नी के कागज के व्यापार ने मि. पियेनार को अपनी ओर खींच लिया था, अब संघ का सचिव बनने के बाद मि. पियेनार ने भी पत्नी को संघ के कामों में खींच लिया। दिन को व्यापार-संबंधी काम-काज निपटाने के पश्चात् पियेनार-दंपति शाम को नियमित रूप से संघ की चर्चा में सम्मिलित होते थे। चर्चा विभिन्न विषयों पर होने पर भी सभी चर्चाओं के पीछे संघ के मूल उद्देश्य और नीतियां ही होती थीं। जैसे—किसी जगह जन्म लेने मात्र से ही कोई उस जगह का अधिकारी नहीं बन जाता। कुछ जंगलों में हजारों बंदर जन्म लेते हैं, परंतु वे जंगल तो बंदरों के नहीं हो जाते। इस देश में अनेक काली चमड़ी वाले लोगों का जन्म हुआ था और जन्म होता था तो किसी समय वे मरते भी थे। जन्म लेकर सिर्फ मरने के सिवा उन लोगों ने और कुछ किया ही न था, आज भी नहीं करते। अतः जिन सु-सभ्य जातियों ने बाहर से आकर अपने अथक परिश्रम और त्याग के जरिए इस देश का निर्माण किया, अंधेरे के अतल गह्वर से ऊपर उठाकर इस देश को सभ्यता-समृद्धि के उज्ज्वल प्रकाश में ला दिया है, सिर्फ उन जातियों के सिवा और किसी का अधिकार इस देश पर नहीं है। चमकती सफेद चमड़ी वाले लोगों

के एक विशेष वर्ग का सर्जन ईश्वर ने किसी गलती से नहीं किया है। इंसान की चमड़ी के इन दो रंगों के अंदर सृष्टिकर्ता का वक्तव्य छिपा हुआ है। काली चमड़ी वाले मूर्ख उस वक्तव्य को समझ नहीं पाते, इसलिए विद्रोह के नाम पर पाप-आचरण करते हैं। परंतु उक्त ईश्वरीय वक्तव्य पर निर्विवाद श्रद्धा रखना मि. पियेनार आदि का पवित्र कर्तव्य है।

अनुगामी कर्मियों की एक मंडली के सहयोग से पियेनार-दंपति वह पवित्र कर्तव्य पालन किया करते। भद्दे काले रंगों को हटाकर उस शहर को सफेद करने के लिए, वहां के काली चमड़ी वालों को खदेड़कर, हो सके तो फिर से पेड़ों की डालियों पर रख आने के लिए वे देशव्यापी अभियान का संचालन किया करते।

काम पर जाने का मतलब पियेनार-दंपति संघ के दफ्तर में जाना भी समझते हैं।

मि. पियेनार के प्रश्न के उत्तर में पत्नी ने बताया—वह व्यापार-संस्थान में ही जाएगी। मि॰ पियेनार ने पूछा—संघ का क्या समाचार है?

—पिछले दिनों हालांकि मुझे ज्यादातर समाचार फोन से ही मिले हैं। कोई नया समाचार तो है नहीं। सिर्फ क्वींस कॉलेज में विद्यार्थियों के प्रवेश के समय एक दिन उन लोगों के भी झुंड भर लड़के-लड़कियां अपने मां-बाप के साथ आकर कॉलेज के बरामदे में बैठे हुए थे। उनका कहना था कि उन्हें भी प्रवेश देना होगा नहीं तो वे वहीं बैठे रहेंगे। पुलिस भी आई थी। मगर पुलिसवालों के कोई कदम उठाने के पहले ही कॉलेज में रहने वाले हमारे लड़के-लड़कियां, कॉलेज के कर्मचारी आदि सभी कालेज से निकल आए। शाम तक बैठे रहकर शायद वे ऊब गए, शायद भूख भी लग गई होगी, वे चले गए। मिसेज पियेनार ने हंसते-हंसते बात खत्म की।

मिसेज पियेनार जब काम पर जाने लगीं, उसके काफी दिन बाद एक दिन शाम को मि. पियेनार ने डॉ. कैंपवेल को फोन किया, वे कुछ समय के लिए दफ्तर जाना चाहते हैं। डॉ. कैंपवेल ने कुछ सावधान-वचन के साथ उन्हें जाने की अनुमति दे दी।

पहले दिन व्यापारिक संस्थान में जाने पर वहां के कर्मचारियों ने मि. पियेनार के स्वागत में एक भोज का आयोजन किया। उसी तरह संघ के कार्यालय में भी उनके पदार्पण के उपलक्ष में एक आनंदमय वातावरण बनाते हुए रात के भोज का आयोजन किया गया। उसके बाद वे प्रायः नियमित रूप से दोनों कार्यालयों में आने-जाने लगे।

शाम को संघ के कार्यालय से लौटकर मि. पियेनार हमेशा एक पार्क के पास अपनी सफेद गाड़ी से उतरते। पार्क से उनका मकान लगभग दो फर्लांग दूर था। इस राह पर वे कुछ देर इधर-उधर धीरे-धीरे पैदल चलते। उतना पैदल चलना उनके लिए बड़ा जरूरी था। इसके अलावा शाम के बाद यह सड़क बड़ी सुनसान हो जाती, शांति से कुछ पैदल चला जा सकता था।

एक दिन ऐसे ही पैदल घर की ओर जाते समय मि. पियेनार को संदेह हुआ, जैसे कोई उन्हें कोमल शब्दों में बुला रहा हो—'जी महोदय।' अब तो बहुत-से लोग मौका

पाते ही उनसे बातें करना चाहते। कभी-कभी उन्हें ऐसा भी लगता मानो दुनिया का हर आदमी संवाददाता की नौकरी कर रहा हो! और धीरे-धीरे उन्होंने लोगों को शह देना लगभग छोड़ ही दिया था।

वे आगे बढ़ गए। पर थोड़ी देर बाद ही फिर वही आवाज उनके कानों में आई—'महोदय जी!'

मि. पियेनार ने धीरे से मुड़कर देखा। उनसे पांच-छह हाथ दूर काली चमड़ी वाली एक औरत खड़ी है। अब तो मि. पियेनार निश्चिंत मन से आगे बढ़ गए। औरत ने तो जरूर उन्हें नहीं बुलाया है। ऐसे लोगों के साथ तो उनका कोई संबंध ही नहीं रहा है। वे सिर्फ सोचने लगे, काले लोगों की बस्ती तो यहां से काफी दूर है। यह औरत भला इस असमय में यहां क्यों चली आई है?

वे आगे बढ़ गए। दो बिजली-बत्तियों के खंभों के बीच खड़े होकर उन्होंने उस औरत की ओर मुड़कर देखा था, उससे कुछ आगे बढ़कर जैसे ही वे दूसरे खंभे के नीचे पहुंचे, तभी फिर उनके कानों में वही आवाज आई—'कृपया जरा महोदय जी'

मि. पियेनार ने इस बार रुककर पूरा-आधा चक्कर लगा उस औरत की ओर देखा। वह लगभग पांच हाथ दूर खड़ी थी। बिजली-बत्ती के चमकीले उजाले में उसका काला चेहरा दमक रहा था। आतंक और विनती से भरी नजरों से वह मि. पियेनार के चेहरे की ओर देख रही थी।

बिजली-बत्ती के खंभे के बिलकुल नीचे खड़े होके और सिर पर 'फैल्ट-हैट' पहने रहने के कारण मि. पियेनार के पूरे चेहरे पर छाया पड़ी थी। उनके चेहरे का रंग भी उस औरत के चेहरे जैसा ही दिखाई पड़ रहा था। उस औरत की ओर देखते रहने पर अचानक मि. पियेनार को महसूस हुआ, मानो कहीं इस औरत को उन्होंने पहले भी देखा है। हां-हां, इसी सड़क पर कई दिन उसे विभिन्न स्थानों पर खड़े देखा था—उन्हें याद आ गई। उन्हें यह भी याद आई कि ऐसे ही जब वे मुड़कर देखते थे, तो कभी-कभी यही औरत आते दिखाई पड़ जाती थी।

—क्या तुम मुझसे कुछ कहना चाहती हो? मि. पियेनार ने गंभीर स्वर से पूछा।

अपनी बूटेदार फ्राक से ढंके घुटनों को श्रद्धा-निवेदन के लहजे में जरा-सा मोड़कर, फिर सीधी हो, वह खड़ी हो गई। छाती के बीचों-बीच दोनों हाथों को एक साथ कर बंधी मुट्ठी वहां रखकर उसने कंपती हुई आवाज में कहा—'जी हां, महाशय जी, मैं आपको ही बुला रही थी।'

—मैंने तो तुम्हें पहचाना नहीं। शायद मेरे साथ तुम्हारी जान-पहचान भी पहले कभी नहीं हुई।

—जी, जान-पहचान तो नहीं हुई पर मैं आपको पहचानती हूं। आप भी मुझे पहचान जाएंगे, मैं हूं मेरी, स्मिथ की पत्नी। तीव्र उत्तेजना और आग्रह मिले स्वरों में मेरी एक ही सांस में वे बातें कह गई।

—स्मिथ ? मि. पियेनार की जबान से आप ही आप यह शब्द निकल आया। वे हजारों स्मिथ को पहचानते हैं, या वे स्मिथ नाम के किसी को भी नहीं पहचानते, या वे एक स्मिथ को भली-भांति पहचानते हैं—इनमें से कौन-सी बात है, उनके लहजे से यह प्रकट नहीं हुआ। पता भी न चला।

—जी हां—जी हां स्मिथ !—मेरी जैसे विकल-सी हो उठी। मेरे पति स्मिथ, वे मोटर-दुर्घटना में घायल हो गए थे, उनका कलेजा काटकर डॉक्टर ने आपमें जोड़ दिया है।

—ओ ! मि. पियेनार के मुंह से एक अस्फुट-सी आवाज निकली।

—जी हां, महोदय ! हमारे विवाह का सिर्फ दो ही महीना हुआ था। उस दिन रविवार को हम नेशनल पार्क गए थे। दिनभर वहां हमने बड़ा ही जश्न मनाया। यह देखिए न, वहां आटोमेटिक स्नेप में ली गई यह हमारी आखिरी तस्वीर है। मेरी बड़ी असंयत भाव से बातें कहती गई और साथ ही हाथ के बैग से एक छोटी-सी फोटो निकालकर वह कुछ कदम आगे बढ़ आई और मि. पियेनार के अपलक, अर्थहीन, सूनी दृष्टि के सम्मुख वह फोटो उठाए खड़ी रही, जिसमें नदी-तट की एक चट्टान पर हाथ पकड़े स्मिथ और मेरी बैठे हुए थे। स्मिथ का शरीर खुला था। उसके चौड़े, सुगठित, घने काले वक्ष पर सूरज की किरणें प्रतिफलित हो रही थीं। उसके होंठों पर एक झीनी-सी मुस्कान खिली हुई थी।

फोटो को फिर अपने बैग में डालकर मेरी कहती गई—'उस दिन हमें लौटने में काफी देर हो गई थी। जल्दी घर पहुंचने के लिए स्मिथ बड़ी तेज रफ्तार से गाड़ी चला रहे थे। पूरी राह हम बगैर किसी विघ्न-बाधा के घर पर आए थे। परंतु शहर में घुसने के पहले सचमुच क्या हुआ था, मैं सही-सही बता नहीं सकती, दूसरे दिन अस्पताल में मुझे होश आया था। इसी बीच एक दूसरे अस्पताल में स्मिथ का कलेजा आपकी छाती के अंदर जोड़ दिया गया था।' मेरी की आवाज भर आई। बाएं हाथ से आंखें पोंछकर उसने सामने फैले अपने बाल भी एक ही बार में कानों के ऊपर से पीछे की ओर कर दिए।

मौन, निश्चल से मि. पियेनार का चेहरा टोपी की छाया पड़ने के कारण पहले जैसा ही अंधेरा बना हुआ था। कुछ कहने के लिए उन्हें शब्द नहीं मिल रहे थे, कुछ सन्नाटे के क्षण निकल जाने के बाद उन्होंने जड़ता-भरे लहजे में पूछा—'भला तुम मुझसे किसलिए मिलने आई हो ?'—कह चुकने के बाद मि. पियेनार को खुद ही वह प्रश्न अवांतर-सा लगा।

—आपसे मिलने ? आपको तो दूर से मैं रोज देखती रही हूं। मुझे तो आपको नजदीक से देखना है। आपसे बातें करनी हैं, आपका साथ चाहिए। महाशयजी, मेरा तो सब कुछ चला गया; कुछ भी रहा नहीं। मेरा और कोई नहीं है। पर स्मिथ का कलेजा तो आपकी छाती में है। हम तो ऐसा ही सोचते हैं कि कलेजे के साथ इंसान का दिल

भी रहता है। स्मिथ के सुंदर, प्यार से भरे दिल की प्रशंसा करते हुए मैं उसके दिल के ऊपर छाती को हाथ से सहलाया करती थी। वही कलेजा, वही दिल आपकी छाती के नीचे धड़क रहा है, आपको जिदा रखे हुए है। जब कलेजा जिंदा है, तब फिर मेरे स्मिथ कहां मरे?' मेरी ने छलछलाई नजरों से, अपार आग्रह की दृष्टि से मि. पियेनार के अंधेरे चेहरे की ओर देखा। मि. पियेनार के मुंह से निकला—'अब तो बड़ी देर हो गई। मैं बाद में तुमसे मिलूंगा।'

—'मुझसे मिलेंगे आप?' मेरी की आंखें चमक उठीं।' महाशय जी, आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। बहुत-बहुत धन्यवाद।' जरा-सा सकुचाते हुए उसने फिर कहा—"आप लोगों के इधर आने में तो हमारे लिए बड़ी असुविधा है। फिर भी मैं आपको देखने के लिए आऊंगी। क्या आप भी हमारे यहां आएंगे महाशय जी?—यह यह—" मेरी ने जल्दी-जल्दी बैग खोलकर सामानों के बीच ढूंढ़कर एक छोटा-सा कार्ड निकाल लिया और बोली—'यह हमारे घर के पते का कार्ड है। स्मिथ के नाम का कार्ड। इसे आप रख लें।'

मि. पियेनार का हाथ यंत्रचालित हाथ-सा आगे बढ़ा और मेरी के हाथ से कार्ड ले अपने कोट के अंदर की, छाती पर की जेब में रख लिया। फिर अचानक वे मुड़ पड़े और घर की ओर कदम बढ़ा दिए। पीछे से मेरी के बड़े आग्रह से कहे हुए 'गुड नाइट सर' के जवाब में वे मुंह के अंदर ही कुछ बड़बड़ाते रहे।

मि. पियेनार को लग रहा था कि उनके पैर कुछ थक-से गए हैं। सिर चकरा रहा है। किसी तरह दो फर्लांग चलकर वे घर पहुंचे और थोड़ी ही देर बाद थके-से एक सोफे पर बैठ गए।

उन्हें लग रहा था —क्या उन्हें उस औरत को धन्यवाद देना नहीं चाहिए था? वे जो इस तरह से जिंदा घूम-फिर रहे हैं, इसके लिए उस औरत से क्या यह कहना नहीं चाहिए था कि मैं आजीवन तुम्हारा आभारी हूं?—उन्हें लग रहा था उनका दिमाग सुन्न हो गया था, काम नहीं कर पा रहा था, अब भी मानो वह अच्छी तरह काम नहीं कर रहा है। वे बड़े बेचैन-से हो उठे।

बात ऐसी होगी, उन्होंने तो कभी सोचा ही न था। वे तो सिर्फ इतना ही जानते थे कि उनका कलेजा बदलने की घटना इंसान की ज्ञान-बुद्धि, कर्म कुशलता के क्षेत्र में एक युगांतकारी कृतित्व है। उनकी यह नई जिंदगी विज्ञान के क्षेत्र में एक विस्मयकारी कदम का जीता-जागता प्रतीक है। किसी व्यक्ति के शरीर के अत्यंत आवश्यक एक अंग को उनके शरीर में प्रत्यारोपित करना एक परम विस्मय है। वह एक युगांतकारी, अद्‌भुत, उथल-पुथल मचा देने वाली घटना है। उन्हें बस इतना ही पता था। किसका कलेजा उनमें प्रत्यारोपित किया गया है, इस पर सोच-विचार करने की जरूरत ही उन्हें महसूस नहीं हुई थी। हालांकि उसका मौका भी उन्हें नहीं मिला था। डाक्टर, बंधु-बांधव, संवाददाता किसी ने उनके सामने यह प्रसंग नहीं उठाया था। और तो और

इतने सारे समाचार-पत्रों में छपे समाचारों ने भी उनके मन में इस तरह की चिंता नहीं जगाई थी। 'स्मिथ' यह नाम किसी ऊपरी चर्चा में उनके कानों में आया था जरूर। पर उस चर्चा को कभी कोई खास महत्त्व नहीं दिया गया था। वह नाम तो गिलास में डाली हुई दवा के बुलबुलों की तरह ही ओझल हो गया है। अपनी नई जिंदगी के बारे में सोचते ही, वे डॉ. कैंपवेल की ईश्वरीय शक्ति के बारे में ही बड़ी कृतज्ञता से स्मरण किया करते हैं।

परंतु आज जैसा कि उस औरत ने बताया—इस कलेजे का निश्चित रूप से कोई मालिक था। इस दिल के साथ एक और दिल जुड़ा हुआ था। कलेजा—हार्ट—दिल! इस कलेजे की उत्तराधिकारी उनका संग पाना चाह रही है! कैसा संग? भला वह क्या चाहती है?

मेरी का चेहरा मि. पियेनार के सामने तिरने लगा। उसका निचला होंठ मोटा और बड़ा है, नाक वड़ी है, गालों की हड्डियां उभरी हैं, भौंहों का ऊपरी हिस्सा दबा हुआ है। शरीर का रंग—

मि. पियेनार ने बड़ी बेचैनी का अनुभव किया। मिसेज पियेनार के पूछने पर उन्होंने सिर्फ 'नहीं, नहीं। कुछ नहीं हुआ; नहीं डाक्टर को खबर देने की क्या जरूरत है?' जैसे छोटे-छोटे वाक्य कहे।

रात को उन्हें अच्छी तरह नींद नहीं आई! वे मानो बार-बार अपने कलेजे की धड़कन की आवाज से जग उठे। उन्हें लगा—उनका कलेजा जैसे समूचे शरीर के खून का एक-एक कतरा सोख ले रहा है; वे निस्तेज, विवर्ण हो जा रहे हैं और दूसरे क्षण वह कलेजा बिजली जैसी तेजी से वह खून सारे शरीर में भेज दे रहा है। खून का वह वेग मानो उनकी नसें सह नहीं पा रही है, खासकर सिर के दोनों ओर की नसें, दिमाग के अंदर की नसें जैसे फट-सी रही हैं। यंत्रणा के मारे वे विकल होते जा रहे हैं। उन्हें लगा, उनके उस अध-पुराने शरीर के लिए वह कलेजा बड़ा शक्तिशाली है। उनकी आंखों के सामने स्मिथ नाम का एक काला आदमी तिरने लगा। सड़क की बत्ती के प्रकाश में उन्होंने फोटो के स्मिथ को अच्छी तरह से देखा न था, पर उनकी जाति के साथ तो उनका घनिष्ठ परिचय हो रहा है। सुदृढ़ मांस-पेशियों से बनी उनकी फैली छाती; उनके हाथ की मुट्ठी—किसके बराबर है?—किसके बराबर है? मि. पियेनार ने बे-जरूरत एक काले आदमी के हाथ की मुट्ठी के आकार की तुलना करने की कोशिश की।—एक बार उनके कार्यालय में जो हथगोले इकट्ठे किए गए थे, क्या उनके बराबर? उनकी सफेद बड़ी गाड़ी के डिस्ट्रीब्यूटर के बराबर? ऐसी ही बे-सिर पैर की चिंताओं ने मि. पियेनार को बिलकुल दबोच लिया।—कहते हैं कि आदमी के हाथ की मुट्ठी उसके कलेजे के बराबर होती है।

मि. पियेनार को लगा कि कुछ समय के लिए भी अगर उनके शरीर का रक्त-संचार, खास कर सिर की ओर का, रुक जाए तो अच्छा हो।

रात को मि. पियेनार का चेहरा पीला-सा देखा गया। आइने के सामने खड़े होकर वे एकटक अपने प्रतिबिंब को देखते रहे। क्या उनके चेहरे का रंग, शरीर का रंग धीरे-धीरे काला होता जा रहा है? रक्त-संचालन करने वाले उस यंत्र की वजह से क्या वे भी स्मिथ जैसे ही हो जाएंगे?

मिसेज पियेनार के अनुरोध से उस दिन डॉ. कैंपवेल और उनके सहयोगियों ने मि. पियेनार की काफी देर तक जांच की। कुछ भी तो नहीं हुआ। सब कुछ ठीक ही तो है। अब धीरे-धीरे मि. पियेनार को स्वाभाविक रूप से काम-काज करना चाहिए।

उस दिन मिसेज पियेनार पति को जल्द संघ के दफ्तर में ले गई। किसी अंचल में के काले लोग अलग से एक नगर-पालिका बोर्ड बनाना चाह रहे हैं। उनकी ऐसी हिम्मत? कैसी हास्यास्पद है उनकी योजना? अपराध मूलक विद्रोह! संघ के सदस्य बड़ी गंभीरता से उस विषय पर चर्चा करने लगे। अचानक एक बार मि. पियेनार को लगा—क्या वे मन लगाकर उस चर्चा में भाग नहीं ले रहे हैं?—और शरीर को झकझोरकर वे कुर्सी पर अच्छी तरह से बैठ गए। फिर जरूरत से ज्यादा ऊंची आवाज में बातें करने लगे।—नहीं, इन लोगों को किसी तरह की शह नहीं दी जा सकती। नगरपालिका बोर्ड के नाम पर किसी जगह अगर ये जम सकें, तो वहीं से वे सत्ता और अधिकार की चेतना जगाने में सक्षम हो जाएंगे।—आदि-आदि! संघ के दूसरे सदस्य एक निश्चित कार्यक्रम हाथ में लेने के बारे में चर्चा कर रहे थे। मि. पियेनार के भाषण में उन्हें बहुत दिन पहले के पुराने वक्तव्य का स्वर सुनने को मिला। वे लोग तिरछी निगाह से एक-दूसरे की ओर देखने लगे। मिसेज पियेनार ने गंभीर दृष्टि से देखते हुए पति को चुप रहने का संकेत दिया।

देर तक आवेश में लगातार बातें करते हुए मि. पियेनार थक-से गए। उन्होंने सहज बनकर बैठने की कोशिश की। परंतु उनकी छाती धड़कने लगी। जी-जान से वे उस धड़कन की ओर से उदासीन रहने की कोशिश करने लगे। पर ऐसा कर नहीं सके। बल्कि उन्हें कभी-कभी ऐसा लगने लगा कि स्मिथ के उस विशाल कलेजे की ताकत को रोक रखने की सामर्थ्य उनमें नहीं है।

मि. पियेनार ने शाम को पैदल घूमना छोड़ दिया। अपने पीछे-पीछे आने वाली औरत उनसे आंतरिक संबंध चाहती हुई कहीं आ रही होगी, इस आतंक ने उन्हें घेर लिया। बीच-बीच में वे ऐसी कल्पना भी किया करते—सिर्फ वही औरत नहीं, एक कलेजे का बहाना लेकर काले लोगों की समूची जाति उनसे संबंध जोड़ने पीछे-पीछे आ रही है। कलेजे बदलने के साथ-साथ अंतर-परिवर्तन भी होता है, क्या वे इस विषय को भी जड़ित करना चाहते हैं?

कुछ दिन बाद मि. पियेनार एक दिन डरते-डरते पैदल घूमने निकले। कुछ ही क्षण बाद उनके कान में आवाज आई—'महाशय जी!'

लगा, मानो मेरी सुदूर अतीत से लेकर हर दिन इसी सड़क की बिजली-बत्तियों

के खंभों के पीछे छिपी रही है। ठिठककर रुके हुए मि. पियेनार के पास वह चली आई।

अचानक मि. पियेनार के मन में ऐसी हिम्मत आ गई मानो वे किसी शेर का सामना कर रहे हों। वे गरज उठे—'तुम्हें क्या चाहिए?'

मेरी पहले तो सहम-सी गई। पर दूसरे ही क्षण उसने हिम्मत संजो ली और विनती भरे लहजे में कहा—"मैं चाहती हू कि सिर्फ एक बार आपकी छाती पर सिर रखकर अपने स्मिथ के कलेजे की धड़कन सुनूं और अनुभव करूं। मैंने बहुत दिनों से वह धड़कन सुनी नहीं। उसकी वह धड़कन इसी दुनिया में बनी हुई है, मगर मैं सुन नहीं पा रही हूं, महाशय जी, यह बड़ी तकलीफ की बात है। असहनीय यंत्रणा है।"

—'हैं, इतनी हिम्मत!' कहते हुए दूसरी बार गरजकर मि. पियेनार ऐसे आवेश से वहां से चले गए, मानो खाली रायफल में गोली भर लाने के लिए ही जा रहे हों।

इस बार उनमें यह हिम्मत न रही कि मिसेज पियेनार के पूछने पर भी 'कुछ भी नहीं हुआ' कह सकें। घर पहुंचने के बाद लगभग घंटे-भर अपने आपसे वे लड़ते रहे। उसके बाद उन्होंने बड़े थके स्वरों में पत्नी से उस औरत के बारे में बताया। उन्होंने यह भी कहा कि वह औरत उनकी छाती पर सिर रखकर ।

गुस्से से भरी सांपिन-सी मिसेज पियेनार फुंकार उठी। अब वह क्या करे? क्या संघ के दफ्तर में फोन करे? या डॉ. कैंपवेल को? वह बड़ी बेचैन-सी घर भर में चहलकदमी करने लगी।

दो पलंगों को एक साथ सटाकर एक बनाए बिस्तर पर रात को पियेनार-दंपति बिलकुल पथराए-से पड़े हुए थे। किसे नींद आई है, कौन जग रहा है, कोई किसी का पता नहीं ले रहा था। मिसेज पियेनार के दिमाग में एक तरह की तेज जलन-सी होने लगी थी। अधखुली आंखों से उसने एक बार पति की छाती पर नजर डाल, फिर आंखें मूंद लीं। बत्ती के झीने-से उजाले में क्या उसने पति की छाती को उठते-गिरते देखा था? हां, उसने वही देखा था। पति की छाती स्पष्ट रूप से काफी उठ-गिर रही थी। कलेजे के बदले मानो कोई बड़ी-सी पंप ही छाती के अंदर काम कर रही हो। अपने विवाहित-जीवन में अनेक बार पति की छाती की धड़कन का अनुभव उसे रहा है। परंतु अस्वाभाविक रूप से यह उठना-गिरना कैसा विरक्तिजनक है। यह कलेजा कितना अनजाना है। अत्यंत प्रियकर, अत्यंत स्नेह भरे, इतने अपने-से दिल के केंद्र में यह किसका कलेजा है? इस कलेजे के साथ भला उसका कौन-सा संबंध है? तीव्र अभिमान और नफरत के मारे मिसेज पियेनार की नाक में बल पड़ गए।

आधी रात के गहरे सन्नाटे में मिसेज पियेनार को एक भयावह गुम-गुम की आवाज सुनाई पड़ी। वह आवाज पति की छाती के अंदर से आ रही थी। धीरे-धीरे वह आवाज ऊंची और ऊंची हो आई। आखिरकार वह आवाज अनेक लोगों द्वारा एक तान में बजाए बाजों की आवाज बनकर मिसेज पियेनार के कानों के गह्वरों को ऐसे

भरने लगी, जैसे कि वे लोग बाजे बजाते किसी शव की अंत्येष्टि क्रिया करने जा रहे हों। वह उठकर बिस्तर पर बैठ गई।

दो-तीन दिन बाद मिसेज पियेनार ने पलंगों का जुड़ाव हटा दिया। अपने बिस्तर को वह उस लंबे सोने के कमरे के दूसरे सिरे पर ले गई। उसने पति को समझाया, वह कुछ अस्वस्थ-सी है। उसकी वजह से पति को रात के सोने में अड़चन आ सकती है। वह ऐसा करना नहीं चाहती।

—सोने में अड़चन ? मि. पियेनार का अंतर एक क्रूर हंसी से भर गया। भला वे सोए ही कब थे ? उन्हें नींद आई ही कहां थी ?

मिसेज पियेनार का समझाना, स्पष्टीकरण देना व्यर्थ रहा। मि. पियेनार की आत्मा को न मालूम कैसे पता चल गया कि पत्नी उनसे नफरत करने लगी है। पत्नी उनसे डरने भी लगी है। इसी बीच क्या उनका चेहरा भी इस तरह बदल गया है कि लोग उन्हें रात को देखकर डरने लगें ? उन्हें और भी याद आने लगा—इसी बीच संघ के दफ्तर में, व्यापार-कार्यालय में, सड़कों पर लोग उन्हें देख हटकर धीमी गुनगुनाहट की आवाज में बातें करते हैं। उनकी ओर लोग अजीब-सी नजरों से देखा करते हैं, वह नजर सहन नहीं की जा सकती !

मि. पियेनार को अब इन लोगों से छिपकर रहने की इच्छा होने लगी। उनकी नजरों से वे आतंकित हो उठे। उन्हें मेरी की बात बार-बार याद आने लगी। उसकी वह कातर-असहाय दृष्टि, आंसुओं से भीगी दृष्टि। हालांकि उस दृष्टि से भी उन्हें डर ही लगता है, पर उसमें घृणा-नफरत नहीं है। वह दृष्टि भयार्त भी नहीं है। अचानक मि पियेनार की एक बार मेरी के यहां जाने की इच्छा हो आई। वह रहती कहां है ? कितनी दूर होगी वह जगह ? बिस्तर पर पड़े-पड़े ही कमरे के दूसरे सिरे के बिस्तर पर नजर डाल वे सोचने लगे—कम से कम इतनी दूर तो होगी नही शायद !

अपने कोटों की जेबें टटोलकर मि पियेनार ने स्मिथ के पते वाला कार्ड निकाला। पहने हुए कोट की अदरूनी जेब में उन्होंने कार्ड को रख लिया और ड्राइवर को बुला मोटर पर सवार हो बाहर निकल गए।

मि. पियेनार की वह सफेद गाड़ी शहर से बहुत दूर काले लोगों की एक बस्ती में पहुंची। एक घर के सामने गाड़ी रुकी और साथ ही लड़के-लड़कियों, युवक-युवतियों बूढ़े-बूढ़ियों समेत अनेक लोगों ने आकर उस गाड़ी को चारो ओर से घेर लिया। अचानक उन लोगों में—'पियेनार, पियेनार!' का शोर मच गया। घरों के दरवाजे-खिड़कियां खुल गई। कोई-कोई चेहरा खिड़कियो में झांकने लगा, और थोड़ी ही देर में लोग दौड़ते हुए सडक पर आ गए। सैकड़ों लोगों की भीड़ लग गई। उनके 'पियेनार, पियेनार' की आवाज से पूरा अंचल मुखरित हो उठा। न जाने कैसे एक आनंद से बावले लोग गाड़ी के चारों ओर नाचने लगे। कुछ बडे ही उत्साही लोगों ने गाड़ी की खिड़की से हाथ डाल बड़ी सावधानी से मि. पियेनार की छाती पर धीमे से

एक तरह का दबाव डालकर अपने मन की ऐसी भावना प्रकट की, जो किसी की समझ में नहीं आई। हर दबाव के साथ स्मिथ के पते वाला कार्ड मि पियेनार की छाती में और ज्यादा सट-सा जाता था।

सैकड़ों लोगों के इस आदर भरे स्वागत के उत्तर में मि. पियेनार की एक बार अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाकर हिलाने की इच्छा हो आई। हाथ उठाना चाहते हुए उन्होंने एक बार करुण-दृष्टि से इधर-उधर देखा। शायद वे किसी से कोई अनुमति लेना चाहते थे। मगर वहां अनुमति देने वाला तो कोई था नहीं। उनकी गाड़ी का ड्राइवर गंभीर भाव से बैठा हुआ सामने की ओर देख रहा था। उसके सिवा वहां और सभी काले—सिर्फ काले ही थे। मि. पियेनार बड़े ही थके-से, जड़ की भांति मानो एक ऐसी ताकत के खिलाफ जूझते हुए अपना हाथ हिलाने लगे, जो उन्हें खींचती हुई किसी बड़े भारी बोझ के तले ले जाना चाहती थी। आखिरकार उनका हाथ ऊपर उठा, धीरे-धीरे हिला; लोगों के कंठों से निकली आवाजों ने विपुल उल्लास से मि पियेनार के हाथ का अभिनंदन किया। मि. पियेनार को एक अजीब-सी यंत्रणा महसूस हुई। अचानक उन लोगों से भी उन्हें डर-सा लगने लगा। उन लोगों के शरीर के रंग ने भी मानो अंधेरे का रूप धारण कर उन्हें चारों ओर से ढंक लिया। उन्होंने ड्राइवर को गाड़ी चलाने को कहा।

गाड़ी मेरी के घर के सामने रुकी थी। मेरी मानो लोगों की भीड़ में अपने घर के सामने ही खो गई थी। गाड़ी को पकड़े वह पूरे समय चुपचाप रो रही थी।

मि. पियेनार के उस वर्जित अचल-भ्रमण की कहानी मिसेज पियेनार के कानों में आई। उसने पति की आंखों में एकटक देखते हुए पूछा—"यह सब क्या है?"

एक अबोध शिशु की भांति मि पियेनार ने कोई जवाब नहीं दिया।

उसके दूसरे ही दिन संघ के लोगों से पियेनार का घर भर गया। बहुत-से लोग तरह-तरह से, तरह-तरह की बातें मि. पियेनार से पूछते रहे, जिरह करते रहे; बहुत से लोग तरह-तरह से समझाते रहे—देखिए, कलेजा तो इंसान के शरीर का सिर्फ एक यंत्र भर है, बिलकुल मोटर-गाड़ी के डिस्ट्रीब्यूटर जैसा ही एक यंत्र। इस यंत्र के साथ इंसान की सभ्यता-संस्कृति-आदर्श का विनिमय नहीं होता। मि. पियेनार की छाती में लगाया हुआ कलेजा तो इस्पात का भी हो सकता था, अगर कलेजे इस्पात से बनाए जाने लगे, तो इस्पात का मान भी सोने के मान का हो जाएगा, यह झूठ है। मि. पियेनार को याद रखना चाहिए, कि गलत विचारधारा से प्रभावित कुछ लोग एक सुसभ्य, सुसंस्कृत जाति की साधना को कलंकित न कर सकें। मि. पियेनार तो संघ के सचिव रह चुके हैं, उन्हें इस बारे में ज्यादा समझाना तो बडे अफसोस की बात होगी।

संघ के सचिव ने दूसरे दिन मि. पियेनार को सूचित किया कि वे कुछ दिन अपने घर में ही रहें! डॉ. कैंपवेल ने भी उन्हें लिखित रूप से सूचित किया कि वे कुछ दिन पूरी तरह से विश्राम करें।

पूरी तरह से विश्राम? एक दिन मि. पियेनार अपने निर्जन कमरे में बैठे अकेले-अकेले दुहरा रहे थे। किस तरह के विश्राम को पूरी तरह से विश्राम कहा जाता है? बहुत दिनों तक उस निर्जन कमरे में विश्राम करते-करते उन्हें लगने लगा था कि उनकी समूची जाति ने उनके घृणित जीवन को इस कारागार में डाले रखा है। इंसान के ज्ञान, कार्य-कुशलता के अन्यतम साधकों ने उन्हें इस तरह बंद किए रखा है। मेरी इस जिंदगी को जो औरत अपनी जिदगी मानती थी—वही आज छाती की धड़कन कानों में पड़ने की आशंका से एक ही घर में भागती फिरती है। और जिस यंत्र से वह धड़कन पैदा होती है, उसे बिलकुल अपनी छाती के अंदर घुसा लेने के बावजूद उन्हें खुद उसका स्वरूप मालूम नहीं। ओह, यह कितनी तकलीफ देह स्थिति है। अपने शरीर का कोई अंग जब पराया हो जाए, तो फिर उसे सहन कर पाना बड़ा मुश्किल होता है।

—'बहुत छोटी है, बहुत छोटी! मि. पियेनार मन ही मन बड़बड़ाने लगे। 'एक दिल से घेरे हुए कलेजे को बिठाने के लिए हमारी छातियां बड़ी छोटी हैं। वहां जगह कम है। इसी कारण मुझे इतनी तकलीफ हो रही है। अगर कलेजा सिर्फ एक यंत्र-भर होता तब तो शायद उसके लिए बहुत ही कम जगह लगती। इस्पात का बना होता तो और कम जगह की जरूरत होती।

मि. पियेनार खड़े हो गए। विश्व-प्रसिद्ध युगांतकारी रोगी मि. पियेनार कमरे के अंदर बड़ी बेचैनी से चहल-कदमी करने लगे। "दुनिया-भर में श्रेष्ठ विकलांग, सबसे ज्यादा निःस्व, बिलकुल अकेला, बगैर कलेजे का जीव।" प्रलाप के लहजे में इन शब्दों का उच्चारण करते हुए मि. पियेनार ने अपने बालों में उंगलियां डालीं। कुछ देर खड़े रहकर अच्छे कपड़े पहन, स्मिथ के पते का वह कार्ड फिर छाती की जेब में भर लिया। फिर उन्होंने एक रिवाल्वर भी जेब में डाल ली। वह पिस्तौल कभी उन्हें संघ की ओर से दी गई थी।

गाड़ी, ड्राइवर सबको मिसेज पियेनार अपने दफ्तर ले गई थी। कुछ दूर जाकर मि. पियेनार ने एक टैक्सी ली, और उस पर सवार हो मेरी के घर के सामने ही टैक्सी से उतरे।

मेरी देखते ही अचरज से चीख पड़ी—महाशयजी!

मि. पियेनार एक कुर्सी पर बैठ गए। असंयत स्वर में उन्होंने कहा—"स्मिथ के कलेजे की धड़कन सुनने की तो तुम्हें इच्छा होती है न?"

मेरी की आंखें चमक उठीं। जी हां, महाशयजी, होती है।

—"तो फिर आ जाओ, आ जाओ! मेरी छाती पर सिर रखो। जी भरकर कलेजे की आवाज सुन लो। आ जाओ।" मि. पियेनार कुर्सी पर उठंग गए।

अचरज के मारे मेरी की आवाज खो गई। वह मि. पियेनार की ओर चुपचाप देखती रही। पियेनार ने तेज आवाज में कहा—'आ जाओ।'

—"महाशय जी, भला आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? आपको क्या हुआ है?"

—"इतनी सारी बातों का जवाब देने का मेरे पास समय नहीं है। मेरे हाथ में बहुत ही थोड़ा-सा समय बचा है—निर्विकार स्वर में मि. पियेनार ने कहा। कुछ क्षण बाद अचानक उन्होंने कातर अनुरोध के स्वर में कहा—"आ जाओ, मेरी आ जाओ। जितनी ज्यादा देर होगी, मुझे उतनी ही ज्यादा तकलीफ होगी। यह देखो न, मेरा हाथ पसीने-पसीने हो गया है।" कहते-कहते उन्होने अपने हाथ की मुट्ठी की पिस्तौल जेब से बाहर निकाल ली।

—"क्या?" मेरी चीख पड़ी, "आप खुदकशी करेंगे?" और झपटकर उसने मि. पियेनार को बांहों मे भर लिया। जमीन पर घुटने टेक उसने अपने सिर से उनकी छाती को दबाया। —"नहीं, नहीं, आप ऐसा काम न करें। आप तो जानते ही हैं, आप अब खुदकशी नहीं कर सकते। अगर करते हैं, तो बहुत होगा तो यही होगा कि आप स्मिथ की हत्या कर सकते हैं। उस कलेजे को आप यों विनष्ट न करें। आप जहां भी रहे—मेरे स्मिथ को जिदा रखें—मेरी विकल हो विनती करने लगी। उसके बाद वह चुपचाप मि. पियेनार की छाती पर कान लगाए सुध-बुध खोकर मरी-सी पड़ी रही।

काफी देर बाद मि. पियेनार मेरी के यहां से निकले। पिस्तौल वे वही फेंक आए।

अंधेरी राह में, कुछ दूर-दूर से तीन आदमी मि पियेनार के पीछे लगे हुए थे।

दूसरे दिन देखा गया कि मि पियेनार का शव उनके घर के पास के पार्क में पड़ा हुआ है।

संघ के कार्यालय में रात को एक जरूरी गोपनीय सभा बैठी थी। कई लोगो के बीच डॉ. कैंपवेल भी बड़े गंभीर भाव से बैठे हुए थे। उनके सामने कागज-कलम थे। एक सदस्य उन्हें समझा रहा था—देखिए, डॉ कैंपवेल, कल सुबह ही प्रेस वाले आपको घेर लेंगे। इसी कारण आपका वक्तव्य आज ही तैयार कर रखना होगा। आपको तो दुनिया का सबसे बड़ा पुरस्कार मिल ही चुका है। आपके सिद्धांत की गलती निकालने में लोगों की कई साल लग जाएंगे। परंतु कल आप जो कुछ कहेंगे, लोग उसे ही श्रद्धा से मान लेंगे। डाक्टर साहब, क्या ऐसी बात नहीं हो सकती कि आप कह दें सभी जातियों के आदमी का कलेजा सभी जातियों के आदमी के शरीर में बराबर नहीं बैठ पाता। जैसे कि मान लें, पानी के लिए जो पंप बनाई गई है, उसे तेल निकालने के काम में नही लाया जा सकता। अगर कोई काम में लाए भी तो कुछ दिन वह पंप चलेगी, उसके बाद बद हो जाएगी। मि. पियेनार का वह यंत्र भी शायद उसी कारण बंद हो गया हो।

और उस आदमी ने मेज पर रखा कोरा कागज डॉ. कैंपवेल की ओर बढ़ा दिया।

1968

दि सेन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, ए-12/1 नरायणा इन्डस्ट्रियल एरिया-I, नई दिल्ली 110028 द्वारा मुद्रित